दो शब्द

देहली भारतवर्ष की राजधानी है। आज स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो देहली का बहुत ही विशिष्ट स्थान है। समस्त धर्मों के धर्मगुरु प्राय सदैव हो देहली मे विद्यमान रहते हैं। देहली के सौभाग्य से गत तीन वर्षों से पूज्य आचार्य १०८ विद्यालकार श्री देशभूषण जी महाराज का देहली मे चातुर्मास हो रहा है। पूज्य आचार्य श्री कानडी सस्कृत तथा हिन्दी भाषा के एक उच्च कोटि के विद्वान है साथ ही आपको अग्रेजी का भी ज्ञान है। आचार्य श्री को जैन धर्म की प्रभावना की एक अद्वितीय लगन है। अब तक आप कितने ही ग्रन्थो का अनुवाद तथा कितनी ही मूल पुस्तके जैन धर्म पर लिख चुके हैं। आपके द्वारा अनुवादित रत्नाकर शतक, भरतेश वैभव, अपराजितेश्वर शतक अधिक प्रसिद्ध हैं।

पूज्य आचार्य श्री माघनन्दी विरचित प्रस्तुत कानडी ग्रन्थ 'शास्त्रसार समुच्चय' एक अद्वितीय जैन धर्म ग्रन्थ है जिसमे चारो अनुयोगो का बडा ही सुन्दर वर्णन है। आचार्य श्री द्वारा सर्व प्रथम इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया गया है जो आपके सन्मुख है। आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ के अनुवाद मे ही इस चातु-र्मास का अधिक समय व्यतीत किया है। जैन साहित्य के प्रति आपकी यह अपूर्व सेवा है जिसके लिए जैन समाज आपका सदैव ऋणी रहेगा।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त इस वर्ष चातुर्मास मे आचार्य श्री ने अपना बाकी समय श्री भूवलय महान् ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद मे व्यतीत किया है। ग्रन्थराज श्री भूवलय ससार का एक निराला ग्रन्थ है जो आचार्य श्री कुमुदेन्दु जो ने अको मे निर्माण किया है। भूवलय ग्रन्थ का प्रकाशन एक ऐसा कार्य होगा जो ससार मे जैन धर्म की प्राचीनता तथा महत्व को दीपक के समान प्रकाश मे लाएगा। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य भूवलय ग्रन्थ प्रकाशन समिति ने अपने ऊपर लिया है। उसके सस्थापक भी आचार्य श्री ही है। उस ग्रन्थ का मंगल-प्राभृत शीघ्र प्रकाशित होगा।

आचार्य श्री जैन जगत की एक महान विभूति है। आपके देहली चातु-र्मास से जैन जनता ने ही नही वरन्‌ अजैन जनता ने भी बहुत धर्म लाभ उठाया

है। भारत के सुप्रसिद्ध व्यापारी तथा आर्य धर्म शिरोमणि श्री जुगलकिशोर जी विडला तो आप को अपने धर्मगुरु के रूप मे सदैव ही पूजते रहे हैं। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर भाई, श्री निजलिंगप्पा मुख्यमन्त्री मैसूर राज्य, सुप्रीम कोर्ट के जज, भारत राज्य के मन्त्रीगण तथा अनेको अन्य ख्याति प्राप्त महान व्यक्ति आपकी सेवा मे धर्म लाभ प्राप्ति हेतु, आपके उपदेश श्रवण को आते रहे हैं। श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि पूज्य आचार्य श्री सदैव ही हमारे मार्गप्रदर्शक रहे। जैन समाज ला० प्रताप-सिंह जी जैन मोटरवाले (रोहतक निवासी) तथा धर्मपत्नी राजेन्द्रकुमार जी कीलिंग रोड नई देहली की अत्यन्त आभारी है जिनकी ओर से इस ग्रन्थ की २००० तथा १००० प्रतियां प्रकाशित की जा रही है। आपकी धर्मनिष्ठा तथा दानशीलता अनुकरणीय है।

आदीश्वरप्रसाद जैन एम. ए.

मन्त्री

श्री भूवलय ग्रन्थराज प्रकाशन समिति

२० अक्तूबर १९५७ जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली।

स्वस्ति श्री १०८ विद्यालंकार

आचार्य श्री देशभूषण मुनि महाराज जी

दो शब्द

संसारसागर मे आत्मा को डुबाने वाला अज्ञान (ज्ञान की कमी) तथा कुज्ञान (मिथ्याज्ञान) है और ससार से पार करने वाला सज्ज्ञान है। वैसे तो मनुष्य पढ लिखकर लौकिक ज्ञान मे बहुत निपुण हो जाते है जैसे कि आजकल भौतिक विज्ञान मे पाश्चात्य देशोके विज्ञानवेत्ता अणुबम उद्जनबम आदि बना कर बहुत कुछ उन्नति कर चुके है किन्तु उस सूक्ष्म विशाल ज्ञानसे आत्मा को कुछ पोषण नही मिलता। वह महान ज्ञान तो हिरोशिमा, नागासीका—जैसे जापान के विशाल नगरो को क्षणभर मे विध्वस करने मे निमित्तकारण बन गया है। आध्यात्मिक ज्ञान ही आत्मकल्याण का साधन है।

सततस्मरणीय पूज्यतम तीर्थंकरो ने उसी आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार किया यद्यपि उन्होने परमाणु आदि जड़ पदार्थो का सूक्ष्म विवेचन भी अपने दिव्यउपदेश मे स्पष्ट किया है परन्तु उनका सकेत मुख्यरूप से आध्यात्मिक ज्ञान की ओर रहा। उसी आध्यात्मिक ज्ञान को अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर की शिष्य परम्पराने ग्रन्थनिवद्ध करके जगत्कल्याण के लिये सुरक्षित रक्खा। उन्होने भगवान महावीर की वाणी को चार अनुयोगो मे विभक्त करके भिन्न भिन्न अनुयोगो की अक्षरात्मक रचना की। परन्तु श्री माघनन्दि आचार्य ने सूत्रात्मक शास्त्रसार समुच्चय ग्रन्थ मे उन चारो अनुयोगो को सक्षेप मे रखकर अनुपम रचना संसार के सामने रक्खी।

उसी शास्त्रसार समुच्चय ग्रन्थ की टीका श्री माणिक्यनन्दि आचार्य ने की है जो कि संभवतः सस्कृत भाषा मे होगी। एक कनडी टीका किसी अज्ञातनामा विद्वान ने की है जो कि अच्छी सुगम एव उपयोगी है। उसकी उपयोगिता अनुभव करके हमने उसका हिन्दी अनुवाद कर दिया है। ग्रन्थकी अन्य मूल लिखित प्रति न मिल सकने से ग्रन्थ का मिलान न किया जा सका अत अनेक गाथाओ एव श्लोको की अशुद्धियो का ठीक सशोधन होने से रह गया है।

ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये श्री ला० प्रताप सिंह जैन मोटर वाले दिल्ली ने आर्थिक व्यय करके सज्ज्ञान के प्रसार मे सहयोग दिया है उनका यह आर्थिक दान उनके मुक्ति के कारणभूत पुण्य-सचयका कारण है। धनका सदुपयोग विश्वकल्याण के कारणभूत सत्कार्यो मे व्यय करना ही है। प्रतापसिंह की

यह उदारभावना और भी प्रगति करे और अपने स्वस्थ प्रसन्न जीवन से स्वपर कल्याण करने मे अग्रेसर रहे, ऐसा हमारा शुभाशीर्वाद है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन मे पं० अजितकमार जी शास्त्री, सम्पादक-जैन-गजट तथा पं० राम शंकर जी त्रिपाठी ने अच्छा सहयोग दिया है। एवं अनेक स्थलो पर क्षुल्लिका विशालमती ने सहायता की है, एतदर्थ उन्हे भी शुभाशीर्वाद है।

हमारे सामने भूवलय सिद्धान्त के अनुवाद का भी महान कार्य है, उसमे भी हमारा पर्याप्त समय तथा उपयोग इसी अवसर पर लगा रहा, साथ ही उन दिनो मे विहार भी होता रहा, इस कारण शास्त्रसार समुच्चय के अनुवाद कार्य मे त्रुटिया रह जाना सभव है, विद्वान गण उन त्रुटियो को सुधार कर अपने कर्तव्य का पालन करे, ऐसा हमारा अनुरोध है।

भगवान महावीर का शासन विश्वव्यापी हो, मानव समाज दुर्गुण दुराचार छोड़ कर सन्मार्गगामी बने और विश्व की अशान्ति दूर हो, हमारी यही भावना है।

(आचार्य श्री १०८) देशभूषण (जी महाराज)
(दिल्ली-चातुर्मास)

शास्त्रसार समुच्चय

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'शास्त्रसार समुच्चय' है। जिसका विषय उसके नाम से स्पष्ट है। इस ग्रन्थ मे आचार्य महोदय ने उन सभी विषयों की चर्चा की है जिन को जानने की अभिलाषा प्रत्येक श्रावक को होती है। इसमे ज्योतिष, वैद्यक-जैसे लौकिक विषयो की भी चर्चा की गई है। ग्रन्थ की टीका कनाड़ी भाषा मे की गई है। सूत्रोंके रचियता आचार्य माघनन्दि योगीन्द्र है। जो वस्तु-तत्त्व के मर्मज्ञ, महान् तपस्वी और योग-साधना मे निरत रहते थे। इतना ही नही किन्तु ध्यान और अध्ययन आदि मे अपना पूरा समय लगाते थे। और कभी कभी भेद-विज्ञान द्वारा आत्मस्वरूप को प्राप्त करने तथा आत्म-प्रतीति के साथ स्वरूपानुभव करने मे जो उन्हे सरस आनन्द आता था उसमे वे सदा सराबोर रहते थे। जब कभी उपयोग मे अस्थिरता आने का योग बनता तो आचार्य महोदय तत्त्व-चिंतन और मनन द्वारा उसे स्थिर करने का प्रयत्न करते। और फिर ग्रन्थ-

रचनादि शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करते थे। आपके नाम के साथ लगी हुई 'योगीन्द्र' उपाधि आपकी कठोर तपश्चर्या एव आत्म-साधना का जयघोष कर रही है। आप कनडी भाषा के साथ सस्कृत भाषा के विशिष्ट विद्वान थे। और संक्षिप्त तथा सार रूप रचना करने मे दक्ष थे।

माघनन्दी नाम के अनेक विद्वान और आचार्य हो गए हैं। उनमे वे कौन हैं और गुरूपरम्परा क्या है ? यह विचारणीय है। इस ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत माघनन्दि योगीन्द्र (मूलसघ बलात्कार गण) के गुरु विद्वान श्री'कुमुदेन्दु' थे। यह कुमुदेन्दु प्रतिष्ठा-कल्प टिप्पण के भी कर्ता थे। अत इनका समय सभवत विक्रम की १२ वी १३ वी शताब्दी होना चाहिए। एक माघनन्दी कुमुदचन्द्र के शिष्य थे, जो माघनन्दि श्रावकाचार तथा शास्त्रसार समुच्चय के कनाडी टीकाकार है। कर्नाटक कवि चरित के अनुसार इनका समय ईस्वीसन् १२६० (वि० स० १३१७) है। शास्त्रसार समुच्चय के कर्ता माघनन्दि योगीन्द्र इन से पूर्ववर्ती है। अर्थात् उनका समय विक्रम की १३ वी शताब्दी का उत्तरार्ध है। आपकी यह अनुपम वृति सक्षिप्त स्पष्ट और अर्थ-गाम्भीर्य को लिए हुए है। इस ग्रन्थ मे प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग के साथ अनगार (मुनि) और श्रावक के धर्म तथा कर्तव्य का अच्छा विवेचन किया गया है। ग्रन्थ की टीका की भाषा कनाडी होने से वह तद्भाषा-भाषियो के लिये तो उपयोगी है ही, किन्तु आचार्य श्री १०८ देश-भूषण जी महाराज द्वारा हिन्दी टीका हो जाने से वह हिन्दी भाषा-भाषी जनो के लिये भी उपयोगी हो गया है।

श्री आचार्य ने जब इस ग्रन्थ का अध्ययन किया था, उसी समय से इस की टीका करने का उनका विचार था, परन्तु पर्याप्त साधन सामग्री के अनुकूल न होने से वे उसे उस समय कार्य रूप मे परिणत नही कर सके थे। किन्तु भारत की राजधानी दिल्ली मे उनका चातुर्मास होने से उन्हे वह सुयोग मिल गया, और वे अपने विचार को पूर्ण करने मे समर्थ हो सके हैं। पूज्यवर आचार्य श्री की मातृ-भाषा हिन्दी न होने पर भी उनका यह हिन्दी अनुवाद सुरुचि पूर्ण है। साथ ही, भाषा सरल और मुहावरेदार है और ग्रन्थ के हार्द को स्पष्ट करने मे पूरा परिश्रम किया गया है। आचार्य श्री का उक्त कार्य अभिनन्द-नीय है। आशा है, आचार्य महाराज भविष्य मे जनता का ध्यान जिनवाणी के सरक्षण की ओर आकर्षित करने की कृपा करेगे।

—परमानन्द जैन शास्त्री

वक्तव्य

संसार मे भ्रम, अज्ञान, असत्‌धारणा, आध्यात्मिक अन्धकार है, जैसे सूर्य अस्त हो जाने पर नेत्रो को बाहरी पदार्थ रात्रि के गहन अन्धकार मे दिखाई नही देते, ठीक उसी तरह गहन अज्ञान अन्धकार मे ज्ञान का अधिपति आत्मा स्वयं अपने आपको नही देख पाता।

किन्तु सौभाग्य है कि सदा रात्रि का अन्धकार नही बना रहता, कुछ समय पीछे सूर्य-उदय के साथ प्रकाश अवश्य हुआ करता है, इसी तरह अज्ञान अन्धकार भी संसार में सदा व्याप्त नही रहता, उस आध्यात्मिक अन्धकार को दूर करनेवाला ज्ञान-सूर्य भी कभी उदित होता ही है जिसके महान प्रकाश मे अज्ञान धारणाऐ, फैले हुए भ्रम और असत् श्रद्धा बहुत कुछ दूर हो जाती है, उसी ज्ञान-प्रकाश मे सासारिक विविध दु खो से पीड़ित जीव सन्मार्ग का अवलोकन करके गहन संसार वनको पार करके अजर अमर बन जाया करते हैं।

जिस तरह दिन और रात्रि की परम्परा सदा से चली आ रही है, ज्ञान-प्रकाश और अज्ञान-अन्धकार फैलने की परम्परा भी सदा से चली आ रही है। ज्ञान-प्रकाशक तीर्थंकर जब प्रगट होते है तब जगत मे ज्ञान की महान ज्योति जगमगा उठती है और जब उनका निर्वाण हो जाता है तब धीरे-धीरे वह ज्योति बुझकर अज्ञान फैल जाता है।

इस युग की अपेक्षा भरतक्षेत्र मे सबसे पहले सत्‌ज्ञान के प्रकाशक अनुपम दिवाकर आदि जिनेश्वर भगवान ऋषभनाथ सुषमादु.षमा काल के अन्तिम चरण मे प्रगट हुए। उन्होने अपने अनुपम ज्ञान बल से पहले समस्त किंकर्तव्य-विमूढ जनता को जीवन-निर्वाह की विधियां—असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य, विद्या आदि कलाऐं सिखाई। अपनी ब्राह्मी पुत्री को अक्षर विद्या और लघुपुत्री सुन्दरी को अंक-विद्या सिखलाई, इस प्रकार लिखने पढ़ने का सूत्रपात किया। अपने भरत, बाहुबली आदि उदीयमान महान पुत्रों को नाट्य, राजनीति, मल्ल युद्ध आदि कलाओ से निपुण किया। भगवान ऋषभ नाथ ने अपने यौवन काल मे स्वय निष्कण्टक न्याय नीति से राज्य-शासन किया तथा आयु के अन्तिम चरण मे अपने राज-सिंहासन पर भरत को बिठा कर स्वयं मुनि-दीक्षा लेकर योग धारण किया।

जिस तरह उन्होंने अपने गृहस्थ-आश्रम मे जनता को सबसे प्रथम समस्त कलाएं सिखलाई थी, इसी प्रकार घर परिवार से विरक्त होकर नग्न दिगम्बर रूप धारण करने के अनन्तर सबसे पहले उन्होने मुनि-चर्याका आदर्श भी उपस्थित किया। उस योगि-मार्ग में उन्हे एक हजार वर्ष तक मौन भाव से कठोर तपस्या करने के पश्चात् जब केवल ज्ञान प्राप्त हुआ तब वे इस युगके सबसे प्रथम वीतराग सर्वज्ञ अर्हंत परमात्मा बने। उस समय उन्होने सबसे प्रथम जनता को ससार से पार होकर मुक्ति प्राप्त करने का सन्मार्ग प्रदर्शन किया, कर्म-बन्धन, कर्म-मोचन, आत्मा, परमात्मा, जीवअजीव आदि पदार्थो का यथार्थ स्वरूप अपनी दिव्य-ध्वनि द्वारा बतलाया। आर्य-क्षेत्र मे सर्वत्र विहार करके समवशरण द्वारा धर्म का प्रचार तथा तत्व ज्ञान का प्रसार किया। जनता मे आध्यात्मिक रुचि उत्पन्न की। इस प्रकार वे सबसे पहले धर्म-उपदेष्टा प्रख्यात हुए।

प्रसिद्ध वैदिक दिगम्बर ऋषि शुकदेव जी से जब पूछा गया कि 'आप अन्य अवतारो को नमस्कार न करके ऋषभ-अवतार (भगवान ऋषभ नाथ) को ही नमस्कार क्यो करते हैं ? तो उन्होने उत्तर दिया कि 'अन्य अवतारो ने ससार का मार्ग बतलाया है, किन्तु ऋषभ देव ने मुक्ति का मार्ग बतलाया है, अतः मै केवल ऋषभदेव को नमस्कार करता हूँ।'

भगवान ऋषभनाथ ने दीर्घ काल तक धर्म-प्रचार करने के अनन्तर कैलाश पर्वत से मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार वे प्रथम तीर्थंकर हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत पहले चक्रवर्ती सम्राट् हुए, उनके ही नाम पर इस देश का नाम 'भारत' प्रसिद्ध हुआ।

भगवान ऋषभनाथ के मुक्त हो जाने पर उनकी शिष्य-परम्परा तत्व-उपदेश तथा धर्म-प्रचार करती रही। फिर भगवान अजितनाथ दूसरे तीर्थंकर हुए उन्होने राज-शासन करने के पश्चात् मुनि-दीक्षा लेकर अर्हंत-पद प्राप्त किया। तदनन्तर भगवान ऋषभनाथ के समान ही महान धर्म-प्रचार और तात्विक प्रसार किया। भगवान अजितनाथ के मुक्त हो जाने पर क्रमश शम्भव नाथ, अभिनन्दननाथ आदि तीर्थंकर क्रमश होते रहे। बीसवें तीर्थंकर मुनि-सुव्रतनाथ हुए इनके समय मे राम, लक्ष्मण, रावण आदि हुए। बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ हुए। नारायण कृष्ण इनके चचेरे भाई थे, कौरव पाण्डव इनके समय मे हुए हैं। तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुए। इनमे से श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ,

पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच तीर्थङ्कर बाल ब्रह्मचारी हुए हैं। सभी तीर्थङ्करो ने अपने समय मे धर्म तथा सत्ज्ञान का महान प्रचार किया है।

समस्त तीर्थङ्करो का तात्विक उपदेश एक ही समान रहा क्योकि सत्य एक ही प्रकार का होता है उसके अनेक भेद नही हुआ करते। अत: जैसी कुछ वस्तु-व्यवस्था भगवान ऋषभनाथ के ज्ञान द्वारा अवगत होकर उनकी दिव्य-ध्वनि से प्रगट हुई वैसा ही वस्तु-कथन भगवान महावीर द्वारा हुआ।

भगवान महावीर के मुक्त हो जाने पर भगवान महावीर के चार शिष्य केवल ज्ञानी (सर्वज्ञ) हुए। श्री इन्द्र-भूति गौतम गणधर, सुधर्म गणधर तथा जम्बू स्वामी अनुबद्ध केवली हुए और श्रीधर अननुबद्ध केवली हुए हैं। जो कि कुण्डल गिरि से मुक्त हुए। इनके पश्चात् भरत क्षेत्र मे केवल-ज्ञान-सूर्य अस्त हो गया। तब भगवान महावीर का तात्विक प्रचार उनकी शिष्य-परम्परा ने किया।

चार केवलियो के बाद नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाच द्वादशाग वेत्ता श्रुत-केवली हुए। भद्रबाहु आचार्य के पश्चात् श्रुत-केवल-ज्ञान-सूर्य भी अस्त हो गया। इन पांचो का समय सौ वर्ष है। तदनन्तर विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गङ्गदेव और सुधर्म, ये ग्यारह यति ग्यारह अंग दशपूर्व के वेत्ता हुए। इन सबका काल १८३ वर्ष है।

तदनतर श्री नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस ये पांच मुनिवर ग्यारह अंग के ज्ञाता हुए। ये सब २२० वर्षों में हुए। फिर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, और लोहार्य ये चार मुनिराज आचारांग के धारक हुए। ये आचारांग के पूर्ण ज्ञाता थे, शेष १० अंग, १४ पूर्वो का इन्हे एकदेश ज्ञान था।

इनके पीछे श्री धरसेन तथा गुणधर आचार्य हुए है। श्री धरसेनाचार्य ने अपना आयुकाल सन्निकट जानकर अन्य साधु संघ से श्री पुष्पदन्त भूतबली नामक दो मेधावी मुनियो को अपने पास बुलाया और उन्हें सिद्धान्त पढ़ाया। सिद्धान्तमे पारङ्गत करके उन्हे अपने पास से विदा कर दिया। श्री धरसेनाचार्य गिरिनगर (गिरनार) के निकट चन्द्रक गुफा में रहते थे जोकि अब तक विद्यमान है।

श्री पुष्पदन्त भूतबली आचार्य ने षट्खण्ड आगम की और श्री गुणधर आचार्य ने कसाय-पाहुड़ ग्रन्थ की रचना की। सम्भवत: षट्खण्ड आगम से पहले कसाय-पाहुड़ की रचना हुई है। श्री कुन्दकुन्द आचार्य अपने आपको

द्वादशांग वेत्ता श्री भद्रबाहु आचार्य का शिष्य लिखते हैं, इस दृष्टि से उनका समय श्री पुष्पदन्त, भूतबली से भी पहले का बैठता है किन्तु चारो आचार्य विक्रम की दूसरी शताब्दी के माने जाते हैं, अत श्री कुन्द-कुन्दाचार्य का समय विचारणीय है।

इस प्रकार भगवान वीरप्रभु का उपदिष्ट सैद्धान्तिक ज्ञान अविच्छिन्न गुरु-परम्परा मे श्री धरसेन, गुणधर, पुष्पदन्त, भूतवली, कुन्दकुन्द आचार्य को प्राप्त हुआ और उन्होने (धरसेन आचार्य के सिवाय) आगम-रचना प्रारम्भ की। श्वेताम्बरीय आगम-रचना विक्रम स० ५१० मे बल्लीपुर मे श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे हुई।

श्री गणधर, पुष्पदन्त भूतवली, कुन्दकुन्द आचार्य के अनन्तर ग्रन्थ निर्माण की पद्धति चल पडी। तदनुसार श्री उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद यतिवृषभ, अकलकदेव, वीरसेन, जिनसेन आदि आचार्यों ने गुरु-परम्परा से प्राप्त ज्ञान के पनुसार विभिन्न विषयो पर विभिन्न ग्रन्थो की रचना की। उन ग्रन्थो मे प्राय. किसी एक ही अनुयोग का विषय-विवरण रक्खा गया है।

कर्णाटक कविचरित के अनुसार सवत् १३१७ मे श्री कुमुदचन्द्र आचार्य के शिष्य श्री माघनन्दी आचार्य हुए इन्होने चारो अनुयोगो को सूत्र-निबद्ध करके शास्त्रसार-समुच्चय ग्रन्थ की रचना की है। इसमे संक्षेप से चारो अनुयोगो का विषय आ गया है। इस ग्रन्थ की एक टीका माणिक्यनन्दि मुनि ने की है संभवत. वह सस्कृत भाषा मे होगी। कनडी टीका एक अन्य विद्वान ने बनाई है। ग्रन्थ के अन्त मे जो प्रशस्ति के पद्य है उनसे उस विद्वान का नाम 'चन्द्रकीर्ति' प्रतीत होता है और सभवतः वह गृहविरत महाव्रती मुनि थे, उन्हो ने यह टीका निल्लिकार (कर्णाटक प्रान्त) नगर के भगवान अनन्तनाथ के मदिर में आश्विन सुदी १० (विजया दशमी) को लिखी है।

यह टीका अच्छे परिश्रम के साथ लिखी गई है, अच्छा उपयोगी पठ्य-नीय विषय इसमे सकलित किया गया है। किस संवत् मे यह लिखी गई, यह ज्ञात नही हो सका। यह टीका कर्णाटक लिपि मे प्रकाशित हो चुकी है। प्रकाशक को एक प्रति के सिवाय अन्य कोई लिखित प्रति उपलब्ध न हो सकी, जिससे कि वह दोनो प्रतियो का मिलान करके सशोधन कर लेते, इस कठिनाई के कारण टीका मे निबद्ध अनेक श्लोक और गाथाऐं अशुद्ध छप गई हैं। अस्तु।

इसी टीका की उपयोगिता का अनुभव करके सततज्ञानोपयोगी विद्या-लङ्कार आचार्य देशभूषण जी महाराज ने इस वर्ष चातुर्मास मे इस कनड़ी टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। एक भाषा से दूसरी भाषा मे अनुवाद

करना कितना श्रम-साध्य कठिन कार्य है इसको भुक्त योगी ही समझ सकते हैं। फिर भी ४२४ पृष्ठ प्रमाण इस टीका का अनुवाद महाराज ने स्वल्प समय में कर ही डाला।

इसके साथ ही वे महान अद्भुत ग्रन्थ भूवलय के अनुवाद और सम्पादन में भी पर्याप्त योग देते रहे। इस तरह उनके कठिन श्रम को विद्वान ही आक सकते हैं। इस ग्रन्थ के सम्पादन मे मैंने भी कुछ योग दिया है। असाता वश नेत्र पीडा, इन्फ्ल्युन्जा (श्लेष्म) ज्वर तथा वायु पीडा-ग्रस्त होने के कारण मुझे लगभग डेढ मास तक विश्राम करना पडा, ग्रन्थ का सम्पादन, प्रकाशन उस समय भी चलता रहा, अत उस भाग को मैं नहीं देख सका।

ग्रन्थ मूल प्रति उपलब्ध न होने से संशोधन का कार्य मेरे लिए भी कठिन रहा। बहुत सी गाथाऐं तथा संस्कृत श्लोक तिलोयपण्णत्ति, गोम्मट-सार आदि ग्रन्थो से मिलान करके शुद्ध कर लिए गये, जिन उद्धृत पद्यों के विषय मे मूल ग्रन्थ का पता न लग सका उनको ज्यो का त्यों रखदेना पड़ा अतः विद्वान इस कठिनाई को दृष्टि में रखकर त्रुटियों के लिए क्षमा करे। ग्रन्थ इससे भी अधिक सुन्दर सम्पादित होता किन्तु प्रकाशको की नियमित स्वल्प समय मे ही प्रकाशित कर देने की प्रेरणा ने अधिक-समय-साध्य कार्य स्वल्प समय में करने के कारण वैसा न होने दिया। अस्तु।

—अजितकुमार शास्त्री
सम्पादक जैन गजट,
दिल्ली।

विषय-सूची

प्रथमानुयोग

करणानुयोग

चरणानुयोग

श्री प्रतापसिंहजी जैन मोटर वाले अपने परिवार के साथ

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

श्री माघनद्याचार्य विरचित

शास्त्रसार समुच्चय

कानड़ी टीका

का

श्री आचार्य १०८ देशभूषण जी महाराज के द्वारा

हिंदी भाषानुवाद

मंगला चरण

श्री विबुधवंद्यजिनरं केवलचित्सुखदसिद्धपरमेष्ठिगळं ॥
भावजजयिसाधुगळं भाविसि पोडमट्टु पडेवेनक्षयसुखमं ॥

अर्थ—मैं (माघनद्याचार्य) अविनश्वर सुख की प्राप्ति के लिये, चतुर्निकाय देवो द्वारा वंदनीय श्री अरहत तथा आत्मसुख मे रमण करने वाले सिद्ध परमेष्ठी, आत्म तत्व की साधना मे तल्लीन रहने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु ऐसे पच परमेष्ठियो को नमस्कार करता हू। इस प्रकार मगला-चरण करके ग्रन्थकार आचार्य श्री माघनंदी शास्त्र रचना करने की प्रतिज्ञा करते हैं कि—

मै श्री वीर भगवान् के द्वारा कहे गये शास्त्रसार समुच्चय की वृत्ति को कहूँगा। जो वृत्ति संपूर्ण ससारी जीवो के लिये सार सुख प्रदान कर अनन्त गुण संपत्ति को देने वाली होगी।

विषयकषायद्यवद्यान दावानलदह्यमान पंचप्रकार संसारकांतार परिभ्रमण भयभीत निखिल निकठ विनयजनं निरन्तराविनश्वर परम ल्हाद सुखसुदारसमनेबयसुत्तमिकुँमास् खासृतानुभूतियं निजनिरंजन परमात्मस्वरूप प्राप्तियिल्लदागदा सहजशुद्धात्मस्वरूपप्राप्तियुं अभेदरत्नत्रययाराधने यिदिल्लदागदु। आ सहज शुद्धात्मस्वरूपरुचिपरिछित्ति निश्चलानुभूतिरूपे निश्चयरत्नत्रया नुष्ठानवुं, तद्बहिरंग सहकारिकारणभूत भेदरत्नत्रयलब्धियिल्लदागदु। तद्बहिरंग रत्नत्रयप्राप्तियु चेतनाचेतनादि स्वरूप पदार्थ सम्यक्श्रद्धान ज्ञानव्रताद्यनुष्ठानगुण गळिल्लददिद्दरे उंटागुवदिल्ल। तद्गुणविषयभूत सुशास्त्र विल्लदिद्दरिल्ल सुशास्त्रमुं वीतराग सर्वज्ञप्रणीतमप्पुदरिदं ग्रन्थकारं तदादियल्लिमंगलार्थंसभेदरत्नत्रय भावनाफलभूतानंतचतुष्टयात्मक अर्हत्परमेश्वरंगेद्रव्यभाव नमस्कारंमाडिदपेनदंतेने—

अर्थ—दावानल (जगल मे मीलो तक फैली हुई भयानक अग्नि) के समान विषय कषाय इस संसार वन मे संसारी जीवो को जलाया करते हैं। उसी सताप से सतप्त संसारी जीव शांति सुख की खोज मे इधर-उधर (चारों गतियो की चौरासी लाख योनियो मे) भटकते फिरते हैं, उस सासारिक दु.ख से भयभीत निकट भव्य जीव, अविनाशी परमाल्हादस्वरूप सुख पाने की उत्कंठा रखता है। परन्तु वह अनन्त अविनश्वर सुख शुद्ध निरंजनात्मस्वरूप (परमात्मा का स्वरूप) प्रगट होने पर मिलता है।

उस सरल शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति अभेद रत्नत्रय के बिना नही हो सकती, उसे चाहे अभेद रत्नत्रय कहो या निश्चय रत्नत्रय कहो वह शुद्धात्मरुचि, परिचय और निश्चल अनुभूति रूप होती है। वह निश्चय रत्नत्रय, उस बहिरंग कारण भूत भेद रत्नत्रय की प्राप्ति के बिना नही हो सकता और वह बहिरंग रत्नत्रय चेतना चेतनादिक स्वपरपदार्थ के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और व्रतानुष्ठान गुण बिना नही हो सकता। जिसका अनिवार्य निमित्त कारण सम्यक् शास्त्र का अध्ययन है वह सुशास्त्र श्री वीतराग सर्वज्ञप्रणीत होने के कारण ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के आदि मे मगल निमित्त, भेद रत्नत्रय भावना फलभूत अनन्त चतुष्टयात्मक अरहत परमेष्ठी को द्रव्य भाव पूर्वक नमस्कार किया है। वह इस प्रकार है कि—

श्री मन्नम्रामरस्तोमं प्राप्तानतचतुष्टयं ॥
नत्वा जिनाधिपं वक्ष्ये शास्त्रसारसमुच्चयं ॥

अर्थ–श्रीमन्–समवसरणादि बहिरग लक्ष्मी से युक्त और (नम्रामस्तोमं) चतुर्निकाय के देव इन्द्रादिक उनके द्वारा पूजनीय, तथा (प्राप्तानन्त चतुष्टयं) अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, और अनन्त वीर्य स्वरूप अनन्तचतुष्टयात्मक अन्तरग सम्पत्ति से युक्त ऐसे (जिनाधिप) अनेक भवग्रहण विषयव्यसने प्रापण हेतु कर्मारातीन् जयतीति जिन, इस व्युत्पत्ति से युक्त निज भगवान मोक्षलक्ष्मी के अधिपति अर्थात् ईश को (नत्वा) द्रव्यभावात्मक नमस्कार करके (शास्त्रसारसमुच्चय) परमागम के सार भूत समूह को (वक्ष्येहम्) से सक्षेप मे कहूंगा। इस शास्त्र मे प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ऐसे चारों अनुयोगो का वर्णन है इसलिए शास्त्रसार समुच्चय सार्थक नाम है।

प्रथमानुयोग

अथ त्रिविधः कालः ॥१॥

अर्थ–इस प्रकार मंगल निमित्त विशेष इष्ट देवता को नमस्कार करने के बाद कहते है कि त्रिविध काल अनन्तानन्तरूप अतीतकाल से भी अनन्त गुणित अनातकाल, समायादिक वर्तमान काल, इस प्रकार से काल तीन प्रकार के होते हैं।

द्विविधः ॥२॥

अर्थ—पाच भरत और पाच ऐरावतो की अपेक्षा से शरीर की ऊचाई बल और आयु आदि की हानि से युक्त दस कोडाकोड़ी सागर प्रमाण वाला अवसर्पिणी काल तथा उत्सेध आयु बलादि की वृद्धिवाला दशकोड़ाकोडी सागर प्रमाण उत्सर्पिणी काल है। इस प्रकार काल के दो भेद हो जाते हैं।

षड्विधोवा ॥३॥

अर्थ–सुषम सुषमा, १ सुषमा, २ सुषम दु षमा, ३ दु षम सुषमा, ४ दु षमा, ५ अतिदु षमा ६ ऐसे अवसर्पिणी काल के छ. भेद है। इस प्रकार इनसे उलटे अति दु षमा १ दु षमा २ दु षम सुषमा ३ सुषम दु षमा ४ सुषमा ५ सुषम सुषमा ६ ये उत्सर्पिणी के छ भेद है।

इस अवसर्पिणी मे सुषम सुषमा नाम का जो प्रथम काल है वह चार कोडा कोडी सागर प्रमाण प्रवर्तता है, इसमे उत्तम भोगभूमि की सी प्रवृत्ति होती है उस

युग के स्त्री पुरुष ६००० हजार धनुष की ऊंचाई वाले तथा तीन पल्योपम आयु वाले और तीन दिन के बाद बदरी फल के प्रमाण आहार लेने वाले होते हैं। उन के शरीर की कांति वाल सूर्य के समान होती है। समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभ नाराच संहनन तथा ३२ शुभ लक्षणो से युक्त होते है। मार्दव और आर्जव गुणा से युक्तवेसत्य सुकोमल सुभाषा भाषी होते हैं, उनकी बोली मृदु मधुर वीणा के नाद के समान होती है, वे ६००० हजार हाथियो के समान वल से युक्त होते हैं क्रोध लोभ, मद, मात्सर्य और मान से रहित होते है, सहज १, शारीरिक २ आगतुक ३ दु.ख से रहित होते हैं। सगीत आदि विद्याओ में प्रवीण होते हैं, सुन्दर रूप वाले होते हैं, सुगंध नि.स्वास वाले होते हैं तथा मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान वाले होते हैं उपशमादि सम्यक्त्व के धारक होते हैं, जघन्य कापोत पीत, पद्म, और शुक्ल लेश्या रूप परिणाम वाले होते है, निहार रहित होते हैं, अनपवर्त्य आयु वाले होते है, जन्म से ही बालक कुमार यौवन और मरण पर्याय से युक्त होते हैं, रोग शोक खेद और स्वेद आदि से रहित, भाई बहन के विकल्प से रहित, परस्पर प्रेमवाले होते है। आपस मे प्रेम पूर्वक दंपति भावको लेकर अपने समय को बिताते हैं। अपने सकल्प मात्र से ही अपने को देने वाले दश प्रकार के कल्पवृक्षो से भोगोपभोग सामग्री प्राप्तकर भोगते हुए आयु व्यतीत करते है, जब अपने आयु मे नव महीने का समय शेष रह जाता है तब वह युगल एकबार गर्भ धारण कर फिर अपनी आयु के छ महीने बाकी रहे उसमे देवायु को बाधकर मरण के समय दोनो दंपति स्वर्ग मे देव होते हैं। जो सम्यग्दृष्टि जीव होते है वे सब तो सौधर्म आदि स्वर्ग मे और मिथ्या दृष्टि जीव भवनत्रिक मे जाकर पैदा होते है, यहा पर छोड़ा हुआ युगल का शरीर तुरन्त ही ओस के समान पिघल जाता है, उनके द्वारा उत्पन्न हुए स्त्री पुरुष के जोड़े तीन दिन तक तो अंगुष्ठ को चूसते रहते हैं, तीन दिन के बाद रेंगने लगते हैं फिर तीन दिन बाद चलने लगते है, फिर तीन दिन बाद उनका मन स्थिर हो जाता है फिर तीन दिनो बाद यौवन प्राप्त होता है फिर तीन दिन बाद कथा सुनने वाले होते हैं फिर तीन दिन बाद सम्यक्त्व ग्रहण करने योग्य होते हैं। इस प्रकार २१ दिन मे सम्पूर्ण कला संपन्न हो जाते है।

कनाड़ी पद्य—

पगळिरुलोडेबंडव । पगे केळेयाळरसुजाति भेदविषस ॥
पंगणं मलिमागि तगु । ळ्दगाळिकाळ् गिच्चुविनितुमिल्ला महियौल् ॥१॥

अर्थ—उस भूमि मे रात और दिनका, गरीब और अमीर आदि का भेद

नही होता हैं। विप सर्प समूह अकाल वर्षा तूफान दावानल इत्यादि उस भूमि मे नही होता है, पुन पचेन्द्रिय सम्मूर्छन विकलेद्रियअसैनी पर्चेद्रिय अपर्याप्त जीव तथा जलचर जीव वहा नही होते है। स्थलचर और नभचर जाति के जीव युगल रूप से उत्पन्न होते है क्यं कि उस क्षेत्र मे स्वभाव से परस्पर विरोध रहित तथा वहा पर होनेवाले सरस स्वादिष्टि तृण पत्र पुष्प फलादिको खाकर अत्यंत निर्मल पानी को पीकर तीन पल्योपम कालतक जीकर निज आयु अवसान काल मे सुमरण से मरकर देव गति मे उत्पन्न होते है।

सुषमा [मध्यम भोग भूमिका] काल

मध्यम भोग भूमि का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम होता है, सो उत्सेध आयु और बल आदि क्रमश कम कम होते आकर इस काल के शुरू मे दो कोस का शरीर दो पल्योपम आयु दो दिन के अतर से फल मात्र आहार एकबार ग्रहण करते हैं, पूर्ण चन्द्र के प्रकाश के समान उनके शरीर की काति होती है, जन्म से पाच दिन तक अंगुष्ठ चूसते हुए क्रमश ३५ दिन संपूर्ण कला सपन्न होते हैं। बाकी और बात पूर्व की भाति समझना।

सुषम दुषमा (जघन्य भोग भूमिका) काल

यह जघन्य भोग भूमि का काल यानी तीसरा काल दो कोडा कोडी सागर का होता है, सो उत्सेध आयु तथा बल क्रम से कम होते होते इस काल के आदि मे एक कोस का शरीर एक पल्योपम आयु और एक दिन अन्तर से आंवला प्रमाण एक बार आहार लेते है। प्रियगु (श्याम) वर्ण शरीर होता है। जन्म से सात दिन तक अंगुष्ठ चूसते हुए उनचास दिन मे सर्वकला सपन्न बन जाते है, बाकी सब पूर्व वत् समझना ॥३॥ इस प्रकार यह अनवस्थित भोग-भूमि का क्रम है।

चौथा दुषम सुषमा काल

यह चौथा अनवस्थित कर्म भूमि का काल ४२ हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण का होता है। सो क्रमश: घटकर इस काल के आदि मे ५०० धनुष शरीर कोड पूर्व प्रमित आयु प्रति दिन आहार करने वाले पच वर्ण शरीर महाबल पराक्रम शाली अनेक प्रकार के भोग को भोगने वाले धर्मानुरक्त होकर प्रवर्तन करने वाले इस काल मे त्रेसठशलाका पुरुष क्रम से उत्पन्न होते है।

पांचवां दुषम काल—

जोकि २१ हजार वर्ष का होता है। उस काल के स्त्री पुरुष प्रारम्भ मे १२० वर्ष की आयु वाले सात हाथ प्रमाण शरीर वाले रूक्षवर्ण बहु आहारो

कम ताकत वाले शौचा चार से हीन, भोगादि मे आसक्त रहने वाले होते है ऐसे इस पचम कालके अन्त मे अतिम प्रतिपदा के दिन पूर्वाण्ह मे धर्म का नाश, मध्याह्न मे राजा का नाश और अपराण्ह मे अग्नि का नाश काल स्वभाव से हो जाएगा।

छठवाँ अति दुषमा काल

यह काल भी २१ हजार वर्ष का होता है सो आयु काय और बल कम होते होते इस छठे काल के प्रारम्भ मे मनुष्यो के शरीर की ऊंचाई दो हाथ की के आयु बीस वर्ष तथा धूम्र वर्ण होगा, निरंतर आहार करने वाले मनुष्य होगे तथा इस छठे काल के अन्त में पन्द्रह वर्ष की आयु और एक हाथ का शरीर होगा। इस काल में षट् कर्म का अभाव, जाति पाँति का अभाव, कुल धर्म का अभाव इत्यादि होकर लोग निर्भय स्वेच्छाचारी होने जावेगे, वस्त्रालंकार से रहित नग्न विचरने लगेगे मछली आदि का आहार करने वाले होगे पशु पक्षी के समान उनकी जीवन चर्या होगी पति पत्नी का भी नाता नही रहेगा ऐसा इस छठे काल के अन्त मे जब ४९ दिन वाकी रहेगे तब सात रोज तक तीक्ष्ण वायु चलेगी सात दिन अत्यन्त भयंकर शीत पडेगी सात दिन वर्षा होगी फिर सात दिन विष की वृष्टि होगी इसके वाद सात दिन तक अग्नि की वर्षा होगी जिससे कि भरत और ऐरावत क्षेत्र के आर्य खंडों मे क्षुद्र पर्वत उपसमुद्र छोटी छोटी नदियाँ ये सव भस्म होकर सम्पूर्ण पृथ्वी समतल हो जावेगी और सात दिन तक रज और धुवाँ से आकाश व्याप्त रहेगा। इस प्रकार इन क्षेत्रों में चौथा पांचवा और छठा इन तीनो कालो मे अनवस्थित कर्म भूमि होगी इसके अनन्तर जिस प्रकार शुक्लपक्ष के बाद कृष्णा पक्ष आता है उसी प्रकार अवसर्पणी के बाद उत्सर्पणी काल का प्रारम्भ होता है जिसमे सबसे पहले अति दुषमा काल आरम्भ होता है।

अति दुषमा काल

इस काल में मनुष्यो की आयु १५ वर्ष और उत्सेध एक हाथ की होगी जो कि क्रमशः वढती रहती है। इस काल के प्रारम्भ में सम्पूर्ण आकाश धूम्र से आच्छादित होने से पहिले के समान सात दिन तक लगातार पुष्करवृष्टि फिर सात दिन तक क्षीर वृष्टि, सात दिन तक घृतवर्षा, सात दिन तक इच्छुरस की वर्षा होकर पूर्व में विजयार्ध पर्वत की विशाल गुफा मे विद्याधर और देवो के द्वारा सुरक्षित रखे हुए जीवो मे से कुछ तो मर जाते है वाकी जो जीवित रहते हैं वे सब निकल कर वाहर आते है और वे अति मधुर मिष्टान्न के समान होने वाली मृत्तिका के आहार को करते हुए वस्त्रालकार से रहित होकर

धूम्रवण वाल मनुष्य जीवन पाकर क्रमशः बढकर दो हाथ के शरीर वाले हो जाते है ॥१॥

पुन: दुषम काल

यह काल भी २१००० हजार वर्ष का होता है। इस काल के मनुष्य क्रम से बढकर सात हाथ की ऊंचाई युक्त शरीर वाले हो जाते है बाकी सब क्रम पूर्वोक्त प्रकार से समझ लेना। इसी प्रतिपचम काय के अन्त में जब एक हजार वर्ष बाकी रहते है तब मनु लोग कुलकर उत्पन्न होकर तत्कालोचित सत्क्रियाओ का उपदेश करते हैं।

प्रति दुःषम सुषमा काल

यह काल ४२ हजार वर्ष कम एक कोडा कोडी सागर का होता है। इस युग के मनुष्य पूर्वोक्त आयु काय से बढतें बढते जाकर अन्त मे ५०० सौ धनुष की ऊंचाई के शरीर वाले और एक करोड़ पूर्ण की आयु वाले होते हैं।

चउविसबारसतिगुणे तित्थयरा छत्ति खंडभरहवही।
तिक्काले होंति हातेवं ठिसलाकपुरिसाले ॥१॥

शेष व्याख्यान पूर्ववत् समझना चाहिये।

इस प्रकार ये तीनों काल अनवस्थित कर्म भूमि वाले होते हैं। पुन सुषम दु षमा चौथा, सुषमा पाचवां तथा सुषम सुपमा छठा इस प्रकार ये तीन काल अनवस्थित जघन्य, मध्यम और उत्तम भोगभूमि रूप मे आते हैं जिनका प्रमाण दो कोडा कोडी सागर, तीन कोडा कोडो सागर और चार कोडा कोडी सागर का होता है जिन कालो मे मनुष्य तथा स्त्रिया भी एक दो और तीन कोस की ऊंचाई के शरीर वाले तथा एक दो और तीन पल्य की आयु वाले होते हैं। दो- तीन दिन के बाद बदरीफल के प्रमाण एक वार आहार को करने वाले होते हैं। प्रियगु समान शरोर, चंद्रमा के समान शरीर और बालसूर्य के समान शरीर वाले होते है। कल्प वृक्षो द्वारा प्राप्त भोगोपभोग को भोगने वाले होते हैं।

मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान वाले होते है। सम्यक्त्व सहित होते है और संपूर्णक्रम पूर्वोक्त प्रकार होकर उनके शरीर की ऊचाइ आयु बल बढकर क्रमसे बलशाली होते हैं। किन्तु इन्ही पंच भरत और पच ऐरावत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की श्रेणियो मे तथा मलेच्छ खडो मे भी दु षम सुषमा नाम का काल शुरु से अन्त तक एव अंत से आदि तक हो ऐसी हानि वृद्धि होती है। इस प्रकार

उत्सर्पिणी से अवसर्पिणी तक तथा अवसर्पिणी से उत्सर्पिणी होते तक हुए अनंतानंत कल्पकाल क्रम से प्रवर्तते रहते हैं।

॥ दशविधकल्पद्रुमा : ॥४॥

१गृहांग २भोजनांग ३भाजनांग ४पानांग ५वस्त्रांग ६भूषणांग ७माल्यांग ८दीपांग ९ज्योतिरांग १०तूर्यांग। इस प्रकार के कल्प वृक्ष उस भोग भूमि के जीवो को नाना भोगोपभोग सामग्री देते रहते है। जैसे आगे कहा भी है–

हाटभित्तिसमन्वित। नाटकशालेगळ विविधसौंदगळकों।
डाटमनेमेरदुनिच्चं। पाटिसुवुदु मिथुनततिगेगृहमहिजातं ॥२॥
अनतिशय सौख्यभाजन–। मेनिसुव भाजनयिवप्पुदेंबंते कन-।
त्कनकमणिखचितबहुभा। जनंगळं भाजनांगतरुकोडुतिक्कु ॥३॥
अमर्दिन सविधोष्ठ्सवि। समनेनिसुव तेजाबलायुरारोग्य सज-।
तमनमृतान्नमनोल्दिदी-। गुमागळं, भोजनांग कल्पावनिजं ॥४॥
कुडिवडेसोक्किसदवु ना-। णोडिसदवु मनक्केल्लंप नीवुवुरतमं।
पडेयनघवेनिसुवमधुगळ। नेडेमडगदे कुडुगुमुचित मद्यांगकुजं ॥५॥
पळिचित्रावळिभोगं। पळियिडे दुवांगवेंब वसनंगळनें ॥
घळियिपुदोर्मडिपळ्कन। परिगहतनेने पोल्तुविषदवसनांगकुजं ॥६॥
सघमघिप जादिपोंगे-। दगेमल्लिगेयेंब पलवु पूमालेगळं ॥
बगेयरिदुनीडुगुं मा–। लेगानं पोल्तुदग्रमाल्यमहीजं ॥७॥
मकुटं केयूर क-। णंकुंतलकोप्पुसरिगे दूसरं मणिमु-॥
द्रिकेतिसरमेंब भूषा-। निकायमं भूषणांगतरु कुडुतिक्कुं ॥८॥
आपोत्तुं मणिदोपक-। ळापोद्यज्जोतिगळं दिशा मंडलमं ॥
व्यापिसुत्तिरेसोगियसुवु। दीपांग ज्योतिरंग कल्पकुजंगळ् ॥९॥
अतिमृदुरवदायिगळं। ततघनसुषिरावनद वाद्यंगकनें ॥
मतमरेदोल गिपडुदं। पडिगेंदुमवार्यवीर्यंतूर्यक्साजं ॥१०॥

अर्थ—स्वर्ण की बनी हुई दीवाल से युक्त ऐसी नाट्यशाला, बडे सुन्दर दरवाजो से युक्तमहल, इत्यादि नाना प्रकार के मकान जो कि उन भोगभूमि के मिथुन को इन्द्रिय सुखदायक हो उन सबको देनेवाले गृहांग जाति के कल्प वृक्ष हैं॥ १ ॥

अत्यन्त सुख देने वाले स्वर्ण और मणियो से बने हुए नाना प्रकार के

बरतन देने वाले भाजनांग जाति के कल्प वृक्ष हैं ।२।

स्वर्गीय अमृतमय भोजन के समान, तेज वल आयु और आरोग्य दायक ऐसे अमृतान्न को देने वाले भोजनांग जाति के कल्प वृक्ष है ।३।

पीने मे स्वादिष्ट, शारीरिक वल वर्द्धक पाप को नष्ट कर मन को पवित्र करने वाला तथा प्रमाद को भी हरने वाला ऐसा समयोचित मधुर पेय पदार्थ जिनसे मिलता है, ऐसे पानाग जाति के वृक्ष हैं ।४।

अनेक प्रकार को मणियो से जडे हुए, ज्यादा कीमती रेशम आदि के वने मन और इन्द्रियो को भाने वाले देवोपनीत वस्त्रो के समान मनोहर वस्त्रो को देने वाले वस्त्राग जाति के कल्प वस्त्र है ।५।

शरीर की शोभा को वढानेवाले अत्यन्त मनोहरकेयूर कुण्डल मुद्रिका कर्ण फूल, मकुट, रत्नहारादिक को अर्थात् मनवाछित नाना प्रकार के आभूषणो को देने वाले भूषणाग जाति के वृक्ष हैं ।६।

अति लुभावने वाली सुगध को देनेवाले जाति जूही, चपा, चमेली, आदि नाना प्रकार के फूलो की माला को मालाकार के समान समयानुसार सपन्न कर देने वाले मालाग जाति के कल्प वृक्ष हैं ।७।

देशो दिशाओ मे उद्योत करनेवाले मणिमय नाना प्रकार के दीपको को हर समय प्रदान करते हैं ऐसे दीपाग जाति के कल्प वृक्ष हैं ।८।

भोग भूमियो के मन को प्रसन्न करनेवाली ज्योति को निरतर फैलाने वाले ज्योतिरग जाति के कल्प वृक्ष है ।९।

अति समतुल आवाज करनेवाले घन शुषिर तथा वितत जाति के अनेक प्रकार के वादित्रो को देनेवाले, ध्वनि से मन को उत्साह तथा वीरत्व पैदा करनेवाले वाद्याग जाति के कल्प वृक्ष है ।१०।

गाथा—अवसप्पणि उस्सप्पिणि कालच्छिय रहटघटेयणायेण
होंति अणंताणंतो भरहैरावदखिदिम्मिपुड ।।२।।

अर्थ—भरत और ऐरावत इन दोनो प्रकार के क्षेत्रो मे अरहट के घट के समान उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी तथा अवसर्पिणी के बाद फिर उत्सर्पिणी इस प्रकार निरतर अनतानत काल हो गये हैं और आगे होते रहेगे ।

अवसंप्पणी उस्स्प्पणीकालसलाया असखपरिवत्तं ॥
हु'डावसप्पणिसापेक्काजायेदितिय चिम्साम्भिउं ॥२॥

इस प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल असख्यात बीत जाने के बाद एक हु डावसर्पिणी काल होता है। अब उसी के चिन्ह को बतलाते है।

तस्सपि सुषम दुस्समकालस्सदिदिम्मदोवा ॥
अवसेसे णिवडदिपासडबहुदियदिय जीव उप्पत्ति ॥४॥

अर्थ—उसमे सुषम दु.षमा काल के समय मे वर्षा होकर धूप पडती है जिससे विकलेद्रिय जीवो की उत्पत्ति होती है।

कप्पतरूणा विरामोवा गारोहोदि कम्मभूमिये ॥
तक्काले जायंते पढमजिणो पढमचक्कीय ॥५॥
चक्किस्सविजय भगो णिव्वुदिगमणे थोक जीवाणं ॥
चक्कहरा उदिजाणं हवेयिवं सस्स उप्पत्ति ॥६॥

अर्थ—कल्प वृक्षो का विराम होते-ही तत्काल प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं। चक्रवर्ती की विजय मे भग होता है। तथा उस चक्रवर्ती के निमित्त से ब्राह्मणो की उत्पत्ति होती है। फिर तीर्थंकर तथा वह चक्रवर्ती निर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं। एवं आगे भी तीर्थंकर चक्री आदि होते रहते है।

दुस्सम सुसमो तिसट्ठिपमाण सलायपुरुसाय ॥
नवमादिसोलसत्ते संतसुतिव्वेसुदमवोच्छेहो ॥७॥

अर्थ—दुःसम सुषमा काल मे क्रमशः (६३) शलाका पुरुष उत्पन्न होते है। वहा नवम तीर्थंकर के बाद सोलहवे तीर्थंकर तक धर्म की हानि होती है। इन सात तीर्थंकरो के समय मे क्रम से, आधा पल्य, पल्त का चतुर्थांश, पल्य का द्विभाग पल्य का त्रिभाग, पल्य का द्विभाग फिर पल्य का चतुर्थभाग मे तो धर्म के पढने वाले सुननेवाले और सुनाने वाले होते है। इसके बाद पढनें वाले और सुनने तथा सुनाने वाले न होने के कारण धर्म विच्छिन्न होता है।

एक्करस होंति रुद्दाकलहपिहनारदोयणवसंखा ॥
सत्तम तेवीसन्तिमतित्थयराणंचउवसग्गो ॥८॥

अर्थ—इस काल मे एकादश रुद्र हाते है, तथा कलह प्रिय नव नारद होते हैं, और सातवे तेईसवें तथा चोबीसवे तोर्थंकर को उपसर्ग होता है।

तय चदु पंचमे सक्कालेसु परस दुस्मणायसारा ॥
विविह कुदेव कुलिंगि सत्तकत्थ पामित्था ॥९॥
चडाल सबर पाणा पुलिंद णाहल चिलाल पहुडिकुला ॥
दुस्समकाले कक्कि उवकक्की होंति चादाला ॥१०॥
अतिठ्ठ अणाउठ्ठि भूवडिड वज्ज अग्गिपमुहाय ॥
यिहणाणावह दोसा विचित्तभेदा हरतिपुढं ॥११॥

अर्थ—तृतीय चतुर्थ पचम काल मे श्री जैन धर्म के नाशक कई प्रकार के कुदेव कुलिंग दुष्ट पापिष्ट ऐसे चडाल शबर पान नाहल चिलातादि कुल वाले खोटे जीव उत्पन्न होते है। तथा दुःखम काल मे कल्कि और उपकल्कि ऐसे ४२ जीव उत्पन्न होते हैं। तथा अतिवृष्टि अनावृष्टि भूपुद्धि बज्राग्नि इत्यादि अनेक प्रकार के दोप तथा विचित्र भेद उत्पन्न होते है। और इस भरत क्षेत्र के हुडावसर्पिणी के तृतीय काल के अन्त का आठवा भाग बाकी रहने से कल्प वृक्ष के वीर्य की हानि रूप मे कर्म भूमि की उपपत्ति का चिन्ह प्रगट होने से उसकी सूचना को बतलाने वाले मनुओ के नाम बतलाते है।

॥ चतुर्दश कुलकरा :, इति ॥५॥

अर्थ—इस जबू द्वीप के भरत क्षेत्र की अपेक्षा से प्रतिश्रुति १ सन्मति २ क्षेमकर ३ क्षेमघर ४ सीमकर ५ सीमघर ६ विमल वाहन ७ चक्षुष्मान ८ यशश्वी ९ अभिचद्र १० चद्रभा ११ मरुदेव १२ प्रसेनजित १३ नाभिराज ऐसे चौदह कुलंकर अथवा मनु पूर्वभव मे विदेह क्षेत्र मे सत्पात्र को विशेष रूप से आहार दान दिया। उसके फल से मनुष्यायु को बाधकर तत्पश्चात् क्षायिक सम्यक्त को प्राप्त करके वहा से आकर इस भरत क्षेत्र के क्षत्रिय कुल मे जन्म लेकर कुछ लोग अवधिज्ञान से और कुछ लोग जातिस्मरण से कल्प वृक्ष की सामर्थ्य मे हानि उत्पन्न होती है उसके स्वरूप को समझते हैं। वे इस प्रकार है—

ये सभी कुलकर पूर्व भव मे विदेह क्षेत्र मे क्षत्रिय राजकुमार थे, मिथ्यात्व दशा मे इन्होंने मनुष्य आयु का बध कर लिया था। फिर इन्होने मुनि आदिक सत्पात्रो को विधि सहित भक्ति पूर्वक दान दिया, दुखी जीवों का दुःख करुणा भाव से दूर किया। तथा केवली श्रुत केवली के पद मूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया। विशिष्ट दान के प्रभाव से ये भोगभूमि मे उत्पन्न हुए। इनमे से अनेक कुलकर पूर्वभव मे अवधि ज्ञानी थे, इस भवमे भी अवधिज्ञानी हुए। अतः अपने समय के लोगों की कठिनाइयो का प्रतिकार अवधि ज्ञान से

जानकर उनकी समस्या सुलझाई और कुलकर अवधिज्ञानी तो नही थे किंतु विशेष ज्ञानी थे, जाति स्मरण के धारक हुए थे उन्होने उस समय कल्प वृक्षों की हानि के द्वारा लोगो की कठिनाइयो को जानकर उनका प्रतीकार करके जनता का कष्ट दूर किया। कुलकरो का दूसरा नाम मनु भी है। इसका खुलासा इस प्रकार है.—

सुशभ दुःषमा नामक तीसरे काल में पल्य का आठवां भाग प्रमाण समय जब शेष रह गया तब स्वर्ण समान काति वाले प्रतिश्रुति कुलंकर उत्पन्न हुए। उनकी आयु पल्य के दशवे भाग १ प्रमाण थी उनका शरीर अठारासौ १८०० धनुष ऊंचा था और उनकी देवी (स्त्री) स्वयंप्रभा थी।

उस समय ज्योतिराग कल्पवृक्षों का प्रकाश कुछ मन्द पड गया था इसलिए सूर्य और चद्रमा दिखाई देने लगे, शुरू मे जब चन्द्र और सूर्य दिखलाई दिये वह आषाढ की पूर्णिमा का दिन था। यह उस समय के लिए एक अद्भुत विचित्र घटना थी, क्योकि उससे पहले कभी ज्योतिराग कल्पवृक्षो के महान प्रकाश के कारण सूर्य चन्द्र आकाश मे दिखाई नही देते थे। इस कारण उस समय के स्त्री पुरुष सूर्य चन्द्र को देखकर भय भीत हुए कि यह क्या भयानक चीज दीख रही है, क्या कोई भयानक उत्पात होनेवाला है।

तब प्रतिश्रुति कुलंकर ने अपने विशेष ज्ञान से जानकर लोगो को समझाया कि ये आकाश मे सूर्य चन्द्र नामक ज्योतिषी देवो के प्रभामय विमान है, ये सदा रहते है। पहले ज्योतिराग कल्पवृक्षों के तेजस्वी प्रकाश से दिखाई नही देते थे किंतु अब कल्प वृक्षो का प्रकाश फीका हो जाने से ये दिखाई देने लगे हैं। तुम को इनसे भयभीत होने की आवश्यकता नही, ये तुम्हारा कुछ बिगाड नही करेंगे।

प्रतिश्रुति के आश्वासन भरी बात सुनकर जनता निर्भय, सतुष्ट हुई।

प्रतिश्रुति का निधन हो जाने पर तृतीय काल मे जब पल्य का अस्सीवा भाग शेष रह गया तब दूसरे कुलकर सन्मति उत्पन्न हुए। उनका शरीर १३०० सौ धनुष उचा था और आयु पल्य के सोवे १/१०० भाग प्रमाण थी, उनका शरीर सोने के समान काति वाला था। उनकी स्त्री का नाम यशस्वती था।

उनके समय मे ज्योतिराग (तेजांग) कल्पवृक्ष प्राय. नष्ट हो गये अत: उनका प्रकाश बहुत फीका हो जाने से ग्रह, नक्षत्र तारे भी दिखाई देने लगे। इन्हे पहले स्त्री पुरुषो ने कभी नही देखा था. अत लोग इन्हे देखकर बहुत घबराए कि यह क्या कुछ है, क्या उपद्रव होने वाला है। तब सन्मति कुलकर ने अपने विशिष्ट ज्ञान से जानकर जनता को समझाया कि सूर्य चन्द्रमा के समान ये भी

ज्योतिषी देवो के विमान हैं, ये सदा आकाश मे रहते है । पहले कल्प वृक्षों के तेजस्वी प्रकाश के कारण दिखाई न देते थे, अब उनकी ज्योति वहुत फीकी हो जाने से ये दिखाई देने लगे है । ये तारे तुमको कुछ हानि नहीं करेंगे ।

सन्मति की विश्वासजनक बात सुनकर लोगों का भय दूर हुआ और उन्होंने सन्मति का वहुत आदर सत्कार किया ।२।

सन्मति की मृत्यु हो जाने पर पल्यके ८०० वें [$\frac{१}{८००}$] भाग बीत जाने पर तीसरे कुलकर 'क्षेमङ्कर' उत्पन्न हुए उनकी आयु [$\frac{१}{१०००}$] पल्य थी, शरीर ८०० धनुष ऊंचा था और उनका रंग सोने जैसा था । उनकी देवी [पत्नी] का नाम 'सुनन्दा' था ।

उनके समय मे सिंह, बाघ आदि जानवर दुष्ट प्रकृति के हो गये, उनकी भयानक आकृति देखकर उस समय स्त्री पुरुष भयभीत हुए । तब क्षेमङ्कर कुलकर ने सबको समझाया कि अब काल दोष से ये पशु सौम्य शान्त स्वभाव के नही रहे, इस कारण आप पहले की तरह इनका विश्वास न करें, इनके साथ क्रीडा न करे, इनसे सावधान रहे । क्षेमङ्कर की बात सुनकर स्त्री पुरुष सचेत और निर्भय हो गये ।३।

क्षेमङ्कर कुलकर के स्वर्ग चले जाने पर पल्य के ८ हजारवें [$\frac{१}{८०००}$] भाग वीत जाने पर चौथे कुलकर 'क्षेमन्धर' नामक मनु (कुलकर) हुए । उनका शरीर ७७५ धनुष ऊचा था और उनकी आयु पल्यके दश हजारवें [$\frac{१}{१००००}$] भाग प्रमाण थी, उनकी देवी 'विमला' नामक थी ।

इनके समय मे सिंह, बाघ आदि और अधिक क्रूर तथा हिंसक बन गये, इससे जनता मे बहुत भारी व्याकुलता और भय फैल गया । तब क्षेमन्धर मनु ने इन हिंसक पशुओ की दुष्ट प्रकृति का लोगो को परिचय कराया और डंडा आदि से उनको दूर भाग कर अपनी सुरक्षा का उपाय बतलाया तथा दीपक-जाति के कल्पवृक्ष की हानि भी हो जाने से दीपोद्योत करने का उपाय भी वतलाया, जिससे स्त्री पुरुषो का भय दूर हुआ ।४।

क्षेमन्धर मनु के स्वर्गवास हो जाने पर पल्यके ८० हजारवें ($\frac{१}{८००००}$) भाग व्यतीत हो जाने पर पाचवें कुलकर 'सीमङ्कर' उत्पन्न हुए । इनका शरीर ७५० धनुष ऊचा था और आयु पल्यके एक लाखवे भाग प्रमाण थी । उनकी देवी का नाम 'मनोहरी' था । इस मनु ने उस समय के लोगो को वृक्षो की सीमा बताई ।५।

सीमङ्कर कुलकर के स्वर्ग चले जाने पर 'सीमन्धर' नामक छठे कुलकर हुये। इनका शरीर ७२५ धनुष ऊचा और आयु पल्यके दश लाखवें भाग प्रमाण थी, इनकी देवी 'यशोधरा' थी। इस मनु ने उस समय के लोगों को भिन्न-भिन्न रहने की सीमा बतलाई और निराकुल करके, आपस की कलह मिटाई।६।

सीमङ्कर मनु के स्वर्गारोहण के बाद पल्यके अस्सी लाखवे भाग प्रमाण समय बीत जाने पर 'विमलवाहन' नामक सातवे कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु पल्यके एक करोडवे हिस्से थी, और शरीर ७०० धनुष ऊचा था। इनकी देवी का नाम 'सुमती' था।

इन्होंने स्त्री पुरुषो को दूर तक आने जाने की सुविधा के लिए हाथी घोड़े आदि वाहनो पर सवारी करने का ढंग समझाया।

सातवे कुलकर विमलवाहन के स्वर्गारोहण के पश्चात् पल्यके आठ करोडवे $\frac{1}{80000000}$ भाग बीत जाने पर आठवे मनु 'चक्षुष्मान्' उत्पन्न हुए। उनकी आयु पल्यके दस करोडवे भाग प्रमाण थी और शरीर का कद ६७५ धनुष था। उनकी देवी नाम था वसुन्धरा ॥७॥

इनसे पहले भोगभूमि मे बच्चों (लड़की लडके का युगल) के उत्पन्न होते ही माता पिता की मृत्यु हो जाती थी, वे अपने बच्चों का मुख भी न देख पाते थे किन्तु आठवें कुलकर के समय माता पिताओ के जीवित रहते हुए बच्चे उत्पन्न होने लगे, यह एक नई घटना थी जिसको कि उस समय के स्त्री पुरुष जानते न थे, अत. वे आश्चर्यचकित और भयभीत हुए कि यह क्या मामला है।

तब 'चक्षुष्मान्' कुलकर ने स्त्री पुरुषों को समझाया कि ये तुम्हारे पुत्र पुत्री है, इनसे भयभीत मत होओ, इनका प्रेम से पालन करो, ये तुम्हारी कुछ हानि नही करेंगे। कुलकर की बात सुनकर जनता का भय तथा भ्रम दूर हुआ और उन्होने कुलकर की स्तुति तथा पूजा की।८।

युगळंगळ्पुट्टिसि तागुळिसिपितृयुगं सत्तु स्वर्ग गळोळ् पु।
ट्टुगुमिल्लिलदित्तळेंळ् कतिपयदिनदोळ्मक्कुळ नोडिसावे।
यदुगुमीगळ् कर्म भूमि स्थितिभोगसिद्धुदिं बालकालोकदिंद्र।
ब्बेगमंल्लेंदित्त कालस्थितियनवर्गाति व्यक्तमप्पंतुपेळुदं ॥२॥

आठवें कुलकर की मृत्यु हो जाने के बाद पल्यके अस्सी करोडवें भाग [$\frac{1}{800000000}$] समय बीत जाने पर ९ वे कुलकर 'यशस्वी' हुए। उनका

शरीर ६५० धनुष ऊंचा था और आयु पल्यके सौ करोडवें भाग प्रमाण थी। उनकी देवी का नाम कान्तमाला था।

यशस्वी कुलकर ने यह एक विशेष कार्य किया कि उस भोगभूमिज स्त्री पुरुषो के जीवन काल मे ही उनके सन्तान होने लगी थी, उन लडके लडकियो के नाम रखने की पद्धति चालू की ॥९॥

नौवे कुलकर के स्वर्गवास हो जाने पर पल्यके ८०० करोडवें भाग समय बीत जाने पर दशवे अभिचन्द्र मनु हुए। उनके शरीर की ऊचाई छ सौ पच्चीस ६२५ धनुष थी और आयु एक करोड से भाजित पल्यके बराबर थी। उनकी स्त्री का नाम श्रीमती था।

इन्होने बच्चो के लालन-पालन की, उनको प्रसन्न रखने की, उनका रोना बन्द कराने की विधि स्त्री पुरुषो को सिखाई। रात्रि मे बच्चो को चन्द्रमा दिखला कर क्रीडा करने का उपदेश दिया तथा बच्चों को बोलने का अभ्यास भी अनुपम कराने की प्रेरणा की ॥१०॥

दशवे कुलकरके स्वर्ग जाने के बाद आठ हजार करोडवे भाग (८०००, ००००००) प्रमाण पल्य बीत जाने पर चन्द्राभ नामक ग्यारहवे कुलकर उत्पन्न हुए। उनका शरीर ६०० सौ धनुष ऊंचा था और आयु पल्यके (१००००,०००००००) दस हजार करोड वे भाग समान थी। उनकी पत्नी सुन्दरी प्रभावती थी।

इस मनुके समय बच्चे कुछ अधिक काल जीने लगे सो उनके जीवन के वर्षों की सीमा बतलाई और निराकुल किया ॥ ११ ॥

चन्द्राभ कुलकर के स्वर्ग जाने के पश्चात् अस्सी हजार करोड से भाजित (८०,०००,०००००००) पल्य का समय बीत जाने पर मरुदेव नामके बारहवें कुलकर उत्पन्न हुए। उनकी आयु एक लाख करोड़ से भाजित पल्यके बराबर और शरीर (५७५) धनुष ऊंचा था। उनकी पत्नी का नाम सत्या था। इनक समय मे पानी खूब बरसने लगा जिससे ४० नदियाँ पैदा होगई, उनको नाव आदि के द्वारा जलतर उपाय बतलाया ॥१२॥

मरुदेवका निधन हो जाने पर (१०,०००००,०००००००) दसलाख करोड से भाजित पल्य प्रमाण समय बीत जानेपर प्रशेनजित नामक तेरहवें कुलकर पैदाहुए। उनकी आयु दसलाख करोड (१०,०००००,०००००००) से भाजित पल्यके बराबर थी उनका शरीर ५५० धनुष ऊंचा था, उनकी स्त्री का नाम अमृतमती था। इन्होने प्रसूत बच्चे के ऊपर की जरायु को निकालने

के उपाय का उपदेश दिया ॥१३॥

प्रशेनजित के स्वर्ग चले जाने पर। (८०, ०००००, ०००००००) वे भाग पल्य वीत जाने पर चौदहवे कुलंकर नाभिराय उत्पन्न हुए। उनका शरीर ५२५ धनुष्य ऊंचा था और उनकी आयु एक करोड़ पूर्व (१, ०००००००)की थी। उनकी महादेवी का नाम मरुदेवी था ॥१४॥

नाभिराय के समय उत्पन्न होने वाले वच्चों का नाभी में लगा हुआ नाल आने लगा। उस नाल को काटने की विधि वतलाई। सिवाय इनके समक्ष में भोजनाग कल्प वृक्ष नष्ट हो गये जिससे जनता भूख से व्याकुल हुई तव नाभि राय ने उनको उगे हुए पेडो के स्वादिष्ट फल खाने तथा धान्य को पकाकर खाने की एवं ईख को पेल कर उसका रस पीने का उपाय वताया। इसलिए उस समय के लोक उन्हे ह्क्ष्वाकुहस सार्थक नाम से भी कहने लगे। ताकि इक्ष्वाकु वंश चालु हुआ। इन्ही के पुत्र प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ हुए। जो की १५वें कुलंकर तथा ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती सोलहवे मनु हुए।

हादंडमय्वरोळ् हा। मादंड मनुगलय्वरोळ् हासादिग्भेद ॥
प्रदंडमय्वंरोळादुदु। भरतावनीश तनुदंडं ॥१॥

अर्थ–प्रथम कुलंकर से लेकर आठवें कुलंकर तक प्रजा की रक्षार्थ 'हा' यह दंड नियत हुआ, इसके वाद पांच मनुओ मे यानि दशवें कुलंकर तक 'हा' और 'मा' ये दो दड तथा इसके वाद पाँच मनुवो तक यानी ऋषम देव भगवान तक की प्रजा में हा, मा और धिक् ये तीन दंड चले फिर भरत चक्रवर्ती के समय मे तनु दंड भी चालू हो गया था। इसी प्रकार १ कनक २ कनकप्रभ ३ कनक-राज ४ कनकध्वज ५ कनक पुंगव ६ नलिन ७ नलिनप्रभ ८ नलिन राज ९ नलिन ध्वज १० नलिनपुंगव ११ पद्म १२ पद्म प्रभ १३ पद्म राज १४ पद्म ध्वज १५ पद्मपुंगव और सोलहवे महापद्र। यह सोलह कुलकर भविष्य कालमे उत्सर्पिणी के दूसरे काल में जव एक हजार वर्ष वाकी रहेगे तव पैदा होंगे।

अव आगे नौ सूत्रों के द्वारा तीर्थंकरो की विभूति और उनकी वलीका वर्णन करेंगे।

॥ षोडशभावना : ॥१६॥

कर्म प्रकृतियो में सवसे अधिक पुण्य प्रकृति (तीर्थंकर) प्रकृति के बंध कराने की कारण रूप सोलह भावनाये हैं।

तीर्थंकर प्रकृति का वध करने वाले के विषय में गोमटसार कर्मकांड मे वतलाया है।

पढमुवसमिये सम्मे सेसातिये अविरदादिचत्तारि
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥६३॥

यानि—प्रथम उपशम सम्यक्त्व अथवा द्वितीयोपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशम या क्षायिक सम्यक्त्व वाला पुरुष चौथे गुण स्थान से सातवे गुणस्थान तक के किसी भी गुणस्थान मे केवली या श्रुत केवली के निकट तीर्थंकर प्रकृति के बध का प्रारम्भ करता है।

जिस व्यक्ति की ऐसी प्रबल शुभ भावना हो कि (मै समस्त जगतवर्ती जीवो का उद्धार करू समस्त जीवो को संसार से छुडाकर मुक्त कर दूं) उस किसी एक बिरले मनुष्य के ऊपर युक्त दशा मे निम्न लिखित सोलह भावनाओ के निमित्त से तीर्थंकर प्रकृति का बध होता है।

१ दर्शन विशुद्धि २ विनय सपन्नता ३ अतिचार रहित शीलव्रत ४ अभीक्षण ज्ञानोपयोग ५ सवेग ६ शक्ति अनुसार त्याग ७ शक्ति अनुसार तप ८ साधु समाधि ९ वैय्यावृत करण १० अरहत भक्ति ११ आचार्य भक्ति १२ बहु श्रुत भक्ति १३ प्रवचन भक्ति १४ आवश्यक का परिहारणि १५ मार्ग प्रभावना १६ प्रवचन वात्सल्य।

विषेश विवेचन— शंका, काक्ष, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, अनूपगूहन, अस्थिति करण, अप्रभावना, अवात्सल्य, ये आठ दोष, कुलमद जातिमद, बलमद, ज्ञानमद, तपमद, रूपमद, धनमद, अधिकारमद, ये आठ मद, देवमूढता, गुरूमूढता, लोकमूढता ये मूढताए हैं। तथा छ अनायतन, कुगुरू, कुगुरू भक्ति, कुदेव, कुदेव भक्ति, कुधर्म, कुधर्म, सेवक, ऐसे सम्यग्दर्शन के ये पच्चीस दोष हैं इन दोषो से रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन का होना सो दर्शनविशुद्धि भावना है। देव शास्त्र, गुरू, तथा रत्नत्रय का हृदय से सन्मान करना विनय करना विनय संपन्नता है। व्रतो तथा व्रतो के रक्षक नियमो (शीलो) मे अतीचार रहित होना शील व्रत भावना है।

सदाज्ञान अभ्यास मे लगे रहना अभीक्षण ज्ञानोपयोग है।

धर्म और धर्म के फल से अनुराग होना संवेग भावना है।

अपनी शक्ति को न छिपाकर अतरंग बहिरग तप करना शक्तितस् त्याग है।

अपनी शक्ति के अनुसार आहार, अभय, औषध और ज्ञान दान करना शक्ति तस् त्याग है।

साधुओं का उपसर्ग दूर करना, अथवा समाधि सहित वीर मरण करना साधु समाधि है।

व्रती त्यागी साधर्मी की सेवा करना, दुःखी का दुःख दूर करना वैय्यावृत

करण हैं। अरहत भगवान की भक्ति करना अरहत भक्ति है।
मुनि सघ के नायक आचार्य की भक्ति करना आचार्य भक्ति है।
उपाध्याय परमेष्ठि की भक्ति करना बहुश्रुत भक्ति है।
जिनवाणी की भक्ति करना प्रवचन भक्ति है।
छै आवश्यक कर्मों को सावधानी से पालन करना आवश्यक परिहारिणी है।
जैनधर्म का प्रभाव फैलाना मार्ग प्रभावना है।
साधर्मीजन से अगाध प्रेम करना प्रवचन वात्सल्य है।

इन सोलह भावनाओ मे से दर्शन विशुद्धि भावना का होना परमावश्यक है। दर्शन विशुद्धि के साथ कोई भी एक दो तीन चार आदि भावना हो या सभी भावना हो तो तीर्थंकर प्रकृती का बध हो सकता है।

अब तीर्थंकरो के विषय मे ग्रन्थकार सूत्र कहते हैं—

चतुर्विंशति स्तीर्थंकराः ॥७॥

अर्थ—भरत ऐरावत क्षेत्र मे दु षमा सुषमा काल मे क्रम से चौबीस तीर्थंकर होते हैं।

१ श्री वृषभ नाथ २ श्री अजित नाथ ३ श्री संभव नाथ ४ श्री अभिनंदननाथ ५ सुमती नाथ ६ पद्मप्रभु ७ सुपार्श्वनाथ ८ चद्रप्रभु ९ पुष्प दत १० शीतल नाथ ११ श्रेयासनाथ १२ वासु पूज्य १३ विमल नाथ १४ अनंत नाथ १५ धर्मनाथ १६ शाति नाथ १७ कु थनाथ १८ अरहनाथ १९ मल्लि नाथ २० मुनिसुव्रत २१ नमिनाथ जी २२ नेमिनाथ २३ पार्श्वनाथ २४ महावीर। ये इस भरत क्षेत्र के वर्तमान युग (इस हुंडावसर्पिणी) के चौबीस तीर्थंकर है। अतीतकाल के चौबीस तीर्थंकरो के नाम निम्न लिखित हैं—

१ श्री निर्वाण २ सागर ३ महासाधु ४ विमल प्रभु ५ श्रीधर ६ सुदत्त ७ अमलप्रभ ८ उद्धर ९ अगीर १० सन्मती ११ सिंधु १२ कुसमांजली १३ १३ शिवगण १४ उत्साह १५ ज्ञानेश्वर १६ परमेश्वर १७ विमलेश्वर १८ यशोधर १९ कृष्णमति २० ज्ञानमति २१ शुध्यमति २२ श्री मद्र २३ पद्मकान्त २४ अतीक्रान्त।

आगामी काल मे होने वाले तीर्थंकरो के नाम निम्नलिखित हैं—
महापद्म २ सुरदेव ३ शुपार्श्व ६ स्वयप्रभ ५ सर्वातम भूत ६ देवपुत्र ७ कुलपुत्र ८ उदक ९ पौष्टिल १० जयकीर्ति ११ मुनि सुव्रत १२ अरनाथ १३ नि.पाप १४ नि.कषाय १५ विमल १६ निर्मल १७ चित्रगुप्त १८ समाधि गुप्त १९ स्वयभू २० अनिवर्तक २१ जय २२ विमल २३ देवपाल २४ अनन्तवीर्य।

अब इस भरत क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरों की भवावली यथा क्रम से कहते हैं-

आदिनाथ

भगवान वृषभ देव के पूर्व १० भव यह है—जयवर्मा, २ महाबलविद्याधर ३ ललिताग देव ४ वज्रजघराजा ५ भोग भूमिया ६ श्री घर ७ सुविध (नारायण) ८ अच्युत स्वर्गका इन्द्र ९ वज्रनामि चक्रवर्ती इस भव मे सोलह कारण भावना के बल से तीर्थंकर प्रकृतिका बध किया, वहा से चयकर भरत क्षेत्र के सुकौशल देश की अयोध्या नगरी मे अन्तिम कुलकर नाभिराजा के यहां मरुदेवी माता के कोख से प्रथम तीर्थंकर के रूप मे जन्म लिया। आप का शरीर ५०० धनुष ऊचा था, आयु चौराशी लाख पूर्व थी शरीर का रग तपे हुए सोने के समान था। शरीर मे १००८ शुभ लक्षण थे। ऋषभ नाथ नाम रखा गया। वृषभनाथ तथा आदिनाथ भी आपके दूसरे नाम है। आपके दाहिने पैर मे बैल का चिह्न था इस कारण आपका बैलका चिह्न प्रसिद्ध हुआ और इसलिये नाम भी वृषभनाथ पडा।

आपका २० लाख पूर्व समय कुमार अवस्था मे व्यतीत हुआ। आपका (यशश्वती और सुनदा) नामक दो राज पुत्रियो से विवाह हुआ। ६३ लाख पूर्व तक राज किया। आपकी राणी यशस्वती के उदर से भरतादि ९९ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक एक कन्या हुई और सुनन्दा रानी से बाहुबली नामक एक पुत्र और सुन्दरी नामक कन्या हुई।

आपने राज्य काल मे जनता को खेती बाडी, व्यापार अस्त्र शस्त्र चलाना, वस्त्र बनाना, लिखना पढना, अनेक प्रकार के कला कौशल आदि सिखलाए। अपने पुत्र भरत को नाट्य कला, बाहुबली को मल्ल विद्या, ब्राह्मि को अक्षर विद्या, सुन्दरी को अङ्क विद्या तथा अन्य पुत्रो को अश्व विद्या, राजनीति आदि सिखलाई।

८३,००००० लाख पूर्व आयु बीत जाने पर राज सभा मे नृत्य करते हुए निलाजना नामक अप्सरा की मृत्यु देखकर आपको ससार, शरीर और विषय भोगो से वैराग्य हुआ तब भरत को राज्य देकर आपने पच मुष्टियो से केशलोच करके सिद्धो को नमस्कार करके स्वय मुनि दीक्षा ली। छै मास तक आत्म ध्यान मे निमग्न रहे। फिर छ मास पीछे जब योग से उठे तो आप को लगातार छ मास तक विधि अनुसार आहार प्राप्त नही हुआ। इस तरह एक वर्ष पीछे हस्तिनापुर मे राजा श्रेयास ने पूर्वभव के स्मरण से मुनियो को आहार देने की विधि जानकर आपको ठीक विधि से ईख के रस द्वारा पारना कराई।

एक हजार वर्ष तपस्या करने के बाद आपको केवल ज्ञान हुआ। तदनतर १,००० हजार वर्ष कम १०,०००० लाख पूर्व तक आप समस्त देशो मे बिहार करके धर्म प्रचार करते रहे। आपके उपदेश के लिए समवशरण नामक विशाल सभा मंडप बनाया जाता था। अन्त मे आपने कैलाश पर्वत से पर्यंकासन (पलथी) से मुक्ति प्राप्त की।

विशेषार्थ—आपका ज्येष्ठ पुत्र भरत, भरत क्षेत्र का पहला चक्रवर्ती था उस ही के नाम पर इस देश का नाम भारत प्रख्यात हुआ। आपका दूसरा पुत्र बाहुबली प्रथम कामदेव था तथा चक्रवर्ती को भी युद्ध मे हराने वाला महान बलवान था। उसने मुनि दीक्षा लेकर निश्चल खडे रह कर एक वर्ष तक निरा हार रहकर तपस्या की और भगवान वृषभनाथ से भी पहले मुक्त हुआ।

भगवान वृषभनाथ का पौत्र (नाति, पोता) मरीचि कुमार अनेक भव बिताकर अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुआ। आपकी पुत्री ब्राह्मी, सुन्दरी आर्यिकाओ की नेत्री थी। आपके वृषभ सैन आदि ८४ गणधर थे।

आप सुषमा दुषमा नामक तीसरे काल मे उत्पन्न हुए और मोक्ष भी तीसरे ही काल में गए। जनता को आपने क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन तीन वर्गों में विभाजित करके सबको जीवन निर्वाह की रीति बतलाई। इस कारण आपको आदि ब्रह्मा तथा १५ वा कुलकर भी कहते हैं॥ १॥

अजित नाथ

भगवान वृषभ नाथ के मुक्त हो जाने के अनन्तर जब ५० लाख करोड़-सागर का समय बीत चुका, साकेतपुर-अयोध्या के राजा जितशत्रु की महाराणी इ-द्रसेना के उदर से द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ का जन्म हुआ। पूर्ववर्ती तीसरे भव में ये राजा विमलवाहन थे। राजा विमलवाहन ने मुनि अवस्था मे तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था। वहा से विजय नामक अनुत्तर विमान का अहमीन्द्र हुआ। और अहमीन्द्र आयु समाप्त कर अजितनाथ तीर्थंकर हुआ, इनका शरीर ४५० धनुष ऊचा था, स्वर्ण जैसा रंग था। ७२,००००० लाख पूर्व की आयु थी, पैर में हाथी का चिन्ह था। आपने अपने यौवन काल मे राज्य किया, फिर विरक्त होकर केले के वृक्ष के नीचे मुनि दीक्षा ली और तपश्चरण करके केवल ज्ञान प्राप्त किया। आपके सिंहसेनादि ५२ गणधर थे और प्रकुब्जादि आर्यिकाए थी महायक्ष रोहिनी यक्षिणी थी। आपने सम्मेद शिखर से मुक्ति प्राप्त की। भगवान अजितनाथ के समय मे सगर नामक दूसरे चक्रवर्ती हुए। जो कि तपश्चरण करके मुक्त हुए। जित शत्रु नामक दूसरा रुद्र भी आपके समय मे हुआ॥२॥

संभवनाथ

क्षेमपुर के राजा विमल ने ससार से विरक्त होकर मुनि दीक्षा ली। कठोर तप किया तथा सोलह कारण भावनाओ द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बध किया। फिर प्रथम ग्रैवक बिमान मे सुदर्शन नामक अहमिन्द्र देव हुआ। वहां से आयु समाप्त करके भगवान अजितनाथ की मुक्ति से ३०,००००० लाख करोड सागर बीत जाने पर श्रावस्ति के इक्ष्वाकु शी राजा विजितारी की राणी सुशेना के गर्भ मे आया और तीसरे तीर्थंकर सभव नाथ के रूप मे जन्म लिया। आपका रग स्वर्ण सरीखा था। आपका शरीर ४०० धनुष्य ऊचा और आयु ६०,००००० लाख पूर्व की थी। आपके पग मे घोडे का चिन्ह था बहुत समय तक राज्य करके विरक्त होकर शाल्मली वृक्ष के नीचे मुनिपद ग्रहण किया। तपस्या करके केवल ज्ञान प्राप्त किया। आपके चारु दत्त आदि १०५ गणधर थे, धर्म श्री आदि आर्यिकाए थी। श्री मुख यक्ष और प्रज्ञप्ति यक्षणी थी। सम्मेद शिखर से आपने मुक्ति प्राप्त की ॥ ३ ॥

अभिनन्दन नाथ

जब सभवनाथ तीर्थंकर का काल १,००,००,००,००००००० करोड पूर्व परिवर्तन कर रहा था उस समय महा लचर नामक अनुत्तर विमान का अहमिन्द्र आकर साकेत नगर के सवर नामके राजा तथा उनकी सिद्धार्था रानी के गर्भ से अभिनन्दन नाम के तीर्थंकर का जन्म हुआ।

उन अभिनन्दन तीर्थंकर की आयु ५०,००००० लाख पूर्व की थी। तथा उनके शरीर की ऊचाई ३५० धनुष थी और उनके शरीर का रग सोने के समान था। शाल्मली के वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग अर्थात् ध्यान मे स्थित होकर अन्त मे घातिया कर्म को नष्ट करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष पाया। इन तीर्थ-कर के साथ वज्रचव आदि १०३ गणधर तथा मेरुपेणा आदि अर्यिकाऐं हुई। यक्षेश्वर यक्ष, और वज्रसृखला नाम की यक्षणी बन्दर लालन्छन सहित अभि-नन्दन तीर्थकर अपने समवसरण द्वारा देश विदेश विहार करते हुए सम्मेद पर्वत पर आकर मोक्ष पद को प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

सुमतिनाथ

उन अभिनन्दन तीर्थंकर का काल नव करोड लक्ष्य (९०००००,०००) लाख सागरोपम व्यतीत होते समय मे पचानुत्तोरो मे से वैजयन्त विमान का रतिषेण अहमेन्द्र आकर साकेत राजधानी के राजा मेघ रत्न तथा उनकी रानी मगला देवी से सुमति नाथ नामक तीर्थकर उत्पन्न हुआ। उनकी आयु चालीस लाख

(४०,०००००) पूर्व थी और उनके शरीर का उत्सेध ३०० धनुष का था, रंग स्वर्ण मय था। प्रियगु वृक्ष के नीचे इन तीर्थंकर ने केवल ज्ञान प्राप्त किया था। इनके समवशरण में वज्रनाम इत्यादि ११६ गणधर थे, अनन्त मती आदि अर्यिकाऐ थी, तु वरयक्ष पुरुषदत्ता यक्षणी थी। चक्रवाक नाम के पक्षी के चिन्ह सहित भगवान् सुमति नाथ तीर्थकर अपने समवशरण सहित अनेक देश विहार करते हुये अन्त मे सम्मेद शिखर पर आकर मोक्ष पद को प्राप्त हुए ॥५॥

पद्मप्रभु

उस सुमति नाथ तीर्थंकर का काल जब ६० सहस्त्र कोटि (६०००,००-००००००) प्रर्वतन कर रहा था। उस काल मे उपरिम ग्रैवेयक से अपराजित चरनाम अहमिन्द्र ने आकर कौशाम्बिपुर के राजा वरुण तथा उनकी रानी सुशीमा के गर्भ से पद्मप्रभु तीर्थकर के रूप मे जन्म लिया। इनकी आयु ३० लाख (३०,०००००) पूर्व थी। तथा २५० धनुष ऊंचे शरीर वाले थे। इनका शरीर हरित वर्ण का था। इन्होने सिरीश नाम के वृक्ष के नीचे घातिया कर्म को नष्ट करके केवलज्ञान पाया।

उस केवल ज्ञान प्राप्ति के समय इनके साथ १११ गणधर तथा रति षेणआदि मुख्य आर्यिकाएं थी और कुसुमयक्ष मनोवेगा यक्षणी, कमल लांछन-तथा भगवान् अपने समवशरण सहित विहार करते हुए सम्मेद शिखर पर अपने सम्पूर्ण कर्म की निर्जरा करके मोक्ष पद को प्राप्त हुए ॥ ६ ॥

सुपार्श्वनाथ

उन पद्म प्रभु तीर्थङ्कर का काल ६ करोड सागर प्रमाण [६०००,०००००००] प्रर्वतते समय मध्यम ग्रैवेयक से नन्दि शेरणा चर नामक भद्रविमान के अहिमिन्द्र ने आकर वाराणसी नगर के राजा सुप्रतिष्ट तथा उनकी रानी पृथ्वी देवी की कुक्षी से सुपार्श्व नाथ नाम के तीर्थङ्कर उत्पन्न हुए। उन सुपार्श्व नाथ तीर्थङ्कर की आयु २० लक्ष [२०,०००००] पूर्व थी, और उनके शरीर की ऊंचाई २०० धनुप थी। शरीर का रंग हरित वर्ण का था और उन्होंने नागपाद वृक्ष के नीचे तप करके केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा पचानवें गणधर वल आदि तथा मीन श्री आदिक अर्यिकाऐ, परनन्दी यक्ष कालियज्ञणी तथा स्वस्तिक लांछन सहित अपने समवशरण से देश मे विहार करते हुए सम्मेदपर्वत पर आकर सम्पूर्ण कर्मो की निर्जरा करके मोक्ष गये ॥ ७ ॥

चन्द्रप्रभु

जब सुपार्श्व तीर्थङ्कर का काल नौ सौ करोड सागर [६००,०००००००

चल रहा था उस समय श्री वर्म, श्रीधर देव, अजितषेण चक्रवती, अच्युतेन्द्र पद्मनाभराजा होकर पचानुत्तर के वैजयन्त विमान में उत्पन्न हुए अहमिन्द्र देव ने आकर चन्द्रपुर नामक नगर के महाषेण राजा की रानी लक्ष्मणा देवी की कोख से चन्द्रप्रभु नामक तीर्थङ्कर के रूप मे जन्म लिया।

उन तीर्थङ्कर की आयु दस लाख [१०,०००००] पूर्व थी और शरीर की ऊचाई १५० धनुष तथा रग धवल वर्ण था। नाग कुज वृक्ष के नीचे महान तप के द्वारा घातिया कर्म की निर्जरा करके केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके साथ उदात्त आदिक तिरानवे गणधर थे। वरुण श्री आदि अनेक अर्यिकाएँ थी। विजय यक्ष और ज्वालामालिनी यक्षिणी थी। भगवान् का लाछन चन्द्र था। इन चन्द्रप्रभ भगवान् ने अपने समवशरण सहित सम्मेद पर्वत पर आकर सम्पूर्ण कर्म नष्ट करके सिद्ध पद पाया ॥ ८ ॥

पुष्पदत्त

जिस समय चन्द्र प्रभ तीर्थङ्कर का काल नौ करोड सागरोमम चल रहा था उस समय महापद्मचर नाम का प्राणतेन्द्र आकर काकन्द्रीपुर के राजा सुग्रीव की रानी जयरामा की कोख से पुष्पदन्त तीर्थङ्कर हुए। उनकी आयु दो लाख की पूर्व थी। शरीर की ऊचाई सौ धनुष ऊची थी। शरीर का वर्ण श्वेत था। नागफणी वृक्ष के मूल मे तपश्चरण कर चारो घातिया नष्ट कर केवल ज्ञान की प्राप्ति की। उस समय उनके समवशरण मे विदर्भ आदि ८८ गणधर तथा घोषिति, विनयती आदिक अर्जिकाए थी। और अजितयक्ष महाकाली यक्षिणी मगरलाछन सहित अपने समवशरण के साथ विहार करते हुए सम्मेद शिखर पर जाकर सम्पूर्ण कर्मो का क्षय किया। इन्ही के समय मे रुद्र नाम का तीसरा रुद्र हुआ ॥ ९ ॥

शीतलनाथ

उन सुविधि नाथ पुष्पदत्त तीर्थङ्कर का काल जब नौ करोड सागरोपम चल रहा था उस समय इस काल के अन्त मे पल्योपम का चतुर्थ भाग काल बाकी रहते हुए धर्म की हानि होने लगी। उसी समय मे पद्मगुल्म चर का देव आरणेन्द्र विमान से आकर भद्रलापुर के राजा दृढरथ तथा उनकी रानी सुनन्दा देवी की कोख से शीतलनाथ तीर्थङ्कर के रूप मे उत्पन्न हुआ। उनकी आयु एक लक्ष पूर्व थी।

यहा कोई प्रश्न करेगा कि पूर्व का प्रमाण क्या है ? तो इसके विषय मे कहा है कि 'सुरसणिमरण घनन। भरदबुद मेघ पवन जलद पथंपु।

स्कर शरखरम गिरियुं, परमार्थं पूर्वशंखयतिपति मतदील ॥

सत्तर लाख ५६ हजार करौड वर्ष का एक पूर्व वर्ष होता है। उनकी ऊचाई नब्बे धनुष की थी। उनके शरीर का रग हरा था। बेलपत्र झाड के नीचे तपश्चर्या करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और उनके साथ सतासी गणधर धरणी श्री नाम की मुख्य अर्जिका भी थी। ब्रह्मयक्ष, माणवी यक्षिणी और भगवान् का श्री वृक्ष लाछन [चिन्ह] था। आपने समवशरण सहित अनेक देशो मे भ्रमण करते हुए सम्मेद शिखर से मोक्ष प्राप्त किया उसकाल मे विष्वाण नाम का चौथा रुद्र हुआ ॥ १० ॥

श्रेयांसनाथ

जब शीतल नाथ तीर्थङ्कर का छत्तीस लाख छब्वीस हजार वर्ष से मिला हुआ एक करोड सागरोपम के अन्त मे बचा हुआ अर्ध पल्योपम काल में जब धर्म की हानि होने की सम्भावना होने लगी उस समय मे नलिन प्रभ नाम का देव अच्युत कल्प के पुष्पोत्तर विमान से आकर सिंहपुर के विष्णु देव राजा उनकी राणी वेणदेवी की कोख से श्रेंशासनाथ तीर्थङ्कर हुए। उनकी आयु चौरासी लाख वर्ष थी और अस्सी धनुष ऊचाई थी। सुवर्णमयी शरीर था। तुम्पूर्ण [शिरीश[नाम के वृक्ष के नीचे तपश्चर्या करके मोक्ष फल प्राप्त किया। उस समय उनके साथ मुख्य कुन्थु आदि [७७] गणाधर थे और धारणा नाम की मुख्य अर्जिका थी। यक्षेश्वर यक्ष थे और गौरी यक्षिणी गेंडा का चिन्ह था। ऐसे श्रेयास नाथ तीर्थङ्कर ने अनेक देशो मे समवशरण सहित विहार कर सम्मेद शिखर पर जाकर मोक्ष फल प्राप्त किया ॥ ११ ॥

उस श्रेयासनाथ तीर्थङ्कर के काल में विजय नृप नाम के प्रथम राम और त्रिपृष्ट केशव, महाशुक्र कल्प से आकर पोदनपुर के अधिपति प्रजा--पाल महाराजा के पुत्र उत्पन्न हुआ। और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त होते समय उनकी वृद्धि दूसरे अश्वग्रीव नाम के विद्याधर को सहन न होने के कारण उनके ऊपर आक्रमण कर अपने चक्र के द्वारा मारना चाहा। सो उस चक्र से ही राम केशव ने अश्वग्रीव को मार कर भरत के तीन खड को अधीन करके उसको भोगते हुए शंख चक्र गदा शक्ति धनु दंड असि [तलवार] इत्यादि सात रत्नो के अधिपति केशव हुए, हल मूसल गदारत्न माला विधान इत्यादि चार रत्नो के अधिपति राम हुये। सुख से राज भोग करते हुये आनन्द के साथ साथ समय व्यतीत करने लगे। तो कुछ दिन पश्चात् केशव कृष्ण लेश्या के

परिणाम की उत्कृष्टता से मरणकर सातवें नरक को प्राप्त हो गया। त्रिपृष्ट के बाद विजय नामक राम ने घोर तपश्चरण द्वारा मोक्ष पद प्राप्त किया।

वासुपूज्य

पुष्करार्द्ध द्वीप के वत्सकावती देश के अन्तर्गत रत्नपुर का शासन करने वाला धर्म-प्रिय न्यायी राजा पद्मोत्तर था, वह वहा के तीर्थंकर युगन्धर का उपदेश सुन कर ससार से विरक्त हुआ और राजपाट पुत्र को देकर मुनि हो गया। उसने अच्छा तप किया तथा सोलह कारण भावनाओ को भा कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया और आयु के अन्त मे समाधि से मरण किया। तदनन्तर महाशुक्र स्वर्ग का इन्द्र हुआ। स्वर्ग की आयु जब समाप्त हुई तब चम्पापुर के राजा वासुपूज्य की रानी जयावती की कोख मे आकर उसने १२ वे तीर्थंकर वासुपूज्य के रूप मे जन्म लिया। भगवान् श्रेयांसनाथ की मुक्ति से चउअन ५४ सागर समय पीछे भगवान् वासुपूज्य का जन्म हुआ। इनका शरीर कमल के समान लाल रग का था। इनकी आयु ७२ लाख वर्ष की थी, शरीर ७० धनुष ऊंचा था। पैर मे भैसे का चिन्ह था। इन्होने अपना विवाह नही किया। बाल ब्रह्मचारी रहे और कुमार अवस्था मे मुनि पद धारण किया। तपश्चरण करके जब अरहत पद पाया तब समवशरण द्वारा सर्वत्र विहार करके धर्म का पुनरुद्धार किया। उनके धर्म आदि ६६ गणधर थे तथा सेना आदि अर्यिकाये थी। कुमार यक्ष, गांधारी यक्षिणी, महिष का चिन्ह था। अन्त मे आपने चम्पापुरी से मुक्ति प्राप्त की।

भगवान् वासुपूज्य के समय मे अचल नामक बलभद्र, द्विपृष्ठ नामक नारायण और तारक नाम प्रतिनारायण हुए।१२।

विमलनाथ

घातकी खण्ड मे रम्यकावती देश के अन्तर्गत महानगर का राज्य करने वाला राजा पद्मसेन बहुत प्रतापी था। बहुत दिन राज्य करके वह स्वर्गगुप्त नामक केवल ज्ञानी का उपदेश सुनकर राज पाट छोड मुनि बन गया और दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं के द्वारा उसने तीर्थंकर कर्म का बन्ध किया। फिर वह मानव शरीर छोडकर सहस्रार स्वर्ग का इन्द्र हुआ। वहा की १८ सागर की आयु बिता कर कम्पिला नगरी के राजा कृतवर्मा की रानी जयश्यामा के उदर से विमलनाथ नामक १३ वा तीर्थंकर हुआ। भ० विमलनाथ का जन्म भगवान् वासुपूज्य से ३० सागर पीछे हुआ इसी समय के अन्तर्गत उनकी ६० लाख वर्ष की आयु भी है। उनका शरीर का रंग स्वर्ण के समान था। उनके पैर मे शूकर का चिन्ह था।

भगवान विमलनाथ ने यौवन अवस्था मे बहुत दिन तक राज्य किया फिर ससार से विरक्त हो कर मुनिव्रत धारण किये। तीन वर्ष तक तपस्या करने के अनतर उन्हे केवल ज्ञान हुआ तब समवशरण द्वारा सर्वत्र धर्म प्रचार किया। उनके मन्दर आदि ५५ गणधर थे और पद्मा आदि एक लाख ३ हजार अर्यिकाये थीं। वैरोटनी यक्षिणी, सन्मुख यक्ष था।

भगवान् विमलनाथ के समय मे धर्म नामक वलभद्र और स्वयम्भू नामक तीसरा नारायण तथा मधु नामक प्रतिनारायण हुआ है।१३।

अनन्तनाथ (अनन्तजित्)

धातकी खड मे अरिष्ट नगर के स्वामी राजा पद्मरथ बडे सुख से राज्य कर रहे थे। एक बार उनको भगवान स्वयप्रभु के दर्शन करने का अवसर मिला। भगवान् का दर्शन करते ही उनका मन ससार से विरक्त हो गया, अत वे अपने पुत्र धनरथ को राज्य भार देकर मुनि वन गये। बहुत काल तक तप करते रहे। १६ भावनाओ के कारण तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। अन्त मे समाधि-मरण करके सोलहवें स्वर्ग का इन्द्र पद प्राप्त किया। स्वर्ग से बाईस सागर की आयु समाप्त करके अयोध्या के अधिपति महाराज सिंहसेन की महारानी जयश्यामा के उदर से जन्म लिया।

आपका नाम अनन्तजित या अनन्तनाथ रक्खा गया। भगवान विमलनाथ को मुक्ति के समय से अब तक ९ सागर तथा पौन पल्य समय बीत चुका था आप की आयु के बीस लाख वर्ष भी इसमे सम्मिलित है। आपका शरीर सुवर्ण वर्ण था। ऊचाई ५० धनुष थी। पैर मे सेही का चिन्ह था। आपके यौवन काल मे आप का राज्याभिषेक हुआ। बहुत समय तक निष्कटक राज्य किया। एक दिन आकाश से विजली गिरते देखकर आप को वैराग्य हो गया, अत. सिद्धो को नमस्कार करके आप मुनि बन गये। तत्काल आप को मन.पर्यय ज्ञान हो गया और दो वर्ष तपश्चरण करने के अनन्तर आप को विश्व ज्ञायक केवलज्ञान हुआ। आपके जय आदि ५० गणधर हुए सर्वश्री आदि एक लाख ८ हजार आर्यिकायें थी, पाताल यक्ष अनन्तमति यक्षिणी थी। समवशरण द्वारा समस्त देशो मे धर्म प्रचार करके आयु के अन्त मे सम्मेद शिखर पर्वत से मुक्त हुए।१४।

अनन्त चतुर्दशी व्रत

अचिन्त्य फल दायक अनन्त चतुर्दशी व्रत की विधि निम्नलिखित है—

भाद्रपद सुदी चतुर्दशी को उपवास करे तथा एकान्त स्थान मे अष्ट-

प्रातिहार्य सहित अनन्तनाथ भगवान की प्रतिमा सुन्दर मंडप में विराजमान करे उसका अभिषेक करे। तथा 'ॐ नम अर्हते भगवते त्रैलोक्यनाथाय परीक्षण रोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये अनन्त तीर्थंकराय अनन्त सुखप्रदाय नम'।' इस मन्त्र को पढ़कर अष्ट द्रव्य से भगवान का पूजन करे। चौदह प्रकार के धान्यो के पुञ्ज रखकर चौदह प्रकार के पुष्पो और चौदह प्रकार के फलो से पूजा करे। चौदह प्रकार के सूत से बना हुआ चौदह गाठो वाले जनेऊ (यज्ञोपवीत) को चन्दन केसर कपूर मिलाकर रंगे और उस यज्ञोपवीत की 'ॐ० नम. अर्हते भगवते त्रैलोक्यनाथाय अनन्तज्ञान दर्शनवीर्य सुखात्मकाय स्वाहा' मत्र के द्वारा पूजा करे।

चौदह जल धारा, चौदह तिलक, चौदह मुट्ठी चावल, चौदह पुष्प, चौदह सुपारी, धूप, १४ पान द्वारा पूजन करे तथा "ॐ० ह्री अनन्ततीर्थंकराय ॐ० ह्रा ह्री ह्रू ह्रौ ह्र असिआउसा मम सर्वशान्ति क्राति तुष्टि पुष्टि सौभाग्य मायुरारोग्यमिष्ट सिद्धि कुरु कुरु सर्वविघ्न परिहर कुरु कुरु नमः वषट् स्वाहा" मत्र पढकर अर्घ चढाना चाहिए। तत्पश्चात् ॐ० ऐ द्री द्रा क्ली अर्ह मम सर्वशान्ति कुरु कुरु वषट् स्वाहा।" मन्त्र पढ़कर जनेऊ गले मे पहन लेना चाहिये तथा राखी अपने हाथ मे या कान में बांध लेनी चाहिये। 'ॐ० ह्री अर्हं नम सर्वकर्म बन्धन विनिर्मुक्ताय अनन्ततीर्थंकराय अनन्त सुखप्रदाय स्वाहा' मत्र पढकर पुराना जनेऊ उतार देना चाहिए।

तदनन्तर देव शास्त्र गुरु की पूजन करे चौदह सौभाग्यवती स्त्रियों को चौदह प्रकार के फल भेंट करे रात्रि जागरण करे। दूसरे दिन नित्यनियम क्रिया करके पारणा करे। इस प्रकार १४ वर्ष तक करके उद्यापन करे। उद्यापन मे यथा शक्ति अन्न वस्त्र आदि का दान करना चाहिये। चौदह दम्पतियो (पति पतनियो) को घर मे भोजन कराना चाहिये, वे गरीब हो तो उन्हे वस्त्र भी देने चाहिये। १४ शास्त्रो की पूजा करके मदिर मे देना चाहिये, चौदह आचार्यों की पूजा करनी चाहिये, १४ आर्यिकाओ को वस्त्र देना चाहिये। मदिर मे चौदह प्रकार की सामग्री भेट करनी चाहिये। चार प्रकार के संघ को आहार देना चाहिये। चौदह मुट्ठी चावल भगवान के सामने चढाने चाहिये।

इस प्रकार अन्नत चतुर्दशी व्रत के करने तथा उद्यापन करने की विधि है।

भगवान अनन्तनाथ के समय मे चौथे वलभद्र (नारायण के बडे भाई) सुप्रभ और पुरुषोत्तम नारायण तथा मधुसूदन नामक प्रतिनारायण हुए।

धर्मनाथ

घातकी खण्ड के वत्स देश में सुसीमा महानगर का स्वामी राजा दशरथ बहुत पराक्रम के साथ राज्य करता था। एक दिन वैशाख सुदी पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण देखकर ससार की अस्थिरता का उसे वोध हुआ, अत. अपने पुत्र महारथ को राज्य भार सौंप कर आप महाव्रती साधु वन गया। सयम धारण कर लेने पर १६ कारण भावनाओ का चिन्तवन करके तीर्थंकर प्रकृति बांधी। समाधि के साथ वीर मरण करके वह सर्वार्थसिद्धि मे अहमिन्द्र हुआ। वहां ३३ सागर का दीर्घ काल विता कर रत्नपुर के शासक राजा भानु की रानी सुप्रभा के गर्भ में आया। ९ मास पीछे १५ वे तीर्थंकर धर्मनाथ के रूप मे जन्म लिया। भगवान अनन्तनाथ के मुक्त होने से १० लाख वर्ष कम चार सागर का समय अव तक बीत चुका था।

भगवान धर्मनाथ की आयु १० लाख वर्ष थी। शरीर ४५ धनुष ऊंचा था। शरीर का वर्ण सुवर्ण-जैसा था, पैर मे वज्रदण्ड का चिन्ह था। यौवन-काल मे वहुत समय तक राजसुख भोगा। एक दिन उल्कापात (विजली गिरना) देखकर उन्हे वैराग्य हो गया, अत. राज सम्पदा छोड़ कर साधु-दीक्षा स्वीकार की। उसी समय उन्हे मन.पर्यय ज्ञान प्रकट हो गया। तदनन्तर एक वर्ष पीछे उन्हे केवलज्ञान हो गया। तब समवशरण द्वारा अनेक देशो मे महान धर्म प्रचार किया। आपके अरिष्टसेन आदि ४७ गणधर थे और सुव्रता आदि ६२४०० अर्यिकायें, हजारों विविध ऋद्धिधारी साधु थे। किन्नर यक्ष, परभृती यक्षिणी थी। अन्त मे आप सम्मेद शिखर पर्वत से मुक्त हुए।

इनके समय मे पाचवें वलभद्र सुदर्शन तथा पुरुषसिंह नामक नारायण और निशुम्भ नामक प्रतिनारायण हुए हैं। इन ही धर्मनाथ तीर्थंकर के तीर्थ काल मे तीसरे चक्रवर्ती मघवा हुए हैं।१५।

शान्तिनाथ

इस जम्बूद्वीपवर्ती विदेह क्षेत्र मे पुष्कलावती देश है, उस देश मे पुण्डरीकिणी नामका एक सुन्दर विशाल नगर है। वहां पर घनरथ नामक राजा राज्य करता था। उसके ग्रैवेयक से च्युत होकर मेघरथ नामक पुत्र हुआ वह वड़ा प्रभावशाली, पराक्रमी, दानी, सौभाग्यशाली और गुणी था। उसने अपने पिता से प्राप्त राज्य का शासन वहुत दिन तक किया। उसने जब तीर्थंकर का उपदेश सुना तो उसको आत्मसाधना के लिये उत्साह हुआ, इस कारण घर बार राजपाट छोडकर मुनि बन गया। मुनि अवस्था मे उसने षोडशकारण भाव-

नाओ का चिन्तवन किया जिससे उसने तीर्थंकर प्रकृति का उपार्जन किया। आयु के अन्तिम समय प्रायोपगमन सन्यास धारण कर अनुत्तर विमान में अहमिंद्र हुआ।

वहा पर ३३ सागर की सुखमयी आयु समाप्त करके हस्तिनापुर में राजा विश्वसेन की रानी ऐरादेवी के उदर से सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ के रूप में ज़न्म धारण किया। भगवान धर्मनाथ से एक लाख वर्ष तथा पौन पल्य कम तीन सागर का समय बीत जाने पर भगवान शान्तिनाथ का जन्म हुआ था। उनकी आयु एक लाख वर्ष की थी, शरीर सुवर्ण के से रग का था, पैर मे हिरण का चिह्न था और शरीर की ऊचाई ४० धनुष थी।

पच्चीस हजार वर्ष का कुमार काल बीत जाने पर उनके पिता ने भगवान शान्तिनाथ का राज्य अभिषेक किया। २५ हजार वर्ष राज्य कर लेने के बाद वे दिग्विजय करने निकले। दिग्विजय करके भरत क्षेत्र के पाचवें चक्रवर्ती सम्राट वन गये। २५ हजार वर्ष तक चक्रवर्ती साम्राज्य का सुख भोग करते हुए एक दिन उन्होने दर्पण मे अपने शरीर के दो आकार देखे, इससे उनकी रुचि ससार की ओर से हट गई और राज्य त्याग कर महाव्रती साधु हो गये। सोलह वर्ष तक तपश्चरण करने के पश्चात् उनको केवल ज्ञान हुआ। तब समवशरण द्वारा महान धर्म प्रचार किया। चक्रायुध आदि उनके ३२ गणधर थे। ६२ हजार अनेक प्रकार की ऋद्धियो के धारक मुनि तथा हरिषेण आदि साठ हजार तीन सौ अर्यिकाये उनके सघ मे थी अन्त मे सम्मेद शिखर से सर्व कर्म नष्ट करके मुक्त हुए। इनका गरुड यक्ष और महामानसी यक्षी थी।१६।

कुन्थुनाथ

जम्बूद्वीपवर्ती पूर्व विदेह क्षेत्र मे वत्स नामक एक देश है। उस देश के सुसीमा नगर मे एक महान बलवान सिहरथ नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन उसने आकाश से गिरती हुई बिजली देखी, इससे उसको वैराग्य हो गया। विरक्त होकर उसने साधु अवस्था मे १६ कारण भावनाओ का चिन्तवन किया जिससे तीर्थंकर प्रकृति का बध किया। अन्त मे वीर मरण करके सर्वार्थ सिद्धि का देव हुआ।

वहा ३३ सागर की आयु बिताकर हस्तिनापुर मे महाराजा शूरसेन की महारानी श्रीकान्ता के उदरसे १७वे तीर्थंकर कुन्थुनाथ नामक तेजस्वी पुत्र हुआ। भगवान शान्तिनाथ के मोक्षगमन से ९५ हजार वर्ष कम आधा पल्य समय बीत जाने पर भगवान कुन्थुनाथ का जन्म हुआ था इनकी आयु ९५ हजार वर्ष की

थी, ३५ धनुष ऊंचा शरीर सुवर्ण वर्ण था । बकरे का चिन्ह पैर मे था।

भगवान कुन्थुनाथ ने २३७५० वर्ष कुमार अवस्था मे विताए फिर इतने समय तक ही राज्य किया तदनन्तर दिग्विजय करने निकले और छ खड जीत कर भरत क्षेत्र के चक्रवर्ती सम्राट बने । बहुत समय तक चक्रवर्ती सम्राट बने रहकर पूर्व भव के स्मरण से इनको वैराग्य हुआ । १६ वर्ष तपस्या करके अर्हन्त पद प्राप्त किया । तब समवशरण मे अपनी दिव्यध्वनि से मुक्ति मार्ग का प्रचार किया । आपके स्वयम्भू आदि ३५ गणधर थे, ६० हजार सब तरह के मुनि थे, भाविता आदि ६० हजार ३०० अर्यिकाये थी । गंधर्व यक्ष, जया यक्षी थी । अन्त मे आपने सम्मेद शिखर से मोक्ष प्राप्त की ।१७।

अरनाथ

जम्बूद्वीप मे बहने वाली सीता नदी के उत्तरी तट पर कच्छ नामक एक देश है उसका शासन राजा धनपति करता था । उसने एक दिन तीर्थंकर के समवशरण मे उनकी दिव्य वाणी सुनी । दिव्य उपदेश सुनते ही वह संसार से विरक्त होकर मुनि हो गया । तब उसने अच्छी तपस्या की और सोलह भावनाओ का चिन्तवन करके तीर्थंकर पद का उपार्जन किया । आयु के अन्त मे समाधिमरण करके जयन्त विमान मे अहमिन्द्र हुआ । तैतीस सागर अहमिन्द्र पद के सुख भोग कर उसने हस्तिनापुर के सोमवशी राजा सुदर्शन की महिमामयी रानी मित्रसेना के गर्भ मे आकर श्री अरनाथ तीर्थंकर के रूप मे जन्म ग्रहण किया ।

भगवान् अरनाथ के शरीर का वर्ण सुवर्ण समान था । जब एक हजार करोड चौरासी हजार वर्ष कम पल्य का चौथाई भाग समय भगवान् कुन्थुनाथ कीं मोक्ष होने के वाद से बीत चुका था तब श्री अरनाथ का जन्म हुआ था । उनका शरीर ३० धनुष ऊंचा था, पैर मे मछली का चिन्ह था । उनकी आयु चौरासी हजार वर्ष की थी । २१ हजार वर्ष कुमार अवस्था मे व्यतीत हुए । २१ हजार वर्ष तक मडलेश्वर राजा रहे फिर ६ खडो की विजय करके २१ हजार वर्ष तक चक्रवर्ती पद मे शासन किया । तदनन्तर शरद कालीन बादलो को विघटता देखकर वैराग्य हुआ । अत राज्य त्याग कर मुनि हो गये । १६ वर्ष तक तपश्चरण करते हुए जव बीत गये तब उनको केवल ज्ञान हुआ । फिर समवशरण मे विराजमान होकर भव्य जनता को मुक्ति पथ का उपदेश दिया । इनके कुम्भार्य आदि तीस गणधर तथा सब प्रकार के ६० हजार मुनि और यक्षि आदि एक हजार आर्यिकाये भगवान् के संघ मे थी । महेन्द्र

यक्ष विजया यक्षी थी। सर्वत्र विहार करते हुए महान धर्म प्रचार किया और अन्त मे सम्मेद शिखर पर्वत से मोक्ष प्राप्त की।

भगवान् अरनाथ के पीछे किन्तु उनके तीर्थ समय मे ही परशुराम का घातक किन्तु स्वय लोभ-वश समुद्र मे अपने पूर्व जन्म के शत्रु (रसोइया) देव द्वारा मरने वाला सुभौम चक्रवर्ती हुआ है। तथा उनके ही तीर्थ काल मे नन्दिषेण नामक छठा बलभद्र, पुण्डरीक नारायण और निशुम्भ नामक प्रति नारायण हुआ है।१८।

श्री मल्लिनाथ

जम्बू द्वीप-वर्ती सुमेरू पर्वत के पूर्व मे कच्छकावती देशान्तर्गत वीतशोक नामक सुन्दर नगर है उसका शासक वैश्रवण नामक राजा राज्य करता था। एक। दिन उसने वनविहार के समय बिजली से एक वट वृक्ष को गिरते देखा इससे उसे वैराग्य हो गया और वह अपने पुत्र को राज्य देकर मुनि हो गया। मुनि अवस्था मे उसने तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्ध किया। तपश्चरण करते हुए समाधि के साथ प्राण त्याग किया और अपराजित नामक अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुआ, तेंतीस सागर की आयु जब वहाँ समाप्त हो गई तब बग देश की मिथिला नगरी मे इक्ष्वाकुवशी राजा कुम्भ की रानी प्रजावती के गर्भ मे आया और ९ मास पश्चात् श्री मल्लिनाथ तीर्थङ्कर के रूप मे जन्म लिया। भगवान् अरनाथ की मुक्ति के ५५ हजार वर्ष कम एक हजार करोड वर्ष व्यतीत हो जाने पर श्री मल्लिनाथ भगवान् का जन्म हुआ।

आप सुवर्ण वर्ण के थे, २५ धनुष ऊचा शरीर था, पचपन हजार वर्ष की आयु थी दाहिने पैर मे कलश का चिन्ह था। जब उन्होने यौवन अवस्था मे पैर रक्खा तो उनके विवाह की तैयारी हुई। अपने नगर को सजा हुआ देखकर उन्हे पूर्व भव के अपराजित विमान का स्मरण हो आया, अत ससार की विभूति अस्थिर जानकर विरक्त हो गये और अपना विवाह न कराकर कुमार काल मे उसी समय उन्होने मुनि दीक्षा ले ली। छ दिन तक तपश्चरण करने के अनन्तर ही उनको केवल ज्ञान हो गया। फिर अच्छा धर्म प्रचार किया। उनके विशाख आदि २८ गणधर थे। केवल ज्ञानी आदि विविध ऋद्धिधारक ४० हजार मुनि और बन्धुषेणा आदि आर्यिकायें उनके सघ में थी। कुबेर यक्ष अपराजिता यक्षी थी कलश चिन्ह था अन्त मे वे सम्मेदशिखर से मुक्त हुए।

इनके तीर्थ काल मे पद्म नामक चक्रवर्ती हुआ है तथा इनके ही तीर्थ

काल मे सातवे बलभद्र नन्दिमित्र, नारायण दत्त और बलि नामक प्रतिनारायण हुआ है ।१९।

श्री मुनिसुव्रतनाथ

अंग देश के चम्पापुर का प्रतापी राजा हरिवर्मा राज्य करता था। एक बार उसने अपने उद्यान मे पधारे हुए अनन्त वीर्य से संसार की असारता-सूचक धर्म-उपदेश सुना। उसके प्रभाव से उसे आत्म-रुचि हुई और वह सब परिग्रह त्याग कर मुनि बन गया। मुनि चर्या का निर्दोष पालन करते हुए उसने सोलह भावनाओ का चिन्तवन करके सर्वोत्तम तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया। अन्त मे वीरमरण करके वह प्राणत स्वर्ग का इन्द्र हुआ। वहा पर २० सागर की दिव्य सम्पदाओं का उपभोग किया तदनन्तर मगध देश के राजग्रह नगर के शासक हरिवंशी राजा सुमित्र की महारानी सोमा के गर्भ से बीसवे तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रतनाथ के रूप मे जन्म लिया। भगवान् मल्लिनाथ के मुक्ति समय से ५३ लाख ७० हजार वर्ष का समय बीत जाने पर श्री मुनि सुव्रतनाथ का जन्म हुआ था। शरीर का वर्ण नीला था, ऊंचाई २० धनुष थी और आयु ३० हजार वर्ष की थी। दाहिने पैर मे कछुए का चिन्ह था।

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ के साढ़े सात हजार वर्ष कुमार काल में व्यतीत हुए और साढ़े सात हजार वर्ष तक राज्य किया। फिर उनको संसार से वैराग्य हुआ, उनके साथ एक हजार राजाओ ने भी मुनि दीक्षा ग्रहण की। ११ मास तक तपश्चरण करने के पश्चात् उनको केवलज्ञान हुआ। तब वे लगभग ३० हजार वर्ष तक समवशरण द्वारा विभिन्न देशो में विहार करके धर्म प्रचार करते रहे। इनके मल्लि आदि १८ गणधर थे। केवल-ज्ञानी, अवधि-ज्ञानी आदि सब तरह के ३० हजार मुनि और पुष्पदन्ता आदि ५० हजार आर्यिकायें उनके साथ थी। वरुण यक्ष वहु, रूपिणी यक्षी, कच्छप चिन्ह था अन्त मे सम्मेद शिखर से उन्होने मोक्ष प्राप्त किय।

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ काल मे हरिषेण चक्रवर्ती हुआ है तथा आठवें बलभद्र राम, नारायण लक्ष्मण और प्रति नारायण रावण हुआ है।२०।

भगवान् नमिनाथ

वत्स देश के कौशाम्बी नगर मे सिद्धार्थ नामक इक्ष्वाकुवंशी राजा राज्य करता था। एक दिन उसने महाबल केवली से धर्म-उपदेश सुना जिससे

उसको वैराग्य हो गया। वह मुनि दीक्षा लेकर तपस्या करने लगा। दर्शन-विशुद्धि आदि १६ भावनाओ द्वारा उसने तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। आयु के अन्त मे समाधिमरण किया और अपराजित नामक अनुत्तर विमान मे अहमिन्द्र उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने ३३ सागर की आयु व्यतीत की। तदनन्तर मिथिला नगरी मे इक्ष्वाकुवशी काश्यप गोत्रीय महाराजा विजय की महारानी वप्पिला के उदर से २१वे तीर्थंकर श्री नमिनाथ के रूप मे जन्म लिया। भगवान् मुनिसुव्रत-नाथ के वाद ६० लाख वर्ष तीर्थंकाल बीत जाने पर भगवान् नमिनाथ का जन्म हुआ था। उनकी आयु दस हजार वर्ष थी, शरीर १५ धनुप ऊ चा था, वर्ण सुवर्ण के समान था, चिन्ह नीलकमल का था। भगवान् नमिनाथ का ढाई हजार वर्प समय कुमार काल मे और ढाई हजार वर्ष राज्य शासन मे व्यतीत हुआ, तदनन्तर पूर्व भवका स्मरण आकर उन्हे वैराग्य हो गया तव मुनि दीक्षा लेकर ९ वर्ष तक तपस्या की तदनन्तर उनको केवल ज्ञान हुआ। उस समय देश देशान्तरो मे विहार करके धर्म प्रचार करते रहे। उनके सघ मे सुप्रभार्य आदि १७ गणधर, २० हजार सब तरह के मुनि और मङ्गिनी आदि ४५ हजार अर्यिकाए थी। भ्रकुटि यक्ष चामुंडी यक्षी, नीलोत्पल चिन्ह था अन्त मे भगवान् नमिनाथ ने सम्मेद शिखर से मुक्ति प्राप्त की॥ २१॥

भगवान् नेमिनाथ

जम्बू द्वीप-वर्ती पश्चिम विदेह क्षेत्र मे सीतोदा नदी के उत्तर तट पर सुगन्धिला देश है। उसमे सिंहपुर नगर का यशस्वी, प्रतापी और सौभाग्यशाली राजा अपराजित शासन करता था उसको एक दिन पूर्वभव के मित्र दो विद्याधर मुनियो ने आकर प्रवुद्ध किया कि अब तेरी आयु केवल एक मास रह गई है, कुछ आत्म-कल्याण करले। अपराजित अपनी आयु निकट जानकर मुनि होगया। मुनि होकर उसने खूव तपश्चर्या की। आयु के अन्त मे समाधि-मरण कर सोलहवे स्वर्ग का इन्द्र हुआ। वहाँ से च्युत होकर हस्तिनापुर के राजा श्रीचन्द्र का पुत्र सुप्रतिष्ठ हुआ। राज्य करते हुए सुप्रतिष्ठ ने एक दिन विजली गिरती हुई देखी, इससे ससार को क्षणभगुर जानकर मुनि हो गया। मुनि अवस्था मे उसने तीर्थङ्कर प्रकृति का वन्ध किया और आयु के अन्त मे एक मास का सन्यास धारण करके जयन्त नामक अनुत्तर विमान मे अहमिन्द्र हुआ। वहाँ पर तैतीस सागर की आयु बिताकर द्वारावती के यदुवशी राजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी की कोख से २२वे तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ के रूप मे उत्पन्न हुआ।

भगवान नेमिनाथ का शरीर नील कमल के समान नीले वर्ण का था, एक

हजार वर्ष की आयु थी और शरीर की ऊंचाई दश धनुष थी, उनके पैर मे शंख का चिन्ह था। वे भगवान नमिनाथ के मुक्त होने के चार लाख ६६ हजार वर्ष पीछे उत्पन्न हुए थे। युवा हो जाने पर उनका विवाह सम्बन्ध जूनागढ के राजा उग्रसेन (ये कस के पिता उग्रसेन से भिन्न थे) की गुणवती युवती परम-सुन्दरी सुपुत्री राजमती के साथ निश्चित हुआ। बडी धूमधाम से आपकी बरात जूनागढ पहुंची। वहा पर कृष्ण ने भगवान नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न कराने के अभिप्राय से बहुत से पशु एक बाड़े मे एकत्र करा दिये थे। ये पशु करुण-चीत्कार कर रहे थे। भगवान नेमिनाथ को अपने रथवाहक से ज्ञात हुआ कि इन पशुओ को मार कर मेरी बरात मे आये हुए कुछ मासभक्षी लोगो की लोलु-पता पूर्ण की जायगी। यह बात विचार कर उनको तत्काल वैराग्य हो गया और वे तोरण द्वार से लौट गये। उन्होने जूनागढ के समीपवर्ती गिरनार पर्वत पर सयम धारण कर लिया। राजमती भी आर्यिका हो गई। ५६ दिन तपश्चर्या करने के बाद भगवान नेमिनाथ को केवल ज्ञान हो गया। तदन्तर सर्वत्र विहार करके धर्म प्रचार करते रहे। उनके सघ मे वरदत्त आदि ११ गणधर, १८ हजार सब तरह के मुनि और राजमती आदि ४० हजार आर्यिकाये थी। सर्वा-ह्रिक यक्ष आम्रकुस्मांडिनी यक्षीणी व शख का चिह्न था। वे अन्त मे गिरनार से मुक्त हुए।

उनके समय मे उनके चचेरे भाई ९वे बलभद्र बलदेव तथा नारायण कृष्ण और प्रतिनारायण जरासन्ध हुए हैं॥ २२॥

भगवान् पार्श्वनाथ

इसी भरत क्षेत्र मे पोदनपुर के शासक राजा अरविन्द थे। उनका सदाचारी विद्वान् मत्री मरुभूति था। उसकी स्त्री वसुन्धरी बड़ी सुन्दर थी। मरुभूति का बडा भाई कमठ बहुत दुराचारी था। वह वसुन्धरी पर आसक्त था। एक दिन मरुभूति पोदनपुर से बाहर गया हुआ था। उस समय प्रपंच बनाकर कमठ ने मरुभूति की स्त्री का शीलभग कर दिया। राजा अरविन्द को जब कमठ का दुराचार मालूम हुआ तो उन्होंने कमठ का मुख काला करके गधे पर बिठाकर राज्य से बाहर निकाल दिया। कमठ एक तपस्वियों के आश्रम मे चला गया वहाँ एक पत्थर को दोनो हाथो से उठाकर खड़े होकर वह तप करने लगा। मरुभूति प्रेमवश उससे मिलने आया तो कमठ ने उसके ऊपर वह पत्थर पटक दिया। जिससे कुचल कर मरुभूति मर गया।

मरुभूति मर कर दूसरे भव मे हाथी हुआ और कमठ मर कर सर्प हुआ।

उस सर्प ने पूर्व भव का वैर विचारकर उस हाथी की सूड मे काट लिया हाथी ने शान्ति, से शरीर त्याग कर सहस्रार स्वर्ग मे देव पर्याय पाई। सर्प मरकर पाचवें नरक मे गया मरुभूति का जीव १६ सागर स्वर्ग मे रहकर विदेह क्षेत्र मे विद्याधर राजा का पुत्र रश्मिवेग हुआ। कमठ का जीव नरक से निकल कर विदेह क्षेत्र मे अजगर हुआ। रश्मि वेग ने यौवन अवस्था मे मुनि दीक्षा लेली। सयोग से कमठ का जीव अजगर उन ध्यानमग्न मुनि के पास आया तो पूर्वभव का वैर विचार कर उनको खा गया। रश्मिवेग मुनि मर कर सोलहवें स्वर्ग मे देव हुए। कमठ का जीव अजगर मर कर छटे नरक मे गया। मरुभूति का जीव स्वर्ग की आयु समाप्त करके विदेह क्षेत्र मे राजा वज्रवीर्य का पुत्र बज्रनाभि हुआ बज्रनाभि ने चक्र रत्न से दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट का पद पाया। बहुत समय तक राज्य करने के बाद वह फिर ससारसे विरक्त होकरमुनि बन गया कमठ का जीव नरक से निकल करइसी विदेह क्षेत्र मे भील हुआ। एक दिन उसने ध्यान मे मग्न बज्रनाभि मुनि को देखा तो पूर्व भव का वैर विचारकर उनको मार डाला। मुनि मरकर मध्यम ग्रैवेयक के देव हुए। कमठ का जीव भील मरकर नरक मे गया। मरुभूति का जीव अहमिन्द्र की आयु समाप्त करके अयोध्या के राजा बज्रबाहु का आनन्द नामक पुत्र हुआ। आनन्द ने राज पद पाकर बहुत दिन तक राज्य किया। फिर अपने सिर का सफेद बाल देख कर मुनि दीक्षा लेली। मुनि दशा मे अच्छी तपस्या की और तीर्थकर प्रकृति का बध किया। कमठ का जीव नरक से आकर सिंह हुआ था। उसने इस भव मे पूर्व वैर विचार कर आनन्द मुनि का भक्षण किया। मुनि सन्यास से शरीर त्याग कर प्राणत स्वर्ग के इन्द्र हुए। सिंह मरकर शम्बर नामक असुर देव हुआ।

मरुभूति के जीव ने प्राणत स्वर्ग की आयु समाप्त करके बनारस के इक्ष्वाकुवशी राजा अश्वसेन की रानी ब्राह्मी (वामादेवी) के उदर से २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के रूप मे जन्म लिया। भगवान नेमिनाथ के ८३ हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ था। भगवान पार्श्वनाथ की आयु १०० वर्ष की थी। उनका शरीर हरित रग का था। नौ हाथ की ऊचाई थी, पैर मे सर्प का चिन्ह था। जब वे १६ वर्ष के हुए तब हाथी पर सवार होकर गगा के किनारे सैर कर रहे थे। उस समय उन्होने एक तापसी को अग्नि जलाकर तपस्या करते हुये देखा। भगवान पार्श्वनाथ को अवधि ज्ञान से ज्ञात हुआ कि एक जलती हुई लकड़ी के भीतर सर्प सर्पिणी भी जल रहे है। उन्होने तापसी से यह बात कही।

तापसी ने क्रोध मे आकर जब कुल्हाडी से वह लकडी फाडी तो सचमुच मरणोन्मुख नाग नागिनी उसमे से निकले। भगवान पार्श्वनाथ ने उनको णमोकार मंत्र सुनाया। नाग नागिनी ने शान्ति से णमोकार मत्र सुनते हुए प्राण त्यागे और दोनो मर कर भवनवासी देव देवी धरणीन्द्र पद्मावती हुए।

राजकुमार पार्श्वनाथ ने अपना विवाह नही किया और यौवन अवस्था मे ही ससार से विरक्त होकर मुनि दीक्षा लेते ही उन्हे मन पर्यय ज्ञान हो गया। चार मास पीछे एक दिन जब वे ध्यान मे बैठे हुए थे तब कमठ का जीव असुर देव उधर होकर आकाश मे जा रहा था। भगवान पार्श्वनाथ को देखकर उसने फिर पूर्व भवो का वैर विचार कर भगवान के ऊपर बहुत उपद्रव (उपसर्ग) किया। उस समय धरणीन्द्र पद्मावती ने आकर उस असुर को भगा कर उपसर्ग दूर किया, उसी समय भगवान को केवल ज्ञान हुआ। तब समवशरण द्वारा समस्त देशों मे धर्मप्रचार करते रहे। उनके स्वयम्भू आदि १० गणधर थे, सब तरह के १६ हजार मुनि और सुलोचना आदि १६ हजार आर्यिकाए उनके सघ मे थी। धरणेन्द्र यक्ष पद्मावती यक्षी, सर्प का चिन्ह था। अन्त मे आपने सम्मेद शिखर से मुक्ति प्राप्त की ॥ २३ ॥

भगवान वर्द्धमान (महावीर)

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र मे बहने वाली सीता नदी के उत्तरी तट पर पुष्कलावती देश है। उस देश मे पुण्डरीकिणी नगरी है। उस नगरी के निकट मधु नामक एक वन है। उस बन मे 'पुरूरवा' नामक एक भील रहता था। उसकी स्त्री का नाम 'कालिका' था। जगली जानवरो को मार कर उनका मास खाना पुरूरवा भील का मुख्य काम था। एक बार उस वन मे 'सागरसेन' मुनि आ निकले, पुरूरवा ने दूर से उन्हे देखकर हिरण समझा और उनको मारने के लिए धनुप पर वाण चढाया। उसी समय उसकी स्त्री ने उसे रोक दिया और कहा कि वे तो एक तपस्वी मुनि हैं। पुरूरवा अपने अपराध को क्षमा कराने के लिए मुनि महाराज के पास पहुचा। मुनि महाराज ने आत्मा को उन्नत करने वाला धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर पुरूरवा ने शराब, मास, शहद खाना छोड दिया। आचरण सुधार लेने के कारण वह मरकर सौधर्म स्वर्ग मे देव हुआ। देव की आयु समाप्त करके वह भील का जीव भगवान ऋषभनाथ के ज्येष्ठ पु चक्रवर्ती भरत का 'मरीचि' नामका पुत्र हुआ।

जब भगवान ऋषभनाथ ने साधु दीक्षा ली थी तब मरीचि भी उनके साथ मुनि बन गया था, परन्तु कुछ समय पीछे वह तपश्चरण मे भ्रष्ट होकर

संन्यासी वन गया और उसने मिथ्यामत चलाया। कठोर तप करने से चौथे स्वर्ग का देव हुआ। फिर उसने क्रम से 'जटिल' नामक ब्राह्मण, सौधर्म स्वर्ग का देव, अग्निसहामित्र, सनत्कुमार स्वर्ग का देव, कौशिक, महेन्द्र स्वर्ग का देव, भारद्वाज ब्राह्मण हुआ फिर महेन्द्र स्वर्ग का देव हुआ। तदनन्तर त्रस स्थावर जीवो मे जन्म-मरण करता हुआ वही पुरूरवा भील का जीव ससार मे भ्रमण करता रहा। फिर शुभ कर्म के उदय से वेदपाठी ब्राह्मण हुआ। फिर क्रम से महेन्द्र स्वर्ग का देव, विश्वनन्दि राजा, महाशुक्र का देव, त्रिपृष्ट नारायण होकर सातवें नरक गया। वहा से निकल कर सिह हुआ।

सिह की पर्याय मे उसे अरिञ्जय नामक मुनि से उपदेश प्राप्त हुआ। वहां समाधि-मरण करके सिहध्वज देव हुआ। फिर क्रम से कनकध्वज विद्याधर कापिष्ठ स्वर्ग का देव, हरिषेण राजा, महाशुक्र का देव, प्रियमित्र राजा, सहस्त्रार स्वर्ग का देव हुआ। देव पर्याय समाप्त करके नन्दन नाम का राजा हुआ। उस भव मे उसने दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ का आराधन किया जिनसे तीर्थङ्कर प्रकृति का वन्ध किया। फिर समाधि-मरण करके सोलहवे स्वर्ग का इन्द्र हुआ।

तदनन्तर देव आयु समाप्त करके कुण्डलपुर के ज्ञातवशीय राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला (वैशाली के गणतत्र शासक राजा चेटक की पुत्री) की कोख से चौवीसवे तीर्थकर 'वर्द्धमान' के रूप मे जन्म लिया। यह समय भगवान् पार्श्वनाथ से २५० वर्ष पीछे का था। भगवान वर्द्धमान के वीर, महावीर, सन्मति, अतिवीर ये चार नाम प्रसिद्ध हुए। इनकी आयु ७२ वर्ष की थी ७ हाथ ऊचा शरीर था, सोने का-सा रग था। पैर में सिह का चिन्ह था। यौवन अवस्था आने पर कलिग के राजा जितशत्रु की सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या यशोदा के साथ विवाह करने की तैयारी जब राजा सिद्धार्थ करने लगे, तो भगवान् महावीर ने विवाह करना स्वीकार न किया, वाल-ब्रह्मचारी रहे। ३० वर्ष की आयु मे महाव्रती दीक्षा ली। १२ वर्ष तक तपश्चरण करने के वाद आप को केवल ज्ञान हुआ। फिर ३० वर्ष तक सब देशो मे विहार करके अहिसा धर्म का प्रचार किया। जिससे पशु यज्ञ होने वन्द हो गये। आपके इन्द्रभूति गौतम, वायुभूति, अग्नि-भूति, सुधर्मा, मौर्य, मडिपुत्र, मैत्रेय, अकम्प्य, आनन्द, अचल और प्रभाव ये ११ गणधर थे, चन्दना आदि आर्यिकाए थी। मातग यक्ष और सिद्धायनी यक्षिणी थी। सिंह का चिन्ह था। अन्त मे आपने पावापुरी से मुक्ति प्राप्त की। आपके समय मे सात्यकि नामक ११वा रुद्र हुआ॥ २४॥

कतिपय विशेष बातें

वीरमथ वर्द्धमान सन्मतिनाथ चहृति महावीरम् ।
हरिपितरर्थं संगम चारण धरण कृताभि दानमभिवन्दे ॥

अर्थ—शिशु समय मे भी १००८ कलशो के जल का अभिषेक सहन कर लेने के कारण इन्द्र ने अन्तिम तीर्थकर का वीर नाम रखा । उत्पन्न होते ही माता-पिता का वैभव, पराक्रम बढता गया इस कारण वीर प्रभु का दूसरा नाम 'वर्द्धमान' प्रसिद्ध हुआ । सञ्जय, विजय, नामक चारणऋद्धि धारी मुनियो का संशय बालक वीर प्रभु के दर्शन करते ही दूर हो गया । इस कारण उनका नाम 'सन्मति' प्रख्यात हुआ । भयानक सर्प से भयभीत न होने के कारण उनका नाम अतिवीर या महावीर प्रसिद्ध हुआ ।

श्यामौ पार्श्व सुपार्श्वौ द्वौ नीलाभौ नेमिसुव्रतौ ।
चन्द्र दन्तौ सितौ शोणौ पद्मपूज्यौ पदे-पदे ॥

अर्थ—सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ तीर्थकर हरित थे, मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ नीलवर्ण थे । चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त का शरीर सफेद था । पद्मप्रभु और वासुपूज्य का रग लाल था ।

शेषा षोडश हेमाभा कुमारा पञ्च दीक्षका ।
वासु पूज्यजिनो मल्लिर्नमि पार्श्वोऽथ सन्मति. ॥

शेष १६ तीर्थंकरो के शरीर का वर्ण सुवर्ण का सा था । वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ पार्श्वनाथ और महावीर ये पाच तीर्थकर बाल ब्रह्मचारी थे कुमार अवस्था मे ही इन्होने मुनि दीक्षा ली थी । (१)

---

(१) श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में भी पॉच तीर्थङ्कर बाल ब्रह्मचारी माने हुये हैं । आवश्यकनिर्युक्ति में लिखा है—

वीर अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिंच वास पुज्जंच ।
एए मुतूण जिणे अवससा आसि राजाणो ॥ २२१ ॥
रायकुलेसुवि जाता विसुद्धवंसेसु खत्तिय कुलेसु ।
णयइत्थि काभिसेया कुमार कालम्मि पव्वइया ॥ २२२ ॥

अर्थ—महावीर, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, मल्लिनाथ और वासुपूज्य ये पांच तीर्थङ्कर विशुद्ध क्षत्रिय राजकुल मे उत्पन्न हुए और कुमार अवस्था में ही मुनि दीक्षित हुए । इन्होंने न तो विवाह किया, न इनका राज्य-अभिषेक हुआ । शेष सभी तीर्थङ्करों का विवाह तथा राज्य अभिषेक हुआ पीछे उन्होंने प्रव्रज्या, अर्थात मुनि दीक्षा ली ।

'ण य इत्थि आभिसेया' का अर्थ टिप्पणी मे लिखा है 'स्त्री पाणिग्रहण इत्यादि'

वीरोनाथ कुलोद्भूत पार्श्वस्तूग्रवशत ।
हरिवशाम्बरार्कौ द्वौ नेमीशमुनिसुव्रतौ ॥
धर्मं कुन्थ्वरतीर्थेशा कुरुवशोद भवास्त्रय ।
इक्ष्वाकु कुलसभूता शेषा सप्तेतेशजिना ॥

भगवान महावीर नाथ-वश मे उत्पन्न हुए । उग्र वश मे भगवान पार्श्व-नाथ का जन्म हुआ । मुनिसुव्रतनाथ तथा नेमिनाथ हरिवश रूपी आकाश मे सूर्य के समान हुए । धर्मनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ तीर्थंकर कुरुवश मे हुए । शेष १७ तीर्थंकर इक्ष्वाकु वश मे हुए ।

वृषभस्य वासु पूज्यस्य नेमे पर्यङ्कबन्धत ।
कायोत्सर्ग स्थिताना तु सिद्धि शेषजिनेशिनाम् ॥

अर्थ—भगवान ऋषभनाथ, वासु पूज्य और नेमिनाथ की मुक्ति पर्यङ्क आसन (पद्मासन) से हुई । शेष समस्त तीर्थकरो को मुक्ति खड्गासन (खडे आसन) से प्राप्त हुई ।

तीर्थंकरों की अवगाहना

धणु तणु तगो तित्थे पचसय पण्णादपणूणमम ।
अट्ठसु पचसु अट्ठसु पासदुगं णवयसत्तकरा ॥८०४॥ त्रिलोक सार

अर्थ—श्री ऋषभनाथ आदि तीर्थङ्करो के शरीर की अवगाहना (ऊंचाई) क्रम से ५००, ४५०, ४००, ३५०, २५०, २००, १५०, १००, ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, ४०, ३५, ३०, २५, २०, १५, १०, धनुष, ९ हाथ, ७ हाथ है।

आयु-प्रमाण

तित्थाऊ चुलसीदी विहत्तरीसट्ठि नणसु दसहीण ।
विगि पुव्वलक्खयत्तौ चुलसीदि निसत्तरी सट्ठी ॥ ८०५ ॥
तीसदसएक्कलक्खा पणणवदी चदुरसीदिपणवण्ण ।
तीस दसिगिसहस्स सयबावत्तरि सया कमसो ॥८०६॥

त्रिलोक-सार

रहिता इत्यर्थः ।' यानी--स्त्री परिणयना और राज्य अभिषेक से रहित उक्त ५ तीर्थङ्कर थे ।

इससे यह भी सिद्ध होता है भगवान मल्लिनाथ पुरुप थे अन्यथा उनके 'लिये 'पुरुष पाणिग्रहण रहिता' वाक्य का प्रयोग होता । अन्य श्वेताम्बरीय आगम ग्रन्थों में भी ५ तीर्थङ्कर बाल ब्रह्मचारी माने गये हैं ।

अर्थ—८४ लाख, ७२ लाख, ६० लाख, ५० लाख, ४० लाख, ३० लाख, १० लाख, वर्ष, ६५ हजार, ८४ हजार, ५५ हजार, ३० हजार, १० हजार, १ हजार, १०० और ७२ वर्ष की आयु क्रम से श्री ऋषभनाथ आदि तीर्थङ्करो की है।

तदिये तुरिसे काले तिवास अडमास पक्खपरिसेसे।
वसहा वीरो सिद्धो कक्किमरोछट्ट काल पारओ ॥

यानी—तीसरे [सुषमा दु षमा] मे ३ वर्ष ८ मास १५ दिन शेष रहने पर श्री ऋषभनाथ मुक्त हुए। चौथे काल [दु षमा सुषमा] मे तीन वर्ष ८ मास १५ दिन शेष रहने पर भगवान महावीर मुक्त हुए। पचम काल दु षमा मे ३ वर्ष ८ मास १५ दिन बाकी रहने पर अ तिम कल्की का मरण होवेगा फिर छटा काल प्रारम्भ होवेगा।

भगवान महावीर के पश्चात्

अतिम तीर्थंकर श्री वीर प्रभु जिस दिन मुक्त हुए उसी दिन श्री गौतम गणधर को केवल ज्ञान हुआ। जब गौतम गणधर सिद्ध हुए तब सुधर्मा गणधर को केवल ज्ञान हुआ। जब सुधर्मा स्वामी मुक्त हुए तब श्री जम्बूस्वामी को केवल ज्ञान हुआ। जम्बूस्वामी के मुक्त हो जाने पर अनुबद्ध (क्रमसे, लगातार) केवल ज्ञानी और कोई नही हुआ। गौतमादिक केवलियो के धर्म प्रवर्तन का काल पिण्ड रूप से ६२ वर्ष है।

अननुबद्ध अतिम केवली श्रीधर, कुण्डलगिरि से मुक्त हुए है। चारण ऋद्धिधारक मुनियो मे अतिम ऋषि सुपार्श्वचन्द्र हुए है। प्रज्ञाश्रमणो मे अतिम वज्रयश और अवधिज्ञानियो मे अतिम ऋषि श्री नामक हुए है। मुकुटबद्ध राजाओ मे जिन दीक्षा लेने वाला अन्तिम राजा चन्द्रगुप्त मौर्य हुआ है।

भगवान महावीर के मुक्त हो जाने पर श्री नदी, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन तथा भद्रबाहु ये पाच द्वादशाग (११ अग १४ पूर्वो के) वेत्ता श्रुत केवली हुए है। इनका समुदित काल १०० वर्ष है। भद्रबाहु आचार्य के बाद श्रुतकेवली कोई नही हुआ।

श्री विशाख, प्रोष्ठित क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गगदेव और सुधर्म ये ११ मुनि ११ अग, ६ पूर्वधारी हुए हैं। इनका समुदित समय १८३ वर्ष है।

तदनन्तर नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कस ये ५ आचार्य ग्यारह अगधारक हुए। इनका समुदित काल २२० वर्ष है।

तत्पश्चात् सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, लोहार्य ये चार आचार्य आचारांग के पूर्णवेत्ता तथा शेष ११ अग १४ पूर्वों के एकदेश (अपूर्ण) वेत्ता (जानकार) थे। इन सबका समुदित काल ११८ वर्ष है। इस प्रकार ६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ वर्ष हुए। इसके १०८२ वर्ष पीछे इस 'शास्त्रसार समुच्चय' ग्रन्थ की रचना हुई।

धार्मिक प्रवृत्ति के कारणभूत भगवान महावीर का श्रुततीर्थ (सिद्धात ज्ञान) २०३१७ (बीस हजार तीन सौ सत्रह) वर्ष तक चलता रहेगा फिर व्युच्छिन्न (लुप्त) हो जायगा। इस समय मे मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका रूप चातुर्वर्ण्य संघ जन्म लेता रहेगा परन्तु जनता क्रोधी, अभिमानी, पापी, अविनीत, दुर्बुद्धि, भयातुर, ईर्ष्यालु होती जायगी।

शक राजा

पणछस्सय वस्स पणमासजुदं गमिय वीरणिम्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहिम सगमास ॥८५०॥ त्रिलोकसार

अर्थ—भगवान महावीर के निर्वाण होने के पश्चात् ६०५ वर्ष ५ मास बीत जाने पर शक राजा हुआ। उस शक राजा से ३९४ वर्ष ७ मास पीछे कल्की राजा हुआ।

अथवा तिलोयपण्णत्ती के मतानुसार—

वीरजिणे सिद्धिगदे चउसदइगिसट्ठि वास परियाणे।
कालम्मि अदिक्कंते उप्पण्णो एत्थ सकराओ ॥१४९६॥

अर्थ—श्री वीर जिनेश्वर के मुक्त हो जाने पर ४६१ वर्ष पीछे शक राजा हुआ।

शक राजा की उत्पत्ति के समय के विषय मे काष्ठासंघ, द्रविड सघ तथा श्वेताम्बरीय ग्रन्थकारो का विभिन्न मत है।

वीसुत्तरवाससदे विसओ वासाणि सोहिऊण तदो।
इगिवीस सहस्सेहि भजिदे आऊण खयवडी ॥१५००॥
सकणिवास जुदाण चउसदइगिसठ्ठ वास पहुदीणं।
दसजुददोसयहरिदे लद्ध सोहेज्ज विडणसट्ठी ॥१५०१॥
तिलोय पण्णत्ती।

अर्थ—पचम काल दुषमा २१ हजार वर्ष का है। उसमे मनुष्यो की उत्कृष्ट आयु १२० वर्ष की तथा जघन्य आयु २० वर्ष की है। अत उत्कृष्ट आयु १२० वर्ष मे से जघन्य आयु २० वर्ष घटाकर २१ हजार मे भाग

देने पर (१२० − २०—२१००० = २१०) आयु की हानि वृद्धि का प्रमाण होता है।

शक राजा के वर्षो से सहित ५६१ वर्ष आदि को २१० से भाग देने पर जो लब्धि आवे उसको १२० मे से कम करने पर जो शेष रहे इतना उस राजा के समय मे प्रवर्तमान उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है। यह युक्ति अन्य सब राजाओ मे से प्रत्येक के समय मे भी जाननी चाहिये।

× हुण्डावसर्पिणी के कारण कुछ हेर फेर हो जाता है।

६०+१५५+४०+३०+६०+१००+४०+२४२+२३१+४२ = १००० वर्ष।

आचारागधरो के पश्चात् दो सौ पचहत्तर वर्षों के व्यतीत होने पर कल्की नरपति को पट्ट बाधा गया था।

६८३+२७५+४२ = १००० वर्ष।

तदनन्तर वह कल्की प्रयत्न पूर्वक अपने योग्य जनपदो को सिद्ध करके लोभ को प्राप्त होता हुआ मुनियो के आहार मे से भी अग्रपिण्ड को शुल्क रूप मे मागने लगा।

तब श्रमण (मुनि) अग्रपिण्ड को देकर और 'यह अन्तरायो का काल है', ऐसा समझकर (निराहार) चले गये। उस समय उनमे से किसी एक को अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया।

इसके पश्चात् किसी असुरदेव ने अवधि ज्ञान से मुनिगणों के उपसर्ग को जानकर और धर्म का द्रोही मानकर उस कल्की को मार दिया।

तब अजितजय नामक उस कल्की का पुत्र 'रक्षा करो' इस प्रकार कह कर उस देव के चरणो मे गिर पडा। तब वह देव 'धर्म पूर्वक राज्य करो' इस प्रकार कह कर उसकी रक्षा मे प्रवृत्त हुआ।

इसके पश्चात् दो वर्ष तक लोगो मे समीचीन धर्म की प्रवृत्ति रही। फिर क्रमश काल के माहात्म्य से वह प्रतिदिन हीन होती चली गई।

इसी प्रकार पचमकाल मे एक १०००, एक १००० वर्ष बीतने पर एक कल्की तथा पाच सौ ५०० पाच सौ ५०० वर्ष बीतने पर एक-एक उपकल्की होता रहता है।

प्रत्येक कल्की के प्रति एक एक दु षमाकालवर्ती साधु को अवधिज्ञान प्राप्त होता है और उसके समय मे चातुर्वर्ण्य सघ भी अल्प हो जाते है।

उस समय पूर्व मे बांधे हुए पापो के उदय से चाण्डाल, शबर, श्वपच,

पुलिन्न, नाहल (म्लेच्छविशेष) और किरात प्रभृति, तथा दीन, अनाथ, क्रूर और जो नाना प्रकार की व्याधि एवं वेदना से युक्त है, हाथो मे खप्पर तथा भिक्षा पात्र को लिए हुए है, और देशान्तर गमन से सतप्त है, ऐसे बहुत से मनुष्य दीखते है।

इस प्रकार दु षमाकाल मे धर्म, आयु और ऊचाई आदि कम होती जाती है। फिर अन्त मे विषम स्वभाव वाला इक्कीसवा कल्की उत्पन्न होता है।

उसके समय मे वीरागज नामक एक मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका तथा अग्निदत्त (अग्निल) और पगुश्री नामक श्रावक-युगल (श्रावक-श्राविका) होते हैं।

वह कल्की आज्ञा से अपने योग्य जनपदो को सिद्ध करके मन्त्रिवरो से कहता है कि ऐसा कोई पुरुष तो नही है जो मेरे वश मे न हो ?

तब मंत्री निवेदन करते है कि हे स्वामिन् ! एक मुनि आप के वश मे नही है। तब कल्की कहता है कि कहो वह अविनीत मुनि कौन है ? इसके उत्तर मे मत्री कहते है कि हे स्वामिन् ! सकल अहिसाव्रत का आधारभूत वह मुनि शरीर की स्थिति के निमित्त दूसरो के घर द्वारो पर काय दिखलाकर मध्याह्नकाल मे अपने हाथो मे विघ्नरहित शुद्ध भोजन ग्रहण करता है।

इस प्रकार मत्री के वचन सुनकर वह कल्की कहता है कि वह अहिंसा-व्रत का धारी पापी कहा जाता है, यह तुम स्वय सर्वप्रकार से पता लगाओ। उस आत्मघाती मुनि के प्रथम पिण्ड को शुल्क के रूप मे ग्रहण करो। तत्पश्चात् (कल्की की आज्ञानुसार) प्रथम पिण्ड के मागे जाने पर मुनीन्द्र तुरन्त उसे देकर और अन्तराय जान कर वापिस चले जाते हैं तथा अवधि ज्ञान को प्राप्त करते है। प्रसन्नचित्त होते हुए अपने सघ को कहते है कि अब दु षमाकाल का अन्त आ चुका है, तुम्हारी और हमारी तीन दिन की आयु शेष है और यह अन्तिम कल्की है।

तब वे चारो जन चार प्रकार के आहार और परिग्रहादिक को जन्म-पर्यन्त छोडकर सन्यास को ग्रहण करेगे।

वे सब कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष के अन्त मे अर्थात् अमावस्या के दिन सूर्य के स्वाती नक्षत्र के ऊपर उदित रहने पर सन्यास ले करके, समाधिमरण को प्राप्त करेगे।

सोहम्मे जायते कत्तिय अमवास सादि पुव्कण्हे।
इगिजलहिठिदी मुनिणो सेसतिए साहिय पल्व ॥८६०॥

अर्थ–कार्तिककी अमावस्या के पूर्वाण्हमे वीर मरण करके वे मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका, सौधर्म स्वर्ग मे उत्पन्न होंगे। वहां मुनि की एक सागर और शेष तीनो की आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण होगी।

तव्वासरस्स आदीमज्झते धम्मराय अग्गीणं।
णासो तत्तो मण्डसा णागा मच्छादि आहारा ॥८६१॥

यानी–उस दिन प्रातः धर्म का, दोपहर को राजा का तथा साय (शाम को) अग्नि का नाश हो जावेगा। मनुष्य नगे फिरने लगेंगे और मछली आदि खाकर भूख मिटावेंगे।

योग्गल अइसक्खादो जलणे धम्मे णिरासरण हुदे।
असुरवइणा णरिंदे सयलो लोओ हवे अंन्धो ॥८३२॥

अर्थ–उस समय लकडी आदि ज्वलनशील पदार्थ अत्यन्त रूखे होने के कारण अग्नि नही जलेगी। धार्मिक जन न रहने से धर्म निराश्रित हो जाने से नष्ट हो जावेगा और असुर इन्द्र द्वारा अन्यायी राजा का मरण हो जाने पर समस्त जनता पथभ्रष्ट (अंधी) हो जावेगी।

एत्थ मुदाणिरयदुग णिरयतिरक्खादु जणाणमेत्थ हवे।
थोवजलदाइमेहा भू णिस्सारा णरा तिव्वा ॥८६३॥ त्रिलोकसार।

अर्थ—उस समय मरकर जीव पहले दूसरे नरक मे जावेंगे और नरक पशु से निकले हुए जीव ही यहां उत्पन्न होवेंगे। बादल थोड़ा जल बरसावेंगे, पृथ्वी निस्सार हो जावेगी और मनुष्य तीव्र कषायी हो जावेंगे। अस्तु

येवमिगिवीस कक्की उवकक्की तेत्तिया य धम्माण।
सम्मंति धम्मदोहा जलणिहि उवमाण आइजुदा ॥१५३४॥
–तिलोय पण्णत्ती।

इस प्रकार धर्म द्रोही २१ कल्की और २१ उपकल्की मर कर पहले नरक मे पैदा होते है वहा एक सागर की उनकी आयु होती है।

चतुस्त्रिंशदतिशया. ॥६॥

अर्थ–तीर्थंकरो के ३४ अतिशय होते हैं।

असाधारण व्यक्तियो से जो विलक्षण अद्भुत बाते होती हैं उन्हे अतिशय कहते है। ऐसे अतिशय तीर्थंकरो के जन्म के समय १० होते हैं और केवल ज्ञान हो जाने के अनन्तर १० अतिशय स्वयं होते हैं तथा १४ अतिशय देवो द्वारा सम्पन्न होते है। इस प्रकार समस्त ३४ अतिशय होते हैं।

जन्म के १० अतिशय

१ तीर्थंकर के शरीर मे पसीना न आना, २ मलमूत्र न होना, ३ दूध के समान सफेद खून होना, ४ समचतुरस्र सस्थान (शरीर के समस्त अग उपाग ठीक होना, कोई भी अग उपाग छोटा या बडा न होना), ५ वज्रऋषभनाराच संहनन (शरीर की हड्डी, उनके जोड और उनकी कीले वज्र के समान दृढ होना), ६ अत्यन्त सुन्दरता, ७ मिष्ट परमप्रिय भाषा, ८ शरीर मे सुगन्धि, ९ अतुल्य बल और १० शरीर मे १००८ शुभ लक्षण। ये १० अतिशय तीर्थंकर मे जन्म से ही होते है।

केवल ज्ञान के समय के १० अतिशय

१ तीर्थंकर को केवल ज्ञान हो जाने पर उनके चारो ओर १००-१०० योजन (४००-४०० कोस) तक सुकाल होता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल नही होता, २ आकाश मे (पृथ्वी से ऊपर अधर) चलना, ३ एक मुख होते हुए भी उसका चारो ओर दिखाई देना, ४ उनके शरीर मे स्वेद नही रहता, न उनके शरीर से किसी जीव का घात होता है, ५ उन पर किसी भी देव, मनुष्य, पशु तथा अचेतन पदार्थ द्वारा उपसर्ग नही होता, ६ भूख नही लगती, अत भोजन नही करते, ७ समस्त ज्ञान विद्याओ का प्राप्त होना, ८ नाखून और बालो का न बढना, ९ नेत्र आधे खुले रहना, पलके न झपकना, १० शरीर की छाया न पडना।

देवकृत १४ अतिशय

१ अर्द्धमागधी भाषा (तीर्थंकर की निरक्षरी ध्वनि को मगध देवो द्वारा समस्त श्रोताजनों की भाषा रूप कर देना), २ आस पास के जाति-विरोधी जीवो का भी मित्र भाव से रहना, ३ समस्त दिशाओ का धुआ, धुन्ध, धूल से रहित होकर निर्मल होना, ४ आकाश का साफ होना, ५ तीर्थंकर के निकटवर्ती वृक्षो पर सब ऋतुओ के फल फूल आ जाना, ६ पृथ्वी का दर्पण की तरह साफ होना, ७ सुगन्धित वायु चलना, ८ सुगन्धित जल वर्षा, ९ चलते समय भगवान् के चरणो के नीचे आगे पीछे तथा चारो ओर ७-७ स्वर्ण कमलो (४९) का बनते जाना, १० आकाश मे जय जयकार शब्द होना, ११ समस्त जीवो का आनन्दित होना, १२ भगवान के आगे १००० आरो का धर्म चक्र चलाना, १३ कलश, दर्पण, छत्र, चमर, ध्वजा, पखा, स्वास्तिक, झारी इन आठ मगल द्रव्यो का साथ रहना। १४ पृथ्वी पर काटे, ककडी आदि पैर मे चुभने वाले पदार्थ न रहना। ये १४ अतिशय केवल ज्ञान होने के बाद देवो द्वारा होते है।

पंच महाकल्याणानि ॥ १६ ॥

तीर्थंकरो के ५ महाकल्याणक होते हैं (१) गर्भावतरण, (२) जन्माभिषेक, (३) निष्क्रमण (दीक्षा ग्रहण), (४) केवलज्ञान और (५) निर्वाण।

सव्वट्ठसिद्धिठाणा अवइण्णा। उसहधम्मपहुदितिया।
विजयाणंदणअजिया चंदप्पहवइजयंता दु ॥५२२॥
अपराजिताभिधाणा अरणमिमल्लीओ णेमिणाहोह।
सुमई जयंतठाणा आरणजुगलाय सुविहिसीलसया ॥५२३॥
पुप्फोत्तराभिधाणा अणंतसेयंसवड्ढमाणजिणा।
विमला य सहाराणक्खाणकप्पा य सुव्वदापासा ॥५२४॥
हेट्ठियमज्झिमउवरिम गेवज्जादागदा महासत्ता।
संभवसुपासपउमा महसुक्का वासपुज्जजिणे ॥५२५॥
(चौ० अ०) तिलोयपण्णत्ति

समस्त देव इन्द्र जो देखने वाली जनता को तथा अपने आपको भी कल्याण कारक (पुण्य वन्ध करने वाला) महान उत्सव करते हैं वह 'कल्याणक' कहलाता है। ऐसे महान उत्सव तीर्थकरो के जीवन मे ५ बार होते हैं [१] गर्भ मे आते समय, [२] जन्म के समय, [६] महाव्रती दीक्षा लेते समय, [४] केवल ज्ञान हो जाने पर तथा [५] मोक्ष हो जाने के समय।

तीर्थंकर के अपनी माता के गर्भ मे आने से ६ मास पहले सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है। तव वह अवधिज्ञान से ६ मास पश्चात् होने वाले तीर्थंकर के गर्भावतरण को जानकर श्री. ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि ५६ कुमारिका [आजन्म कुमारी रहने वाली] देवियो को तीर्थंकर की माता का गर्भशोधन करने के लिए भेजता है तथा कुबेर को तीर्थंकर के माता पिता के घर पर प्रतिदिन तीन समय साढे तीन करोड रत्न वरसने की आज्ञा देता है जोकि जन्म होने तक [१५ मास] बरसते रहते हैं। छ मास पीछे जब तीर्थंकर माता के गर्भ मे आते है तब माता को रात्रि के अन्तिम पहर मे निम्नलिखित १६ स्वप्न दिखाई देते हैं—

१ हाथी, २ बैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ दो माला, ६ चन्द्र, ७ सूर्य, ८ दो मछलिया, ९ जल से भरे हुए दो सुवर्ण कलश, १० कमलो से भरा हुआ तालाव ११ समुद्र १२ सिंहासन १३ देव विमान १४ धरणीन्द्र का भवन, १५ रत्नो का ढेर, १६ अग्नि।

किस किस तीर्थंकर का गर्भावतरण किस किस स्थान से हुआ अब उसे बतलाते है—

अर्थ—ऋषभनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ सर्वार्थसिद्धि से चयकर माता के गर्भ मे आये । अभिनन्दननाथ, अजितनाथ विजय विमान से, चन्द्रप्रभ वैजयन्त से, अरनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, और नेमिनाथ अपराजित विमान से सुमतिनाथ, जयन्त विमान से, पुष्पदन्त और शीतलनाथ क्रमश आरणयुगल से, अनन्तनाथ, श्रेयासनाथ, वर्द्धमान पुष्पोत्तर विमान से, विमलनाथ सतार स्वर्ग से, मुनिसुव्रतनाथ आनत स्वर्ग से, पार्श्वनाथ प्राणत स्वर्ग से, सभवनाथ अधो ग्रेवेयक से, सुपार्श्वनाथ मध्यम ग्रेवेयक से, पद्मप्रभ ऊर्ध्व ग्रेवेयक से तथा वासुपूज्य भगवान महा शुक्र विमान से अवतीर्ण हुए।

गर्भावतरण की तिथि

ऋषभनाथ तीर्थङ्कर अयोध्या नगरी मे मरुदेवी माता के गर्भ मे आषाढ कृष्णा द्वितीया उत्तराषाढा नक्षत्र मे आये ।

२ ज्येष्ठ मास अमावस्या को रोहिणी नक्षत्र मे अजितनाथ तीथङ्कर गर्भ मे आये ।

३ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को मगसिर नक्षत्र मे सम्भवनाथ तीर्थङ्कर का गर्भावतरण हुआ ।

४ बैसाख सुदी षष्ठी विशाखा नक्षत्र मे अभिनन्दन तीर्थङ्कर का गर्भ कल्याण हुआ ।

५ श्रावण सुदी द्वितीया मघा नक्षत्र मे सुमतिनाथ भगवान् गर्भ मे आये ।

६ माघ सुदी एकादशी चित्रा नक्षत्र मे पद्मनाथ तीर्थङ्कर का गर्भ कल्याणक हुआ ।

७ भाद्र पद शुक्ल अष्टमी विशाखा नक्षत्र मे सुपार्श्वनाथ तीर्थङ्कर का गर्भ कल्याणक हुआ ।

८ चैत्र सुदी पचमी ज्येष्ठा नक्षत्र मे चन्द्रप्रभु भगवान का गर्भ कल्याणक हुआ ।

९ फाल्गुन सुदी नवमी मूल नक्षत्र मे पुष्पदन्त भगवान गर्भ मे आये ।

१० चैत्र कृष्णा अष्टमी पूर्वाषाढ नक्षत्र मे शीतलनाथ तीर्थङ्कर का गर्भ कल्याणक हुआ ।

११ ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी श्रवण नक्षत्र मे श्रेयासनाथ तीर्थङ्कर का गर्भ कल्याणक हुआ ।

१२ आषाढ कृष्णा षष्ठी शतभिषा नक्षत्र मे वासुपूज्य भगवान का गर्भ कल्याणक हुआ।

१३ ज्येष्ठ सुदी दशमी उत्तरा भाद्रपद मे विमलनाथ भगवान का गर्भावतरण हुआ।

१४ कार्तिक सुदी प्रतिपदा मे अनन्तनाथ भगवान का गर्भावतरण हुआ।

१५ बैशाख कृष्णा त्रयोदशी के दिन रेवती नक्षत्र मे धर्मनाथ भगवान का गर्भावतरण हुआ।

१६ भाद्रपद सुदी सप्तमी भरणी नक्षत्र मे शान्तिनाथ भगवान का गर्भ कल्याणक हुआ।

१७ श्रावण सुदी दशमी कृतिका नक्षत्र मे श्री कुन्थुनाथ भगवान का गर्भावतरण हुआ।

१८ फाल्गुन शुक्ला तृतीया रेवती नक्षत्र मे अरनाथ भगवान गर्भ मे आये।

१९ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा अश्विनी नक्षत्र मे मल्लिनाथ भगवान् गर्भ मे आये।

२० श्रावण सुदी द्वितीया को श्रवण नक्षत्र मे मुनिसुव्रत तीर्थङ्कर का गर्भावतरण हुआ।

२१ आसोज वदी द्वितीया अश्विनी नक्षत्र मे नमिनाथ तीर्थङ्कर का गर्भावतरण हुआ।

२२ कार्तिक सुदी षष्ठी उत्तराषाढ़ नक्षत्र मे नेमिनाथ तीर्थङ्कर का गर्भावतरण हुआ।

२३ बैशाख कृष्णा द्वितीया, विशाखा नक्षत्रमे श्री पार्श्वनाथ भगवान का गर्भावतरण हुआ।

२४ आषाढ़ सुदी षष्ठी उत्तरा नक्षत्र मे महावीर भगवान का गर्भावतरण हुआ।

जन्मतिथि

ऋषभनाथ तीर्थंकर अयोध्या नगरी मे, मरुदेवी माता, एवं नाभिराय पिता से, चैत्र कृष्णा नवमी के दिन, उत्तराषाढा नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

अजित जिनेन्द्र साकेत नगरी मे पिता जितशत्रु एव माता विजया से माघ के शुक्लपक्ष मे दशमी के दिन रोहिणी नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

संभवनाथ श्रावस्ती नगरी मे पिता जितगिरी और माता सुसेना से मगासिर मास की पूर्णमासी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

अभिनन्दन स्वामी साकेतपुरी मे पिता सवर और माता सिद्धार्थ से माघशुक्ला द्वादशी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

सुमतिनाथ तीर्थंकर साकेतपुरी मे पिता मेघप्रभु और माता मगला से श्रावणशुक्ला एकादशी को मघा नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

पद्मप्रभु तीर्थंकर ने कौशाम्वी पुरी मे पिता घरण और माता सुसीमा से आसोज कृष्णा त्रयोदशी के दिन चित्रा नक्षत्र मे अवतार लिया।

सुपार्श्वदेव वाराणसी (बनारस) नगरी मे माता पृथ्वी और पिता सुप्रतिष्ठ से ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन विशाखा नक्षत्र मे उत्पन्न हुये।

चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र चन्द्रपुरी मे पिता महासेन और माता लक्ष्मीमती (लक्ष्मणा) से पौपकृष्णा एकादशी को अनुराधा नक्षत्र मे अवतीर्ण हुए।

भगवान् पुष्पदन्त काकन्दी नगरी मे माता रामा और पिता सुग्रीव से मगसिर शुक्ला प्रतिपद् के दिन मूल नक्षत्र मे उत्पन्न हुये।

शीतलनाथ स्वामी भद्दलपुर मे [भद्रिकापुरी मे] पिता दृढरथ और माता नन्दा से माघ के कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

भगवान् श्रेयास सिंहपुरी मे पिता विष्णु नरेन्द्र और माता वेणुदेवी से फाल्गुन शुक्ला एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र मे अवतीर्ण हुए।

वासुपूज्य भगवान् चम्पा नगरी मे पिता वसुपूज्य राजा और माता विजया से फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी के दिन विशाखा नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

भगवान् विमलनाथ कपिलापुरी मे पिता कृतवर्मा और माता जयश्यामा से माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

भगवान अनन्तनाथ अयोध्यापुरी मे माता सर्वयशा और पिता सिंहसेन से ज्येष्ठकृष्णा द्वादशी को रेवती नक्षत्र मे अवतीर्ण हुए।

धर्मनाथ तीर्थंकर रत्नपुर मे पिता भानु नरेन्द्र और माता सुव्रता से माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन पुष्य नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

भगवान् शान्तिनाथ हस्तिनापुर मे माता ऐरा और पिता विश्वसेन से ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन भरणी नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

कुन्थुनाथ जिनेन्द्र हस्तिनापुर मे माता श्रीमती और पिता सूर्यसेन से वैशाख शुक्ला प्रतिपदा को कृतिका नक्षत्र मे अवतीर्ण हुए।

भगवान् अरनाथ हस्तिनापुर मे माता मित्रा और पिता सुदर्शन राजा से मगसिर शुक्ला चतुर्दशी के दिन रोहिणी नक्षत्र मे अवतीर्ण हुए

मल्लिनाथ जिनेन्द्र मिथिलापुरी मे माता प्रभावती और पिता कुम्भ से मगसिर शुक्ला एकादशी को अश्विनी नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

भगवान मुनिसुव्रत राजगृह नगर मे माता पद्म और पिता सुमित्र राजा से आसोज शुक्ला द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

नमिनाथ स्वामी मिथिलापुरी मे पिता विजयनरेन्द्र और माता वप्रिला से आषाढ शुक्ला दशमी के दिन अश्विनी नक्षत्र मे अवतीर्ण हुए।

नेमि जिनेन्द्र शौरीपुर मे माता शिवदेवी और पिता समुद्र विजय से बैशाख शुक्ला त्रयोदशी को चित्रा नक्षत्र मे अवतीर्ण हुए।

भगवान पार्श्वनाथ वाराणसी नगरी मे पिता अश्वसेन और माता वर्मिला [वामा] से पौष कृष्णा एकादशी के दिन विशाखा नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

भगवान महावीर कुण्डलपुर मे पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

तीर्थंकरों का वंश वर्णन

धर्मनाथ, अरनाथ और कुथुनाथ ये तीन तीर्थंकर कुरुवश मे उत्पन्न हुये। महावीर और पार्श्वनाथ क्रम से नाथ और उग्र वश मे मुनिसुव्रत और नेमिनाथ यादव वश [हरिवश] मे तथा अवशिष्ठ तीर्थंकर इक्ष्वाकु कुल मे उत्पन्न हुए।

भव्य जीवो के पुण्योदय से भरतक्षेत्र मे अवतीर्ण हुये इन चौबीस तीर्थंकरों को जो भव्य जीव मन, वचन तथा कार्य से नमस्कार करते है, वे मोक्ष सुख को पाते हैं।

केवल ज्ञानरूप वनस्पति के कद और तीर्थ के प्रवर्तक चौबीस जिनेन्द्रो का जो भक्ति भाव से प्रवृत्त होकर अभिनन्दन करता है, उसको इन्द्र का पट्ट बाधा जाता है।

तीर्थंकरों के जन्म काल का वर्णन

सुषमदु षमा नामक काल मे चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष आठ मास और एक पक्ष शेष रहने पर भगवान ऋषभदेव का जन्म हुआ भगवान ऋषभदेव की उत्पत्ति के पश्चात् पचास करोड सागरोपम और बारह लाख वर्ष पूर्व के बीत जाने पर अजितनाथ तीर्थंकर का अवतार हुआ।

अजितनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् बारह लाख वर्ष पूर्व सहित तीस करोड़ सागरोपमो के बीत जाने पर भगवान सभवनाथ की उत्पत्ति हुई।

संभव जिनेन्द्र की उत्पत्ति के पश्चात् दस लाख पूर्व सहित दस लाख करोड सागरोपमो के बीत जाने पर अभिनन्दन भगवान ने अवतार लिया।

अभिनन्दन स्वामी की उत्पत्ति के पश्चात् दस लाख पूर्व सहित नौ लाख करोड सागरोपम के बीत जाने पर सुमति जिनेन्द्र की उत्पत्ति हुई।

सुमतिनाथ तीर्थंकर के जन्म के पश्चात् दस लाख पूर्व सहित नब्बे हजार करोड सागरोपमो के बीत जाने पर पद्मप्रभु का जन्म हुआ।

पद्मप्रभु के जन्म के पश्चात् दस लाख पूर्व सहित नौ हजार करोड सागरोपमो का समय अतिक्रमण होने पर भगवान सुपार्श्वनाथ का जन्म हुआ।

सुपार्श्वनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् दस लाख पूर्व सहित सौ सागरोपमो के बीत जाने पर चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र की उत्पत्ति हुई।

चन्द्रप्रभु की उत्पत्ति से आठ लाख पूर्व सहित नब्बे करोड सागरोपमो का विच्छेद होने पर भगवान पुष्पदन्त की उत्पत्ति हुई।

पुष्पदन्त की उत्पत्ति के अनन्तर एक लाख पूर्व सहित नौ करोड सागरोपमो के बीतने पर शीतलनाथ तीर्थंकर ने जन्म लिया।

शीतलनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् सौ सागरोपम और एक करोड़ पचास लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व सहित करोड सागरोपमो के अतिक्रान्त होने पर श्रेयास जिनेन्द्र उत्पन्न हुए।

भगवान श्रेयास की उत्पत्ति के पश्चात् बारह लाख वर्ष सहित चौवन सागरोपमो के व्यतीत हो जाने पर वासुपूज्य तीर्थंकर ने अवतार लिया।

वासुपूज्य भगवान की उत्पत्ति के अनन्तर बारह लाख वर्ष अधिक तीस सागरोपमो के व्ययीत हो जाने पर भगवान अनन्तनाथ उत्पन्न हुए।

अनन्त स्वामी के जन्म के पश्चात् बीस लाख वर्ष अधिक चार सागरोपमो के बीतने पर धर्मनाथ प्रभु ने जन्म लिया।

धर्मनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् पौन पल्य कम और नौ लाख वर्ष सहित तीन सागरोपमो के बीत जाने पर शान्तिनाथ भगवान ने जन्म लिया।

भगवान शान्तिनाथ के जन्म के पश्चात् पाँच हजार वर्ष अधिक आधे पल्य बाद कुन्थुनाथ जिनेन्द्र उत्पन्न हुए।

कुन्थुनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् ग्यारह हजार कम एक हजार करोड वर्ष से रहित पाव पल्य के बीतने पर अर जिनेन्द्र उत्पन्न हुए।

अर जिनेन्द्र की उत्पत्ति के पश्चात् उनतीस हजार अधिक एक हजार करोड़ वर्षों के बीतने पर मल्लिनाथ भगवान का जन्म हुआ।

भगवान् मल्लिनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् पच्चीस हजार अधिक अर्थात् चौवन लाख वर्षों के बीत जाने पर भगवान सुव्रत जिनेन्द्र की उत्पत्ति हुई।

भगवान् सुव्रत की उत्पत्ति के पश्चात् बीस हजार अधिक छ लाख वर्ष प्रमाण काल के व्यतीत होने पर नमिनाथ जिनेन्द्र का जन्म हुआ।

नमिनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् नौ हजार अधिक पाच लाख वर्षो के व्यतीत होने पर भगवान् नेमिनाथ की उत्पत्ति हुई।

नेमिनाथ तीर्थङ्कर की उत्पत्ति के पश्चात् चौरासी हजार छ सौ पचास वर्षों के व्यतीत होने पर भगवान् पार्श्वनाथ की उत्पत्ति हुई।

भगवान् पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् दो सौ अठत्तर वर्षों के बीत जाने पर वर्द्धमान तीर्थङ्कर का जन्म हुआ।

लोगो को आनन्दित करने वाला यह तीर्थंकरो के अन्तराल काल का प्रमाण उनकी कर्मरूपी अर्गला को नष्ट करके मोक्षपुरी के कपाट को उद्घाटित करता है।

जिस समय तीर्थंकर का जन्म होता है उस समय विना बजाये स्वयं शख भेरियो से भवन वासी देव और व्यतर देव नगाडो की ध्वनि से, ज्योतिष देव सिंह नाद की ध्वनि से तथा कल्पवासी देव घण्टा नादो से भगवान का जन्म समय समझ कर अपने-अपने यहाँ और भी अनेक बाजे बजाते हैं। कल्पवासी आदि देव तीर्थंकर का जन्म समझ कर उसी समय अपने सिंहासन से उतर कर आगे सात कदम चल कर सम्पूर्ण अगोपांग झुकाकर नमस्कार करते है। इसके बाद सभी देव अपने स्थान से चलकर तीर्थंकर की जन्म भूमि मे आते है। और वालक रूप तीर्थंकर को ऐरावत हाथी पर बैठा कर महामेरु पर्वत पर ले जाते हैं वहा पर पान्डुक शिला मे विराजमान करके देवो द्वारा हाथो-हाथ क्षीर समुद्र से लाये गये जल से अभिषेक करते है। इस प्रकार देवेन्द्र ने जन्माभिषेक किया और कृत्य कृत्य हुआ। भगवान के शरीर मे नि स्वेद (पसीना न आना) आदि १० अतिशय होते हैं।

गाथा—

> धम्मार कुन्थु कुदवस्त जाता। साहोग्गवासा सुबवरि पासो।
> सुसुम्भ दोजादव वंश जम्मा। नेमीय इक्खाकुल विशेषे॥

अर्थ—धर्मनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ ये तीन कुरु वश मे उत्पन्न हुए सुपार्श्व और पार्श्व नाथ जी नाथ वश मे उत्पन्न हुए। नमि और नेमि नाथ यादव वश मे उत्पन्न हुए। शेष इक्ष्वाकु वंश मे उत्पन्न हुए।

दीक्षा कल्याणक

तीर्थंकरो को किसी भी प्रकार की व्याधि, इष्टवियोग, अनिष्टसयोग तथा विष, शस्त्र, आदि जनित दु ख नही होता है, न उनको और किसी तरह का कष्ट होता है। वे अपना कुमार काल बिता कर जब यौवन अवस्था मे आते हैं तब उनका विवाह होता है। तत्पश्चात् युवराज पद पा लेने के बाद उनका राज्याभिषेक होता है और निष्कण्टक राज शासन करते है। राजसुख भोगते हुए उनको किसी कारण ससार, शरीर तथा विषय भोगो से वैराग्य होता है तब उनकी भावना होती है कि—

चडिदूणचउ गतियो दारुदुम्मार दुःख खाणीओ।
परमाणम तनयानं णिव्वाहणं अणुवच्छामो ॥

अर्थ—संसार चतुर्गति भ्रमण रूप है। इन चारो गतियो मे जीव को अत्यन्त दारुण दु ख प्राप्त होता है। ऐसा सोचकर ससार से उदासीन होते हुए भगवान जब वैराग्य को प्राप्त होते हैं। तब वे लौकान्तिक देव आकर कहते है कि हे देवाधिदेव! इस समय आपने ससार को असार समझ कर अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने का निश्चय किया, सो श्लाघनीय है, आप धन्य है। इस प्रकार उनको अनेक प्रकार से सम्बोधन करते हुए देव कहते हैं कि—हे भगवान! आज हमारा सौभाग्य का दिन है कि हम आपके दर्शन कर इस जन्म को सफल करते हुए आपके महाप्रसाद को प्राप्त हुए। इस प्रकार वे लौकान्तिक देव भगवान के ऊपर कल्प वृक्ष के पुष्पो की वृष्टि करके चले जाते हैं।

गाथा—

धारवननेमि सेसाते विशतेषु तित्तयरां।
वियणिय चोदपुरेसुंणे हृति जिणंदा दिक्खावा ॥

उसी समय समस्त देव, इन्द्र, विद्याधर, भूचर राजा आदि एकत्र होकर दीक्षा का उत्सव करते है। एक सुन्दर दिव्य पालकी मे तीर्थंकर विराजमान होते है। उस पालकी को पहले भूचर राजा उठाकर कुछ दूर चलते हैं। तत्पश्चात् विद्याधर लेकर चलते हैं। फिर देव अपने कधो पर लेकर बडे हर्ष उत्सव के साथ आकाश मे चलते है। नगर से बाहर किसी उद्यान या वन मे किसी वृक्ष के नीचे भगवान स्वच्छ शिला पर बैठते है और अपने शरीर के समस्त वस्त्र आभूषण उतार देते है। अपने शिर के बालो का पाँच मुट्ठियो से लोच करके सिद्धो को नमस्कार करते है और स्वय महाव्रत धारण करके मुनि दीक्षा लेकर ध्यान मे निमग्न हो जाते है।

दीक्षा नगर

दारवदीए णेमी सेसा तेवीस तेसु तित्थयरा ।
णियणियजाद पुरेसु गिण्हंति जिणिंददिक्खाइं ॥

(६४३। ति० प० च० अ०

चौबीस तीर्थंकरो मे से भगवान नेमिनाथ ने द्वारावती से दीक्षा ली और शेष तीर्थंकरो ने अपने अपने जन्म वाले नगर से मुनि दीक्षा ली ।

दीक्षा-तिथि

१ चैत्र सुदी नवमी उत्तराषाढा नक्षत्र मे ऋषभदेव को मध्याह्न काल मे दीक्षा हुई ।

२ माघ शुक्ला नवमी को रोहिणी नक्षत्र मे अपराह्न काल मे भगवान अजित नाथ की दीक्षा हुई ।

३ मगसिर सुदी पन्द्रह ज्येष्ठा नक्षत्र मे अपराह्न काल मे श्री सम्भवनाथ का दीक्षा कल्याणक हुआ ।

४ माघसुदी द्वादसी को पुनर्वसु नक्षत्र मे पूर्वाह्न काल मे अभिनन्दन नाथ की दीक्षा हुई ।

५ वैशाख सुदी नवमी को मघा नक्षत्र मे पूर्वान्हि काल मे सुमति नाथ तीर्थंकर की दीक्षा हुई ।

६ कार्तिक सुदी तेरह चित्रा नक्षत्र अपराह्न काल मे पद्म प्रभु की दीक्षा हुई ।

७ ज्येष्ठ सुदी द्वादसी पूर्वाह्न काल विशाखा नक्षत्र मे सुपार्श्व नाथ की दीक्षा हुई ।

८ पौष कृष्णा एकादशी अपराह्न काल अनुराधा नक्षत्र मे चन्द्र प्रभु की दीक्षा हुई ।

९ मगसिर सुदी एकम अपराह्न काल अनुराधा नक्षत्र मे पुष्पदन्त भगवान की दीक्षा हुई ।

१० माघ सुदी द्वादशी को अपराह्न काल के समय पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र मे शीतल नाथ की दीक्षा हुई ।

११ फाल्गुन वदी एकादशी पूर्वाह्न काल श्रवण नक्षत्र मे श्रेयांस नाथ की दीक्षा हुई ।

१२ फाल्गुन सुदी चौदस अपराह्न काल मे विशाखा नक्षत्र मे एक उपवास पूर्वक वासुपूज्य भगवान की दीक्षा हुई ।

१३ माघ सुदी चौथ अपराह्न काल उत्तराभाद्रपद नक्षत्र मे विमलनाथ की दीक्षा हुई।

१४ ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी अपराह्न काल मे रेवती नक्षत्र में अनन्त नाथ की दीक्षा हुई।

१५ भाद्र पद सुदी तेरह पुष्य नक्षत्र मे अपराह्न काल मे धर्म नाथ की दीक्षा हुई।

१६ ज्येष्ठ कृष्णा चौदस के दिन अपराह्न काल मे भरणी नक्षत्र में शान्तिनाथ की दीक्षा हुई।

१७ बैशाख सुदी एकम् कृतिका नक्षत्र अपराह्न काल मैं कुन्थु नाथ भगवान की दीक्षा हुई।

१८ मगसिर सुदी दशमी अपराह्न काल मे रेवती नक्षत्र मे अरनाथ भगवान की दीक्षा हुई।

१९ मगसिर सुदी एकादशी अपरान्ह काल में अश्विनी नक्षत्र मे मल्लि-नाथ की दीक्षा हुई।

२० बैशाख सुदी दशमी अपरान्ह काल श्रवण नक्षत्र में मुनिसुव्रत भगवान की दीक्षा हुई।

२१ आषाढ सुदी दशमी अपरान्ह काल अश्विनी नक्षत्र में नमिनाथ तीर्थंकर की दीक्षा हुई।

२२ चैत्र सुदी षष्ठी अपरान्ह काल श्रवण नक्षत्र में नेमिनाथ तीर्थंकर की दीक्षा हुई।

२३ पौष कृष्ण एकादशी पूर्वान्ह काल विशाखा नक्षत्र में पार्श्व नाथ तीर्थंकर की दीक्षा हुई।

२४ मगसिर सुदी दशमी अपरान्ह काल उत्तरा नक्षत्र मे श्री वर्द्धमान की दीक्षा हुई।

इस प्रकार चौबीस तीर्थंकरो के दीक्षा का समय वर्णन किया। अब आगे जिस तीर्थंकर के साथ मे जितने राजकुमारो ने दीक्षा ली वह भी बतलाते है।

दीक्षा समय के साथी

वासु पूज्य भगवान के साथ ६७६ राजकुमारों ने दीक्षा ली थी।

मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरो के साथ ३-३ सौ राजकुमारो ने दीक्षा ली थी।

भगवान् महावीर स्वामी ने अकेले ही दीक्षा ली थी।

बाकी १६ तीर्थंकरो के दीक्षा लेते समय प्रत्येक के साथ एक-एक हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी।

जिस समय तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं उस समय ससार मे अपने से बड़ा अन्य व्यक्ति न होने के कारण स्वय ही 'ऊ नम. सिद्धेभ्य' कह कर दीक्षा लेते हैं। उन्हे तत्काल मन पर्यय ज्ञान प्राप्त हो जाता है। दीक्षा कल्याणक के एक वर्ष बाद इक्षुरस से भगवान् ऋषभदेव ने पारणा की। बाकी तीर्थकरों ने दूध से चौथे दिन मे पारणा की। समस्त तीर्थकरो की पारणा के समय उत्कृष्ट १२ करोड़ ५० लाख तथा [कम से कम] ५ लाख २५ हजार रत्नो की वृष्टि हुई। दाता के परिणाम के अनुसार ही रत्नो की वृष्टि कम अधिक होती है। इसके सिवाय सुगन्ध जल वृष्टि, पुष्प वृष्टि आदि पाच आश्चर्य तीर्थंकर के भोजन करते समय होते हैं। तत्पश्चात् वे तपस्या करने वन पर्वत आदि एकान्त स्थान मे चले जाते है अथवा मौनपूर्वक देश देशान्तरो मे विहार करते रहते हैं।

छद्मस्थकाल

उसहादीसु वासा सहस्स बारस चउद्दसट्ठरसा।
वीस छद्मत्थकालो छच्चिय पउमप्पहे मासा ॥६७५
वासाणि णव सुपासे मासा चन्दप्पहम्मितिण्णि तदो।
चदुतिदुवक्का तिदुइगि सोलस चउवगाचउकदी वासा।६७६।
मल्लिजिणे छद्दिवासा एक्कारस सुव्वदे जिणे मासा।
णमिणाहे णव मासा दिणाणि छप्पण्ण णेमिजिणे।६७७।
पासजिणे चउमासा वारस वासाणि वड्ढमाणजिणे।
एत्तिय मेते समये केवलणाण उप्पण्णं।६७८।

तिलोयपण्णत्ति (च. अ.)

मुनि दीक्षा लेने के अनन्तर भगवान ऋषभनाथ आदि २४ तीर्थंकर छद्मस्थ अवस्था [केवल ज्ञान होने से पूर्व दशा] मे निम्नलिखित समय तक रहे—

अर्थ—भगवान ऋषभनाथ को मुनि दीक्षा लेने के अनन्तर १००० वर्ष तक केवल ज्ञान नही हुआ यानी तब तक वे छद्मस्थ रहे। अजितनाथ १२ वर्ष, संभवनाथ १४ वर्ष, अभिनन्दन नाथ १८ वर्ष, सुमतिनाथ २० वर्ष, पद्मप्रभ ६ मास, सुपार्श्वनाथ ९ वर्ष, चन्द्रप्रभ ३ मास, पुष्पदन्त ४ वर्ष, शीतलनाथ

३ वर्ष, श्रेयासनाथ दो वर्ष, वासुपूज्य १ वर्ष, विमलनाथ ३ वर्ष, अनन्तनाथ २ वर्ष, धर्मनाथ १ वर्ष, शान्तिनाथ १३ वर्ष, कुन्थुनाथ १६ वर्ष, अरनाथ १६ वर्ष, मल्लिनाथ ६ दिन, मुनि सुव्रतनाथ ११ मास, नमिनाथ ६ मास, नेमिनाथ ५६ दिन, पार्श्वनाथ ४ मास और महावीर १२ वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था मे रहे। इतने समय तक उनको केवल ज्ञान उत्पन्न नही हुआ।

तीर्थंकरों को केवल ज्ञान होने को तिथि

[१] फागुन सुदी एकादशी उत्तराषाढा नक्षत्र में आदिनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[२] पौष सुदी एकादशी रोहिणी नक्षत्र मे अजितनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[३] कार्तिक वदी पचमी मृगिसरा नक्षत्र मे सभवनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[४] पौष सुदी १४ पुनर्वसु नक्षत्र मे अभिनन्दन भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[५] वैशाख सुदी १० मघा नक्षत्र में सुमतिनाथ को केवल ज्ञान हुआ।

[६] वैशाख सुदी १० चित्रा नक्षत्र मे पद्मप्रभु भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[७] फागुन सुदी सप्तमी विशाखा नक्षत्र मे सुपार्श्वनाथ को ज्ञान हुआ।

[८] फागुन कृष्णा सप्तमी अनुराधा नक्षत्र मे चन्द्र प्रभु भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[९] कार्तिक सुदी तृतीया मूल नक्षत्र मे सुविधनाथ [पुष्पदन्त] भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[१०] पौष सुदी १४ पूर्वा षाढा नक्षत्र मे शीतलनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[११] माघ वदी अमावस्या श्रवण नक्षत्र मे श्रेयास नाथ भगवान को केवल ज्ञान की उत्पत्ति हुई।

[१२] माघ सुदी द्वितीया को विशाखा नक्षत्र मे वासु पूज्य भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[१३] माघ सुदी छठ उत्तरा भाद्रपद मे विमलनाथ भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

[१४] चैत्र वदी अमावस्या के दिन रेवती नक्षत्र मे अनन्त नाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[१५] पौष सुदी पूर्णिमा के दिन पुष्य नक्षत्र मे धर्मनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[१६] पौष शुक्ला दशमी के दिन भरणी नक्षत्र मे शान्तिनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[१६] चैत्र मास शुक्ल तृतीया को कृतिका नक्षत्र में कुंथुनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[१८] कार्तिक सुदी द्वादशी को रेवती नक्षत्र मे अरनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[१९] पौष मास कृष्णा द्वितीया को पुनर्वसु नक्षत्र में मल्लिनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[२०] वैशाख कृष्ण नवमी को श्रवण नक्षत्र मे मुनि सुव्रत भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[२१] मगसिर सुदी एकादशी अश्विनी नक्षत्र मे नमिनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[२२] आसौज सुदी प्रतिपदा चित्रा नक्षत्र मे नेमिनाथ को केवल ज्ञान हुआ।

[२३] चैत्र कृष्णा चतुर्थी विशाखा नक्षत्र मे पार्श्वनाथ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

[२४] वैशाख सुदी दशमी को हस्त नक्षत्र मे भगवान महावीर को केवल ज्ञान हुआ।

आदिनाथ, श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, और पार्श्वनाथ भगवान को पूर्वान्हकाल [दोपहर से पहले] में केवलज्ञान हुआ। शेष १९ तीर्थंकरो को अपरान्हकाल (दोपहर पीछे) मे चतुर्थ कल्याणक हुआ।

नव लब्धि

केवल ज्ञान के उदय होते ही अर्हन्त भगवान को ९ लब्धियाँ प्राप्त होती है—१ ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने से, क्षायिकज्ञान, दर्शनावरण के क्षय होने से क्षायिक दर्शन, मोहनीय के क्षय होने से क्षायिक सम्यक्त्व, चारित्रमोहनीय के क्षय होने से क्षायिक चारित्र, दाना-न्तराय कर्म के क्षय होने से अगणित जीवों को निर्मल तत्वोपदेश रूप ज्ञानदान तथा अभयदान करने रूप क्षायिकदान, लाभान्तराय के क्षय से बिना कवलाहार

[भोजन] किये भी शरीर को स्वस्थ रखने वाली अनुपम पुद्गलवर्गणाओ के प्राप्त होने रूप क्षायिक लाभ, भोगान्तराय के नष्ट हो जाने से देवो द्वारा पुष्प वृष्टि आदि क्षायिक भोग, उपभोगान्तराय के क्षय होने से दिव्य सिंहासन, छत्र, चवर, समवशरण आदि के होने रूप क्षायिक उपभोग और वीर्यान्तराय के क्षय हो जाने से लोकालोक-प्रकाशक अनन्त ज्ञान को सहायक अनन्त बल प्रगट होता है। इस प्रकार क्षायिक ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य [वल] ये ६ लब्धिया केवल ज्ञानी अवस्था मे होती है।

आविर्भूत अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य सम्यक्त्व चारित्र दान लाभ भोग उपभोग आदि अनन्त गुणमय, स्फटिक मणिसम निर्मल, सूर्य बिम्ब सम दैदीप्यमान परमौदारिक शरीर धारी, निरामय, निरञ्जन, निर्विकार शुद्धस्वरूप, दोषकालातीत, निष्कलक अर्हन्त देव को नमस्कार है।

भोगान्तराय के क्षय से अनत भोग यानी पुष्प वृष्टि इत्यादि अनन्त भोग की प्राप्ति होती है। उपभोगान्तराय के क्षय से अनन्त भोग की प्राप्ति, सिंहासन, छत्रत्रय, चौसठचमर अष्ट प्रातिहार्य, परिकर समन्वित समवशरण-विभूति और वीर्यान्तिराय कर्म के नाश से अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, अनत अवगाहक, अनत अवकाश, अव्या-वाधत्व इत्यादि गुण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार भगवान् के परम आरहत नाम का चौथा कल्यानक हुआ।

आविर्भूतानन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, विरत्ति क्षायिकसम्यक्त्व, दान, लाभ, भोगोपभोग आदि अनत गुणात्वादि, हात्म सवात्कृत सिद्ध-स्वरूप, स्फटिक मणि के और सूर्य बिम्ब के समान दैदीप्यमान जो शरीर परि-माण होकर भी ज्ञान से व्याप्त शुद्ध रूप स्वस्तिता शेष, प्रमेयत्व, प्राप्त विश्वरूप, निर्गताशेष, मयत्वतो, निरामय, विगत्ताशेष, पापाजन पु जत्व रूप निरजन दोषकलातीतत्वतो निष्कलक स्तेभ्योअर्ह नम। इस प्रकार सयोग केवली गुण स्थान का सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामक तृतीय शुक्ल ध्यान के बाद अयोग केवली गुणस्थान में पच ह्रस्वस्वरोच्चारण प्रमाण काल मे निराश्रव द्वार वाले समस्त शीलगुण मणिभूषण वाले होकर मूलोत्तर, कर्मप्रकृति स्थित्यनुभाग प्रदेश बन्धोदयोदीरण सत्व को व्युपरत क्रिया निवर्तिनाम का चतुर्थ शुक्ल ध्यान से सम्पर्ण कर्म को नाश करके सिद्धत्व को प्राप्त किया है। अब जिस दिन मोक्ष गये उस दिन को बताते हैं।

मोक्ष कल्याणक

केवल ज्ञान हो जाने पर भाव मन नही रहता अतः चित्त का एकाग्र रहने रूप ध्यान यद्यपि नही रहता किन्तु फिर भी कर्म निर्जरा की कारणभूत सूक्ष्म क्रिया केवल ज्ञानी के होती रहती है। वही सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामक तीसरा शुक्लध्यान है। केवल ज्ञानी की आयु जब अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पाँच ह्रस्व अक्षरो के उच्चारण काल के बराबर रह जाती है। तब उनकी शरीर वचन योग की क्रिया बन्द हो जाती है। यही चौदहवाँ अयोग केवली गुणस्थान है और इस तरह योगनिरोध से होने वाला शेष चार अघाती कर्मों [वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र] का नाश कराने वाला व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक चौथा शुक्ल ध्यान होता है। पाँच ह्रस्व [एक मात्रा वाले] अक्षरो के उच्चारण योग्य स्वल्प काल तक चौदहवे गुणस्थान मे रहने के पश्चात् समस्त शेष कर्म नष्ट होने से पूर्ण मुक्ति हो जाती है। तदनन्तर वह लोक के सबसे ऊंचे स्थान पर सदा के लिये विराजमान हो जाते है। उस समय उनका नाम सिद्ध हो जाता है। मोक्ष हो जाने पर देवगण आकर महान उत्सव करते है वह मोक्ष कल्याणक है।

अब तीर्थंकरो के मोक्ष कल्याणक की तिथियाँ बतलाते है —

१ माघ कृष्णा चौदश के दिन पूर्वाण्ह समय उत्तराषाढ नक्षत्र में आदिनाथ भगवान १००० मुनियो के साथ मोक्ष गये।

२ चैत्र सुदी पचमी को पूर्वाण्ह काल मे भरणी नक्षत्र मे अजितनाथ तीर्थंकर मोक्ष गये।

३ चैत्र सुदी छठ को अपराण्ह काल मे मृगशिरा नक्षत्र मे संभवनाथ तीर्थंकर मोक्ष गये।

४ वैशाख सुदी सप्तमी को पूर्वाण्ह कालमे पुनर्वसु नक्षत्र मे अभिनदन नाथ का मोक्ष हुई।

५ चैत्र शुक्ला दशमी को अपराण्हकाल मे मघा नक्षत्र मे सुमतिनाथ को मोक्ष हुई।

६ फागुन कृष्णा चौथ को अपराण्ह काल मे चित्रा नक्षत्र मे पद्म प्रभु को मोक्ष हुई।

७ फागुन वदी षष्ठी को पूर्वाण्हकाल मे अनुराधा नक्षत्र मे ५०० मुनियो के साथ सुपार्श्वनाथ भगवान को मोक्ष हुई।

८ भाद्रपद सुदी सप्तमी को पूर्वाण्हकाल मे ज्येष्ठा नक्षत्र मे चन्द्रप्रभु भगवान को मोक्ष हुई।

९ आसोज सुदी अष्टमी को अपराण्ह काल मे मूल नक्षत्र में सुमिति नाथ भगवान को मोक्ष हुई ।

१० कार्तिक सुदी पचमी पूर्वाण्ह समय मे पूर्वाषाढा नक्षत्र मे शीतलनाथ भगवान मोक्ष गये ।

११ श्रावण सुदी पूर्णिमा को पूर्वाण्ह काल घनिष्ठा नक्षत्र मे श्री श्रेयासनाथ भगवान को मोक्ष हुई ।

१२ फाल्गुन वदी पचमी को अपराण्हकाल अश्विनी नक्षत्र मे ६०१ मुनियो के साथ वासुपूज्य भगवान को मोक्ष पद प्राप्त हुआ ।

१३ आषाढ सुदी अष्टमी को अपराण्ह काल उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र मे ६०० मुनियो के साथ विमलनाथ मोक्ष पद को प्राप्त हुये ।

१४ चैत्रकृष्णा अमावस्या को अपराह्ण काल रेवती नक्षत्र मे अनन्त-नाथ भगवान ७०० मुनियो के साथ मोक्ष गये ।

१५ ज्येष्ठ वदी चतुर्दशी को पुष्य नक्षत्र पूर्वाण्ह काल मे ८०२ मुनियो के साथ धर्मनाथ भगवान् मोक्ष गये ।

१६ ज्येष्ठ वदी चौदश को अपराण्ह काल और भरणी नक्षत्र मे शाँतिनाथ तीर्थङ्कर ९०० मुनियो के साथ मोक्ष गये ।

१७ वैशाख सुदी प्रतिपदा को कृतिका नक्षत्र और अपराण्हकाल मे १००० मुनियो के साथ कुन्थुनाथ भगवान् मोक्ष गये

१८ चैत्रकृष्ण अमावस्या अपराह्ण कालरेवती नक्षत्र मे अरनाथ भगवान मोक्ष गये ।

१९ फाल्गुन वदी पचमी को अपराण्हकाल में भरणी नक्षत्र मे ५०० मुनियो के साथ मल्लिनाथ भगवान मोक्ष गये ।

२० फाल्गुन वदी द्वादशी को अपराह्ण काल मे श्रवण नक्षत्र मे मुनिसुव्रत तीर्थङ्कर ने मोक्षपद पाया ।

२१ वैशाख कृष्णा चौदस को पूर्वाह्णकाल और अश्विनी नक्षत्र मे नमिनाथ तीर्थङ्कर ने मोक्ष पाई ।

२२ आषाढ वदी अष्टमी को अपराह्ण काल चित्रा नक्षत्र मे नेमिनाथ भगवान् ६३६ मुनियो के साथ मोक्ष गये ।

२३ श्रावण सुदी सप्तमी को अपराह्ण काल विशाखा नक्षत्र मे पार्श्व-नाथ भगवान ३६ मुनियो के साथ मोक्ष गये ।

२४ कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी प्रात समय के स्वाति नक्षत्र मे भगवान महावीर ने मोक्ष पद प्राप्त किया ।

जिन तीर्थङ्करो के साथ मोक्ष जाने वाले मुनियो की सख्या नही लिखी उन सब के साथ एक एक हजार मुनि मोक्ष गये हैं ।

गाथा—

कालवसादोजोर्याखवावण्ण य दुस्समय काले ।
अविनडुनेदाविय असुय कोतसयपायेण ॥
सत्तचयणहमदहं संजुत्तोसंअगार उसयेहि ।
कलहंपियारागितो कूरो कोहाणु ओलोहि ॥

सूत्र.—

घातिचतुष्टयाष्टादशदोषरहिताः ॥१०॥

अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म हैं। क्षुधा, तृष्णा, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, वृद्धावस्था, रोग, मरण, स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, जन्म, निद्रा और विषाद ऐसे १८ दोष हैं।

इस प्रकार १८ दोष और ४ घातिया कर्मों से रहित केवली अर्हन्त होते है।

गाथा...

नारयति रयदुथावरछावदुभउजोए घातिअउतियं ।
साहरणं चतिसट्ठिपयडिणिमुक्कोजिणो जयऊ ॥
छुहतणपाभिरु रोसोरागो चिंताजरारुजामच्च ।
खेदंसेदं मदोरइ मोह जणुभ्भेगरित्पाओणिद्दा ॥

सूत्र—

समवशरणैकादश भूमयः ॥११॥

अब आगे समवशरण मे होने वाली ग्यारह भूमियां बताई जाती है।

घणनिविडं द्वादश यो, जन विस्तृत मिन्द्रनीलमणिमय मतिरुत्तं ।
धनदकृतं नेलसिर्दु दु, घणपथ दोळु समवशरण भूमिविभागं ॥१२॥

वह समवशरण इस भूमडल से ५००० धनुष ऊपर जाकर आकाश मे सूर्य और तारागण के समान प्रतीत होता है। उसकी चारो दिशाओं में पाद-लेप औषधि के समान मणिमय २० हजार सीढियो की रचना रहती है। वह समवशरण १२ योजन के विस्तार मे होता है। जिसकी आगन भूमि इन्द्र नील-मणि निर्मित होती है। वह समवशरण अनुपम शोभा सहित होता है। जिसके अग्रभाग मे प्रासाद चैत्य भूमि १, जलखातिका २, वल्लीवन ३, उपवन ४, ध्वजा माला कुवलय भूमि ५, कल्प वृक्ष भूमि ६, भवन सन्दोह (समूह) भूमि ७,

द्वादशगण परिष्कृत पवित्रतर क्षेत्र ८, प्रथम पीठ ९, द्वितीय पीठ १०, तथा सिंह विष्टरवाली तृतीय पीठ भूमि ११, इस प्रकार कुल ११ भूमिया उस समवशरण मे होती हैं।

उसमे सबसे पहले धूलिशाल कोट बना रहता है। जो कि पचवर्ण रत्नो के चूर्ण से बना हुआ होता है। जिसके चारो ओर चार दरवाजे होते है। उन दरवाजो मे से होकर जब भीतर आगे बढे तो वहा मार्ग मे सबसे पहले मानस्तम्भ आते है जो कि चारो दिशाओ मे चार होते है। हरेक मानस्तम्भ चारो ओर चार दरवाजो वाले ३ परकोटो से घिरा हुआ होता है। वह वहा ३ पीठिकामय समुन्नत वेदी पर बना रहता है। उसके चारो ओर चार सरोवर बने रहते है। उन एक-एक सरोवर के प्रति ४२ कुण्ड होते है। उन मानस्तम्भो मे मस्तक के ऊपर चारो दिशाओ मे चार बिम्ब होते हैं, जिनका इन्द्रादिक देव निरन्तर अभिषेक किया करते है। उन मानस्तम्भो को देखकर दुरभिमानी मिथ्यादृष्टी लोगो का मान गलित हो जाता है। इसीलिये उनको मानस्तम्भ कहते हैं। उसके बाद प्रासाद चैत्यभूमि आती है। वहा पर एक चैत्यालय होता है, जो कि वापी, कूप, तडाग तथा वन खण्ड से मडित पाच-पाच प्रासादो से युक्त होता है। यह सब रचना दो गव्यूति के विस्तार मे होती है ॥१॥

उसके आगे वेदी आती है, जो कि चादी की बनी हुई होती है। और मणियो से बने हुये सोपानो की पक्ती से युक्त होती है। जिसके चारो ओर चार द्वार सुवर्ण के बने हुये रहते हैं। उन गोपुरो के ऊपर ज्योतिष्क देव द्वारपाल का काम करते है। उस वेदी के भीतर की ओर जब कुछ आगे चले तो जल की भरी हुई खातिका आती है। वह खातिका नाना प्रकार की सुवर्णमय सीढियो से युक्त होती है। उस खाई मे कमल खिले हुये होते है और हस चक्रवाकादिक जलचर जीव मधुर शब्द करते हुये किलोल करते रहते है। उसी मे सुर, विद्याधर वगैरह भी जलक्रीडा करते रहते है। उस खाई के दोनो तटो पर नाना प्रकार के लता मडप बने रहते हैं। वह खाई १ योजन के विस्तार मे होती है।

इसके आगे रजत की बनी हुई और मणियो से जडित ऐसी सोपान पक्ति से युक्त १ सुवर्णमय वेदी आती है। जिसके चारो ओर चार दरवाजे होते हैं, जिनके ऊपर ज्योतिष्क देव द्वारपाल का काम करते हैं।

इसके आगे १ योजन विस्तार मे वल्ली-वन आता है। जिसमे पुन्नाग, तिलक, बकुल, माधवी कमल इत्यादि नाना प्रकार की लताये सुशोभित होती हैं। उन लताओ के ऊपर गन्ध-लुब्ध भौरे मडराते रहते है। उसी वल्ली-वन मे

सुगन्धयुक्त फूल वाले लता मण्डप बने हुये होते है। जिन मे सुर-मिथुन क्रीडा करते रहते हैं। इसके आगे सुवर्णमय परकोटा आता है जो कि रजत और मणियों से बने हुये सोपानो से युक्त होता है। उसके चारो ओर चारो द्वारो पर यक्षकुमार द्वारपाल का काम करते हैं। कनाड़ी श्लोक.—

त्रिदश मिथुन प्रसंगदि ।
उदित महाराग विहंगकुल निस्वनदिं पु-।।
रिदे से वशोक सप्त-।
च्छद चंपक चूतवनचतुष्टय मक्कुं ।।१३।।

अशोक, सप्तच्छद, ‹ंक तथा आम ये वन होते हैं। इन वनो मे इसी नाम वाला एक-एक चैत्य-वृक्ष भी होता है। जोकि चार दरवाजों वाले तीन-तीन परकोटों से युक्त और ३ पीठ के ऊपर प्रतिष्ठापित होता है। जिसके मूल भाग में चारों दिशाओं में अर्हन्त भगवान के विम्ब विराजमान होते हैं, जोकि आठ प्रकार के प्रातिहार्यों से सुशोभित हुआ करते हैं। इन चैत्यवृक्षो के परिकर स्वरूप मन्दार, मेरु, पारिजात, ताल, हिन्ताल, तमाल, जम्बू, जम्बीर आदि नाना प्रकार के वृक्ष तथा कृत्रिम नदी क्रीड़ागिरि, लताभवन आदि आदि की रचना होती है। इन कृतगिरियो के ऊपर मन्द मन्द पवन से हिलती हुई ध्वजायें भी हैं। इसके आगे चलने पर दोनों भागों मे ६२ नाट्यशालाये होती है, जोकि चन्द्रमा के समान सफेद वर्ण तथा तीन तीन खंड वाली होती हैं। एक एक नाट्यशाला में वत्तीस वत्तीस नाटक स्थल होते है जिसके प्रत्येक स्थल में वत्तीस वत्तीस नर्तकियाँ नृत्य करती हुई भगवान का यश गान करती हैं। इन नाट्यशालाओ के समीप धूप-घट होते हैं। जिनमे से कालागरु वगैरह धूप का धुआँ निकलकर दो कोस तक फैलता रहता है। यह उपवन भूमि एक योजन विस्तार मे होती है। इसके आगे एक स्वर्ण वेदिका आती है, जिसके चारो तरफ चार दरवाजे होते हैं। जोकि सुवर्ण और मणिमय सोपानों से युक्त तथा यक्ष नामक द्वारपालो से संरक्षित होते हैं। इसके तीसरे भाग मे आगे जाकर ध्वजस्थल आता है।

गर्जासिंह वृषभ गरुड़ा। म्बुजमाला हंसचक्रशिखि वस्त्र ब्रीह।
ध्वजवुं तत्परिवार। ध्वजवुं ध्वजभूमियोळ् विराजिसुत्तिर्कुम् ।।१४।।

गज, सिंह, वृषभ, गरुड़, अम्बुजमाला, हंस, चक्र, शिखि (मयूर), वस्त्र तथा ब्रीहि इन दस प्रकार के चिन्हों से चिन्हित

ध्वजाये होती है। चारो दिशाओ मे से प्रत्येक दिशा मे इन दस प्रकार की ध्वजाओ मे से एक-एक प्रकार की ध्वजा एकसौ आठ २ होती है। जो सुवर्ण के स्तम्भो मे लगी हुई होती हैं और मन्द मन्द वायु से हिलती रहती हैं। उन ध्वज दडो की ऊचाई २५ धनुष और मोटाई ८८ अगुल की होती है। इन महाध्वजाओ के परिवार स्वरूप एक-एक महाध्वजा के प्रति एकसौ आठ २ क्षुद्र ध्वजाये हुआ करती है। ये महाध्वजायें चारो दिशाओ की मिलकर कुल ४३२० होती है। और इनकी क्षुद्र ध्वजाये ४६६५६० होती हैं। सब ध्वजाये मिलाकर ४७०८८० हो जाती हैं।

इसके आगे एक स्वर्णमय परकोटा आता है। जिसके चारो ओर ४ दरवाजे होते हैं। जिनमे स्वर्ण और मणियो से बनी हुई सीढियाँ लगी रहती हैं। वहाँ पर नागेन्द्र नामक देव द्वारपाल का कार्य करते है।

कानडी श्लोक —

देवोत्तर कुरुगळकल्पावनिजातंगळे ल्लमिदलन्तदक।
ल्पावनिजवकेणे इल्लेने, देवरकल्पावनीतलंसोगयिसुगुम् ॥१५॥

उसके आगे कल्प-वृक्षो का वन आता है। उन वनो मे कल्पनातीत शोभा वाले दस प्रकार के कल्प वृक्ष होते है जोकि नाना प्रकार की लता वल्लियो से वेष्टित रहते है। उसमे कही कमल होते है, कही कुमुद खिले हुये होते हैं, जहाँ देव विद्याधर मनुष्य क्रीडा किया करते है, ऐसी क्रीडा-शालायें होती है।

कही पर उत्तम जल से भरी हुई वापिकाय होती हैं। इस कल्प-वृक्षों के वन मे पूर्वादिक चारो दिशाओ मे क्रम से नमेरु, मन्दार, सतानक, और पारिजात नामक चार सिद्धार्थ वृक्ष होते है। ये वृक्ष भी तीन कोटो से युक्त और तीन मेखलाओ से युक्त होते हैं। जिनके मूल भाग मे चारो दिशाओ मे चार प्रतिमाये होती है। जोकि वन्दना करने मात्र से भव्यो के पापो को नष्ट कर देती है। इन सिद्धार्थ वृक्षो के समीप मे ही नाट्यशाला, धूप कु भादि सर्व महिमा पूर्वोक्त कथनानुसार होती है। यह कल्पवन एक योजन विस्तार मे होता है। अब इसके आगे एक स्वर्णमय वेदी बनी हुई होती है। यह भी पूर्वोक्त प्रकार चारो ओर चार दरवाजो से युक्त होती है। इसके आगे भीतर की ओर भवन भूमि आती है। जहाँ पर सुरमिथुन गोत नृत्य जिनाभिषेक, जिन स्तवन वगैरह करते हुए प्रसन्नता पूर्वक रहते है।

सूत्र —

द्वादश गणाः ॥१२॥

इसके आगे इन्द्र नील मणिमय सोपानो से युक्त एक स्फटिकमय कोट आता है उसके भी चारो ओर चार दरवाजे होते हैं। वहाँ कल्पवासी देव द्वारपाल का काम करते है, जिसके अन्दर की ओर जाकर स्फटिक मणिमय सोलहभित्तियो से विभाजित चारों दिशाओ मे १२ कोठे होते है। जिनमे ये बारह गण होते हैं। सबसे पहले सर्वज्ञ वीतराग भगवान के दायी ओर अपने कर कमलों को जोडकर गणधर देव, पूर्वधारी, विक्रिया ऋद्धिधारी, अवधिज्ञानी मन पर्ययज्ञानी, वादी मुनि, शिष्य मुनि ऐसे सात प्रकार के ऋषियो का समूह होता है। वहाँ से आगे कल्पवासिनी देवियाँ रहती है।

उसके आगे आर्यिका व श्राविका समूह होता है। इसके आगे वीथी है। उसके आगे ज्योतिषी देवियाँ होती है। उसके आगे व्यन्तरी देवियाँ होती है। उसके आगे भवन वासिनी देवियाँ होती है। तत्पश्चात् दूसरी वीथी आ जाती है। उसके आगे व्यन्तरदेव, ज्योतिष्क देव, भवन वासी देव होते हैं। तदनन्तर तीसरी वीथी आ जाती है। इसके बाद कल्पवासी देव होते है। इसके बाद चक्रवर्ती, मुकुट-बद्ध मडलेश्वर, महामंडलेश्वर, भूचर, खेचर इत्यादि सभी तरह के मनुष्य होते है। उसके आगे सिंह, व्याघ्र, सर्प सरिसृप, हाथी, घोडे, महिष मेष, मूसा, बिलाव, विविध भाँति के पक्षी ऐसे तिर्यञ्च योनि के जीव परस्पर विरोध से रहित उपशान्त भाव से मिलकर एक ही स्थान में रहते है। इसके बाद चौथी वीथी आ जाती है। यह एक कोश के विस्तार मे प्रदक्षिणारूप गण भूमि होती है।

श्लोक—

ऋषिकल्पजवनितार्या, ज्योतिर्वन भवनयुवति भुववनजा।
ज्योतिष्क कल्पदेवा नरतिर्यञ्चो वसन्ति वेष्टनुपूर्वम् ॥२॥

इसका अर्थ ऊपर दिया है।

उसके आगे इन्द्र नील मणिमय सोपान से सुशोभित वैमानिक देव, द्वारपाल के द्वारा विराजित चार प्रकार के गोपुर सहित स्फटिकमय वेदिका शोभायमान है। वह इस प्रकार है।

श्लोक कानडी मे —

अनुपमवैडूर्य , कनककलशत्सर्वरत्न मप्पें।
धनुगळुनाल्कुं क्रमदिं, दनाल्कुमुत्सेधमप्प पीठ त्रयदोळ् ॥१७॥

वहा से आगे चारो दिशाओ मे धर्मचक्र को धारण किये हुये यक्षेन्द्र के द्वारा अनेक प्रकार के अष्ट द्रव्यो से पूजनीय तथा अत्यत मनोहर देवो के साथ पूजनीय ७५० धनुष विस्तार वाला अर्थात् विष्कम्भ वाला भगवान का प्रथम पाठ है।

उसके ऊपर अनेक प्रकार की ध्वजाओ तथा अर्चनाओ से अलकृत पूर्व सिंहासन के समान अर्थात् पूर्व पीठ के समान अत्यन्त विस्तार वाला द्वितीय पीठ है।

उसके ऊपर १००० धनुष विस्तार वाला सूर्य बिम्ब के किरण के समान मूल से लेकर ६०० दड चौडाई और ९०० धनुप ऊचाई वाली गध कुटी है। परमात्मा के चरम शरीर के अतरग युक्त सुगध परम सुशोभित त्रिभुवन-नाथ भगवान का पीठ है।

आगे भगवान के आठ महा प्रातिहार्य का वर्णन करते है—

सूत्र —

अष्ट महाप्रातिहार्याणि ॥१३॥

श्लोक कनाडी

श्रीमदशोकं मुक्कोडे, पूमळेवर भाषे विष्टिरं चमरीजं।
भामंडलंत्रिलोक, स्वामित्वद लांछन गणानकसहितं ॥१७॥

अर्थात् भगवान के पीछे अशोक वृक्ष, ऊपर तीन छत्र, पुष्प वृष्टि, सात सौ अठारह भाषा, चमर, भामडल, सिंहासन दुन्दुभि आठ प्रातिहार्य है।

अठारह महाभाषाये

गाथा—

अठ्ठरसमहाभासा खुल्लयभासाय सयाइ सत्त तहा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ ॥३८॥
एदासु भासासु तालुवदतोठ्ठकठवावारे।
परिहरिय एक्ककाल भव्वजणे दिव्वभासित्त ॥३९॥
पगदीए अक्खलिओ सभत्तिदयम्मि णवमुहुत्ताणि।
णिस्सरदि णिरुवमाणो दिव्वभुणी जाव जोयणम ॥४०॥
अबसेसकालसमये गणहरदेविंदचक्कवट्टीण।
पण्हाणरूवमत्थ दिव्वभुणी अ सत्तभगीहिं ॥४१॥
सिय अत्थि णत्थि उभय अव्वेतव्व पुणोवि तत्तिदिय।
दव्वम्हि सत्तभगी आदेसवसेण सभवदि ॥४२॥

छद्दव्व पंच अत्थी सत्तवि तच्चाय णवपयत्थाय ।
णयणिक्खेवपमाण दिव्वभुणी भणइ भव्वाणं ॥४३॥
जिणवंदणा पयट्टा पल्लासंखेज्ज भागपरिमाणं ।
चिंतंतिविविह जीवा इक्केक्के समवसरणेसु ॥४४॥

अर्थ—अठारह महाभाषा, सात सौ छोटी भाषा तथा संज्ञी जीवो को और भी अक्षरात्मक(अक्षरो से लिखने योग्य), अनक्षरात्मक भाषाएं हैं ।उन सभी भाषाओ मे तालु दांत, ओठ, कण्ठ को विना हिलाये चलाये भगवान की वाणी भव्य जीवों के लिये प्रगट होती है । भगवान की वह दिव्य ध्वनि स्वभाव से (तीर्थकर प्रकृति के उदय से वचन योग से, विना इच्छा के) असवलित (स्पष्ट) अनुपम तीनो सन्ध्या कालो मे ६ मुहूर्त तक निकलती है और १ योजन तक जाती है ।

शेष समय मे गणधर, इन्द्र तथा चक्रवर्ती के प्रश्न करने पर भी दिव्य ध्वनि सात भंगमय खिरती है ।

स्यात्, अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य और स्यात् आस्ति नास्ति अवक्तव्य ये सात भंगी पदार्थों मे आदेश (जिज्ञासा) के वश से होती है।

छह द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थ, प्रमाण, नय, निक्षेप्प आदि भविष्य भगवान की दिव्य ध्वनि भव्य जीवो को प्रतिपादन करतो है।

जिनेन्द्र भगवान की वन्दना के लिये समवशरण मे आये हुए अनेक प्रकार के जीव पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण होते हैं । समवशरण के प्राकार वेदिका और तोरण की ऊंचाई भगवान के शरीर से चार गुणी होती है ।

(कनड़ी छंद)

मिलिर्व पताके इनेसेयव, तूले इन्देशमानमप्प विस्तृत वेदी ।
कुल मसमान विस्तृत, विलसत् प्राकारमुं निरंतर मेसेगुं ॥१८॥

अर्थात् मानस्तंभ, प्रासाद, चैत्यालय, चैत्यवृक्ष, ध्वज दंड, गोपुरद्वार, कृतगिरि, नवस्तूप और लक्ष्मी मंडप ये सभी १२ गण देह के प्रमाण हैं । और भीतर तथा बाहर के सम्पूर्ण, गोपुरों मे नव निधि से शोभित उचित अष्ट, मंगल द्रव्य वगैरह प्रत्येक १०८ होते हैं। नैसर्प, पिंगल, भाजुर, माणवक, संद, पांडुक, कालश्री, वरतत्व, तथा तेजोद्भासि महाकाल ये नव निधियाँ हैं ।

अष्ट मंगल द्रव्य

गाथा—

अर्थ—तीन छत्र, चमर, दर्पण, भृंगार, पंखा, पुष्प माला व्रतकलश,

स्वस्तिक (साथिया) झारी ये आठ मंगल द्रव्य हैं। और धूलि प्राकार के बाहरी तरफ १०० मरकत मणि के बंदन वार (तोरण) लाइन से आगे सौ सौ होती हैं। और उनका विस्तार गव्यूति प्रमाण होता है। वीथी (गली) मे धूलि प्राकाररो से गधर्व व्यतर देवो की वेदिका तथा स्फटिकमय दीवाल है। इस प्रकार विविध भाँति के अतिशयो से युक्त समवशरण मे---

श्लोक---

तत्रच मृर्जत्युन्म च विद्वेषो नैव मन्मथोन्मादः।
रोगान्तक बुभुक्षा पीडाच न विद्यते क्वचित् ॥

अर्थ---जन्म, मरण, कोप, कामोद्रक, रोग, व्यसन, निद्रा, भूख, प्यास इत्यादि पीड़ा जीवो को नही होती। और अभव्य तथा असैनी जीव समवशरण मे कभी नही जाते। मिथ्या--दृष्टि जीवो को समवशरण मे प्रवेश करते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है। गू गा समवशरण मे जाते ही बोलने लगता है, अधा देखने लगता है, बहरा समवशरण मे जाकर सुनने लगता है। लूले लगडे समवशरण मे जाते ही ठीक तरह से चलने लगते है। पागलो का पागलपन वहाँ जाकर दूर हो जाता है, कोढी जैसे महारोगी का शरीर समवशरण मे प्रवेश करते ही निरोग होकर सुन्दर बन जाता है। विष वाले प्राणी समवशरण मे जाते ही निर्विष हो जाते है। व्याधि-पीडित जन समवशरण मे जाते ही सर्व व्याधियो से मुक्त हो जाते है। व्रण (घाव-जख्म) वाले लोग वहाँ जाकर व्रण से रहित हो जाते हैं। आपस के विरोधी जीव समवलरण मे जाते ही मित्र के समान हो जाते है, जिन जीवो का आपस मे विरोध होता है और सदा लडते झगडते है वे यदि समवशरण मे पहुच जाय तो उसी समय विरोध छोड कर मित्र बन जाते है। सिह, और हाथी, बिल्ली और चूहा, मेढक, और सर्प इत्यादि जाति-विरोधी जीव भी अपने अपने वैर को छोड़ कर आपस मे बच्चो के समान प्रेम करने लगते है। और पुन.---

श्लोक कानड़ी मे।

नुत धर्म कथन मल्लदे हितकर संदर्म कार्यमल्लदे विपुलो।
न्नत धर्म चिन्तेयल्लदे शतविबुधधपन सभेयोमिल्लुळधेनु ॥

अर्थ--भगवान के समवशरण मे जितने भी जीव बैठे होते है वे अपने सम्पूर्ण विकारो से रहित होकर सद्धर्म कथाओ को सदा चिन्तवन करते रहते हैं। सौ इन्द्रो से वन्दनीय त्रिभुवन नाथ भगवान के समवशरण मे धर्म कथा या उत्तम धर्म कार्य के सिवाय अन्य कोई कार्य नही होता।

श्लोक कानड़ी में—

चित्रातपत्रदिं पत्रवनस्थाळियनिलिसे गगन देसेयं ।

चित्रसे तिरीट किरणं, व्दात्रिशत् त्रिदशपतिगळंतेळतंदर ।।२०।।

वरागन्धाक्षत्कुसुमदि रानुपंमचरुदीपधपफलसंकुल दिं ।।२१।।

जिनपतिपूजोत्सवकर मणदिं व्दात्रिंशतंदिन्द्र रन्तकृत्दर ।।२२।।

उपर्युक्त समवशरण की विभूति भगवान के उपभोगान्तराय कर्म के क्षय से होती है। ऐसे जिनदेव की आराधना भव्य जीवो को सदा करते रहना चाहिए।

सूत्र—

अनंत चतुष्टयमिति

अर्थ–अनत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनत सुख, अनत वीर्य यह अनत चतुष्टय हैं।

१ जिस ज्ञान का अन्त नही है उसे अनत ज्ञान कहते है। अतीन्द्रिय ज्ञान व्यवहार नय से लोकालोक को प्रत्यक्ष रूप मे जानता है। और निश्चय नय से अपने शुद्धात्म स्वरूप को जानता है।

२ जिस दर्शन का अत नही है या विनाश नही है और जो व्यवहार नय से लोकालोक को प्रत्यक्ष रूप से देखता है तथा जो निश्चय नय से शुद्ध स्वरूप को देखता है वह अनत दर्शन है।

३ जिस सुख का अत नही है वह अनत सुख या अतीन्द्रिय सुख है।

४ जिस वीर्य का नाश नही है वह अनत वीर्य है। वही अनत बल और वही अनत शक्ति है। उपर्युक्त अनन्त चतुष्टयो के धारक चौबीस तीर्थंकर परम देवो ने अपने शेष सम्पूर्ण कर्मो को नष्ट करके अनत गुण परिपूर्ण शुद्धात्म भावना के फल को प्राप्त किया तथा ऐसे सिद्ध-साध्य, बुद्ध बोध, कृत कृत्य, इत्यादि विशेषणो से युक्त उन सिद्ध परमेष्ठियो को मै नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार कहा हुआ भी है कि—

शुद्ध चैतन्यपिंडाय सिद्धाय सुखसंपदे ।

विमलागमासाध्याय नमोस्तु परमेष्ठिने ।।

इस प्रकार नव सूत्रो के द्वारा तीर्थंकर की विभूति का वर्णन किया गया। अब आगे पाँच सूत्रो के द्वारा चक्रवर्ती की विभूति का वर्णन करते है।

सूत्र—

द्वादश चक्रवर्तिन :—

१ श्रीसेन, २ पुंडरीक, ३ वज्रनाभि, ४ वज्रदत्त, ५ वज्रघोष,

६ चारुदत्त, ७ श्रीदत्त, ८ सुवर्णभद्र, ६ भूवल्लभ, १० गुणपाल, ११ धर्मसेन, १२, कीर्तिघोष, ये अतीत काल के १२ चक्रवर्ती हैं ।

१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शाति, ३ कुंथु, ७ अरह, ८ सुभौम, ६ महापद्म, १० हरिसेन, ११ जय सेन, १२ ब्रह्मदत्त, ये बारह चक्रवर्ती वर्तमान काल के हैं ।

१ भरत, २ दीर्घदन्त, ३ मुक्तदन्त, ४ गूढदन्त, ५ श्री सेन, ६ श्री भूति, ७ श्री कान्त, ८ पद्म, ६ महापद्म १० चित्र वाहन ११ विमल वाहन, और १२ अरिष्टसेन ये भावी काल के चक्रवर्ती हैं ।

१ वर्तमान काल के चक्रवर्तियो मे भरत ५०० धनुष ऊंचे शरीर वाले और ८४००००० पूर्व वर्ष आयु वाले थे ।

२ सगर चक्रवर्ती का शरीर ४५० धनुष प्रमाण और ७२००००० पूर्व वर्ष आयु थी ।

३ मघवा चक्रवर्ती का शरीर साढे बयालिस धनुष प्रमाण और ५००००० वर्ष आयु थी ।

४ सनतकुमार चक्रवर्ती का शरीर ४२ धनुष प्रमाण और ३००००० वर्ष आयु थी ।

५ शान्तिनाथ चक्रवर्ती का शरीर ४० धनुष प्रमाण और १००००० वर्ष आयु थी ।

६ कुंथुनाथ चक्रवर्ती का शरीर ३५ धनुप प्रमाण और ६५००० वर्ष प्रमाण आयु थी ।

७ अरह चक्रवर्ती का शरीर ३० धनुष और ८४००० वर्ष प्रमाण आयु थी ।

८ सुभौम चक्रवर्ती का शरीर २८ धनुष प्रमाण और ६०००० वर्ष प्रमाण आयु थी ।

६ महापद्म चक्रवर्ती का शरीर २२ धनुष और ३०००० वर्ष प्रमाण आयु थी ।

१० हरिषेण चक्रवर्ती का शरीर २० धनुष और १०००० वर्ष प्रमाण आयु थी ।

११ जयसेन चक्रवर्ती का शरीर १५ धनुष प्रमाण और ३००० वर्ष आयु थी ।

१२ ब्रह्ममदत्त चक्रवर्ती का शरोर ७ धनुष प्रमाण और ७०० वर्ष आयु थी ।

इन सभी चक्रवर्तियो का शरीर स्वर्णमय था ।

सूत्र—

सप्तांगानि ।।१६।।

राजा, ग्रामाधिपति, जनपद, दुर्ग, भडार, षडगवल तथा मित्र, ऐसे चक्रवर्ती के सात अग होते हैं ।

षडंग वल ये हैं—चक्रवल, ८४००००० भद्र हाथी, उतने ही रथ, १८ करोड उत्तम नस्ल के घोडे, ८४ करोड वीर भट, अनेक देव बल, अनेक विद्याधर इस प्रकार षडग बल होता है ।

सूत्र—

चतुर्दश रत्नानि ।।१७।।

चक्र, छत्र, असि, दंड, मणि, काकनी और चर्म ये सात रत्न अचेतन है ।

गृहपति, सेनापति, गजपति, अश्व, स्थपति, पुरोहित तथा स्त्री रत्न, ये सात चेतन रत्न है । इस प्रकार इन चौदह रत्नो को महा रत्न कहते हैं । और इनकी एक-एक हजार यक्ष रक्षा करते हैं । अब आगे उनकी शक्ति को बतलाते है । चक्रवर्ती के प्रति यदि कोई प्रतिकूल हो जाता है तो उसका सिर चक्ररत्न के द्वारा उसी समय हाथ मे आ जाता है । सम्पूर्ण धूप, वर्षा, धूलि, ओले, तथा वज्रादि की वाधा को दूर करने के लिये छत्र रत्न होता हैं ।

३—चक्रवर्ती के चित्त को प्रसन्न करने वाला असि रत्न होता है ।

४—४८ कोस प्रमाण समस्त सेना को भूमि के समतल करने वाला दड रत्न होता है ।

५ जो इच्छा हो उसे पूरा करने वाला मणि रत्न होता है ।

६ जहाँ अघेरा पड़ा हो वहाँ चन्द्र सूर्य के आकार को प्राप्त कर प्रकाश करने वाला काकिनी रत्न होता है ।

७ नदी नद के ऊपर कटक को पार करने के लिये चर्म रत्न होता है ।

८ राज भवन की समस्त व्यवस्था करने के लिए गृहपति रत्न होता है ।

९ आर्य खड के अतिरिक्त पाच म्लेच्छ खडो को जीतने वाला सेनापति रत्न होता है ।

१० चक्री के जितने भी हाथी हैं उनको जीतकर हस्तगत करने वाला सबसे मुख्य हाथी गज रत्न होता है ।

११ तिमिश्रगुफा के कपाट स्फोटन समय मे जब उसमे से ज्वाला

निकलती है तब चक्रवर्ती को तुरन्त ही बारह योजन उछालकर दूर ले जाने वाला अश्व रत्न है।

१२ चक्रवर्ती की इच्छानुसार प्रासाद आदि को बनाकर तदनुकूल सहायता करने वाला स्थपति रत्न होता है।

१३ चक्रवर्ती के अन्त पुर मे जो ९६००० स्त्रियाँ होती है वे सभी अपने-अपने मन मे यह मानती रहे कि शाम से लेकर सुबह तक चक्रवर्ती महाराज तो मेरे पास रहे, इस प्रकार की अद्भुत् विक्रिया शक्ति के धारक चक्रवर्ती की कामवासना को शान्त कर देने वाला स्त्री रत्न होता है।

१४ सम्पूर्ण कटक सैन्य को धर्म कर्मानुष्ठान से चलाने वाला पुरोहित रत्न होता है। चक्रवर्ती के साढे तीन करोड बधुवर्ग और सख्यात सहस्र पुत्र, पुत्रियाँ, ३६१ शारीरिक वैद्य तथा ३६१ रसोइया होते है। और एक एक रसोइया ३६० दिन तक ढाई द्वीप मे रहने वाली दिव्यौषधि को अन्नपानादि मे मिलाकर ग्रास बनाता है। फिर ३२ ग्रासो मे से केवल एक ग्रास निकालकर ४८ योजन प्रमाण मे रहने वाली समस्त सेना को खाने को देता है और उसे खाकर पानी पीते ही जब सभी को अजीर्ण हो जाता है तब वह ग्रास चक्रवर्ती के खाने योग्य परिपक्व होता है। ऐसे ३२ ग्रासो को चक्रवर्ती प्रतिदिन पचाने वाला होता है।

उन ग्रासो मे से स्त्री रत्न, गजरत्न, अश्वरत्न, केवल एक एक ग्रास को पचा सकते हैं। अब चक्रवर्ती की इन्द्रियो की शक्ति को बतलाते है।

१२ योजन की दूरी पर यदि कोई भी वस्तु गिर जावे तो उसकी आवाज चक्रवर्ती कर्ण द्वारा सुन सकते है। ४७२६३ साधिक योजन तक के विषय को देखता है। घ्राण और स्पर्शन इन्द्रिय से ९० योजन जानता और सूंघता है। ३२ चमर २४ शख, उतनी ही, भेरी पटह, यानी १२ भेरी और १२ पट होते हैं। इन सम्पूर्ण की द्वादश योजन तक ध्वनि जाती है। इनके साथ १६००० मगपति (अग रक्षक) देव होते हैं। ३२००० मुकुट-वद्ध, इतनी ही नाट्य शाला, उतनी ही सगीत शाला, उतने ही देश, वृत वृतान्त तक आदि होते हैं। ९६ करोड़ ग्राम, चार द्वार वाले प्राकार वाले ७५ हजार नगर, नदी वेष्ठित १६ हजार गाँव, पर्वत वेष्ठित २४ हजार खर्वड, प्रत्येक ग्राम के लिए ५०० मुख्य, ४०० मडंव, रत्न योगी नाम के ४८ हजार पट्टन (नगर) है। समुद्र और खातिका से घिरा हुआ ९९ हजार द्रोणमुख नगर होते है। १६ हजार वाहन हैं। चारो ओर से घिरे हुए हैं २८ हजार किले होते है। अन्तर द्वीप ५६ है। ६०० प्रत्यन्तर है। ७०० प्रत्यतर कुक्षि निवास अटवी है। ८०० कषा हैं। ३ करोड़ गाय

है। १ करोड़ स्थान है। १ लाख करोड भैसे है। ६० हजार म्लेच्छ राजाओं के द्वारा चक्रवर्ती सुशोभित होता है।

सूत्र

नव निधयः ॥१८॥

प्रत्येक एक एक हजार यक्ष देवो से राक्षि नौनिधिया होती है। १-तीनो ऋतुओ के योग्य द्रव्य को देनी वाली काल निधि है।

२ नाना प्रकार के भोजन विशेषता को देने वाली महाकाल निधि होती है।

३ प्रत्येक गोधूमादि सम्पूर्ण धान्य को देने वाली पाण्डु निधि है।

४ असि, मूसल, इत्यादि नाना आयुध को देने वाली माणवक निधि है।

५ तत, वितत, घन, सुशिर भेद वाले वादित्रो को देने वाली शख निधि है।

६ अनेक प्रकार के महल मकान आदि को देने वाली नैसर्प निधि है।

७ स्वर्गीय वस्त्रो की स्पर्द्धा करने वाले वेशकीमती वस्त्र को देने वाली पद्म निधि है।

८ स्त्री पुरुषो को उनके योग्य आभरण देने वाली पिंगल निधि है।

९ वज्र, वैडूर्य, मरकत मानिक्य, पद्म राग, पुष्प राग आदि को देने वाली सर्वरत्न निधि है।

इन निधियो मे से चक्रवर्ती की आज्ञानुसार चाहे जितनी भी चीज निकाल ली जाय तो भी अटूट रहती है।

सूत्र—

दशांगभोगानि ॥१९॥

दिव्य नगर, दिव्य भोजन, दिव्य भोजन, दिव्य शयन, दिव्य नाट्य, दिव्य आसन, दिव्य रत्न, दिव्य निधि, दिव्य सेना, दिव्य वाहन ऐसे दशाग भोग चक्रवर्ती की विभूतिया हैं।

आगे नव वलदेव का वर्णन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

सूत्र—

नव बलदेवाः ॥२०॥

यह नव वलदेव इस प्रकार है।

१ श्री कान्त, ३ शान्त चित्त, ३ वर बुद्धि, ४ मनोरथ, ५ दयामूर्ति, ६ विपुल कीर्ति ७ प्रभाकर, ८ सजयत, ९ जयत, ये अतीत काल के बलदेव हैं।

रथ, विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नदिमित्र, राम, पद्म यह वर्तमान काल के बलदेव है।

गाथा—

सगसिदि दु सुद सूणं, संगति सस्सतर समा लहि।
सह पट्टितिस संतरसहस चारसय माहु वले ॥

अर्थ—विजय की ८७ लाख, अचल की ७७ लाख, सुधर्म को ६७ लाख, सुप्रभ की ३७ लाख, सुदर्शन की १७ लाख, नदिमित्र की ३७ हजार, राम की १२ हजार पद्म की १२ हजार वर्ष आयु है।

सूत्र—

वासुदेव प्रतिवासुदेवनारदाश्चेति ॥२१॥

काकुस्थ, वरभद्र, समुद्र, ससृष्ट, वरवीर, शत्रुजय, दमितारि, प्रिय दर्शन और विमल वाहन यह अतीत काल के नव वासुदेव हैं।

निसु भ, विद्यु त प्रभ धरणीशिख, मनोवेग, चित्रवेग, दृढरथ, वज्रजघ, विद्यु दग, प्रहलाद ऐसे अतीति काल के प्रति वासुदेव है।

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवर, पुडरीक, दत्तनारायण, कृष्ण यह वर्तमान काल के वासुदेव हैं।

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुनिसु भ, कैटभ, बली, प्रहरण, रावण, जरासध यह वर्तमान काल के नव प्रतिवासुदेव है।

नदि, नदी मित्र, नन्दन, नदिभूति, वल, महावल, अतिवल, त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ यह भावी काल के नव वासदेव है।

१—श्री कठ, २—हरिकठ, ३—नील कठ, ४—अश्व कठ, ५—सुकठ, ६—शिखिकठ, ७—अश्वग्रीव, ८—हयग्रीव, ९—मयूर ग्रीव, ये भावी काल के नव प्रतिवासुदेव हैं।

(१) भीम (२) महा भीम (३) रुद्र (४) महारुद्र (५) काल (६) महाकाल (७) दुर्मुख (८) नरकमुख (९) अधो मुख ये नव नारद वर्तमान काल के हैं। अब उनकी आयु बताते हैं।

गाथा

शेयादिपनस्वहरि पन छट्टरदुगविरहमति बुगनचभे
दट्ठाट्ठमसूविइहदुग विरहिनेमि काल जोक्यन्नोह ॥
समय चुलसिदिविहतरि सट्ठितिसदशलक्खपण सट्ठि।
बतीसौ बोरेकं सहस माउस्स मध्य चक्कीनम् ॥

अर्थ—८४ लाख, ७२ लाख, ६० लाख, ३० लाख, १० लाख, ६५ हजार, ३२ हजार १२ हजार और १०००वर्ष अर्ध चक्रवर्ती की आयु क्रमश. होती है। अब इनकी उत्सेध [ऊंचाई] को कहते है।

गाथा—

सीदीसत्तरिसट्ठी पण्णापण्वाल ऊगतीसाणि।
वावीससोलदसधणु केसित्तिवयामि उच्छेहो ॥४७॥

अर्थ—८०, ७०, ६०, ५०, ४५, २६, २२, १६, १० धनुष नारायण के शरीरो की क्रमश ऊचाई है।

गाथा—

एदे नव पडिसत्तूणवाण हत्थेहिं वासुदेवाणं
णिय चक्केहि रणेसु समाहदा जंतिणिरय खिदिं ॥४८॥
ऊर्ध्वगा बासुदेवार्युर्निनिदाना भवान्तरे।
अधोगाश्च विदुर्वासुकेशवाः प्रतिशत्रवः ॥
पढमे सत्तमिवण्णो, पणछट्टिमपञ्च विगदो दत्तो।
नारायणो चउत्थि कसिनो तदियग्गरु अपापा ॥

अर्थ—ये प्रतिनारायण युद्ध मे नारायण के द्वारा चक्र से मारे जाते है और नरक को जाते हैं ॥४८॥

अर्थ—वलदेवो मे भाठ मोक्षगामी हैं। अन्त के वलदेव व्रह्मकल्प से आकर कृष्ण जब भावी तीर्थंकर होगे उनके वहा समवशरण मे प्रमुख गणधर होगे। तदनन्तर मोक्ष जावेंगे। नारायण प्रतिनारायण नरक जाते हैं ॥४९॥

अर्थ—पहला नारायण सातवें नरक मे, ५ नारायण छटे नरक मे, एक पाँचवे मे एक चौथे नरक मे और अतिम नारायण तीसरे नरक मे गया है। प्रतिनारायण भी इसी प्रकार नरक गये है ॥५०॥

गाथा—

कलहप्पिया कदापि धम्मररावासुदेवसमकाला
भम्भाणिरयगदे हिंसादेसेन गच्छंति ॥५०॥

अर्थ—नारद कलहप्रिय होते है, ब्रह्मचारी होते है, कुछ उनको धर्म से भी राग होता है। नारायणो के समय मे होते है। और मर कर नरक जाते है।

सूत्र .—

एकादश रूद्राः ॥ २२ ॥

भीमवली, जितशत्रु, रुद्र, विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल, पुंडरीक, अजितधर, अजितनाभि, पीठ, सात्यकि, यह ११ रुद्र हैं।

सूत्र—

उसहद कावे पढमदुसवरणयो, सत्तसुवि दिपौ उदिसु ।
पीडो संति जिंनिंदे वीरे सच्चइ सुदो जादो ॥५१॥
पणसयण पण्णूनसयं, पच्चसुदसहिणं नम रचउवीसं ।
टक्काय धनुष्सेहे सच्चयेतनयस्स सत्त करा ॥५२॥

इनका उत्सेध ५००, ४५०, १००, ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, २८, २४, धनुष है। अंतिम रुद्र की ऊंचाई सात हाथ है।

गाथा—

तेसिदिगीअत्तरोवगि लक्वो पुव्वाणिवालसक्खाऊ ।
मलसिवि सिट्ठेदुसदस हीणदलिगिवस्सणवसट्ठि ॥५३॥

इन रुद्रों की आयु को क्रम से कहते हैं।

८३ लाख पूर्व आयु, ७१ लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, १ लाख पूर्व, ८४ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ५० लाख ४० लाख वर्ष, २० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष ६९ वर्ष आयु है।

गाथा—

यज्जाणपादपढने दिट्टपणट्ठसंजमाभव्वो ।
कदिच्चि भवेसिज्झति हुगई दुक्खमसममहिमादो ॥५४॥
पढमा माघवी मरणे पण मघवी अट्ठमो दुरिट्ठमहेन्दो ।
अंजन पवण्णो मेघसुच्चई जो चोदो ॥५५॥

अर्थ—२–प्रमद, २समंद, ३–प्राकाम ४–कामद, ५–भव दूर, ६–मनोभव ७–मार, ८–काम, ९–रुद्र, १०–अंगज यह भावी काल के ११ रुद्र हैं।

गाथा—

कालेसु जिनवराण चउवीसाण हवति चउवीसा ।
ते वाहुवलिप्पमुहा कद्दमपाणि रुपमायारो ॥५६॥
तित्थयरातप्पियरा केशिवल चक्किरुद्दणारद्दा ।
कुलकर अगज पुरुपा भव्वा सिज्झत्ति नियमेण ॥५७॥

अर्थ—इस प्रकार ऊपर कहे हुए पुरुषो मे सभी तीर्थंकर मोक्ष जाते हैं। तीर्थंकरो के माता पिता कुलकर, कामदेव, बलदेव, ये सभी ऊर्ध्वगामी होते हैं। वासुदेव प्रति वासुदेव नारद रुद्र ये अधोगामी होते हैं।

चक्रवर्ती मे कोई ऊर्ध्वगामी होते हैं। कोई कोई अधोगामी होते हैं। त्रेसठ शलाका भव्य होते हैं। भेदाभेद रत्नत्रयात्मक धर्म को धारण कर उसी भव से स्वर्ग जाने तक जो कथा कही जाती है उसे अर्थाख्यान कहते हैं। मोक्ष जाने तक जो कथा है वह चारित्र कहलाती है। तीर्थंकर और चक्रवर्ती के कथानक को पुराण कहते हैं।

समन्त भद्र आचार्य ने भी ऐसा ही कहा है.----

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यं।
बोध समाधि निधान बोधति बोध. समीचीन. ।।

पच मन्दिर के पूर्वापर विदेह क्षेत्र में ऐसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव महान पुरुष सभी काल मे होते रहते हैं।

भरत ऐरावत क्षेत्र मे १८ कोड़ाकोड़ी सागर काल बीत जाने पर द्विगुण ६३ शलाका पुरुष दो कोड़ाकोड़ी काल के अन्दर पैदा होते हैं।

कहा भी है .----

जिनसमपट्टट्ठविदा समकाले सुन्नह्मयट्ठिमेरचिदा।
उभयजिनत्तरजादा सन्नेया चक्क हर रुद्दा ।।५८।।
पण्णरणजिनखदुति जेना, सुन्न दुज्जेण गगन जुगल जेन खदुगम।
जेन कज्जेण खदुजेणा क्यड्डिजयोतिषशालया नेया ।।५९।।
चक्कि दुग मत्थसुण्णं, हरिपण छह चक्कि केशि नव केशि।
अड्डिनभच्चक्कि हरिनभ, चक्कि हरिचक्कि सुण्ण दुगं ।।६०।।
रुद्दुगच्छ सुण्णा सत्तह रागगण जुगुणमिसाणव।
पण्णदनभाणितत्तो, सब्भयि तणों महावीरे ।।६१।।

यह भगवान जिनेन्द्र के अन्तराल काल मे होने वाले चक्रवर्ती इत्यादि की गाथा है।

श्री माघनद्याचार्य विरचित शास्त्र सार समुच्चय का प्रथमानुयोग नाम का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

करणानुयोगः

परम श्री जिन पतियं । स्मरियिसि भव्यर्गे पेल्वेणां कन्नर्डदि ॥
करणानुयोग मंभुव । भुवनत्रयेक हितमंनुतमं ॥१॥

अर्थ—वीतराग जिनेंद्र भगवान् का स्मरण करके तीन लोक मे हितकारी भव्य जीवो को हिंदी भाषा मे करणानुयोग शास्त्र के विवेचन को कहूँगा।

अथ त्रिविधो लोकः ॥१॥

अर्थ—अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक इस प्रकार यह तीन लोक है। जिधर देखिये उधर दीखने वाले अनत आकाश के बीच अनादि निधन अकृत्रिम स्वाभाविक नित्य सम्पूर्ण लोक आकाश है। जिसके अन्तर मे जीवाजीवादि सम्पूर्ण द्रव्य भरे हुए हैं। जोकि नीचे से ऊपर तक चौदह राजु ऊचा है। पूर्व से पश्चिम मे नीचे सात राजु चौडा, सात राजु की ऊचाई पर आकर मध्यलोक मे एक राजु चौडा, फिर क्रमश फैल कर साढे दस राजू की ऊचाई पर पाँच राजु होकर क्रमश घटता जाकर अन्त मे एक राजु चौडा रह गया है। दक्षिण से उत्तर मे सब जगह सात राजु है। जो घनोदधि, घनोनील और तनुवात नाम वाले तीन वातवलयो से वेष्टित है। नीचे मे सात राजु ऊंचाई वाला अधोलोक है जिसमे भवनवासी देव और नारकी रहते हैं।

द्वीप समुद्र का आधार, महा मेरु के मूलभाग से लेकर ऊर्ध्व भाग तक एक लाख योजन ऊचा मध्यम लोक है। स्वर्गादि का आधार भूत पचचूलिका मूल से लेकर किंचित न्यून सप्त रज्जु ऊचाई वाला ऊर्ध्वलोक है। ऐसे तीन लोक के बीच मे एक रज्जु विस्तार चौदह राजु ऊचाई वाली त्रस नाली है।

सप्त नरकाः ॥२॥

अर्थ—रत्न, शर्करा, बालुका, पक, धूम, तम, महातम इन नामो वाले सात नरक है। इनका विस्तार इस प्रकार है।

घनाबु वाताकाश प्रतिष्ठित एक एक रज्जु की ऊचाई के विभाग से विभक्त होकर लोकात तक विस्तार वाली ये महा भूमियाँ हैं।

गाथा २—

रयनप्पहातिहा, खरभागापंकापवहुल भागोति ।
सोलस चौरासिदि जोयन सहस्स वाहल्ला ॥१॥

अर्थ—खर भाग १६ हजार योजन है। पक भाग ८४ हजार योजन और अव्वहुलभाग ८० हजार है।
अव्हुल भाग ८० योजन है कुल १ लाख के ऊपर ८० हजार योजन वाला रत्न प्रभा है।

उससे नीचे की भूमियाँ क्रमश.—३२००० हजार २८००० हजार २४००० हजार २०००० हजार १६००० हजार आठ हजार बाहुल्य ऊचाई वाली है। और सप्तम नरक के नीचे के भाग से लेकर १००० योजन प्रमाण को छोडकर प्रस्तार क्रम से विल है।

एकोनपंचाशत् पटलानि ॥३॥

सात नरको के अंतर्गत रहने वाले ४९ पटल इस प्रकार से हैं।

१ सीमान्त, २ निरय, ३ रौरव, ४ भ्रान्त, ५ उद्भ्रान्त, ६ सम्भ्रान्त, ७ प्रसम्भ्रान्त, ८ विभ्रान्त, ९ त्रस्त, १० त्रसित, ११ वक्रान्त, १२ अवक्रान्त, १३ घर्म यह पहिले नरक मे १३ इन्द्रक है।

१ ततक, २ स्तनक, ३ वनक, ४ मनक, ५ खडा, ६ खडिका, ७ जिह्वा, ८ जिव्हक, ९ नोल, १० लोलक, ११ लोलवत्त, १२ पटल वंशा नाम की दूसरी पृथ्वी मे हैं।

१ तप्त, २ तप्ति, ३ तपण ४ तापण, ५ निदाघ, ६ उज्वलका, ७ प्रज्वलिका, ८ संज्वलिका, ९ संप्रज्वालिका ये नव पटल मेघा नाम की तीसरी पृथ्वी मे हैं।

१ आर, २ मार, ३ तार, ४ वर्चस्क, ५ तम ६ फडा ७ फडाय, यह सात इन्द्रक अंजना नाम की चौथी पृथ्वी मे हैं।

१ तदुक, २ भ्रमक, ३ भषक, ४ अन्ध, ५ तमिश्र, यह पाँच इन्द्रक अरिष्टा नामक नरक मे हैं।

हिम, वार्धम लल्लक, यह तीन इन्द्रक मघवा नाम की छठी पृथ्वी मे हैं।

अवधिस्थान नाम के इन्द्रक माघवी नाम की सातवी पृथ्वी में है।

पटल के मध्य मे इन्द्रक होते है। उन इन्द्रको की आठो दिशाओ मे

श्रेणिवद्ध विल रहते है। उसके आजू बाजू अनेक प्रकार के प्रकीर्णक रहते हैं

गाथा —

तेरादिदुहि निद्दय श्रेडवद्धा दिशासुविदिसासु।

उगणवगणद दालादि एककेकेणूनयाकमसो ॥२॥

अब प्रत्येक पटल मे श्रेणि वद्ध कितने है सो आगे के सूत्र मे कहते है।

चतुरुत्तर षड शत नव सहस्र श्रेणि वद्धानि ॥४॥

रत्नप्रभा के १३ पटलो मे ४४२० श्रेणि वद्ध हैं। वशा मे २६८४, मेघा मे १४७६, और अजना के सात पटलो मे ७०० श्रेणि वद्ध है। अरिष्टा के पाच पटलो मे २६०, मघवा के तीन पटलो मे ६०, और महातमा के एक पटल में ४ श्रेणि वद्ध है।

इनके नाम पूर्वादि दिशाओ मे काल, महाकाल, रौरव, श्रम, महारौरव, आदि है। यह सभी मिलकर ९६०४ श्रेणि वद्ध होते है। इन श्रेणिवद्धो के वीच में प्रकीर्णक बिल कितने हैं, सो आगे के सूत्र द्वारा कहते हैं।

त्र्यशीतिलशनवतिसहस्त्रिशतत्र्यूनपंचाशत्प्रकीर्णकाः ॥५॥

१ घर्मा मे २९९५५६२ प्रकीर्णक है।

२ वशा मे २४९७३०५ प्रकीर्णक है।

३ मेघा मे १४९८५१५ प्रकीर्णक है।

४ अंजना मे ९९९२९३ प्रकीर्णक हैं।

५ अरिष्टा मे २९९७३५ प्रकीर्णक है।

६ मघवी मे ९९९३२ प्रकीर्णक हैं।

७ माघवी मे केवल प्रकीर्णक होते हैं।

इनके सम्पूर्ण प्रकीर्णक मिलकर ८३९०३४७ होते हैं। इनके अन्दर विल की सख्या बताने को सूत्र कहते हैं।

चतुरशीतिलक्षविलानि ॥६॥

अर्थ १—घर्मा मे ३० लाख विल है।

२ वंशा मे २५ लाख विल है।

३ मेघा मे १५ लाख विल हैं।

४ अजना मे १० लाख विल हैं।

५ अरिष्टा में ३ लाख विल हैं।

६ मघवी में ५ कम १ लाख विल है।

७ माघवी मे केवल ५ विल हैं।

यह सब मिलकर चौरासी लाख (८४०००००) विल होते हैं।

श्लोक कानड़ी भाषा मे—

मूवत्तिपत्तैव, तावगपदिनैदुपत्तुमूरयदूनं ।
भाविर्पाडवुलक्षगळे, पेळ्वुदुबळिकमयदुनरक विलंगळ् ॥

अर्थात् उपर्युक्त सभी विल (८४०००००) होते है।

इन्द्रक संख्यात योजन विस्तार वाले और श्रेणीवद्ध असंख्यात योजन विस्तार वाले होते है। प्रकीर्णकों मे कोई संख्यात योजन, और कोई असंख्यात योजन वाले विल होते हैं। अब चार प्रकार के दुख के सम्वन्ध मे सूत्र कहते हैं।

चतुर्विधदु.खमिति ॥७॥

सहज, शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक यह चार प्रकार के दुख होते हैं।

शारीराज्वरकुष्टाद्या क्रोधाद्या मानसास्मृताः ।
आगन्तवो भिघातोत्थाः सहजा क्षुत्तृषादयाः ॥

अर्थात् क्षेत्रज, असातोदयज शरीरज, मानसिक, परस्परोदीरित और दनुजो के द्वारा होने वाले अनेक प्रकार के दुखों से रात और दिन यह जीव वहां दुख पाता है।

इस जीव को नरको मे एक क्षण मात्र भी सम्यक्त्व ग्रहणकाल को छोड़कर वाकी समय में सुख लेश मात्र भी नही मिलता। अर्थात् सम्यक्त्व विना इस संसार मे सुख नही।

तीसरे नरक से आगे असुर कुमार के द्वारा किया हुआ दुख नही है। क्योंकि देव लोग आगे नही जाते है। रत्न प्रभा से धूमप्रभा के तीन भाग तक होने वाले (२२५०००) विलो मे से मेरु पर्वत के समान लोहे के गोले को यदि वनाकर डाल दिया जाय तो उसी समय पिघल कर पानी हो जाता है, इतनी गर्मी है।

और वहां से नीचे १७५००० और विल हैं। वे इतने ठंडे होते हैं कि—

अगर ऊपर कहा हुआ मेरु पर्वत के समान पिंड को गला कर पानी

करके उसका डाल दिया जाय तो तुरन्त ही पिंड बन जाता है। ऐसी इस पृथ्वी की महिमा है।

अब उन भूमियो मे कौन उत्पन्न होते है, सो बताते हैं, ऐसी कुत्सित योनि मे जन्म लेने वाले जीव वे होते है जोकि भगवान् वीतराग का कहा हुआ जो समीचीन मार्ग जैन धर्म है उसपर श्रद्धान न रखने वाले हो, उसको न मानने वाले तथा उनके अनुयायी से क्लेश परिणामी, मिथ्या वाद करने वाले, मद्य मास मधु का सेवन करने वाले, अपने कुल देवता की आराधना का बहाना करके पशु बलि देने वाले, पर नारी सेवनेवाले, दुर्ध्यान दुर्लेश्या से मरने वाले, वहा से अपने पाप कर्म के अनुसार मरकर पहिले नरक से सातवें नरक तक जाकर जन्म लेते हैं।

अन्तर्मुहूर्त काल मे ही षट्पर्याप्ति सहित पूर्णावयव-वाले होकर उत्पन्न होते हैं। उसी समय मे उनके सम्पूर्ण शरीर को हजारो बिच्छू एकत्र होकर काटने सरीखी वेदना होती है अथवा उनके शरीर मे ऐसी वेदना निरतर होती रहती है जो यहाँ पर हालाहल विप खाने से भी नही होती। नारकी लोग जन्म लेते ही जब अपने विल मे से नीचे जमीन पर पडते है तब ऊपर से वज्र शिला पर पडने वाले पक्व कटहल के फल के समान उनके शरीर के टुकडे टुकडे हो जाते हैं। फिर पारे के समान वापिस मिलकर जब वह नारकी खडा होता है तथा गुस्से मे लाल आखें करके जब सामने देखता है तो पुराने नारकी को आता हुआ देखकर और भी भयभीत होता है। उसी समय अपने आप को तथा औरो को भी सन्ताप देने वाला विभङ्ग ज्ञान उसे पैदा हो जाता है। उत्पन्न होने वाले पुराने नारकी को देखकर भयभीत होकर अपने को और दूसरे को अत्यत सताप को उत्पन्न करने वाले विभग ज्ञान से जानता है—

जिनधर्मके दयारसाब्धिगे वृथाविद्वेषममाळ्पमु ।
निनदुर्भावदिनाद पापदफल निष्कारण द्वेषदु ॥
विनम नारककोटियोळपडेवुद् नायिनायिगळोळयोपर्वाळ् ।
मुनिदोर्वरनोर्वरेदिक्कडिखड माडुत दण्डिपर् ॥१॥

इवरिंदिवु सवियेनुतं ।
सविनोळ्पं पळवुतेरद मृगदडगविवाखुवु ॥
सविपेळेनुतवनव ।
यवगळं कोय्दु इडुवरवनाननदोळ् ॥१॥

मोरेयळिव मद्यपावन ।
नेरेनेदं मधुवनटिट् तलेयोळ् तलिथि ॥

प्परगुलगळ तलेयिंदिलि ।
एरवळ् ततळ् लळिसि कुदिवलोहद्रवमं ॥२॥
यलं मिलवो निनगल्लेद ।
निळळारदी पाण्के बंदळिद लबा ॥
नलिद् नेरेयेद् कडुगा ।
य्द लोहपुत्रिकेयनाग्रहदिनप्पिसुवर् ॥३॥

अर्थात्—पुराने नारकी जीव वहाँ उन नये नारकियो को देखकर अत्यन्त कठोर वचन कहते हुये उन नारकी जीवो का घात करा देते हैं। पुन' उस शरीर मे जो घाव हो गया उस पर अत्यन्त तीक्ष्ण खारी जल से सीचते हैं।

गद्य का अर्थ–पुन. अग्नि को जैसे घी मिलने से अग्नि बढती जाती है उसी तरह सुर और असुर कुमार उन नारकियों को आपस के पूर्व जन्म के वैर याद दिलवा कर तथा विभग ज्ञान से उनके पूर्व जन्म मे किये हुए दोष की चेष्टा को जानकर अपने दोष आप खुद ही न समझ कर अत्यन्त क्रोधित होकर लड़ते हैं और आपस मे अत्यन्त वेदना को प्राप्त होते हुए मूर्छित हो जाते है। अब नवीन नारकी क्या करते है सो कहते है——

तेवि विहंगेण तदो जाणिदपुव्वावरारि संबंधा ।
असुहापुहविक्किरिया हणंति हणंति वा तेहिं ॥८॥

अर्थ—वे नवीन नारकी भी विभंग अवधि ज्ञान के कारण तहां पर्याप्त पूर्ण भये पीछे जान्या है पिछला वैरीपणा का सम्बन्ध जिनने ऐसे बहुरि अशुभ अपृथक विक्रिया जिनके पाइये ऐसे होते संते अन्य नारकीनि को हने है। वा तिना नारकियो करि आप हनिये है। ऐसे परस्पर वैर घात प्रवर्ते है। वहाँ के नारकियो को ऐसा कुअवधिज्ञान होता है जिसके कारण परस्पर वैर को जानकर विरोध रूप ही प्रवर्ते हैं। बहुरि जो पूर्व भव मे कोई उपकार किया हो वे जलती हुई अग्नि की ज्वाला मे घी पडने पर जैसे वह उत्तरोत्तर बढती जाती है उसी प्रकार एक दूसरे को देखने से उस नारकी के मन मे क्रोध का वेग बढ़ता है। तथा अपने किये हुये दोषो की तरफ न देख कर सिर्फ सामने वाले के दोषो का स्मरण करके उसे चुनौती देते हुए इस प्रकार कहते हैं कि-देखो तुमने गाय के मांस को बहुत अच्छा समझ कर खाया था तथा बकरे के मांस को उससे भी अच्छा समझ कर खाया था अतः अब यह देखो उससे भी बहुत अच्छा मास है। ऐसा कह कर उसी के हाथ आदि के मास को काट कर उसके

मुंह में जबरन देता है। इसी प्रकार तुमने जो मद्य पान करके सुख माना था
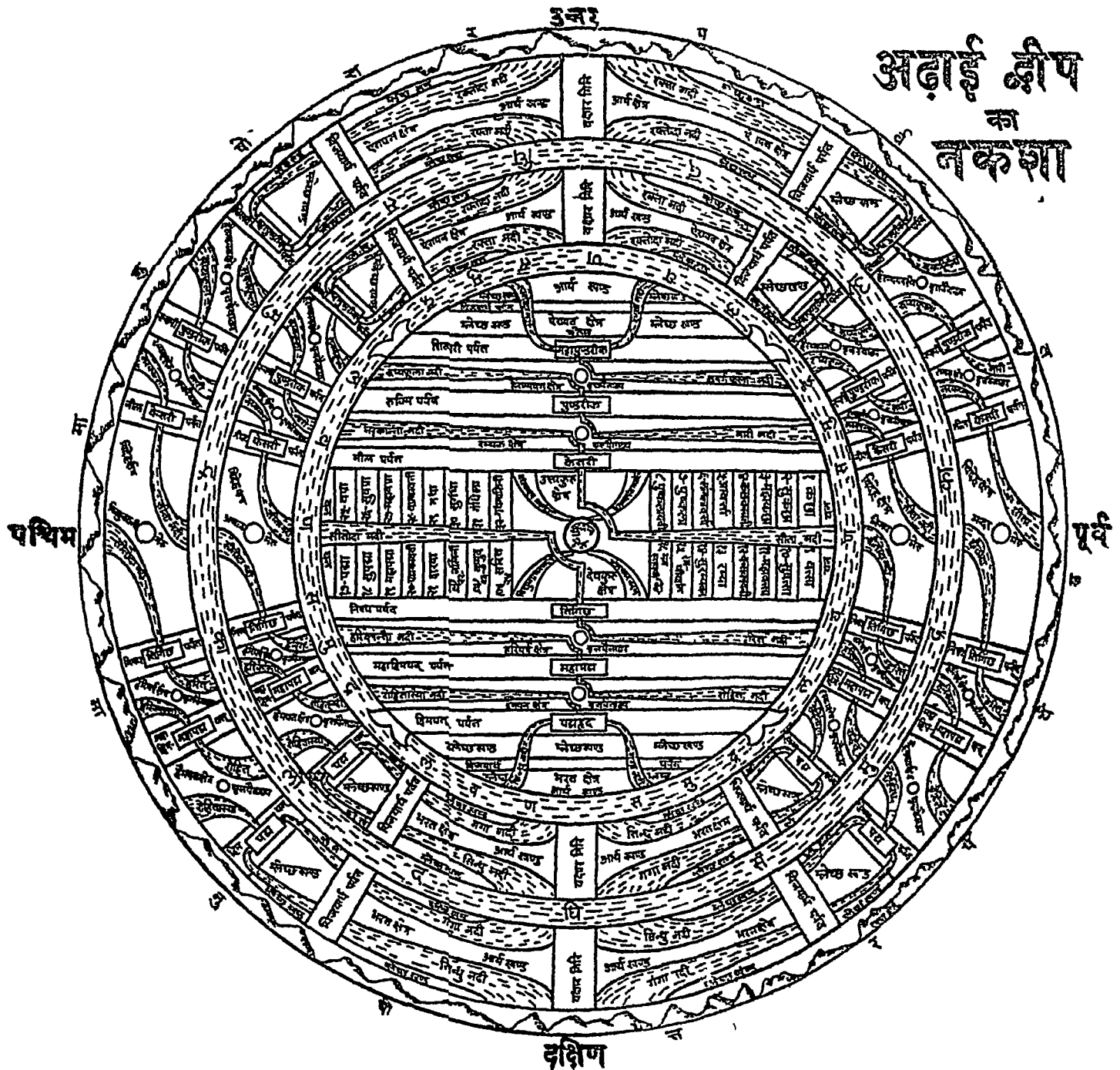
पिटक दाह, शिरो रोग सर्वाङ्ग ज्वर आदि अनेकानेक रोग बहुत ही सताते

मुंह में जबरन देता है। इसी प्रकार तुमने जो मद्य पान करके सुख माना था अब यह पीवो, ऐसा कह कर गरम गरम पिघले लोह को उस के मुंह में देता है तथा सिर पर डालता है। किम्च दूसरे की स्त्री को खूबसूरत (सुन्दर) समझ कर उसके साथ मे बलात्कार किया था, अब यह देखो कैसी सुन्दर है ऐसा कह कर लोहे की जलती पुतली के साथ मे उसका आलिङ्गन करवाता है। तब उसका शरीर जलने लगता है और मूर्छा खाकर गिर पडता है। फिर क्षण भर मे होश मे आकर उठ खडा होता है और अपने पूर्वोक्त कर्मों के बारे मे सोचने लगता है कि मैंने नर जन्म मे दूसरे लोगो को कुष्ठादि रोग युक्त देख कर उन से ग्लानि की थी, दूसरो को भय पैदा करने वाला बीभत्स रस का प्रदर्शन किया था, अद्भुत रस का प्रकाशन किया था, शृंगार रस को अपना कर इतर व्यभिचारिणी स्त्रियो के साथ मे आलिङ्गन चुम्बनादि कर्म किया था उसी पाप के उदय से मै यहां आकर पैदा हुआ हूँ। ऐसा सोचते हुये सन्तप्त होकर सामने देखता है तो नदी दीख पड़ती है, तो पानी पीने की इच्छा से वहा जाता है और नदी के उस दुर्गन्धमय तथा विषैले पानी को जब पीता है तो एकाएक उस के शरीर मे पहले से भी अधिक वेदना होती है, तो उसे शात करने की भावना को लेकर सामने दीख पडने वाले वृक्ष के नीचे जाकर बैठता है।

ननेगळे नडुगु कामिग। ळनेंब मातिलिल पुसि परस्त्री ॥
ननेय मोनेयंबुमलरळनंबु। मावन दोळवननोयिपुवु दिदं ॥४॥
वोळ गोळगेकळ्वरपुसि। गेळेयिदोळगे सुळिदु पर वनिता स ॥
कुल दोळु नेरेद वरघ। मोळगोळ गिरिगु विचित्र रोगच्छलदिं ॥५॥

इस लोक मे यह वात प्रसिद्ध है कि वृक्ष के फूल पत्ते जब कामी लोगों के ऊपर पडते है तो उन्हे आनन्द प्रतीत होता है किन्तु उस नारकी के शरीर पर जो वृक्ष के फूल पत्ते पडते हैं सो सब तलवार का काम करते है। उन से उसका शरीर कट जाता है।

ज्वरदाह श्वास कास व्रण पिटिक शिरो रोग सर्वंग शूला।
दिरू जा संदोह जड़ा भरदिं लोलरुत सुत्तलु बेने यिदं।
बिरयुत्त नार कर्क ळ्बिरि किनेड़े गळं शस्त्रदिं सोळ्दु गो।
ळ् गरे यु त्तं कूगिडुत्त
मति ल्के र्शदि बरुदु तिप्पर् ॥६॥

अर्थात् इस प्रकार उस नारकी को एक साथ ज्वरकाश श्वास, व्रण, पिटक दाह, शिरो रोग सर्वाङ्ग ज्वर आदि अनेकानेक रोग बहुत ही सताते

।,इतने ही मे और नारकी जीव आकर उसे फिर कष्ट देने लगते है। तब बुरी तरह से रोने चिल्लाने लगता है इस प्रकार से कर्मज तथा रोगज इन दोनों प्रकार के कष्ट उस नारकी जीव को निरन्तर सताते रहते हैं और उसे घोर सकट-मय जीवन बिताना पडता है ।

वहाँ उन नरको मे रीछ, बाघ, सिंह आदि भयङ्कर पशु तथा गीध, काक, चील आदि कष्टदायक पक्षियो आदि के रूप से नारकी जीव खुद ही विक्रिया के द्वारा अपने शरीर को वचा कर एक दूसरे को कष्ट पहुचाते रहते है तथा बरछी, भाला, तलवार आदि अशुभ विक्रिया रूप मे उन नारकियों का शरीर अपने आप दुख सहन करता रहता है।

नारकी जीव की आयु और ऊंचाई आदि

सीमतक मे जघन्य आयु १०००० वर्ष की है उत्कृष्ट आयु ९०००० वर्ष की होती है। क्रम से बढते-बढ़ते आगे चलकर पहले नरक के अन्त के इन्द्रक मे उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम की हो जाती है और द्वितीयादि नरको मे ३, ७, १०, १७, २२, ३३ सागरोपम की उत्कृष्टायु होती है। ऊपर की उत्कृष्ट मे एक समय अधिक करने से नीचे वाले की जघन्य आयु होती है। शरीर की ऊचाई सीमातक मे सात हाथ होती है। आगे बढ़ती हुई अपने अपने अन्त के इन्द्रक मे पहिले वाले के शरीर की ऊंचाई सात धनुष तीन हाथ छ. अंगुल अन्तर से द्विगुण क्रम से होती है। अन्त मे ५०० धनुष होती है। कहा भी है--

गाथा--

फणमिन्थिे दशनो जेवा जीवासहसाउगजहन्निदरे ।
तेन उदि लक्कजेट्ठा असक्क पुव्वाए कोडये ॥३॥
सायरदशउत्तीरिय सग सग चरिमिद्धयम्मि इगतिन्नी।
सत्तदशऊ व हिवाविसत्तेत्ति समा ॥४ ॥
आसद अंथ विशेषी रूण वाइदम्मि हाणिचयं ।
उवरिम जेट्ठा सहयेण हिय हेट्ठिम जहण्णं तु ॥५॥
पढम सत्त तिच्चत्रक उदयहृणुयरणि अ गुलसेसे ।
दुगुण कम पढमिदि रयणतियंजाण हाणिचय ॥६॥

अब आगे नारकी के अवधि क्षेत्र को बताते हैं --

श्लोक कानडी--

क्रोशचतुष्क मोदलोळ ।
क्रोशार्धं मैंदु कुन्दुगुंबळि कत्तल् ॥
क्रोशादि कमप्पिनसम्,
क्लेश पेच्चलु कुंदु गुम तद्बोध ॥२५॥

अवधि ज्ञान का विषयपहिले चार कोस बाद मे आधा कोस की कमी होते होते क्रम से एक कोस रह जाता है क्लेश के बढते हुए अवधि का विषय थोडा होता जाता है ।

अब लेश्या को कहते हैं—

प्रथम, द्वितीय, तृतीय नरको मे क्रम से कापोत जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट होती है । परन्तु तृतीय चतुर्थ पंचम नरको मे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट होती है । पचम षष्ठ और सप्तम नरको मे क्रम से कृष्ण लेश्या जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट होती है । इसके सम्बन्ध मे कहा भी है—

अमनस रिसि पविहग्गमघनसि हित्तिण मच्छमणवाण ।
पढमादिसरसप्पति अडवारादो दुदवण्णिवारत्ति ।।७।।

अब आगे नरक मे निरन्तर कितनी बार जन्म सकते है सो बताते हैं—

प्रथम नरक मे आठ बार जन्म लेते है । फिर एक एक कम होते हुए महातमप्रभा मे दो बार जन्म लेते है । पुन वहाँ जन्म लेकर जीने वाले नारकी नारक गति मे तथा देव गति मे जन्म नही लेते है । कर्म भूमि मे गर्भज मनुष्य होकर सैनी पर्याप्त गर्भज, तिर्यंच होकर उत्पन्न होते है । महातमप्रभा के जीव को मरण समय सम्यक्त्व नही होता, मरण के काल मे मिथ्यात्व को प्राप्त होता है उस नरक से आया जीव मनुष्य गति को प्राप्त नही होता । तिर्यंच गति में जन्म लेकर कदाचित् सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय, परन्तु वह व्रत धारण करने योग्य नही होता है । छठे नरक मे से आया हुआ जीव अणुव्रत को धारण कर सकता है । परन्तु महाव्रत धारण नही कर सकता । पाचवे नरक से आया हुआ जीव महाव्रत धारण कर सकता है परन्तु चरम-शरीरी न होने के कारण मोक्ष प्राप्त नही कर सकता है । चौथे नरक से आया हुआ जीव चरम-शरीरी हो सकता है परन्तु तीर्थङ्कर पद प्राप्त नही कर सकता है । तीन, दो और एक, इन नरको मे से निकल कर तीर्थङ्कर हो सकता है । क्योकि पूर्व जन्म में मिथ्यात्व दशा मे नरकायु का बन्ध करके फिर बाद मे सम्यक्त्व को प्राप्त होकर दर्शन-विशुद्धि पूर्वक तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लेने वाला जीव ऐसा हो सकता है । नरक से आये हुए जीव को वासुदेवत्व, प्रतिवासुदेवत्व, बलदेवत्व, सकल चक्रवर्ती इत्यादि पद प्राप्त नही होता है । क्योकि उस पदवी को चारित्र ही मुख्य कारण होने से दुर्धर तपश्चरण के द्वारा वैमानिक देव होकर बाद मे यहा आकर उस पद को प्राप्त होते है ।

गाथा—

निरयचरो णत्थि हरि बलचक्कितुरियपर दिण्णिसट्ठि ।
तित्थयर मग्गसजमदेससजमो णत्थिणियमेण ।।७।।

उस प्रथम पृथ्वी के नीचे एक एक रज्जु प्रमाण लोकाकाश है। वहा भी जहां नारकी नही हैं ऐसे स्थान मे पच स्थावर जीव होते हैं।

मोदलिधर्मेयखरभा गदोळ तन्नमहिय मध्यभागद पदा।
द्यदोळ कुमार रेण्बा। त्रिदशरभवनगळप्पवति विपुलगळ् ॥

इस प्रकार सात सूत्रो के द्वारा अधोलोक का स्वरूप संक्षेप से कहा गया है।

मध्य लोक का स्वरूप

जम्बूद्वीपलवणसमुद्राद्यसंख्यातपद्वीसमुद्राः ॥ १ ॥

अर्थ—मध्य लोक मे जम्बू द्वीप तथा लवण समुद्र आदि असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। मध्य लोक का स्वरूप इस प्रकार है—जिस लोक के बीच असंख्यात द्वीप समुद्र व्यंतर देव तथा ज्योतिष्क विमान रहते हैं उस मध्य लोक के बीच नाभि के समान स्थित महामेरु पर्वत को अपने बीच किये हुए एक लक्ष योजन विस्तार वाला जम्बू द्वीप है। उससे दूने विस्तार वाला लवण समुद्र है। तथा लवणोदधि से दूने विस्तार वाला धातकी खड द्वीप है। और उससे दूने विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है। और उससे दुगुना पुष्करवर द्वीप है। इससे आगे कहे जाने वाले समुद्र और द्वीपो के नाम ये हैं—

पुष्कर द्वीप से पुष्कर समुद्र। ४ वारुणी वर द्वीप, ५ क्षीरवर द्वीप, ६ घृतवर द्वीप, ७ क्षौद्रवर द्वीप, ८ नंदीश्वर द्वीप, ९ वरुण वर द्वीप, १० अरुणाभास द्वीप, ११ कुडलवर द्वीप, १२ शखवर द्वीप, १३ रुचिकवर द्वीप, १४ भुजंगवर द्वीप, १५ कुशिकवर दीप, १६ क्रौंचवर द्वीप ये १६ द्वीप समुद्र के अंतर भाग मे है। वहा से आगे असख्यात द्वीप समुद्र जाने पर क्रम से अंतिम के १६ द्वीप समुद्र के नाम बताते है।

(१) मणिच्छिला द्वीप	मणिच्छिला समुद्र
(२) हरिताल द्वीप	हरिताल समुद्र
(३) सिन्धुवर द्वीप	सिन्धुवर समुद्र
(४) श्यामकवर द्वीप	श्यामकवर समुद्र
(५) अजनवर द्वीप	अ जनवर समुद्र
(६) हिंगुलिकवर द्वीप	हिंगुलिकवर समुद्र
(७) रूप्यवर द्वीप	रूप्यवर समुद्र
(८) सुवर्णवर द्वीप	सुवर्णवर समुद्र

(६) वज्रवर द्वीप	वज्रवर समुद्र
(१०) वैडूर्यवर द्वीप	वैडूर्यवर समुद्र
(११) नागवर द्वीप	नागवर समुद्र
(१२) भूतवर द्वीप	भूतवर समुद्र
(१३) यक्षवर द्वीप	यक्षवर समुद्र
(१४) देववर द्वीप	देववर सुमुद्र
(१५) अहिन्द्रवर द्वीप	अहिन्द्रवर समुद्र
(१६) स्वयभूरमण द्वीप	स्वयभूरमण समुद्र

अंत के द्वीप मे चार गोपुर सहित आठ योजन ऊची, १२ योजन विस्तार वाली ४ योजन मुख विस्तार युक्त वज्र वेदिका है। इसी प्रकार प्रत्येक द्वीप समुन्द्र के बीच मे एक एक वज्रवेदिका है। ये वेदिका ५०० धनुष ऊंची होती है। दश कोश उन्नत पदन वेदिका है। समस्त द्वीप समुन्द्र कितने होते हैं ? इसके समाधान मे आचार्य कहते है —

७५ कोडाकोडी उद्धार पल्योपम का जितने रोम प्रमाण है उतने द्वीप समुद्र समझना चाहिये। इस जम्बूद्वीप से आठवें नदीश्वर का वलय विस्तार १६३ करोड़ ८४ लाख योजन प्रमाण होता है।उसके चारो ओर दिशा के मध्य प्रदेश मे ८४००० चौरासी हजार योजन ऊंचाई और उतनी ही चौडाई-संयुक्त चार अंजन पर्वत है। उसके चारो ओर चारो दिशाओ मे १०,००० योजन समुचतुरस्त्र १००० योजन गहरी जलचर जीवो से रहित जलपूर्ण ४ बावडी हैं। लाख योजन लंबे ७०,००० योजन चौडे सयुक्त अशोक सप्तच्छद, चपक, आम्रवन, चतुष्टय-विराजित, नदी, नदवती, नदोत्तरी नदिषेणा नामक चार बावडी हैं। ये पूर्व दिशा के अ जन पर्वत की चार दिशाओ की हैं। अरजा, विरजा, अशोक, वीत-शोक, ऐसे चार सरोवर (बावडी) दक्षिण अ जन पर्वत की चार दिशा मे हैं। विजय, वैजयत, जयत, अपराजित ऐसे चार सरोवर (बावडी) पश्चिम अंजन पर्वत की दिशा वाले हैं। रम्य रमणीय, सुप्रभा, सर्वतोभद्र ऐसे चार सरोवर उत्तर अंजन की दिशा के हैं।

इन १६ सरों के मध्य प्रदेश मे १०,००० योजन ऊंचाई तथा चौडाई-सयुक्त दधिमुख पर्वत है। उन सरोवरो के बाह्य कोण-द्वय मे १००० योजन लबाई चौड़ाई सयुक्त सुवर्ण वर्ण के ३२ रतिकर पर्वत हैं। इन ५२ पर्वतो के शिखर पर चार प्रकार गोपुर सहित जिन मन्दिर हैं। श्री तालपरिस्कृत सहित ध्वजा मालादि अलकृत (शोभाय मान) अभिषेक, पूजन, क्रीडन, सगति, नाटक अवलोकनादि मंडप है। विकसित कमल कुसुम से शोभायमान दीर्घिका (वापी)

संयुक्त चारों दिशामें चतुर्दश महावीथी [गली] है। मानस्तम्भ, नवस्तंभसे अभि-राम से धूपकुंभ, अष्ट मंगलालकृत प्रागण है। कोटि दिनकर प्रभावीन प्रातिहार्य सहित ५०० धनुष ऊंचो जिन प्रतिमा प्रत्येक मन्दिर में एक एक है।

वहाँ सौधर्म इन्द्र प्रमुख सुरासुर समिति [सभा] सहित प्रत्येक वर्ष मे ३ बार यात्रा करते हैं। अष्टान्हिक नामक महामह (पूजातिशय) करते है। और ७५,००० योजन ऊंचाई १०,२२० योजन भूव्यास तथा ४२४० योजन मुख व्यास वाला सोने के समान कुंडल गिरि पर्वत कुण्डलपुर द्वीप मे है। उसकी प्रत्येक दिशा मे एक एक जिन मन्दिर है और चार चार अंतर कूट है।।

गाथा.—

कुंडलवर पर्वत मदु।
कुंडलसद्वीपदर्घदोळ् वळसिकुं
कुंडलद वोलदरोळ् गुण।
मंडनन गृहाळि नाल्के नाल्कुं देशेयोळ् ।।

चौरासी हजार योजन उत्सेध विस्तार वाले रुचकाद्रि के वाये तट मे ३२ कूट तथा अभ्यतर मे चार जिन मन्दिर है।

गाथा.—

वर रूचक मंघ गिरियोळ्।
निरूत रूचकार्धमल्लि वलयाकृतियिं ।।
परिवेष्ठिसिद्दुंददरोळ्।
पुरूजिन भवनाळि नाल्के नाल्कुं दिशेयोळ् ।।३६।।

तथा इस स्वयभू रमण द्वीपार्ध को मानुषोत्तर पर्वत के समान स्वयप्रभा-चल घेर रहा है। उस मानुषोत्तर पर्वत से स्वयप्रभाचल तक सम्पूर्ण द्वीप समुद्र में जघन्य तियंच भोग भूमि रहती है। वहा जलचर प्राणी नही हैं। वहाँ थलचर प्राणी मिथुन रूप मे उत्पन्न होकर परस्पर विरोध रहित होकर तृण पत्र फलादि का आहार कर सुख से एक पल्योपम काल बिताकर अ त मे देवगति मे जाते हैं। वहाँ निःशील व्रत होते हुए दानानुमोदन के फल से वहाँ उत्पन्न होते हैं। और स्वयंप्रभ पर्वत से बाहर स्वयभूरमण समुद्र के अंत तक कर्मभूमि का प्रवीचार होता है। वहाँ वर्षा हवा, धूप, पसीना आदि सभी होता है। वहाँ तिर्यञ्च योनिज पचम गुणस्थान वाले होते हैं। अपने अपने परिणाम के समान आयु को बांधकर चारो गति मे भ्रमण करते हैं।

पुन उस लवण वारुणि वर, क्षीर, घृतवर समुद्र का पानी अपने अपने नाम रस के समान स्वाद को प्रगट करता है। कालोदधि, पुष्कर, स्वयभूर-

मण समुद्र के पानी अरुचिकारक हैं। बाकी असंख्यात समुद्रो का पानी गन्ने के रस के समान है। उन समुद्रो मे जलचर प्राणी नही रहते हैं। जलचर जीव कहाँ रहते हैं सो बताते है—

लवण समुद्र मे, कालोदधि, व अ त के स्वयभूरमण में में जलचर प्राणी रहते है। लवण समुद्र की मछली की लम्बाई ३६ योजनहै अ तके स्वयंभूरमण समुद्र की मछली की लम्बाई १००० योजन प्रमाण है। अपनी अपनी नदी की मछली अपने अपने समुद्र से आधी होती है (उस मछली की लम्बाई समुद्र की मछली से आधी होती है)। आगे एकेन्द्रिय जीव की आयु तथा उत्कृष्ट अवगाहना को बताते है।

एकेन्द्रिय जाति मे कमल १ कोश से १००० योजन तक के होते हैं।
द्विइन्द्रिय जाति मे शख १२ योजन के होते हैं।
तीन इन्द्रिय जाति मे वृश्चिक (बीछू) तीन कोश के होते है।
चतुरिंद्रिय जाति मे भौरा ४ योजन का होता है।
पचेन्द्रिय जाति मे मछली का विस्तार १००० योजन, चौड़ाई ५०० योजन होती है। और उत्सेध (ऊचाई) २५० योजन होती है।

इस प्रकार यह सब इनकी उत्कृष्ट अवगाहना है। जघन्य घनांगुल के असख्यातवे भाग के बराबर है। ये सभी अतद्वीपार्ध और अतिम समुद्र मे होते है। इनकी आयु इस प्रकार है—

शुद्ध पथिवी काय की १२००० वर्ष है।
खर पृथिवी काय की २२००० वर्ष है।
अप कायिक की ७००० वर्ष है।
तेज काय की ३ दिन ही आयु होती है।
वात कायकी ३०००० वर्ष आयु होती है।
वनस्पति काय की १०००० वर्ष की होती है।
द्विइन्द्रिय की १२ वर्ष आयु होती है।
तीन इन्द्रिय की ४६ दिन होती है।
चतुरिन्द्रिय की ६ मास आयु होती है।
पंचेन्द्रिय नर तिर्यंच महामत्स्यादि की एक करोड पूर्व आयु होती है।
गोह की और गिरगिट सरीसर्प आदि की ९ पूर्व आयु होती है।
पक्षी की ७२००० वर्ष आयु होती है।
सर्प की ४२००० वर्ष की आयु होती हैं। इत्यादि सम्पूर्ण तिर्यंच जीवो

की उत्कृष्ट स्थिति है। जघन्य स्थिति अन्तंमुहूर्त होती है। नारकी, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छन, नपु सक होते है। गर्भज नर तथा तिर्यंच, नपु सक, स्त्री, पुरुष वेद वाले होते हैं। भोग भूमि के जीव व देव स्त्री पुरुष वेदी होते है।

गाथा---

निरयगिविगला समुच्छनपंच्चक्खाय होति संढाहुं।
भोगासुरसत्थूणा तिवेदजा गब्भ नर तिरया ॥८॥

अब मध्य लोक का प्रमाण लिखते हैं।

इस मेरु पर्वत के मूल से लेकर अन्त के समुद्र के अन्त तक जो चौड़ाई है वह सभी तिर्यक्लोक कहलाता है।

तत्रार्द्ध द्वितीयद्वीपसमुद्रौमनुष्यक्षेत्रम् ॥२॥

अर्थ---उस असख्यात द्वीप समुद्र मे पहिले मध्य का १ लाख योजन विस्तार वाला जम्बू द्वीप है। उससे दूना विस्तार वाला लवण समुद्र है। उस से दूना विस्तार वाला धातकी खंड द्वीप है। उससे दूना विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है। उसके प्रमाण अष्ट योजन लक्ष प्रमाण वलय विस्तार वाला अर्धं पुष्करवर द्वीप है। इस प्रकार से ४५ ००,००० योजन विस्तार वाला मनुष्य क्षेत्र है। इस प्रकार यह ढाई द्वीप हे। यह दो समुद्रो से घिरा हुआ मानुषोत्तर पर्वत तक है। मानुषोत्तर पर्वत १७२१ योजन ऊंचा और १०२२ योजन चौडाई मूल की तथा ४२४ योजन ऊपर की चौडाई है, ऐसे स्वर्ण वर्ण युक्त उस पर्वत के ऊपर नैऋत्य वायव्य दिशा बिना बाकी ६ दिशा मे ३-३ कूट हैं। उनके अभ्यतर महादिशा के चार कूटो मे जिन मदिर है। उस पर्वत तक मनुष्य रहते हे उसके बाहर जाने की मनुष्य मे शक्ति नही है।

ऐसा मनुष्य क्षेत्र आर्य, म्लेच्छ, भोग-भूमिज, कुभोग-भूमिज ऐसे चार प्रकार का है। उसमे आर्य खड मे उत्पन्न हुआ मनुष्य आर्य कहलाता है। उनमे पर्याप्तक अपर्याप्तक ऐसे दो भेद है। वहा पर्याप्तक की आयु जघन्य से अन्त-र्मुहूर्त है। उत्कृष्ट आयु एक करोड पूर्व है अपर्याप्त मनुष्य की अन्तर्मुहूर्त आयु होती है। इनमें लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक उच्छ्वास काल मे १८ बार जन्म और मरण करते हैं। म्लेच्छ की आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एक करोड पूर्व होती है। भोगभूमिवाले की आयु स्थिर भोग भूमि मे एक, दो, तीन पल्य की होती है। अस्थिर भोगभूमि वाले की जघन्य आयु समयाधिक एक करोड़ पूर्व

प्रमाण होती है। उत्कृष्ट ३ पल्योपम होती है। कुभोग-भूमि वालो की आयु एक पल्योपम होती है।

पंचदश कर्मभूमयः ।।३।।

स्थित कर्म-भूमि मे पाच भरत, पाच ऐरावत हैं। नित्य कर्मभूमि मे ५ विदेह हैं। भरत की चौडाई जम्बू द्वीप के १९० वा भाग है जोकि ५२६ योजन तथा एक योजन के १९ भाग करने से ६ भाग प्रमाण (५२६$\frac{6}{19}$) होता है। हिमवान पर्वत भरत क्षेत्र से दुगुना है। इसके आगे विदेह तक दुगुना-दुगुना विस्तार होता है। उसके पश्चात् आधा आधा भाग प्रमाण ऐरावत तक होता है। प्रत्येक भरत तथा ऐरावत मे म्लेच्छ खड पाच पाच होते हैं, अत समस्त पचास म्लेच्छ खड होते है।

विदेह क्षेत्र के प्रत्येक भाग मे पाच पाच म्लेच्छ खड होने से ८०० म्लेच्छ खंड होते हैं। और १६० आर्य खड होते है। इनके सिवाय बाकी सब भोगभूमि होती हैं सो नीचे बताते है।

त्रिंशद्भोगभूमयः ।।४।।

दो हजार धनुष प्रमाण शरीर वाले तथा एक पल्योपम आयु वाले पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत क्षेत्र जघन्य भोगभूमि है ४००० धनुष उत्सेध (ऊंचाई) वाले दो पल्योपम आयु वाले पाच पाच हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्र मध्यम भोगभूमि हैं। ६००० धनुष शरीर वाले, ३ पल्योपम आयु वाले हैं ५ देवकुरु, ५ उत्तर कुरू उत्तम भोगभूमि हैं। ये देवकुरू उत्तरकुरू मिलकर तीस भोग भूमियां हैं।

षण्णवति कुभोगभूमयः ।।५।।

तात्पर्य—लवण समुद्र तथा कालोदधि समुद्र के बाहर के तट के निकट २४-२४ इस तरह कुल ९६ कुभोग भूमिया हैं। वे इस प्रकार हैं —

> दहगुण पण पण पण पण सट्ठी मुवही।
> महि गम्मस्सय सयपण वण्ण पण्ण पणवीसावित्तडा कमसो ।।९।।

वज्रवेदिका से पाच सौ योजन दूरी पर १०० योजन विस्तार वाले चार दिशा के द्वीपों मे एक टाग वाले, पूंछ वाले, सीग वाले, गूंगे मनुष्य होते

हैं। ५०० योजन दूरी पर ५० योजन विस्तार वाली दिशाओं के बीच मे एक गोल आंखवाले, कर्ण आवरण अर्थात् लम्बे कान वाले, शशक कर्ण वाले तथा शष्कुली कर्ण वाले मनुष्य होते हैं।

५५० योजन की दूरी पर ५० योजन विस्तार वाले अन्तर्द्वीपों मे सिंह के मुखवाले, अश्वमुख वाले, श्वान मुख वाले, महिप मुख वाले, वराह मुख वाले, व्याघ्र मुख, घूक मुख, पिकमुख वाले मनुष्य होते है तत्पश्चात् ६०० योजन की दूरी पर २५ योजन विस्तार वाले कृषि द्वीपो मे मछली मुख वाले, कृष्ण मुख वाले मनुष्य हिमवन्त पर्वत के पूर्व पश्चिम समुद्र मे होते है। मेघ मुख समान, गोमुख समान मनुष्य भरत के विजयार्ध पर्वत के पूर्वापर समुद्र में होते है। मेघ मुख वाले विद्युण्मुख मनुष्य शिखरी पर्वत के पूर्वा पर समुद्र मे होतें है। ऐरावत क्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत के पूर्व पश्चिमी समुद्र के द्वीपो मे दर्पण मुख और गजमुख वाले मनुष्य होते है इन सबके शरीर की ऊंचाई दो हजार धनुष प्रमाण और एक पल्योपम आयु है।

ये चौबीस कुभोगभूमि कालोदधि के दोनो ओर तथा पुष्कर समुद्र के एक ओर इस तरह तीन जगह मे होती है। इनके ९६ पर्वतों के यही नाम हैं। उसी में रोरुग पर्वत की विशाल गुफा मे रहकर नाना प्रकार के रुचिकर पाषाण खड तथा शर्करा के समान स्वादिष्ट रेत को और केले के पत्ते नारियल नारगी आदि नाना वृक्षो के पके फलों को खाकर तथा वापीकूप सरोवर, दीर्घिका के क्षीर, घृतइक्षु रस को पीकर जीते रहते है। इनके जीने का समय एक पल्योपम होता है। कुभोगभूमि मे उत्पन्न होनें के निम्नलिखित कारण हैं। कुपात्र को दान देना, दान देकर रोना, दान देने वाले को देकर उनसे घृणा करना तथा दान जबरदस्ती देना या दूसरे के दबाव से देना, या अनेक प्रकार के आर्तध्यान, रौद्रध्यान से दान देना या अन्याय से द्रव्य उपार्जन कर दान देना, सप्तव्यसन सहित दान देना या किसी प्रेम से दान देना या मंत्र कार्यादिक से दान देना या सूतक पातक आदि के समय दान देना या रजस्वला से दान दिलाना, भावशुद्धि रहित दान देना आदि या जाति कुलादि के घमंड से दान देना, या जाति संकर आदि दोषो से युक्त होकर दान देना तथा कुत्सित भेष धारी, मायावी जिनलिंग धारी, ज्योतिष मंत्र तंत्र वाद, दातृ वाद, कन्या वाद, वैद्य विद्या से जीवन करने वाले, सघ को छोडकर एकाकी रहने वाले को, या दुराचारी को, या कषायोद्रेक से सघ मे कलह करने वाले अर्हतादि भगवान मे निर्मल भक्ति न रखने वाले को, मौन को छोड़ भोजन

करने वाले इत्यादि को दान देने से कुभोग भूमियो मे उत्पन्न होते है । कुभोग भूमि के मनुष्य स्वभाव से मद कषायी होने से स्त्री पुरुष मिथुन देव गति को जाते हैं। वहा से मिथ्यादृष्टि जीव भवन त्रिक मे तथा सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म ईशान मे उत्पन्न होते हैं।

सूत्र —

पंच मन्दारगिरयः ॥६॥

अर्थ —जम्बू द्वीप मे १, धातकी खड द्वीप के पूर्व पश्चिम दिशा मे एक एक, पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व पश्चिम मे एक-एक, इस तरह ५ मेरु पर्वत हैं। असख्यात द्वीप समुद्र के बीच मे जम्बू वृक्ष उपलक्षित जम्बू द्वीप के बीच भाग मे, जैसे बीच मे कोई स्तभ हो, इस प्रकार पद्म कर्णिका के समान सुदर्शन मेरु है उसका परिमाण इस प्रकार है।

(कनडी पद्य)

नव नवति दशैकंकम । नवय बदि मडिसि पंच शतयोजनदि ।
दव निर दोडिसि मूलदो । ळग्रविभागं व्यास माळ्के तद्गिरि वरदा।

सुमेरु पर्वत की ऊंचाई ९९,००० हजार योजन भूतल से है। चित्रा भूमि मे १००० योजन है। इस प्रकार कुल एक लाख योजन है। मूल मे मेरू पर्वत का बिस्तार १०,००० योजन प्रमाण तथा ऊपर १००० योजन प्रमाण है।

गाथा

मेरू विदेहमज्झे णवणउदिदहि क्क योजण सहस्सा ।
उदयभूमुहवास उवरूवरिगण चउक्कजुदा ॥१०॥

वह सुमेरु पर्वत सुवर्ण वर्ण है, उसमे जामुन के रग समान वैडूर्य मणि मय प्रत्येक दिशा मे चार चार अकृत्रिम जिन भवन सहित ऊपर ऊपर भद्रशाल नन्दन, सौमनस, तथा पाडुक वन है। पाण्डुक वन मे ईशान आदि विदिग्विभाग मे प्रतिष्ठित चार पाडुक शिलाऐ है। पूर्वापर दक्षिणोत्तर आयत हैं। उनका आकार आधे चन्द्रमा के समान है। कांचन, रूप्य, तपनीय, तथा रुधिर समान लाल उनकी प्रभा है। पाडुक शिला १०० योजन लम्बी है। ५० योजन चौडी तथा ८ योजन ऊची है। उन पाडुक शिलाओ के पूर्व दिशा के अभिमुख तीन पीठिका मय सिंहासन हैं तीर्थंकर का जन्माभिषेक सौधर्म ईशान इन्द्र उन ही सिंहासनो पर करते है। भरत, पश्चिम विदेह, ऐरावत, पूर्व विदेह के तीर्थंकरो का अभिषेक उन पर होता है। भगवान के जन्माभिषेक के जल से पवित्र किया हुआ पाडुक, पांडु कम्बल, रक्त कम्बल, अतिरिक्त कम्बलनामक सुन्दर चार शिलाऐ हैं। वहा

देव दम्पत्तिकी क्रीडा के स्थान हैं। लोकपाल आभियोग्य देवों द्वारा सेवनीय ऐसा महामेरु पर्वत है। उस मेरु पर्वत के नीचे—

(कनाड़ी श्लोक)

केळ गिर्दवोलोकं बळ सिर्दु मध्यलोक विर्दुदुदियोळ्।
तोळ ऊर्ध्व लोक मेने भू। वळय दोळा मध्यगिरिने-गिरिसमनोळवे ॥२७॥

अधोलोक है। उस मेरु पर्वत के मध्य मे मध्यलोक है। उस के ऊपर ऊर्ध्व लोक है। सुमेरु पर्वत के भद्रशालादि वन कैसे हैं? सो बतलाते हैं। पर्वत के नीचे २२००० योजन विस्तार वाली भूमि मे भद्रशाल वन है। वहां से ५०० योजन ऊपर मे ५०० योजन विस्तार वाला दूसरी मेखला में नंदन वन हैं। वहां से ६२५०० योजन ऊपर में ५०० योजन विस्तार से वेष्टित तीसरी मेखला में सौमनस वन है। उससे ३६००० योजन ऊपर मे पांडुक वन है। उसकी उपरिम मेखला में ४६४ योजन विस्तार वाली मंदर चूलिका है। मेरु पर्वत से दक्षिण, लवणसमुद्र की वज्र वेदिका से उत्तर मे भरत, हैमवत, हरिवर्ष, विदेह, रम्यक हैरण्यवत, ऐरावत ऐसे ७ क्षेत्र हैं। शेष ४ मेरु पर्वत ८४००० योजन ऊंचे हैं। वे क्षुल्लक मेरु के नाम से प्रसिद्ध हैं। पहले कहे हुए भद्रशालादि वन उन पर्वतों पर भी हैं।

सूत्र:—

जम्बूवृक्षाश्च ॥७॥

अर्थ—मेरु पर्वत के समीप उत्तरकुरु के पूर्व मे जंबूवृक्ष का स्थान है उसका विस्तार ५०० योजन है। अन्त मे ½ (आधा) योजन विस्तार मध्य भाग में आठ योजन बाहुल्य है। उसका आकार गोल है, रंग स्वर्ण मय है। उस के ऊपर १२ योजन चौडा ८ योजन (ऊंचा) जम्बूवृक्ष है। उस स्थान के ऊपर वलयाकार १२ वेदिका है। चार गोपुर सहित हैं उसके बाहर के वलय से लेकर प्रथम द्वितीय में कुछ नहीं है। तृतीय वलय के आठ दिशाओं में १०८ प्रातिहार्य जाति के देव वृक्ष हैं। चतुर्थ वलय के पूर्व दिशा मे देवी के चार वृक्ष हैं पांचवे में वापी कूप सरोवर इत्यादि से शोभित वन है। छठे में कुछ नही है। सातवे के चार दिशाओं मे अंग-रक्षक के १६००० वृक्ष हैं। अष्टम वलय मे ईशान उत्तर वायव्य में सामाजिक ४०० देवों के हैं। नवे वलय के अग्नि कोण मे अभ्यन्तर परिषद के ३२००० वृक्ष हैं। दशवे के दक्षिण दिशा मे मध्यम परिषद के ४००० वृक्ष हैं। ग्यारहवें के नैऋत्य कोण मे बाह्य परिषद के ४२००० वृक्ष हैं। द्वादशवे के पश्चिम दिशा मे वाहन देव के ७ वृक्ष हैं। ये सब

मिलकर १,४०,१२० वृक्ष होते हैं। अब आगे कहे जाने वाले पीठ के ऊपर आधे योजन चौडाई वाली और सदा काँपने वाली मरकत मरिग-मय दो योजन सुरक्षित वज्रमय ८ योजन विस्तार वाली तथा अर्ध योजन चौडाई संयुक्त ४ महा शाखा हैं। अनेक रत्नमयी शाखाएँ हैं। उसके ऊपर कमल पुष्प है मृदग आकार के फल पृथिवी को सार भूत बनाने वाले हैं। १० योजन ऊचाई ६ योजन मध्यम विस्तार वाले ४ योजन अग्र विस्तार सयुक्त उत्तर कुल गिरि के समीप शाखा में १ कोश विस्तृत जिन मदिर है। बाकी शाखा मे लक्ष कुल के आदर अनादर आवास है। इस जबू वृक्ष के परिवार वृक्ष सभी अर्ध प्रमाण वाले होते हैं।

शाल्मलयोपि ॥८॥

शाल्मलि वृक्ष का रूप्यमय स्थल है इसका विवरण पहिले कहे हुए जंबू वृक्ष के समान है यह सीतोदा के पश्चिम तट के निषध पर्वत के समीप, मदर के नैऋत्य दिशा के देवकुरू मे है। शाल्मली वृक्ष की परिवार सख्या १ लाख ४० हजार ११६ है। मुख्य शाल्मली के दक्षिण शाखा मे जिन मन्दिर है। शेष ३ शाखा मे वेणु धारियो के आवास स्थान है।

कानड़ी श्लोक

हेमाचल दीशान दो
ळा मंदर गिरिय नैरूतिय दिसेयोळ् जं।
बू मही रूहद शाल्मलि।
भूमि जमु कुरुमही तळंग ळोळेसगु ॥२८॥

चतुस्त्रिंशद्वर्षधर पर्वताः ॥९॥

अर्थ——चौंतीस कुल गिरि हैं।

भरतादि क्षेत्रो का विभाग करने वाले हेम, अर्जुन, तपनीय, वैडूर्य, रजत, हेममय ६ कुलगिरि हैं। मरिग विचित्र पार्श्व वाले मूल उपरि मे समान विस्तार वाले है। सिद्ध आयतन आदि कूटो और किलो से सुशोभित होकर हिमवन्त, महाहिमवन्त, निषध, नील रूक्मि, शिखरी नामवाले वे कुलाचल पर्वत हैं। हिमवान पर्वत की ऊचाई १०० योजन, गहराई २५ योजन, विस्तार (मोटाई) १०५२$\frac{१२}{१९}$ योजन है। निषध पर्वत तक विस्तार दुगुना-दुगुना है। निषध के समान नीलाद्रि है उसके आगे उत्सेध (लम्बाई) आदि आधी-आधी है।

गाथा—

हेमज्जुरणनपनीयाकमसोवे ळ्पर्थरजतहेममया ।
इगिदुग चउ चउ दुगियिगि समतुंगाहोन्तिहु कमेण ॥११॥

अर्थात्—इन हिमवत् आदि ६ कुल पर्वतो को ५ गुना करने से ३० सख्या होती है । वे सुवर्ण आदि वर्ण वाले है । ४०० योजन ऊचाई १००० योजन विस्तार वाला है । ४ लाख योजन लम्बा धातकी खड तथा ८ लाख योजन विस्तार वाला पुष्करार्द्ध है । उसके दक्षिण तथा उत्तर मे एक-एक ईष्वाकार पर्वत है । लवण और कालोदधि तक तथा कालोदधि से इस मानुषोत्तर पर्वत तक रहने वाले ये चार इष्वाकार है । इनमे ३० कुल गिरि मिलकर कुल ३४ वर्ष-धर पर्वत होते है ।

त्रिशत्युत्तरशत सरोवराः ॥१०॥

अर्थ—१३० सरोवर है ।

पद्म, महापद्म, तिगछ, केसरी, पुण्डरीक, महा पुण्डरीक नामक ६ सरोवर, हिमवत आदि ६ कुल पर्वतो के ऊपर क्रमश. है । प्रथम सरोवर पद्म की लम्बाई १००० योजन है । विष्कंभ (चौडाई) ५०० योजन है । और १० योजन गहरा है । उसमे(कमल)पुष्करका विष्कंभ १योजन है । उसकी कर्णिका १ कोस प्रमाण है, पद्म ह्रद से दुगुना महापद्म और उससे दुगुना तिगंछ ह्रद है केशरी और तिगंछ एक समान हैं और उससे आगे ह्रद क्रमश आधे-आधे विस्तारवाले हैं । कर्णिका पीले रंग की है । उस कर्णिका मे पंच रत्नखचित एक-एक प्रासाद है । उसके समीप मे सामानिक, पारिषद्, आत्म रक्षकादि देव परिवार सहित रहते हैं । सौधर्म, ईशान, इन्द्र की आज्ञाकारिणी देवी उन प्रासादो मे रहती हैं और जिनमाता के गर्भशोधन क्रिया के समय मे वे आती है । पल्योपम आयु प्रमाण वाली वे श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी नामक देवियां क्रमश उन सरोवरो के कमल प्रासादो मे रहती है । उत्तर कुरु पूर्व भद्रशाल वन मे समान नाम वाले सीता नदी के पास १००० योजन लम्बाई वाले ५०० योजन चौड़ाई वाले है । नील उत्तरकुरु, चन्द्रिका, ऐरावत, मालवन्त, नामक पाच ह्रद हैं । पश्चिम भद्रशाल वन मे समान नाम वाले सीता, सीतोदा, नदी के पास पहले कहे हुये आयाम और विस्तार से युक्त निषध, देवकुरु, सुर, सूरा, सुलसा, विद्युत नामक ५ सरोवर हैं, इसी प्रकार १० सरोवर देवकुरु है । ऐसे २० सरोवर के पद्म प्रासाद के अन्दर नाग कुमारियाँ और उनके परिवार

रहते हैं। पद्म सरोवर मे पहले कहे अनुसार १ लाख ४० हजार १ सौ पन्द्रह परिवार है। जम्बू द्वीप मे पद्म आदि ६ सरोवर तथा देवकुरु उत्तरकुरु के २० सरोवर यानी सब २६ सरोवर है। पद्म (छोटे कमल) धातकी खंड में उनसे दुगुने यानो ५२ और पुष्करार्द्ध मे ५२ ऐसे कुल १३० सरोवर हैं।

सूत्र—

सप्ततिर्महानद्यः ॥११॥

अर्थ—७० महानदियाँ हैं। उनका विवरण बताते है · ·

ऊपर कहे हुये पद्म सरोवर से उत्पन्न होकर गंगा नदी उस पर्वत के कुछ योजन आगे चलकर प्रणाली (मोरी) से वाहर आकर पर्वत के नीचे कुण्ड के मध्य मे स्थित देवता कूट मे विराजमान जिन विब के मस्तक के ऊपर जन्माभिपेक के समान गिरती है। वहाँ से प्रवाह रूप धारा-वाही होकर उस कु ड से वाहर आकर भरत क्षेत्र मे वहती हुई महानदी के रूप मे आगे जाकर लवण समुद्र मे मिल जाती है। इसी प्रकार अन्य नदिया भी बहती हैं।

अव नदियो के नाम बताते है .—

गगा, सिंधु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकाँता, सीता सीतोदा, नारी नरकाता, सुवर्ण कूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा ऐसी १४ नदिया हैं। इनको धातकी खड तथा पुष्करार्द्ध की नदियो की अपेक्षा पाच गुणा करने से ७० महा नदिया होती हैं। भरत मे गगा सिन्धु, ऐरावत मे रक्ता रक्तोदा बहती हैं उन प्रत्येक नदी के १४००० परिवार रूप सहायक नदिया हैं। रोहित-रोहितास्या, सुवर्णकूला रूप्यकूला हेमवत तथा हैरण्यवत क्षेत्र मे बहती हैं उन प्रत्येक की २८०००-२८००० परिवार नदियाँ है। हरित हरिकान्ता नारी नरकान्ता क्रमश. हरि तथा रम्यक क्षेत्र मे ५६००० नदी परिवार सहित बहती हैं। देवकुरु-उत्तर कुरु मे सीता, सीतोदा नदी ८४०००-८४००० परिवार नदियो के साथ बहती है। इस प्रकार ये सभी मिलकर धातकी खड तथा पुष्करार्द्ध द्वीप मे दुगुनी रचना के अनुसार ५ गुणा करने से ८९६०१५० नदिया अढाई द्वीप मे हैं।

सूत्र—

विंशतिर्नाभिनगाः ॥१२॥

स्थिर भोग भूमि मे यानी जम्बू द्वीपवर्ती जघन्य तथा मध्यम भोगभूमि के क्षेत्रो मे १००० योजन विस्तार वाले ४ नाभि गिरि हैं। उनके नाम षड्-जवन्त, विचटवन्त, पद्मवन्त और गन्ध है। ये सफेद वर्ण हैं। इन पर्वतो के ऊपर देवेन्द्र के अनुचर स्वामी वारण पद्म, प्रभास रहते हैं। इन ४ नाभि पर्वतो को पाच गुणा करने से २० (वृत्त विजार्द्ध) नामी पर्वत होते हैं।

विंशतिर्यमकगिरयः ॥१३॥

अर्थ—बीस यमक पर्वत हैं।

कनाडी छन्द

वरनील निषध पार्श्व दो।
ळेरडुं कुलनदि गळिक्केलंगळोळंता- ॥
वेरडेरडी यमक नामक-।
गिरिपति गळ्व्यंतरामरा वासंगळ् ॥

अर्थ—नील, निषध, पर्वत के पार्श्व मे दो कुलगिरि हैं। बाकी मे वे दो-दो यमक नाम के गिरिपति हैं। वहा व्यंतरामर का वास है।

यमक, मेघ, चित्रा, विचित्रा, ये उन यमक गिरियो के नाम हैं। इनकी लम्बाई, चौड़ाई १००० योजन, मुख का विस्तार ५०० योजन है। उनको पांच गुणा करने से २० यमक गिरि होते हैं।

सहस्रकनकगिरयः ॥१४॥

अर्थ—१००० कनकगिरि हैं।

अब १००० सुवर्ण के पर्वतो (कनकगिरियो) का वर्णन करते हैं।

कनाड़ी छन्द

कुरुभद्रशाल मध्य दो।
ळेरडुं कुलनदि गळैदु ऐदागे सरो ॥
वरमिप्पत्तैदैदादा।
सरंगळाकेल दोळसैये कनकाद्रिगळुं ॥

कुल भद्रशाला के दो, कुलनदी पाच-पाँच होकर सरोवर २५-२५ होकर वह कनकाद्रि गिरि होती हैं। उत्तर कुरू मे तथा पूर्व भद्रशाल वन मे देवकुरू मे तथा पश्चिम भद्रशाल वन मे ५-५ सरोवर हैं उनके तट पर ५, ५ पर्वत होने से २०० होते हैं। उसको पाँच गुना करने से ५ मेरुओ के १००० सुवर्ण पर्वत होते हैं। उनकी लम्बाई १०० योजन होती है। उनके मुख का विस्तार ५० योजन होता है। उनके शिखर मे शुक्ल वर्ण के व्यतर देव होते हैं।

चत्वारिंशत् दिग्गज पर्वताः ॥१५॥

अर्थ—४० दिग्गज पर्वत है।

अब ४० दिग्गज पर्वतो का विवरण बताते हैं।

[कानडी छन्द]

कुरुभद्रशाल मध्य दो ।
ळेरडु ल कुनदि गळिवकंलगळोळ दि ।।
क्करि गिरि यर डेर डप्पवु विस ।
निरतिशय व्यतरावश्रितंगळ् ।।

देवकुरू भद्रशाल के मध्य मे दो कुलनदी होकर वही उस मे दिग्गिरि दो दो होते है। उसमे निरतिशय व्यतर असित (काले) रहते हैं। दिग्गज पर्वत की लम्बाई तथा चौडाई १०० योजन है। उसके मुख का विस्तार ५० योजन है। जम्बू-द्वीपवर्ती ८ दिग्गज पर्वतो के नाम पद्मोत्तर, नील, स्वस्तिक, अजन, कुमुद, पलास, अवतस और रोचन हैं। उनको पाच से गुणा करने से ४० दिग्गज गिरि होते है।

शतं वक्षार पर्वताः ।।१६।।

अर्थात्—१०० वक्षार पर्वत है। मेरु पर्वत की ईशान दिशा से ५०० योजन दूर विभग नदी है। तप्तजल, मत्तजल, उन्मत्तजल ये तीन नदिया है।

क्षारोधि, शिरोधि, स्रोतवाहिनी ये तीन नदिया है। गभीर-मालिनी, फेनमालिनी, ऊर्मि मालिनी इत्यादि १२ नदिया हैं। इनको पाच गुणा करने से ६० विभग नदिया होती है।

१ योजन लम्बा चौडा माल्यवन्त तथा महासौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्ध-मादन ये चार गजदन्त पर्वत है। मेरु पर्वत के पूर्व भद्रशाल वन की वेदिका से पूर्व सीता नदी के पश्चिम से लेकर चित्रकूट, पद्मकूट, नलिन कूट एक शैल, ये चारो २९२२ योजन विस्तार वाले है। देवारण्य से पश्चिम सीता नदी से दक्षिण मे चित्रकूट, वैश्रवणकूट, अजनकूट आत्माजन कूट ये चार मेरु पर्वत के पश्चिम भद्रशाल से पश्चिम सीतोदा से दक्षिण मे षड्जवन्त, विचटवन्त, आशीविष, सुखावह ये चार, भूतारण्यसे पूर्व दिशा मे सीता नदी के उत्तर मे है। चन्द्रमाला, सूर्यमाला नागमाला, देवमाला ये चार वक्षार वाले गजदन्त पर्वत २० है। इसको पाच से गुणा करने से १०० वक्षार पर्वत होते है।

षष्ठि विभंगानद्यः ।।१७।।

अर्थ—६० विभग नदी है।

६० विभग नदियो का विवरण बतलाते है। पहिले कहे हुये वक्षार पर्वत के समीप रहने वाली १२५ योजन विस्तार वाली गृहवती, द्रववती, पकवती ये विभंग नदिया है। तप्तजल, उन्मत्तजल, मत्तजल ये तीन नदिया है। क्षारोधि

शिरोधि, स्रोतवाहिनी, ये तीन नदियां है। गंभीर मालिनी, फेन मालिनी, उर्मि मालिनी ऐसी १२ नदियों को ५ से गुणा करने से ६० होती है। ये ६० विभंग नदी हैं।

षष्ठ्युत्तरशतं विदेहजनपदाः ॥१८॥

अर्थ.—पाच विदेह के १६० देश हैं। उनका वर्णन करते हैं?

कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त, लागलावर्त, पुष्कला, पुष्कलावती, ऐसे आठ देश पूर्व विदेह के सीता नदी के उत्तर के देश हैं।

वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीक, मंगलावती—ऐसे ये आठ सीता नदी के दक्षिण के देश हैं।

पद्म, सुपद्म, महापद्म, पद्मकावती, सख्य, नलिन, कुमुद, सरित.ये पश्चिम विदेह के सीता नदी के दक्षिण बाजू के देश हैं।

वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, गधि, सु गधि, गधित्ला, गंधमालिनी ये आठ जनपद पश्चिम विदेह के सोता नदो के उत्तर तट के हैं। ये सब २२१२ योजन विस्तृत देग हैं। प्रदक्षिणा के क्रम से महानदी के तटवर्ती हैं। ये देश अति विशाल ग्राम, नगर, खेत, कर्वट, मटम्ब, पत्तन आदि से वेष्टित हैं। अनेक नदी, उद्यान, दिर्घिका सरोवर, (कमल से शोभित) अत्यन्त विनीत जनो से संकीर्ण एक एक खड होते हैं। उसके मध्य मे चालीस कोस लम्वे ३६ कोस चौड़े नगर है। अब चक्रवर्ती की राजधानी का नाम कहते हैं।

क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्टपुरी, खलीग, मजूषा, ओसपुरी, पुण्डरीकिणी,सुषमा, कुण्डल, अपराजित, प्रभकर, अ क, पद्मावती, शुभारत्न संचय ऐसे पूर्व विदेह सेसवधित नगर हैं।

अश्वपुरो, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अरजा, विरजा, अशोका, विशोका, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजिता, चक्रपुरी, खडगपुरी, अवधपुरी, और अयोध्यापुरी ये १६ नगर अपर विदेह के पद्मावती देश संबधी है इन ३२ जनपद को ५ मेरु पर्वत सम्बन्ध से पचगुना करने पर १६० देश और १६० नगर होते हैं।

श्लोक कानड़ी —

चरमोत्तम देहदु ।
धंरतपदिदं विदेह रप्पुदरिंदा ।
धरणिगे विदेह मेंदों
दिरे सदी नाम मतदक् कन्वर्थं ॥२६॥

चररैळ्यनू बिल्लु निड़ियर् ।
परमस्थिति पूर्व कोटि मत्तामहियोळ् ।।
परसमयमिल्ल धर्मे–
श्वरर जिनधर्म मोंदे बेळगुतिक्कु ।।३०।।

अर्थ—यहाँ के मनुष्य चरमशरीरी होने से, दुर्धर तपस्या की शक्ति होने से और उस क्षेत्र के मनुष्य हमेशा सम्यग्दृष्टि होने की अपेक्षा विदेही रहते है। इसलिए उस क्षेत्र का नाम 'विदेह' सार्थक है ।।२९।।

उनके शरीर की ऊचाई ५०० धनुष होती है। आयु एक करोड पूर्व होती है। उस भूमि मे पर-समय की चर्चा क्षण भर भी नही होती है। हमेशा धर्म चर्चा के सिवाय अन्य पर आदि की चर्चा नही होती है। वहा हमेशा हर समय जैन धर्म की प्रभावना चारो ओर फैली रहती है।

उन अवस्थित कर्म भूमियो मे दुषमा सुषमा नाम का एक ही काल एक स्वरूप से प्रवर्त्तता है। और वहाँ चौदह गुणस्थान, दो जीव समास, दस (१०) प्राण, ६ पर्याप्ति, ४ सज्ञा, मनुष्य गति, त्रस कायिक, तेरह योग, तीन वेद, कषाय चार, ज्ञान आठ, सात संयम, चार दर्शन, लेश्या ६, भव्य अभव्य, छ प्रकार के सम्यक्त्व मार्गणा, सज्ञी, आहारक, अनाहारक, १२ उपयोग, सामान्य रूप से विदेह क्षेत्र के मनुष्यो को होते हैं।

अल्लि पसविळदिडामर ।
मल्लिवरं मारि पेरवुमाकुलतेगळ ।।
तल्लि पोरगिलेयनवनिय -
रल्लि षड्शमने कोंडु परि पलिसुवर ।।३१।।

अर्थ—उस क्षेत्रवर्ती मनुष्यो को उपवास आदि करने मे कष्ट अनुभव नही होता, आकुलता नही होती। वहा अन्य कोई झूठे आडबरादि मायाचार की क्रिया नही है। वहा हमेशा देव लोको का आवागमन होता है। वहा के मनुष्यो मे आकुलता, महामारी या अन्य कोई और रोग नही होता। वहा अनावृष्टि, अतिवृष्टि नही होती। उस क्षेत्र के लोग हमेशा दान, देवपूजा, सयम, गुरुपूजा, तप, स्वाध्याय इन छ. क्रियायो मे लीन रहते है।

उस क्षेत्र मे कुबेर के समान धनवान वैश्य, सरस्वती के समान विद्या मे चतुर, कामदेव के समान सुन्दर रूप वाले, देवेन्द्र के समान सर्व सुख भोगने वाल तीर्थंकर की माता के समान शीलवती स्त्रिया, रति, तिलोत्तमा से भी अधिक रूप वाली युवतिया, राजा श्रेयाँस के समान दानी, चारुदत्त से बढ़कर त्यागी

सदा होते रहते है और चक्रवर्ती, अर्ध चक्रवर्ती, मडलीक, महामडलीक, मुकुटबद्ध राजा सदा होते हैं। तीर्थंकर परमदेव, अनगार केवली, श्रुतकेवली, चारण ऋद्धि धारी मुनि, ऋद्धि धारी मुनि, सर्वावधि–सम्पन्न, मनःपर्यय–ज्ञानी, परिहार-विशुद्धि संयमी, आहार ऋद्धि प्राप्त मुनि, अष्टाग निमित्त ज्ञानी, परम भावना निरंजन शुद्धात्म भावना मे रत, भेदाभेदरत्नत्रय-प्रिय, भेद-विज्ञानी ऐसे परम योगी निरन्तर विदेह क्षेत्र मे होते रहते है ? इस प्रकार विदेह में हमेशा समान काल प्रवर्तता है।

सप्तत्यधिकशतविजयार्धपर्वताः ॥१९॥

अर्थ–१७०विजयार्ध पर्वत हैं। वे इस प्रकार है— भरत, ऐरावत, विदेह के बीच मे पूर्व से पच्छिम तक फैले हुए २५ योजन ऊंचे, मूल, मध्य शिखर भाग मे क्रम से ५०-३०-१० योजन विस्तार वाले विजयार्द्ध पर्वत है। विजयार्द्ध पर्वतो की तीन मेखला (श्रेणी) है उनमे से पहली मेखला (श्रेणी) मे विद्याधर रहते है। आभियोन्य जाति के तीन प्रकार के देव द्वितीय मेखला मे रहते है। शिखर मे सिद्धायतनादि कूट होते हैं ? विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर से आती हुई दो नदियो के कारण क्षेत्र के छह खंड हो जाते है।

वृषभगिरयश्चोति ॥२०॥

अर्थ—विदेह, भरत, ऐरावत के मध्य म्लेच्छ खंडो मे १७० वृषभ-गिरि है।

शतयोजनमुन्नतिर्यि।
दतीत चक्रिगळ पेसर्गळि दिडिगिरिदू--॥
जितमार्गिनिद वृषभ।
क्षितिधर मुख्यंगळोंदु गेय्देसेदिक्कुं ॥३२॥
कुलगिरि कुलनदि रजता–।
चल वक्षाराद्रि कनकगिरि जम्बूशा– ॥
ल्मलि विजयविभंग नदि।
कुलमेंदिवे नेंदु मदु पुदु गेळिसिक्कुं ॥३३॥

अर्थात्–एक सौ १०० योजन ऊंचे, अतीत काल के चक्रवर्ती के नामो से भरे हुए अत्यन्त उन्नत वृषभगिरि पर्वत पाच दिशाओ मे खडे हैं। कुलगिरि, कुलनदीं, रजताचल, वक्षाराद्रि, कनकगिरि, जम्बू शालमली, विजेय, विभंग नदीं कुल इत्यादि नाम हैं।

पहले कहा हुआ जम्बूद्वीप प्राकारादि से घेरा हुआ वज्रवेदिका व २००००० योजन विस्तार वाले लवण समुद्र से घेरा हुआ है। समुद्र के बीच मे १००००० योजन लम्बे चौडे (मूल मे) मध्य विस्तार १०००० हजार योजन गहरे और उसी प्रमाण के मुख विस्तार वाले महा पाताल, चारो दिशाओ मे चार है। उससे दश गुणे छोटे पाताल ईशान आदि दिशाओ मे १० हजार योजन विस्तार वाले है। समस्त पाताल १०० है। उनके नीचे के तीसरे भाग मे केवल वायु भरी हुई है। ऊपर एक भाग जल से ही भरा हुआ है, बीच के भाग मे जल और वायु है। कृष्ण पक्ष मे नीचे की वायु समुद्र के बीच मे से उछल कर पहले से जल हानि होती है। शुक्ल पक्ष मे वायु ऊपर से और जोर से चलने से वात वृद्धि होती है। कहा भी है कि:—

> हेट्ठु वरियतिअ भागे णियदब्बाल ज्लन्तुमज्झम्मि ।
> जलवां जलवड्डि किण्हे, सुक्केय पादस्सा ॥१२॥

इस कारण से चन्द्रमा के साथ समुद्र का पानी बढता है और फिर घटता जाता है, ऐसा कहते है अत. शुक्ल पक्ष मे समुद्र मे पानी बढ़ता है और कृष्ण पक्ष मे पानी कम होता है।

आगे धातकी खड और पुष्करार्ध के स्वरूप को कानडी छन्दो मे बतलाते है।

> वक्षार कुलाचल ।
> शरदबुज षंड़ कुंड़ मेंब नितरवि-॥
> स्तार मिमडि गेयुदपुंवु ।
> सरिसंगुबें ळगँ पुष्करार्धँ वरेगं ॥३४॥
> गिरि मानुषोत्तरं पु— ।
> ष्करार्ध दोळ् नरगें वज्रवेदिकेयिप्पं—॥
> तिरे सुत्तिर्दत्तारोळ् ।
> वर जिनभवनाळि नाल्के नाल्कुं देशेयोळ् ॥३५॥
> मंदर महियद रोळं जिन— ।
> मंदिर मेंभत्तु नूरु वक्षार दोळं ॥
> संदिपकार चतुष्कदो— ।
> ळंदिन कृत प्रभुकुलाद्रि मूवत्त रोळं ॥३६॥

शतयुत सप्तति रुप्य ।
क्षितिधर दोळ मेयदु शाल्मलियोळं जम्बू- ।।
क्षिति रूह पंचक दोळ मु- ।
न्नत गृह मोरोंदमेल्लवं वंदिसुवें ।।३७।।

गाथाः—

लवणहर लोय जिणपुर चत्तारि सयाणि दोविहिणाणु ।
बावण्ण चउ चउ कोड़ि सरकुंडले रुचकें ।।१३।।
मंदर कुलबक्खारिसु मणुसुत्तार रुप्प जंबुसामलिसु ।
सीदिति सन्तु सयं चउचउ सत्तरि सय दुपणं ।।१४।।

अर्थ—वक्षार कुलाचल के नदी, सरोवर, तालावादि विस्तार की अपेक्षा से आधे २ है और ये पुष्करार्घ तक समान उत्सेधवाले हैं।

पुष्कर द्वीप के बीच मे मानुषोत्तर नामक पर्वत है जो कि वलयाकार होते हुये मनुष्यो के लिए वज्र वेदिका के समान है । उसके चारो ओर दिशाओ मे चार जिन मन्दिर हैं।

पाँच मेरु सम्बन्धी जिन मन्दिर ८० है । सौ वक्षारो मे है, कुलाद्रि पर ३० है । वक्षार पर्वतो पर १०० हैं । १७० विजयार्द्ध गिरियो मे है । ये उन्नत जिन मंदिर है । उनको मै नत मस्तक होकर नमस्कार करता हूं ।

इस प्रकार बीस सूत्र तक मध्य लोक के स्वरूप का निरूपण किया ।

ऊर्ध्व लोक का विवरण ।

देवाश्चतुर्णिकायाः ।।१।।

अर्थः—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक ये चार प्रकार के देव है । पुण्य कर्म के उदय से प्राप्त दिव्य सुखो के वे स्वयमेव अधिकारी है ।

वनिता बिम्बाधरचुं-।
बनदिरसं स्वरूप लावण्य विलो-।।
कनदिन्वकण्तू पुरनि-
स्वन दिंकि वितनुलसत्कुचस्पर्शनदिम् ।।३८।।
नममग दिन्दं पोण्मुव ।
सुगन्धदिं घ्राणदिच्छेयिं सलिसुव प- ।।

तुगेवेरेसि कुडोबेरमुव ।
नेगळ्तेयिं मनमनून सुखमम् पडेगुम् ॥३९॥
बगेदल्लिगे बगेदागळे ।
बगेदन्दद वाहनंगळागे विळासम् ॥
बगेगोळे सुरपरनोय ।
बंगेयिदं शीघ्रमागि वाहनदेवर् ॥४०॥

अर्थ—स्वर्ग लोक के देव स्वर्गीय देवागनाओ के बिंबाधर अर्थात् बिम्ब फल की लालिमा के समान रक्त वर्ण अधरो के रस का पान करते हुये, उनके अनुपम सौंदर्य का नेत्रो से निरीक्षण करते हुये, पैरो मे पहिनी हुई नूपुर की सुमधुर झकार कानो से सुनते हुये, सुगन्धित हसन्मुख को सुगध लेते हुये तथा कुच प्रदेश का स्पर्श करते हुए, इन्द्रिय-जन्य अनुपम सुख का अनुभव करते हुए आनन्द से अपने समय को बिताते हैं ॥३८-३९॥

कल्पवासी देवो की जहाँ आने-जाने की इच्छा होती है वहां उनकी आज्ञा से वाहन देवो को हाथी-घोडा आदि वाहन बनकर जाना पडता है ॥४०॥

अब इनके भेद बतलाने के लिये सूत्र कहते हैं:—

भवनवासिनो दशविधाः ॥२॥

असुर, नाग, सुपर्ण, उदधि, स्तनित, दिक्, अग्नि, वायु, द्वीप और विद्युत् कुमार ऐसे दश प्रकार के भवनवासी देव है। इन भवनवासियो में से असुर कुमारो के चमर और वैरोचन, नागकुमार के भूतानन्द और धरणानन्द, सुपर्ण कुमारो के वेणु और वेणुधर, द्वीप कुमारो के पूर्ण और वशिष्ट, उदधि कुमारो के जल कान्त और जल प्रभ, विद्युत् कुमारो के हरिषेण और हरिकान्त, स्तनित कुमारो के घोष और महाघोष, दिक् कुमारो के अमितगति और अमितवाहन, अग्निकुमारो के अग्नि-शिख और अग्निवाहन, वात कुमारो के वैलम्भ और प्रभञ्जन ऐसे बीस इन्द्र प्रतीन्द्र है लोकपाल, त्रायस्त्रिशत् सामानिक, अंगरक्षक, पारिषदत्रय, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विष ऐसे भवचवासी और कल्पवासी देवो के भेद होते हैं। व्यन्तर और ज्योतिषी देवो मे त्रायस्त्रिशत् और लोकपाल नही होते। चमरेद्र सौधर्म के साथ, वैरोचन ईशानेन्द्र के साथ, भूतानन्द वेणु के साथ, धरणानन्द वेणुधारी के साथ स्वभाव से ही परस्पर ईर्षा करते हैं।

असुर आदि देवो के चिन्हो को बतलाते है :—

[१] चूडामणि [२] फणि [३] गरुड [४] गज [५] मकर [६] वर्द्धमान [७] वज्र [८] सिंह [९] कलश और [१०] अश्व ऐसे दस चिन्ह क्रमशः असुरादि देवो के होते हैं।

असुरादि के ध्वजा और चैत्यवृक्ष एक ही समान होते हैं सो बतलाते है— अश्वत्थ, सप्तच्छद, शाल्मली, जम्बू, हृच्च, कड, छाया, सिरीश, पलाश, राजद्रुम ये तीन कोट, तीन कटनी तथा चार गोपुर और मानस्तम्भ, तोरण आदि से सुशोभित जम्बू वृक्ष के समान होते है। प्रत्येक वृक्ष के नीचे पल्यकासनस्थ ५०० धनुष प्रमाण भगवान की पाच-पाच प्रतिमाये प्रत्येक दिशा मे विराजमान है जिनकी पूजा नित्य प्रति देव करते है। चमर देवो के चतुस्त्रिंशल्लक्ष ३४०००००० भवन हैं। वैरोचन के ३० लाख, भूतानन्द के ४० लाख, जलप्रभ के ३६ लाख, हरिषेण के ४० लाख, महाघोष के ३६ लाख, अमितगति के ४० लाख, अमितवाहन के ३६ लाख, अग्निशिख के ४० लाख, अग्निवाहन के ३६ लाख, वैलम्भ के ५० लाख तथा प्रभञ्जन के ४३ लाख भवन होते हैं। कुल मिलकर ७ करोड़ ७२ लाख भवन होते हैं। ये सभी भवन रत्नमय है। इन भवनो मे सख्यात योजन वाले भी है और असख्यात योजन वाले भी हैं। सभी भवनो का आकार चतुरस्र तथा धनुषाकार होता है। उनका विस्तार ३० योजन है। मध्य प्रदेश मे १०० योजन ऊचाई वाले रत्न पर्वतो के ऊपर अत्यन्त रमणीय अकृत्रिम चैत्यालय विराजमान हैं। इस भूमि के नीचे १००० (एक हजार) योजन की दूरी पर व्यन्तर और अल्पर्द्धिक देव तथा दो हजार योजन पर महर्द्धिक देव रहते है। इसके अतिरिक्त यदि ४२००० (४२ हजार) योजन पर्यन्त आगे जावे तो उत्तम महर्द्धिक देवो का दर्शन होता है।

भवन वासियो मे से असुर देवो के, व्यन्तरो मे से राक्षसो के तो पंक भाग में और शेष बचे हुए सभी देवो के खर भाग मे भवन होते हैं। इन्द्र तो राजा के समान, प्रतीन्द्र युवराज के समान, दिगिन्द्र तन्त्रपाल के समान, त्रायस्त्रिंश देव पुत्र के समान, सामानिक देव कलत्र के समान, तनुरक्षक देव अंगरक्षक के समान, पारिषद त्रयदेव आभ्यन्तर, मध्यम और वाह्य प्रवेशको के समान, अनीक देव सेना के समान, प्रकीर्णक देव पुरजन के समान, आभियोग्य देव परिजन के समान और किल्विषक देव गायको के समान होते हैं। इन्द्र के समान प्रतीन्द्र तथा सोम, यम, वरुण, कुवेर ये पूर्वादि दिशा मे रहने वाले लोकपाल देव कहलाते हैं ॥३६॥ त्रायस्त्रिश देवो की, चमरादिक तीन की, बचे हुए सभी की तथा सामानिको की संख्या बताई है, सो इस प्रकार है.—

सामानिक ६४ हजार, ५६ हजार तथा ५० हजार होते हैं। अंगरक्षको की २०५६०००, २४००००, २०००००, २००००० संख्या है। आभ्यतर पारिषदो की सख्या २८०००, २६०००, ६००० और ४०००, मध्यम पारिषदो की ३००००, २८०००, ८०००० है। बाह्य पारिषदो की संख्या ३२०००, ३००००, १०००० और ८०००० है।

सत्तेव य आणीया पत्तेयं सत्त सत्त कक्खजुदा ॥
पढमं ससमाणसमं तद्दुगुणं चरिमकक्खेत्ति ॥१५॥

अर्थ—अनीक (सेना) सात प्रकार की होती है और प्रत्येक सेना को सात-सात कक्षा हैं. पहली सेना सामानिक देवो के समान है। आगे-आगे की सेना दुगुनी दुगुनी होती है। असुरेन्द्र के अनीक के महिप, अश्व, गज, रथ, पदाति, गंधर्व और नृत्यानीक भेद होते हैं। शेष इन्द्रके, गरुड, हाथी, मकर, ऊंट, गेंडा, सिंह, पालकी अश्व, ये प्रथम सेना है। शेष अनीक (सेना) पहिले कहे हुए के अनुसार होती है। आभियोग्य किल्विषो की यथायोग्य, संख्या होती है असुरत्रय देवो की और शेष देवो की देवियो की सख्या क्रम से ५६०००, ५००००, ४४०००, ३२००० होती हैं। उनकी पट्टराणिया १६०००, १००००, ४०००, २००० होती हैं। शेष देविया प्रत्येक की ८-८ हजार पृथक् विक्रिया वाली होती है।

ये देविया इन्द्रादि ५ देवो के समान होती हैं। अग-रक्षकों की देविया १०० (सौ), सेना देवो की देविया ५०, चमर के अभ्यन्तर पारिषद देवो की देविया २५०, मध्यमवालो की २००, बाह्य देवो की १५०, वैरोचन के अभ्यन्तर वालो की ३००, मध्यम वालो की २५०, बाह्य की २०० सौ, नाग कुमार के अभ्यंतर की २०० मध्यम की १६०, बाह्य की १४०, गरुड के अभ्यतर पारिषद देवो की देविया १६०, मध्यम की १४०, बाह्य परिषद के देवो की देविया १२० होती हैं। सर्व निकृष्ट देवो के ३२ देविया होतो है। देव अनेक प्रकार की विक्रिया शक्तिवाली देवियो के साथ मे अपनी आयु के अवसान तक सुन्दर हर्म्य आदि--प्रदेशो मे क्रीडा करते रहते हैं।

अब इन व्यतर देवो के रहने के महल कैसे होते हैं सा बतलाते हैं—इस चित्रा पृथ्वी के ऊपरले खर भाग मे भूत जाति वाले देवों के १४००० भवन है। पक भाग मे राक्षस जाति वाले देवों के १६००० भवन है। शेष व्यन्तर देवो के रहने के स्थान, वज्रा पृथ्वी के ऊपर एक लाख योजन ऊंचे तिर्यक लोक मे यथायोग्य आवास है। ये आवास जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद से तीन तरह के होते हैं। इनमे उत्कृष्ट भवन तो बारह हजार योजन

विस्तार वाले तथा तीन सौ योजन उत्सेध वाले है। पच्चीस योजन विस्तार वाले तथा तीन कोस की ऊंचाई वाले जघन्य आवास है। इसके बीच मे और भी अनेक प्रकार की ऊंचाई वाले और विस्तार वाले मध्यम आवास है। पुरो मे से उत्कृष्ट पुर इकावन लाख योजन विस्तार वाले, जघन्य पुर एक योजन विस्तार वाले है। आवासो मे उत्कृष्ट आवास बारह हजार दो सौ योजन विस्तार वाले है। जघन्य आवास तीन कोस विस्तार वाले है।

एक-एक कुल मे दो दो इन्द्र होते है। एक-एक इन्द्र के दो दो महादेवियां होती है और दो हजार वल्लभिकाये होती है जो विक्रिया-शक्ति वाली होती है। देवियो के साथ मे देव लोग-जलक्रीडा और सुगन्धित और अच्छे कोमल स्पर्श वाले स्थलो मे स्थल क्रीडा, चम्पक अशोक सप्तच्छद वनो मे होने वाले पुष्पलता मण्डपो मे वन क्रीड़ा करते है और रजत सुवर्ण, रत्नमय क्रीड़ा-गृहो मे अचल क्रीडा करते है। विचित्र रत्न खचित, षोडश वर्ण निर्मित भवनो की ऊपर की मजिलो मे स्फटिकमय भीतों वाले शयनागारो मे पिनी हुई रुई के बने हुये सुकोमल विस्तरो पर सुख क्रीडा, विनोद मदिर में गीत, मैदान मे झूला झूलने की क्रीडा तथा अश्व, गजादि की क्रीड़ा करते हुए सुख से काल बिताते है। सुगन्धित तथा सुस्वादु दिव्य द्रव्यो को अपने हाथो मे लेकर अकृत्रिम चैत्यालयो मे जाकर जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक अष्टविध पूजा करते हुए अपनी आयु पर्यन्त सुख से काल व्यतीत करते है।

वरजिन भवनं भावना—
नरलोक दोळॆंळु कोटियं मेगेप्प ॥
रोरडेरडुलक्केय—
वकुरुमुर्दाद विनय विनत मस्तक नप्पेम् ॥३१॥
भवनेषु सत्तकोटि बाहत्तरि लक्ख होंति जिन गेहा।
भवनामरिन्द महिरा भवना समेतानि वदामि ॥ गाथा १६॥
अष्टविधव्यन्तराः ॥३॥

अर्थ—किन्नर १, किंपुरुष २, महोरग ३, गधर्व ४, यक्ष ५, राक्षस ६, भूत ७ और ८ पिशाच इस प्रकार व्यन्तर ८ प्रकार के होते है। इन व्यन्तरो के ८ प्रकार के चैत्यवृक्ष होते हैं जो निम्नाकित है—अशोक, चम्पक, पुन्नाग, तुम्बुक वट, पलास, तुलसी तथा कदम्ब ये ८ चैत्यवृक्ष हैं। इन्ही वृक्षो से पृथ्वी सारभूत रहती है। यह सब जम्बू वृक्षार्द्ध प्रमाण हैं। इन समस्त वृक्षो के नीचे मूल भाग मे पल्यङ्कासनस्थ, प्रातिहार्य-समन्वित तथा चारु तोरणो से सुशोभित चतुर्मुखी

जिन बिम्ब प्रत्येक दिशा में विराजमान हैं। १ किम्पुरुष, २ किन्नर, ३ हृदयंगम, ४ रूपपालि, ५ किन्नर किम्पुरुष, ६ अनिन्दित, ७ मनोरम, ८ किन्नरोत्तर, ९ रतिप्रिय १० ज्येष्ठ ये किन्नरो के १० भेद हैं। १ पुरुष, २ पुरुषोत्तम, ३ सत्पुरुष, ४ महापुरुष, ५ पुरुषप्रभ, ६ अति पुरुष, ७ अमर, ८ मरुदेव, ९ मरुत्प्रभ और १० यशोवन्त ये दस भेद किम्पुरुष देवो के हैं।

महोरग मे भुजग, भुजगशाली, महाकाय, स्कन्धशाली, मनोहरा, अतिकाय, अशनिज, महैश्वर्य, गम्भीर और प्रियदर्शं ऐसे दस भेद होते हैं।

हाहानाद, हुहु सज्ञक, नारद, तुम्बुरु, वासव, गधर्व, महास्वर, गीतरति, गीतयश और दैवत ये गधर्वों के दस भेद होते हैं।

यक्षो मे—१ मणिभद्र, २ पूर्णभद्र, ३ शैलभद्र, ४ मनोभद्र, ५ भद्रक, ६ सुभद्र, ७ सर्वभद्र, ८ मानुष, ९ धनपाल, १० सुरूप यक्ष, ११ यक्षोत्तम और १२ मनोहर ऐसे बारह भेद होते हैं।

राक्षसो मे—१ भीम, २ महाभीम, ३ विघ्न, ४ विनायक, ५ उदक रक्षक, ६ राक्षस राक्षस और ७ ब्रह्मराक्षस ऐसे सात भेद होते हैं।

भूत जातियो मे—१ सुरूप, २ अतिरूप, ३ भूतोत्तम, ४ प्रतिभूत, ५ महाभूत, ६ प्रतिच्छन्न और ७ आकाशभूत ऐसे सात भेद होते हैं।

पिशाचकुल मे—१ कूष्माण्ड, २ यक्षेश्वर, ३ राक्षस, ४ संमोहन, ५ तारक ६ अशुचि, ८ महाकाल, ९ शुचि, १० शतालक, ११ देव, १२ महादेव, १३ तूष्णिक और १४ प्रवचन ऐसे चौदह भेद होते है।

किन्नर कुलके—किनर और किंपुरुष, किंपुरुष कुल के सत्पुरुष और महापुरुष। महोरग के अतिकाय और महाकाय, गन्धर्वों के गीतरति और गीतयश, यक्षो मे मणिभद्र और पूर्णभद्र, राक्षसो के भीम और महाभीम, भूत जातीय देवो के स्वरूप और प्रतिरूप, पिशाचो के काल और महाकाल इस प्रकार व्यन्तर देवों मे सोलह प्रतीन्द्रो सहित ३२ इन्द्र होते हैं। इन युगलो में से प्रथम-प्रथम इन्द्र दक्षिणेन्द्र और दूसरे-दूसरे उत्तरेन्द्र कहलाते है।

इन इन्द्रो की भूमियाँ—

अजनक, वज्रधातुक, सुवर्ण, मणिशिला, वज्र, रजत, इगुलिक और हरताल ये आठ भूमिया इन्द्रो की होती है। इनके दक्षिण और उत्तर तथा मध्य भाग मे पाँच २ नगर है। ये सब नगर द्वीपरूप हैं। इन्ही द्वीपो मे उपर्युक्त इन्द्रो की वल्लभा देवियो के ८४००० नगर है। अवशिष्ट देवो के नगर असख्यात द्वीप समुद्रो मे हैं। चित्रा पृथ्वी के एक हाथ ऊपर नीचउपपाद देव है। वहाँ से १०००० हाथ ऊपर दिग्वासी अन्तर्निवासी और कूष्माण्ड देव रहते हैं, वहाँ

से २०००० हाथ ऊपर उत्पन्न, अनुत्पन्न, प्रमाण, गन्धर्व, महागन्धर्व के भुजग, प्रीतिकर और आकाशोपपन्न होते है। इनके आवास क्रम से दस दस, बीस, बीस, बीस, बीस, बीस, बीस, बीस तथा २० हजार हाथ ऊपर रहते हैं।

अब उनको आयु क्रम से बतलाते हैं:—

उनकी आयु क्रम से दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी हजार वर्ष की होती है। उससे आगे पल्य के आठवे भाग, दो पल्य के चतुर्भाग और त्रिपल्य के आधे भाग प्रमाण यथाक्रम आयु होती है।

(कानड़ो छन्द)

त्रिविध व्यंन्तरनिलय।
भवनपुरावास भवन भेददिनिन्न ॥
तवनुक्रमदिद सं।
दवु मध्यार्द्ध दशेगधो भागव कु ॥४०॥

भवनवासियो में असुर कुमार को छोड़कर शेष कुमारो में किन ही के भवन, किसी के भवनपुर, किसी के भवनपुरावास ऐसे तीन प्रकार के निलय होते हैं। व्यन्तरावास असंख्यात हैं उन असंख्यातो मे से एक का विवरण लिखते हैं–

शत गुणित योजनत्रय।
त्रितहतसंख्यात रूपभाजितलोक ॥
प्रतरप्रमित व्यन्तर–।
ततिय जिनायतन मिन्तसंख्यातगळ् ॥४१॥

तिण्णिसय जोयणाणं कदिहिदपदरस्ससंखभागमिदि।
भम्माण जिनगेहे गणनातीदे णमंसामी ॥१७॥

पंचविधज्योतिष्काः ॥४॥

अर्थ—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक और तारक यह ज्योतिषियों के पांच भेद है।

जितने चन्द्र हैं, उतने ही सूर्य है और एक-एक चन्द्र के प्रति शनैश्चर इत्यादिक ८८ ग्रह तथा कृतिकादि २८ नक्षत्र है।

तारकादि विमानो की संख्या ६६९७५०००००००००००००० (छयासठ हजार, नौ सौ पचहत्तर कोडाकोडी) हो जाती है। चित्रा पृथ्वी के ऊपर ७९० योजन ऊपर जाने के बाद प्रकीर्णक तारक विमान हैं। वहा से १० योजन

ऊपर सूर्य विमान है। उसके आगे ८० योजन ऊपर चन्द्र विमान है, तत्पश्चात् ४ योर्जन आगे नक्षत्र है। उससे ४ योजन ऊपर बुध विमान है। वहाँ से क्रमशः ३, ३ योजन ऊपर जाने पर शुक्र, बृहस्पति, मगल और शनि के विमान है। इस तरह ११० योजन मोटाई मे एक रज्जू विस्तार मे रहने वाले ज्योतिर्विमान लोक के अन्त के धनोदधिवातवलय को स्पर्श करने वाले सभी विमान आधे नीचे गोले के समान है। उसके ऊपर ज्योतिषियो का नगर है। उस नगर के बोच मे एक २ जिर्नभवन है। उन विमानो के प्रमाण को बताते हैं—चन्द्र और सूर्य के विमान ६१ योजन के ५६ भाग ५६/६१ और योजन के ४८ भाग ४८/६१ क्रमशः होता है। शुक्र के विमान का विस्तार एक कोस, बृहस्पति का किंचित् न्यून एक कोस है। अगारक, (मंगल) बुध और शनि के विमान का प्रमाण आधा कोश है, नक्षत्र का विमान आधा कोश, छोटे ताराओ के विमान कोश का चतुर्थं भाग, उससे बडे ताराओ का आधा कोम, उससे बडे विमान कोस का तीसरा भाग और सबसे बडे ताराओ के विमान एक कोस होते है। चन्द्र विमान के नीचे पर्वराहू विमान किंचित् न्यून एक योजन प्रमाण है, वह विमान जब चन्द्र विमान को आच्छादित करे तब छ. मास मे एक बार पूर्णिमा के अत मे सोम-ग्रहण (चन्द्र ग्रहण) होता है।

इसी रीति से राहु के द्वारा विशेष आच्छादित होने से अथवा नैसर्गिक स्वभाव से प्रति दिन चन्द्र विमान के सोलहवे भाग कृष्णवर्ण होता जाता है।

सूर्य बिम्ब के अधोभाग मे रहने वाला अरिष्ट नामक राहु का विमान कुछ कम योजन प्रमाण है। उस विमान द्वारा छ. मास मे एक बार सूर्य विमान आच्छाहित हो तो अमावस्या के अन्त मे सूर्यग्रहण होता है। ये सब ज्योतिष विमान जम्बू द्वीप के मेरु पर्वत से ११२१ योजनष तक स्पर्श न करके मेरु की प्रदक्षिणा करके सचार करते रहते है। ढाई द्वीप से बाहर रहने वाले विमान जहाँ के तहा रहते है, वही रहकर प्रकाश करते हैं।

ईर्वरमोदलोळ् बळिकी।
रीर्वरु पन्नीर्वरत्तलल्लि नाल्व-॥
त्तीर्वरुमत्तत्तोळ् प-।
त्तीर्वरपुष्करदोळ्‌बरम् शशिसूर्यर् ॥४२॥

दोद्दोवग्ग नारसचादाल विहत्तरिन्दु इणसंखा।
पुक्खर दलत्तिपररो अवत्तिया सव्व जोइगणा ॥१७॥

इस जम्बू द्वीप से पुष्करार्द्ध द्वीप पर्यन्त पूर्वोक्त चन्द्र-सूर्य प्रभृति ज्योतिर्विमान अपनी २ राशि का अर्द्ध, द्वीप समुद्र के पथ क्रम मे सचार करते रहते हैं।

कहा भी है कि.—

सगसगजोइगरगद्ध एक्केभागम्मिदीवुरहियाराग।
एक्केभागे अद्दंचरन्ति पत्तेवक मेरगेव ॥१८॥

ऐसे विमान पूर्वादिक चारो दिशाओ मे स्थित है।

करिरुपुंक करी हरिरिषभभटा पुरंग-
माकार वाहनामररेरगछा-
सिरनिर्मरगिखरकर हिम-।
कररोळमर्द्धार्द्धमक्कुमितरत्रिकदोळ् ॥

सभी नक्षत्रो के उत्तर दिशा मे अभिजित्, दक्षिरग दिशा मे मूल नक्षत्र, ऊर्ध्व, अधो तथा मध्यम भाग मे स्वाति, भरगी, कृतिका रहकर संचार करते है। जो स्थिर नक्षत्र हैं उनका भी यही क्रम है। और तारकाओ के अन्तर समीप आये हुए तारकाओ के एक कोश का सातवाँ भाग (१/७) दूर रहता है। उसका अन्तर ५५ योजन है। गुप्त हुए तारकाओं का अन्तर १००० योजन है। मनुष्य क्षेत्र से बाहर रहने वाले चन्द्रादित्य वलय क्रम से किररग देते रहते है। वह इस प्रकार है.—मानुषोत्तर पर्वत से प्रारम्भ होकर द्वीप समुद्र वेदिका के मूल से पचास पचास हजार योजन दूर पर वलय है। उसके आगे एक एक लाख योजन दूर पर वलय है।

मरगुसुत्तर सेरगादोवेदियमूलाददिवउवहीरग।
पण्गास सयस्साहियलक्खे लक्खेतदों वलम ॥

एक-एक वलय मे रहने वाले सूर्य और चन्द्र की सख्या कहते हैं—

पुष्कर द्वीपार्द्ध के प्रथम वलय मे १४४ चन्द्र और इतने ही सूर्य हैं। इसके बाहर के वलय मे चार चार सूर्य चन्द्र की वृद्धि होती है। तदनन्तर के द्वीप समुद्रो के आदि मे पहले द्वीप समुद्र के आदि से दुगुनी संख्या मे सूर्य होते है। और इसी क्रम से सख्यात, असख्यात वलय मे सूर्य का अन्तर है। अब आगे चन्द्र का अन्तर निर्दिष्ट करते हैं —

परिधिगळि परिधिगे स।
तरबिन्दुगळिविभागिसलु तम तम ॥

तरवक्कु पुण्यदोळं ।
बुरुह प्रियरिर्परभिजेयोळ् हरिणांकर् ॥४३॥

मनुष्य क्षेत्र के अन्दर रहने वाले सूर्यो का अन्तर लवण समुद्र से लेकर पुष्करार्द्ध द्वीप पर्यन्त अपने अपने क्षेत्र मे एक दिशा के सूर्य बिम्ब क्षेत्र को अपने अपने विष्कम्भ से निकालकर शेष बचे हुए अक से उन्ही बिम्बों मे भाग देने से अन्तर आ जाता है। उस अन्तर का अर्द्ध प्रमाण छोटी वीथी का अन्तर आता है और पुष्करार्द्ध पर्यन्त दो दो चन्द्रादित्यो के लिए एक गमन क्षेत्र रहता है। उसका प्रमाण ५१० योजन सूर्य बिम्बादि से है। जम्बू द्वीपस्थ सूर्य चन्द्र जम्बू द्वीप मे १८० योजन सचार करते हैं। बचे हुए योजन लवण समुद्र मे संचार करते है और बाहरी सूर्य चन्द्र अपने अपने क्षेत्र मे गमन करते हैं।

प्रतिदिवसमोन्दे वीथियो--।
ळ् तोळल्वरिन्नेन्दु गळ् तमावरिसिरे नरेम् ॥
भत्तनालकक्कु तारा-।
पतियोळ् पदिनैदुवीथि जिनपतिमतदिं ॥४४॥

अपनी अपनी वीथी का विस्तार पिंड के चार (गमन) क्षेत्र से यदि निकाल दिया जाय तो रूपोन पद भक्षित अपने अपने वीथी के विस्तार (चौडाई) पिण्ड को चार क्षेत्र मे घटा कर उसमे से एक और घटा देने पर वीथी का अन्तर प्राप्त हो जाता है। उस अन्तर मे अपने अपने बिम्ब को मिला देने से दिन की गति निकल आती है।

बिम्बादिकयोजन युग, मम्बुजमित्रगे दिवसगति दिशोना--।
द्धंबेरसिद मुवतेंदुं, बिम्ब मुमिन्दुंगी अंदविवेयलंघनेगळ् ।४५।

सबसे आखीर वाली भीतर की वीथी का अन्तर रखकर मेरु पर्वत के सूर्य का अन्तर उसमे मिलाकर उसी मे दिवस गति मिला देने से वीथी का अन्तर निकल आता है। इस प्रकार सर्वाभ्यन्तर वीथी के प्रमाण को समझकर उसके साथ दिवस गति की परिधि के प्रमाण को गुणा करके उपर्युक्त अन्तर मे मिलाते जावे तो वीथी की परिधि का परिमाण निकल आता है। यह सब सूर्य का वर्णन हुआ इसी प्रकार चन्द्रमा का भी वर्णन समझ लेना चाहिए। चन्द्र और सूर्य बाहर निकलते हुए अर्थात् बाह्य मार्ग की ओर आते समय शीघ्र गति वाले और अत्यन्त मार्ग की ओर प्रवेश करते हुए मन्द गति से संयुक्त होते हैं इसीलिए वे समान काल मे ही असमान परिधियो का भ्रमरण

करते हैं। चन्द्र और सूर्य को छोडकर बाकी के ग्रह नक्षत्र और तारा ये सब अपनी अपनी वीथियो मे भ्रमण करते रहते है।

सूर्य के द्वारा रात और दिन का विभाग होता है। उनका प्रमाण कर्क राशि से श्रावण मास के सर्वाभ्यन्तर वीथी मे सूर्य रहने का दिन अठारह मुहूर्त और रात्रि बारह मुहूर्त की होती । इसके बाद प्रतिदिन मुहूर्त का इकसठ भाग मे से दो भाग प्रमाण रात्रि बढती जाती है, इसी तरह माघ मास से मकर राशि के समय- बाह्य वीथी मे सूर्य रहता तब दिन बारह मुहूर्त का और रात्रि अठारह मुहूर्त की हो जाती है। इसके बाद उपर्युक्त क्रम से रात्रि के समान दिन बढता चला जाता ।

मेरु पर्वतके आभ्यन्तर मध्यम वाह्य वीथीका प्रमाण ३१६ है। अभ्यन्तर परिधि का प्रमाण ३१५०८६ तथा मध्यम परिधि ३१६६०२ है और वाह्य परिधि ३१८३१४ जलस्पृष्ट भाग परिधि ५२७०४६ है उस परिधि मे निष्ठित सूर्य चन्द्रमा को समान रूप से भाग देकर जो लब्ध आवे वह उष्णता और अन्धकार का प्रमाण होता है ऐसी परिधिके क्षेत्र का प्रमाण जान कर गणित के द्वारा निकाल लेना चाहिये।

अब आगे नक्षत्रो के क्षेत्र-प्रमाण को बतलाते है सो इस प्रकार है।

मेरुपर्वत के मूल भाग से लेकर मानुषोत्तर पर्वत तक घेरे हुए आकाशको १०६८०० का भाग देकर मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाके रूप से घेरे हुए अभिजितादि ५६ नक्षत्रोके गगनखण्ड ३६० होते है। शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, श्लेषा और ज्येष्ठा इन जघन्य छ नक्षत्रो का प्रत्येक के १००५ गगन खण्ड होते हैं। अश्विनी, कृतिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती इन १५ मध्यम नक्षत्रो के गगन खण्ड २०१० होते है। रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्र पद, उत्तराषाढ इन छ उत्कृष्ट नक्षत्रो के प्रत्येक के ३०१५ गगन खण्ड होते है। इन सभी नक्षत्रो के गगन खण्डो को मिलाने से १०६८०० आकाश खण्ड हो जाते है। इन सब गगन खण्डो को अपनी मुहूर्त गति के अनुसार गगन खण्डो का भाग देने से परिधि के योग्य मुहूर्त निकल आता है। वह कैसे? सो बतलाते हैं—चन्द्रमा एक मुहूर्त मे १७६८ गगन खण्डो मे भ्रमण करता है। सूर्य १८३० गगन खण्ड पार करता है। नक्षत्र १८३५ गगन खण्डो को प्राप्त करता है। प्रत्येक नक्षत्र चन्द्रमा के साथ मे एक मुहूर्त मे ६७ गगन खण्ड पार करता है। सूर्य उसी को ५ मुहूर्त मे पूरा करता है। राहु द्वादश भाग अधिक पाँच भागों मे पूरा कर देता है। ऐसे पूर्ण करने वाले आकाश के भागों मे अभिजितादि के

आकाश भागों से भाग देने पर अभिजितादि नक्षत्रों मे रहने वाले सूर्य और चन्द्रमा के मुहूर्त हो जाते है। सो इस प्रकार है–चन्द्रमा अभिजित नक्षत्र मे रहने के समय मे मुहूर्त के $\frac{२७}{६७}$ अधिक नौ मुहूर्त तथा जघन्य नक्षत्रो मे १५ मुहूर्त, मध्यम मे तीस मुहूर्त, उत्कृष्ट मे ४५ मुहूर्त रहते है। सूर्य-अभिजित नक्षत्र मे चार दिन छ मुहूर्त, जघन्य नक्षत्र मे २१ मुहूर्त अधिक छ दिन, मध्यम नक्षत्र मे बारह मुहूर्त अधिक तेरह दिन, उत्कृष्ट नक्षत्र मे तीन मुहूर्त से ज्यादा दश दिन। ऐसे अभिजितादि सब को मिलाकर १८३ दिन होते हैं। ये एक अयन के दिन हुए। अयन दो होते हैं एक दक्षिणायन दूसरा उत्तरायण। ये दोनो अयन मिलकर एक सम्वत्सर होता है, पाँच सम्वत्सरो का एक युग होता है।

श्रावण मास की कृष्णा प्रतिपदा के दिन अभिजित नक्षत्र मे चन्द्रमा के होने पर युग का प्रारम्भ होता है और आषाढ सुदी पूर्णमासी को युग समाप्त होता है।

अब नक्षत्रो के रहने का स्थान बतलाते है–

अभिजित आदि ९ नक्षत्र चन्द्रमा की पहली वीथी मे और स्वाति से फाल्गुणी तक चन्द्रमा की दूसरी वीथीमे रहते है। मघा और पुनर्वसु तीसरी वीथी मे होते है। रोहिणी और चित्रा सातवी वीथी मे होते हैं। छठी, आठवी, दशमी, ग्यारहवी वीथी मे कृतिका है। विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा ये १२ वी १३ वी १४ वी वीथी मे यथाक्रम से रहते हैं। शेष ८ नक्षत्र चन्द्रमा की १५ वी वीथी मे रहते है, इस प्रकार आठ वीथी मे नक्षत्र रहते है, सात मे नही।

खरबाणहुताशन चं– ।
द्ररसाग्नि षडब्धि नयननयं पंचमुमं ।।
हरिणांकहिम गुगतिरुतु ।
सुरनिधिजलनिधि पयोधिशिखिहुतवहमं ।।४६।।
व्रतमुं रुद्रसमन्वित ।
शतमुं युगयुगळमुं चतुर्गुणवसुवु ।।
वृततति्युं पुरमु मुनि– ।
हतगति नक्षत्र कृत्तिकाख्यामोर्दालिक ।।४७।।

खर ६, वाण ५, हुताशन ३, चन्द्र १, रस ६, अग्नि ३, षडब्धि ६, नयन ४, नय २, पचक ५, हरिणाक १, हिम १, गति ४, ऋतु ६, सुर ३, निधि ९, जल निधि ४, पयोधि ४, शिखिहुत ३ , ब्रह्म ३, व्रत ५, रुद्र समन्वित

शत १११, युग २, युगल २, चतुर्गुणी वसु ३२, व्रत ५, पुर ३, मुनि हतगत नक्षत्र गण कृतिका के पहले होते है।

इन २८ स्थानो से पका शकटाकृति, हरिण के शिर, द्वीप, तोरण, छत्र, वल्मीक, गोमूत्र, शर, युग, हस्त, उत्पल, दीप, व्यास पीठ, हार, वीणा, शृङ्ग, वृश्चिक, दुष्कृत, पापी, हरिकु भ, गजकुम्भ, मुरज, उडने वाले पक्षी, शेन, गज-पूर्व गात्र, अपरत्र, द्रोण, अश्व मुख, चुल्लिपापाण, इत्यादि के समान होते है।

ज्योतिष्क देवो की आयु का प्रमाण—

चन्द्रमा की आयु १००००० लाख वर्ष अधिक पल्य है।

सूर्य की १००० हजार वर्ष अधिक पल्य आयु है।

शुक्र की १०० वर्ष अधिक एक पल्य आयु है।

वृहस्पति की १ पल्य आयु है।

बुध अगारक और शनि की आधा पल्य आयु है।

तारा की उत्कृष्ट आयु पल्यका चौथा भाग है और जघन्य आठवाँ भाग है।

इस प्रकार ज्योतिषी देवो की आयु का प्रमाण है और देवियो की आयु अपने अपने देवों से आधी आधी होती है।

सबसे कनिष्ठ देवो की ३२ देविया होती हैं।

पाँच प्रकार के ज्योतिषी देवो के विमान गणनातीत (असंख्यात) है।

शत युग षट् पंचाश— ।
त्प्रतरांगुल वर्गगुणितसख्यात ॥
हृत प्रतरप्रमितगळू ।
गत रगळ जिनभवनमिउ मसख्यातगळ् ॥

गाथा —

बेसद वेयछप्पण्णं गुणकदिहिदपदरसंखभागमिदे ।
जोइसजिणिदगेहे गणणातीदे णमंसामि ॥

अब भवनवासी देवों की आयु आदि बतलाते हैं—

परमायुष्य व्य -।
तरसुरर्गे पल्योपम कु-।
मारर्गे दशगुण ।
वरुष सहस्रं जघन्यमितुत्कृष्ट ॥

असुर कुमार का आयु एक सागरोपम, नाग कुमार देवो की तीन पल्यो-

पम, गरुड कुमार की अढ़ाई पल्य, द्वीप कुमारो के दो पल्य, शेष कुमारो की डेढ पल्योपम आयु होती है।

उत्तरेन्द्र की आयु साधिक सौ पल्य, इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंशत् सामानिक इन पाँचो की आयु समान होती है। चमर और असुरेन्द्र की देवियो की आयु ढाई पल्योपम, वैरोचन की देवियो की आयु तीन पल्योपम, नागेन्द्र की देवियो की पल्य का आठवाँ भाग, गरुड की देवियो की तीन करोड पूर्व आयु होती है। चमर वैरोचन गरुड तथा शेष इन्द्रो के अन्तरग, मध्य, ब्राह्य भेद से तीन प्रकार के पारिषद देवो की आयु क्रमश. डेढ पल्य, तीन पल्य, पल्य का आठवा भाग, तथा तीन करोड पूर्व प्रमित होती है। मध्य वालो की आयु ढाई पल्य, दो पल्य का सोलहवा भाग, तीन करोड पूर्व तथा दो करोड वर्ष आयु होती है वाहर के देवो की आयु ढाई पल्य, पूर्व करोड का ३२ वा भाग तथा एक करोड पूर्व प्रमाण है। चमर वैरोचन के नाग, गरुड, शेष, सेना नायक, आत्म-रक्षक, डेढ पल्योपम, कोटि वर्ष तथा लाख वर्ष प्रमाण आयु वाले होते है। और उनके सेना नायक देव की आयु आधा पल्य, शताधिक पल्यार्ध, करोड वर्ष, लाख वर्ष तथा ५० हजार वर्ष होती है।

ईरैंदुघनुगळकु -।
मार्ग व्यन्तरर्गमाज्योतिष्क ॥-
र्गरिप्यलुकेळ्सेव ।
शरीरोच्छृत्तिपंचवर्गमसुराभररोळ् ॥५०॥

देवो के आहार तथा उच्छ्वास का नियम बतलाते है —

मनदोळ्सासिरवर्ष ।
वक्कनतिशयासनमनो मेंनेनुवस्सुयिव ॥
दिनपंचघ्नत्रितयक्के ।
सुखमं पोगळ्वेनेनसुराभररा ॥५१॥

अर्थ—चमर और वैरोचन एक हजार वर्ष के बाद एक बार आहार ग्रहण करते है और उनके एक श्वासोच्छ्वास लेने मे १५ दिन लग जाते है। उनके सुखो का वैभव कहाँ तक वर्णन करें ?

जलप्रभ अमितगति का आहार क्रम से साडे बारह दिन तथा साढे सात दिन पर्यन्त होता है। उच्छ्वास काल साढे बारह मुहूर्त, और साढे सात मुहूर्त होता है। व्यन्तरामर पाच दिन मे एक बार मानसिक आहार और पाच मुहूर्त मे एक बार श्वासोच्छ्वास लेते है।

अब इन भवनवासियों के भवन स्थानों का वर्णन करते हैः---

भूमि से नीचे एक हजार योजन पर्यन्त व्यन्तर भवन हैं। भवन-वासियों मे अल्पर्द्धिको के भवन दो हजार योजन है। महर्द्धिको के भवन ४२ हजार योजन पर्यन्त हैं। मध्यम महर्द्धिको के भवन एक लाख योजन तक हैं। इनमे असुरामर का भवन रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग से नीचे रहने वाले पंक भाग मे है। शेष बचे हुए नौ कुमारों के भवन खर भाग में हैं। उन भवनो में से कुछ का प्रमाण असख्यात योजन है और वह सब चतुरस्र है। नाना रत्न खचित हैं। तीन योजन बाहुल्य, मध्यगत सौ योजन ऊंचा तथा एक एक कूप से सुशोभित है। गणना करने पर कुओं की सख्या सात करोड बहत्तर लाख होती है। वहां से ३४, ४४, ३८ इन तीन स्थानो मे ४० और अन्तिम मे पचास लाख भवन होते हैं। उन भवनों के चमर, भूतानन्द आदि दक्षिणेन्द्र अधिपति है। और तीस, चालीस तथा चौंतीस इन तीन स्थानो मे ३६, अन्तिम मे ४६ लाख भवनो के वैराचन, धरणानन्द आदि उत्तरेन्द्र अधिपति है।

चोत्तीसच्चउदाल अड़तीस च सुवितालपण्लगासं।
चउचउविहेणताणिय इन्दाणं भवनक्खाणि ॥२१॥

उपर्युक्त प्रत्येक भवनो मे एक एक जिन मन्दिर है।

वरजिनभवनंभवना।
मरलोकदोळॆळु कोटिय्रुमत्तॆप्प ॥
त्तॆरडक्कुं लक्कॆयव।
क्कुरुमुदॆदं विनयविनतमस्तकनप्पें ॥५२॥

पहले कहे गये ज्योतिष्क देव मनुष्य क्षेत्र मे सुदर्शन मेरु की प्रदक्षिणा करते है। उनके गमन विशेष से दिन, वार, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त इत्यादि शुभाशुभ सूचक होते हैं। वह कैसे है, सो बतलाते हैं---

रवि, सोम, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि ये सात वार हैं।

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पूर्णिमा ये सोलह तिथियाँ हैं।

यक्ष, वैश्वानर, रक्ष, नद्रित, पन्नग, असुर, सुकुमार, सिता, विश्वमाली, चमर, वैरोचन, महाविद्या, मार, विश्वेश्वर, पिंडासी ऐसे पन्द्रह तिथियों के पचक कहलाते है।

नन्दा, भद्रा, जया रिक्ता, पूर्णा ये प्रतिपदा की आदि से तिथि पचक हैं।

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथय: क्रमात् ।
देवाश्चन्द्रसूरेन्द्रा आकाशो धर्म एव च ॥

कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तरापाढ अभिजित्, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरिणी ये २८ नक्षत्र हैं ।

शिखी, कमलज, शितकर, रुद्र, अविति, जीभ, उरग, पितृ भग, ऐएम, दिनकर, त्यष्ट, समीर, इन्द्राग्नि, मैत्री, इन्द्र, नि श्रुति, जल, विश्वदेव, अजा, विष्णु, वसु, वरुण, अजपाद, अहिर्बुध्म, पूषा, अश्वी और यम ये २८ तारो के अधिपति है ।

अब नक्षत्रो के चार चार चरणो को बतलाते हैं—

अवकहड चक्र का विचार:—

चू चे चो ला	अश्विनी ।	रु रे रो ता	स्वाती ।
लि लू ले लो	भरणी ।	ती तू ते तो	विशाखा ।
आ इ उ ए	कृतिका ।	ना नी नू ने	अनुराधा ।
ओ वा वि वू	रोहिणी ।	नो या यी यु	ज्येष्ठा ।
वे वो का कि	मृगशिरा ।	ये यो भा भी	मूल ।
कु घ ङ छ	आर्द्रा ।	भू धा फ ढा	पूर्वाषाढा ।
के को हा हि	पुनर्वस ।	भे भो जा जि	उत्तराषाढ़ा ।
हू हे हो डा	पुष्य ।	खू जे जो खा	अभिजित् ।
डी डू डे डो	आश्लेषा ।	खि खू खे खो	श्रवण ।
मा मि मु मे	मघा ।	गा गी गू गे	धनिष्ठा ।
मो टा टी टू	पूर्वा फाल्गुनी ।	गो सा सि सु	शततारा ।
टे टो पा पि	उत्तरा फाल्गुनी ।	से सो दा दी	पूर्वभाद्रपद ।
पू षा णा ठ	हस्त ।	दु थ झ ञ	उत्तराभाद्रपद ।
पे पो रा री	चित्रा ।	दे दो चा ची	रेवती ।

प्रत्येक मनुष्य के नक्षत्र और चरण की पहचान—नामका पहला अक्षर हो अथवा जन्म नाम का पहला अक्षर हो तो उसको पहले अच्छी तरह समझ लेना चाहिए । उसके बाद वह अक्षर ऊपर के अवकहडा कोष्ठक मे देखकर उस मनुष्य के नक्षत्र चरण को निश्चय कर लेना चाहिये ।

उदाहरण के लिये.—

महावीर इस नाम का पहला अक्षर 'म' है यह अवकहड़ा चक में मघा नक्षत्र के ४ अक्षरों मे से पहला अक्षर होने के कारण मघा नक्षत्र का पहला चरण है ऐसा समझना चाहिये। इसी तरह 'म' पहला अक्षर-युक्त मल्लिनाथ मणिभद्र इत्यादि नाम वाले जितने होते हैं वे सभी मघा नक्षत्र के पहले चरण वाले होते हैं।

दूसरा उदाहरण-महावीर का दूसरा जन्म नाम 'सन्मति' है। 'स' यह अक्षर शततारक के तीसरे चरण का तीसरा अक्षर होता है, इसलिए वह शततारका का तीसरा चरण हुआ।

इसी तरह अन्य नामो के नक्षत्र भी जानने चाहिए।

अवगहड चक्र के ह्रस्व अक्षर तथा दीर्घ अक्षर के विषय मे विचार.—

अवगहड की मूल उत्पत्ति मे ह्रस्वाक्षर उत्पन्न होने पर भी उच्चारण के समय मे [अवगहड मे] कुछ दीर्घाक्षर कुछ ह्रस्वाक्षर होते हैं। ये दोनो एक ही होने के कारण प्रसंग के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व समझकर नक्षत्र चरण को बना लेना चाहिए।

उदाहरण—'इन्दुधर' शब्द का प्रथम अक्षर इ' है इ अवगहड चक्र मे नही है। चक्र मे "ई" अक्षर कृतिका के दूसरे चरण का हो गया। 'ईश्वर का भी यही नक्षत्र होगा। इसी तरह शेष अक्षरो को भी समझ लेना चाहिए।

संयुक्त अक्षर वाले नामो के नक्षत्र का ज्ञान.—अवगहड चक्र मे संयुक्त अक्षरो का उल्लेख नही है संयुक्त अक्षर वाले शब्द का कौन सा नक्षत्र समझा जावे ? इसका खुलासा इस प्रकार है कि —

किसी मनुष्य का नाम प्रेमचन्द है इसका पहला अक्षर 'प्रे' है यह 'पे' अक्षर मे र् कार वर्ण मिलाने से बना है। तो मिले हुए र कार को छोड़कर पहले वर्ण का 'पे' अक्षर चित्रा नक्षत्र में है इस तरह 'प्रेमचन्द' नाम चित्रा नक्षत्र के पहले चरण का हो गया। इस तरह समझकर त्रिलोकनाथ, स्वयंप्रभु इत्यादि नामो के नक्षत्र जान लेना चाहिए। जैसा कि.—

यदि नाम्नि भवेद्वर्णो संयुक्ताक्षरलक्षणः।
ग्राह्यस्तदादिमो वर्णो युक्तत्वं ब्रह्मयामले ॥

इसी तरह 'संयोगाक्षरजे नाम्ना ज्ञेयं तत्रादिमक्षरं' इस तरह अन्य मुहूर्त मार्तंड इत्यादि ग्रन्थों मे कहा है।

शुभ नक्षत्र परिज्ञान :—

मघामृगशिरोहस्तः स्वातिर्मूलानुराधयोः ।
रेवती रोहिणी चैवमुत्तराणि त्रयाणि च ॥
आवाये च विवाहे च कन्यासम्वरणे तथा ।
वापये सर्वबीजानां गृहं ग्राम प्रवेशयेत् ॥
पुष्याश्विनी तथा चित्राधनिष्ठा श्रवण वसु ।
सर्वाणि शुभकार्याणिसिद्ध्यन्तितेषु भेषुच ॥

भावार्थ—मघा मृगशिरा हस्त स्वाती मूल अनुराधा रेवती रोहणी तीनो उत्तरा, इन ग्यारह नक्षत्रो मे कन्यादान विवाह वीज वपन इत्यादि कार्य करना चाहिए । । इसी प्रकार ग्राम प्रवेश, गृह प्रवेश इत्यादि कार्य भी कर सकते हैं । इसी प्रकार से पुष्य अश्विनी चित्रा धनिष्ठा श्रवण पुनर्वसु इन नक्षत्रो मे भी और सव शुभ कार्य किये जाते है किन्तु विवाह नही करना चाहिच । इन सत्रह नक्षत्रो को छोडकर बाकी के नक्षत्र निकृष्ट है उनमे शुभ कार्य नही करने चाहिए । तथा जिस नक्षत्र पर ग्रहण लगा हो उस नक्षत्र मे छ महीने तक विवाह नही करना चाहिए । और ग्रहण लगे हुए दिन से पहिले के तथा पीछे के सात सात दिन छोडकर विवाह करना शुभ होता है ।

शुभ अशुय योग और त्याज्य घटिका —

प्रीति १ आयुष्मान् २ सौभाग्य ३ शोभन ४ सुकर्म ५धृति ६ वृद्धि ७ ध्रुव ८ हर्षण ९ सिद्धि १० वरियान ११ शिव १२ सिद्ध १३ साध्य १४ शुभ १५ शुक्ल ब्रह्म १७ इन्द्र १८ ये अठारह शुभ योग हैं । ये अपने नाम के अनुसार शुभ फल करते है । इनमे शुभ कार्य किये जाते है । विष्कम्भ १ अति-गण्ड २ शूल ३ व्याघात ४ वज्र ५ व्यतिपात ६ परिघ ७ वैधृति ८ गण्ड ९ ये नौ योग अशुभ है इनमे वैधृति, और ब्यतीपात ये दोनो पूर्णरूप से दुर्योग है । इसलिए इनमे कोई भी कार्य नही करना चाहिए । शेष सात नक्षत्रो की सदोष घटिकाओं का त्याग करके कार्य करना चाहिए । वे घटिकाये इस प्रकार है—विष्कम्भ योग में तीन घटिका शूल मे पाँच घटिका, गण्ड और अति गण्ड मे छ. छ घटिका । व्याघात और वज्र योग मे नौ नौ घटिका । परिघ योग मे ३० घटिका पूर्ण होने तक छोड देना चाहिए ।

अब शुभाशुभ करण को बतलाते हैं।—

वव, वालव, कौलव, तैतिल, गर्ग, वणिज, शकुनि ये सातो शुभकरण हैं इनमे शुभ कार्य हमेशा करना चाहिए। भद्र चतुष्पाद नागवान और किंस्तुघ्न

ये चार करण दुष्ट हैं इनमे कोई भी कार्य नही करना चाहिए।

इनमें भी भद्राकरण महादोष वाला है।

अवकहड़ चक्र की मूल उत्पत्ति

१—अवकहड़

२—म ट प र त

३—न य भ ज ख

४—ग स द च ल

इस तरह ५-५ अक्षरो के चार सूत्र हैं।

१ सूत्र

अ	व	क	ह	ड
इ	वि	कि	हि	डि
उ	वु	कु फङ छ	हु	डु
ए	वे	के	हे	डे
ओ	वो	को	हो	डो

२ सूत्र

म	ट	प	र	त
मि	टि	पि	रि	ति
मु	टु	पु ष न श	रु	तु
मे	टे	पे	रे	ते
मो	टो	पो	रो	तो

३ सूत्र

न	य	भ	ज	ख
नि	यि	भि	जि	खि
नु	यु	भु घ फ ढ	जु	खु
ने	ये	भे	जे	खे
नो	यो	भो	जो	खो

४ सूत्र

ग	स	द	च	ल
गि	सि	दि	चि	लि
गु	सु	दु श झ थ	चु	लु
गे	से	दे	चे	ले
गो	सो	दो	चो	लो

इस प्रकार चार सूत्रो से सम्बन्धित २५-२५ अक्षरो के कोष्ठक बने हैं। जिनके १०० अक्षर होते हैं तथा मध्यम के साथ ३-३ अन्य अक्षर होते है। समस्त अक्षर ११२ होते है।

इनके पढने का क्रम—

चार चार अक्षरो का एक-एक नक्षत्र बनाते हुए उपर्युक्त ११२ अक्षरो के २८ नक्षत्र हो जाते हैं।

लग्नाधिपति और लग्न प्रमाण घडी का कोष्ठक

लग्नाधिपति	कुज	शुक्र	बुध	चन्द्र	रवि	बुध
लग्न	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या
प्रमाण घडी	४।०	४।३०	५।१५	४।३०	५।३०	५।१५
लग्नाधिपति	शुक्र	कुज	गुरु	शनि	शनि	गुरु
लग्न	तुला	वृश्चिक	धनुष	मकर	कुम्भ	मीन
प्रमाण घडी	५।१५	५।३०	५।३०	५।१५	४।३०	४।०

इस कोष्ठक के अनुसार किसी भी नाम का नक्षत्र और चरण को ठीक तरह से जान लेने पर किस नक्षत्र की कौन सी राशि होती है इस विषय को निम्नलिखित श्लोक द्वारा दिखाया जाता है—

अश्विनीभरणीकृतिकाः पादेषु मेषः
कृतिका त्रयपादा रोहिणी मृगशिरार्द्धं वृषभः।
मृगशिरद्विपादा पुनर्वसुत्रिपादेषु मिथुनः
पुनर्वस्वेकपादा पुष्याश्लेषान्तेषु कर्कटिकः।
मघा पूर्वोत्तरैकपादेषु सिंह
उत्तरात्रिपादहस्तचित्रार्द्धेषु कन्या।
चित्रार्द्धस्वातिविशाखात्रिपादेषु तुला
विशाखैकपादानुराधाज्येष्ठान्तवृश्चिकः
मूलपूर्वाषाढोत्तराषाढैकपादेषु धनुः
ऊत्तराषाढात्रिपादश्रवणधनिष्ठार्द्धेषु मकरः।

धनिष्ठार्द्ध शतभिषा पूर्वाभाद्रपाद त्रिपादेषु कुम्भः
पूर्वाभाद्रपदैकोत्तराभाद्रपदरेवत्यन्तं मीनः ।

अर्थ—इस प्रकार अश्विनी ४ पाद, भरणी ४ पाद, कृतिका एक पाद मिलकर मेष राशि होती है ।

कृतिका के शेष ३ पाद, रोहिणी ४ पाद, मृगशिरा के दो पाद मिलकर वृषभ राशि होती है ।

मृगशिरा के शेष २ पाद, आर्द्रा के ४ पाद, पुनर्वसु के ३ पाद मिलकर मिथुन राशि होती है ।

पुनर्वसु का शेष १ पाद, पुष्य के ४ पाद, आश्लेषा के ४ पाद मिलकर कर्क राशि होती है ।

मघा ४ पाद, पूर्वाफाल्गुणी ४ पाद और उत्तरा का १ पाद मिलकर सिंह राशि होती है ।

उत्तरा के शेष ३ पाद, हस्त के ४, चित्रा के दो चरण मिलकर कन्या राशि होती है ।

चित्रा के २ पाद, स्वाति के ४, विशाखा के ३ पाद मिलकर तुला राशि होतो है ।

विशाखा का शेष १ पाद, अनुराधा के ४ पाद, ज्येष्ठा के ४ पाद मिलकर वृश्चिक राशि होती है ।

मूल के ४ पाद, पूर्वाषाढ के ४ पाद, उत्तरा का एक पाद मिलकर धन राशि होती है ।

उत्तरा के शेष ३ पाद, श्रवण के ४, धनिष्ठा के २ पाद मिलकर मकर राशि होती हैं ।

धनिष्ठा के शेष २ पाद, शततारा के ४ पाद, पूर्वभाद्रपद के ३ पाद मिल कर कुम्भ राशि होती है ।

पूर्वाभाद्रपद का शेष १ पाद, उत्तराभाद्रपद के ४, रेवती के ४ पाद मिल कर मीन राशि होती है ।

आगे संवत्सर का नाम बतलाते हैं—

जैन सिद्धान्त शास्त्र के अनुसार ६० संवत्सरों के नाम–

उत्तम सवत्सर		मध्यम सवत्सर		कनिष्ठ सवत्सर	
१	प्रभव	२१	सर्वजितु	४१	प्लवग
२	विभव	२२	सर्वधारि	४२	कीलक
३	शुक्ल	२३	विरोधि	४३	सौम्य
४	प्रमोदित	२४	विकृति	४४	साधारण
५	प्रजोत्पत्ति	२५	खर	४५	विरोधिकृतु
६	अगीरस	२६	नदन	४६	परिधातु
७	श्री मुख	२७	विजय	४७	प्रमादित
८	भाव	२८	जय	४८	आनन्द
९	युव	२९	मन्मथ	४९	राक्षस
१०	धातु	३०	दुर्मुखि	५०	नल
११	ईश्वर	३१	हेविलवि	५१	पिंगला
१२	बहुधान्य	३२	विलवि	५२	काल युक्ति
१३	प्रमाथि	३३	विकारि	५३	सिद्धार्थि
१४	विक्रम	३४	शर्वरि	५४	रौद्रि
१५	विषु (वृष)	३५	प्लव	५५	दुर्मति
१६	चित्र भानु	३६	शुभकृतु	५६	दुदुभि
१७	सुभानु	३७	शोभनकृतु	५७	रुधिरोद्गारी
१८	तारण	३८	क्रोधि	५८	रक्ताक्षि
१९	पार्थिव	३९	विश्वावसु	५९	क्रोधन
२०	व्यय	४०	पराभव	६०	क्षय

अयनो के नाम–

एक वर्ष मे उत्तरायण, दक्षिणायन ऐसे दो अयन होते है। स्थूलमान के अनुसार पौष मास से ज्येष्ठ मास तक सूर्य उत्तर की तरफ होने के कारण उत्तरायण कहते हैं। आषाढ मास से मगशिर तक सूर्य दक्षिण की तरफ सचार करने के कारण दक्षिणायन कहते हैं।

६ ऋतु के नाम

चैत्र-वैशाख वसत ऋतु। आसोज-कार्तिक शरद ऋतु। ज्येष्ठ-आषाढ ग्रीष्म ऋतु। मगशिर-पौष हेमन्त ऋतु। श्रावण-भाद्रपद वर्षा ऋतु। माघ-फागुण-शिशिर ऋतु।

१२ महीनो के नाम—

१ चैत्र, २ वैशाख, ३ ज्येष्ठ, ४ आषाढ, ५ श्रावण, ६ भाद्रपद, ७ आश्विन, ८ कार्तिक, ९ मार्गशिर, १० पौष, ११ माघ, १२ फागुन।

पक्ष २

प्रत्येक महीने के शुरू मे सुदी पडवा से पौर्णिमा तक १५ दिन शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक १५ दिन कृष्ण पक्ष जानन चाहिए। शुक्ल पक्ष को सुदी, कृष्ण पक्ष को वदी कहने की परिपाटी है।

तिथि ३० होती है—

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पौर्णिमा ये शुक्ल पक्ष की तिथि हैं।

पुन प्रतिपदा से चतुर्दशी तक १४ तिथि ऐसे आगे चलते हुए ३० वी तिथि के अत मे अमावस्या आती है। ये कृष्ण पक्ष की तिथि हैं। ये ३० तिथि मिलकर १ मास होता है।

वार—७ हैं—

रविवार, सोमवार, मगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार ये सात वार हैं।

नक्षत्र २८ है—

आकाश मंडल मे असख्यात नक्षत्र होने पर भी इस क्षेत्र मे रूढ़ि मे आने वाले नक्षत्र २८ हैं। उनके नाम इस प्रकार है—

नक्षत्रो के नाम —

१ अश्विनी	८ पुष्य	१५ स्वाती	२२ श्रवण
२ भरणी	९ आश्लेषा	१६ विशाखा	२३ धनिष्ठा
३ कृतिका	१० मघा	१७ अनुराधा	२४ शततारका
४ रोहिणी	११ पूर्वा	१८ जेष्ठा	२५ पूर्वा-भाद्रपद
५ मृगशिरा	१२ उत्तरा	१९ मूल	२६ उत्तरा-भाद्रपद
६ आर्द्रा	१३ हस्त	२० पूर्वा-षाढ	२७ रेवती
७ पुनर्वसु	१४ चित्रा	२१ उत्तरा-षाढ	२८ अभिजित

उत्तराषाढ और श्रवण के बीच मे अभिजित नाम का नक्षत्र है। बहुत दिनो तक यह नक्षत्र रूढि मे न होने के कारण अन्य ज्योतिषकारो ने इसको विल्कुल ही गिनती नही लिया था अब जैन ज्योतिष ग्रन्थो के अनुसार यह नक्ष प्रचार मे आने से सभी-ज्योतिष के विद्वान २८ नक्षत्र को गिनती मे लाने लगे हैं।

योग २७ है

१ विष्कंभ	८ धृति	१५ वज्र	२२ साध्य
२ प्रीति	६ शूल	१६ सिद्धि	२३ शुभ
३ आयुष्यमान	१० गंड	१७ व्यतिपात	२४ शुक्ल
४ सौभाग्य	११ वृद्धि	१८ वरियान	२५ ब्रह्म
५ शोभन	१२ ध्रुव	१६ परिघ	२६ ऐन्द्र
६ अतिगड	१३ व्याघात	२० शिव	२७ वैधृति
७ सुकर्म	१४ हर्षण	२१ सिद्ध	

करण ग्यारह हैं

१ बव २ बालव ३ कौलव ४ तैतल ५ गर्ज ६ वनिज ७ भद्र ८ शकुनि ६ चतुष्पाद १० नाग ११ किंस्तुघ्न इस प्रकार ये ११ करण है। इसके शुभाशुभ फल को आगे बतायेंगे।

राशि और लग्न १२ होते हैं

१ मेष	४ कर्क	७ तुला	१० मकर
२ वृष	५ सिंह	८ वृश्चिक	११ कुंभ
३ मिथुन	६ कन्या	६ धनुष	१२ मीन

ये बारह राशि हैं और बारह राशि के समान ही लग्न भी होते हैं। लग्न-या राशि मे कोई भेद नही है। फिर राशि और लग्न मे भेद क्यो है इसका समाधान निम्नलिखित है :—

अगर किसी बालक का जन्म वृष राशि मे हुआ हो अर्थात् बालक के जन्म के समय उदय काल मे वृष राशि हो तो उसे वृष लग्न कहते है। इसका स्पष्टीकरण प्रकरण के अनुसार करेंगे।

ग्रह ६ हैं।

१ रवि २ चन्द्र ३ कुज ४ बुध, ५ गुरु,६ शुक्र ७ शनि ८ राहु ६ केतु ये नव ग्रह हैं। २४ घण्टे का १ दिन ६० पल की १ घडी ३ घण्टे का १ याम. २॥ घडी का १ घण्टा। १ याम को प्रहर भी कहते हैं। ६० मिनट का १ घण्टा एक घण्टे का एक होरा होता है। २॥ पल का १ निमिष, ६० घटिका का १ दिन होता है।

पंचाग क्या है —

तिथिवार नक्षत्र च योगः करणमेवच ।
एतैः पंचभिरंगैः सयुक्तं पचांगमुच्यते ॥

भावार्थ—तिथि, वार, नक्षत्र, योग, और करण इन सबको मिलाने को पंचाग कहते हैं। इस पाच अग के अलावा उपयोगी अनेक विषयो को पंचाग मे लिखने की पद्धति आजकल बहुत प्रचलित है।

तिथि वार नक्षत्र और योग के समान ६० घड़ी पूर्ण न होकर करण जो है वह एक दिन मे तीस तीस घड़ी के प्रमाण दो हो जाते हैं। अब आगे चर स्थिर करणो को बतलाते हैं— बव, वालब, कौलव, तैतिल, गर्ज वणिज, भद्र ये सात चरकरण हैं। शकुनि, चतुष्पाद, नागवान, किस्तुघ्न ये चार करण स्थिर करण होते हैं।

चरकरण की उत्पत्ति—

जिस तिथि का करण देखना हो उस तिथि तक शुक्ल प्रतिपदा से लेकर गत तिथियों को गिने। जो संख्या आवे उसे दो से गुणा करे और लब्ध को ७ से भाग दे। भाग देने से जो शेष बचे उसी संख्या वाला चर करण नित्य तिथि के पूर्वार्द्ध मे समझना चाहिए। उत्तरार्द्ध तिथि के लिए गत तिथियो को दो से गुणा करके १ और जोड दें। तत्पश्चात् ७ से भाग देकर जो बचे उस सख्या वाला ववादि करण समझना चाहिए। ३० घड़ी से यदि कम तिथि हो तो उसे उत्तरार्द्ध समझना और यदि अधिक हो तो पूर्वार्द्ध।

उदाहरणार्थ—शक संवत् १८५२ श्रावण सुदी १२ को कौनसा करण है? ऐसा प्रश्न करने पर देखा गया कि वह तिथि ३० घडी से कम है। इसलिए वह उत्तरार्द्ध तिथि हुई। अब गत तिथि ११ को दो से गुणा करने पर २२ हुआ और उसमे १ मिलाकर ७ से भाग दिया तो शेष दो बचा, जोकि दूसरा वालव करण हुआ। यह चर करण का नियम हुआ।

स्थिर करण की उत्पत्ति.—

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध मे शकुनिकरण, अमावस्या के पूर्वार्द्ध मे चतुष्पाद और उत्तरार्द्ध मे नागवान करण होता है। तथा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्द्ध मे किस्तुघ्न करण होता है। यहा इतना और समझ लेना चाहिए कि तिथि और नक्षत्रों के समान आगे पीछे न होकर करण की उत्पत्ति नियत रूप से होती है।

राशियो के विषय.—

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुम्भ ये ६ राशिया विषम हैं अथवा ये क्रूर स्वभाव वाली पुरुष राशियाँ हैं। इनके अतिरिक्त (वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन) राशियाँ युग्म राशि, सौम्य स्वभाव वाली स्त्री

राशियाँ हैं। मेष, कर्क, तुला और मकर ये चार चर राशियाँ हैं। वृषभ, सिंह, वृश्चिक और कुंभ ये स्थिर राशिया हैं। तथा शेष मिथुन, कन्या, धन और मीन ये द्विस्वभाव वाली है। मेष, वृषभ, कर्क, धन और मकर ये पाँच राशियाँ पृष्ठोदय है, मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक तथा कुंभ ये छ शिरसोदय राशियाँ हैं और मीन उभयोदय राशि है। मेष, वृषभ, मिथुन कर्क, धन और मकर ये छ राशिया रात्रि बल-वाली है और शेष सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुंभ तथा मीन ये छ दिवावली है।

शुभअशुभ ग्रह—

पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र ये चार शुभ हैं तथा अच्छा फल देने वाले ग्रह हैं। सूर्य, क्षीण-चन्द्र, कुज, (मगल) शनि राहु, तथा केतु ये छ पाप ग्रह है जोकि दुष्ट फल देते है। इन पापी ग्रहो के साथ यदि बुध हो जाय तो वह भी पाप फल देने होता है।

रवि, मगल और गुरु ये ३ पुरुष ग्रह हैं, चन्द्र, शुक्र, तथा राहु ये ३ स्त्री ग्रह हैं तथा बुध, शनि केतु ये ३ नपुंसक ग्रह है।

अब इन ग्रहो का राशियो पर रहने का समय बतलाते हैं—

रवि शुक्र बुधा मास सार्धमास कुजस्तथा।
गुरुर्द्वादशमासस्तु शनिस्त्रिशत्तथैव च ॥
वर्षार्द्धं राहुकेतुस्तु राशिस्थितिरितीरितम्।

अर्थ—रवि, शुक्र और बुध ये तीनो ग्रह एक मास पर्यन्त एक राशि पर रहते है, मगल डेढ मास तक १ राशि पर रहता है, गुरु एक राशि पर १२ मास तक रहता है, शनि १ राशि पर ३० मास तक रहता है तथा केतु और राहु १ राशि पर डेढ वर्ष तक रहते हैं तथा चन्द्रमा १ राशि पर सवा दो दिन तक रहता है।

ग्रहो की जातिया—

गुरु और चन्द्र ब्राह्मण वर्ण, रवि और मगल क्षत्रिय वर्ण, बुध वैश्य वर्ण, शुक्र शूद्र वर्ण, शनि, राहु तथा केतु नीच वर्ण वाले होते है।

यत्र मत्र व्रतादिके मूहूर्त—

उफा हस्ताश्विनी कर्ण विशाखामृगभेहनि।
शुभे सूर्ययुते शस्त मंत्रयंत्रव्रतादिकं ॥

भावार्थ—उत्तरा, हस्त, अश्विनी, श्रवण, विशाखा, मृगशिरा इन छ नक्षत्रो में, तथा रवि, सोम, गुरु, शुक्रवार मे किया हुआ मत्र, यत्रादि का आराधन

शीघ्र ही फल को देता है। और व्रत उपवासादि क्रिया की सिद्धि भी होती है।

काल-राहु रहने की दिशा —

रवि गुरुवार को पूर्व दिशा मे, सोम शुक्र को दक्षिण दिशा मे, मंगलवार को पश्चिम दिशा मे, शनि, बुध को उत्तर दिशा मे काल-राहु रहता है।

नवीन गृह (घर) निर्माण मुहूर्त.—

वैशाख, श्रावण, कार्तिक, माघ इन मासो में उत्तराषाढ- उत्तरा भाद्रपद, मृगशिरा, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा शततारका, रेवती इन १३ तेरह नक्षत्रो मे और २-३-५-७-१०-११-१३-१५ तिथियो मे तथा सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार दिनो मे नया घर बनवाने का मुहूर्त उत्तम माना है। फागुन मास नूतन गृहारभ करने मे साधारण माना है।

औषधि सेवन करने और तैयार करने का मुहूर्त.—

हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूला पुष्य श्रवण, धनिष्ठा, शततारका मृगशिरा, रेवती, अश्विनी पुनर्वसु, इन नक्षत्रो मे तथा सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार दिनो मे और २-३-५-७-१० ११-१३-१५ का शुक्ल पक्ष मे तथा कृष्ण पक्ष की प्रति पदा के दिन औषध तैयार करने मे और सेवन करने मे शुभ माने हैं।

भौमाश्विनी आदि सिद्ध योग भी कार्य विशेषो मे निन्द्य है :—

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथ क्रमम् ।
भौमेऽश्विनीं शनौ ब्राम्हं गुरौ पुष्यं विवर्ज्जयेत् २२॥

मगलवार को अश्विनी गृह प्रवेश मे, शनिवार का रोहिणी यात्रा मे, गुरुवार को पुष्य नक्षत्र विवाह मे वर्जित है।

प्रयाण के लिए शुभ नक्षत्र —

मृगाश्विनी पुष्य पुनर्वसू च , हस्तानुराधा श्रवणं च मूलः ।
धनिष्ठरेवत्य गते प्रयाणं, फलं लभेत् शीघ्र विवर्तनं च ॥

अर्थात्—मृगशिर, अश्विनी, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, अनुराधा, श्रवण, मूल, धनिष्ठा और रेवती इन नक्षत्रो मे प्रयाण करने से कार्य शीघ्र सफल वनता है।

प्रयाण के लिए दुष्ट नक्षत्र –

पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, मघा, जेष्ठा, भरणी, जन्म नक्षत्र, कृतिका, स्वाति, श्लेषा, विशाखा, चित्रा, आदि इन नक्षत्रो में कभी प्रयाण नही करना चाहिए। इन नक्षत्रो मे प्रयाण करने से हानि होती

है, शेष बचे—उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, शततारका, इन नक्षत्रो मे प्रयाण करने से साधारण फल होता है।

अक्षरारम्भ का मुहूर्त—

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये ।
गुरुद्वयेऽर्कजीवविन्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके ॥
शिवार्कदिग् द्विकेतिथौ ध्रुवान्त्यत्रिभेपरैः,
शुभैरधीतिरुत्तमात्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृता ॥३८॥

—मुहूर्त चिन्तामणि

अर्थात्—मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनोपूर्वा, पुष्य, श्लेषा, ध्रुवसज्ञक, अनुराधा और रेवती इन नक्षत्रो मे तथा रविवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार इन वारो मे तथा ६, ५, ३, १५, १२, १०, २ इन तिथियो मे जब केन्द्र त्रिकोण गत शुभ ग्रह हो तब विद्यारम्भ करना चाहिए। आगे यज्ञोपवीत का समय मुहूर्त चिन्तामणि ज्योतिष शास्त्र मे बताया गया है—

वह यहा पर देते है।

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदित, गर्भाज्जनेर्वाष्टमे,
वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे ॥
वैश्यानांपुनरष्टमे ऽप्यथपुनः स्याद्द्वादशे वत्सरे,
कालेऽथद्विगुणेगतेनिगदिते गौणतदाहुर्बुधाः ॥३९॥

(मुहूर्त चिन्तामणि)

अर्थात्—ब्राह्मणो को गर्भ से या जन्म से पञ्चम अथवा अष्टम सौर वर्ष मे क्षत्रियो को छठे तथा ग्यारहवें वर्ष मे और वैश्यो को आठवे या बारहवे वर्ष मे यज्ञोपवीत धारण करना कहा है। इस कथित समय से दूने समय को पण्डितो ने गौणकाल माना है।

यात्रा मे शुभ वार—

अङ्गारपूर्वे गमने च लाभस्सोमेशनिर्दक्षिण अर्थलाभः ।
बुधे गुरौ पश्चिमकार्यसिद्धिर्भानौ मृगे चोत्तर धान्यलाभः ॥

—मुहूर्त चिन्तामणि

अर्थ—मगलवार को पूर्व दिशा मे गमन करने से लाभ होता है।

सोमवार और शनिवार को दक्षिण दिशा की यात्रा से धन का लाभ होता है। बुधवार तथा गुरुवार को पश्चिम दिशा में गमन करने से कार्य की सिद्धि होती है। रविवार तथा शुक्रवार को उत्तर दिशा मे यात्रा करने से धन धान्य का लाभ होता है।

दिक् शूल—

न पूर्वे शनि सोमे च, न गुरुर्दक्षिणे तथा
न पश्चिमे भानुशुक्रे च, नोत्तरे बुधमंगले ॥

अर्थ—शनिवार सोमवार को पूर्व दिशा मे गमन न करे। दक्षिण दिशा मे गुरुवार को जाना ठीक नही। रविवार शुक्रवार को पश्चिम दिशा मे तथा बुधवार मगलवार को उत्तर दिशा मे न जाना चाहिये।

प्रयाण के लिए शुभ तिथिया—

द्वितीया को यात्रा करने से कार्य सिद्धि, तृतीया को शान्ति, पचमी को सुख, सप्तमी को अर्थ लाभ, अष्टमी को शुभ, दशमी को शुभ फल की प्राप्ति एकादशी तथा त्रयोदशी को यात्रा करने से कार्य सिद्ध होता है। शेष १- ४-६-१४-१५, अमावस्या षष्ठी और द्वादशी यात्रा के लिए अशुभ है।

यात्रा के लिए चन्द्र विचार—

मेषे च सिंहे धनपूर्वभागे,वृषे च कन्या मकरे च याम्ये।
युग्मे तुले कुम्भसुपश्चिमायां कर्कालिमीने दिशि चोत्तरस्याम् ॥

अर्थ—मेष, सिंह, धन राशि हो तो चन्द्रमा पूर्व दिशा मे रहता है। वृष, कन्या, और मकर राशि हो तो चन्द्र दक्षिण दिशा मे रहता है। मिथुन तुला, कुम्भ राशि मे चन्द्र पश्चिम दिशा मे तथा कर्क, वृश्चिक मीन राशि के समय चन्द्र उत्तर दिशा मे रहता है।

सन्मुखे अर्थलाभाय, दक्षिणे सुखसम्पदः।
पृष्ठतः प्राणनाशाय, वामेचन्द्रे धनक्षयः ॥

अर्थ—यात्रा के समय चन्द्रमा यदि सन्मुख हो तो अर्थ [धन] का लाभ होता है। यदि चन्द्र दाहिनी दिशा मे हो तो सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है, चन्द्र यदि पीठ की ओर हो तो प्राण नाशकी आशका रहती है तथा यदि यात्रा के समय बायी दिशा मे चन्द्रमा हो तो धन की हानि होती है।

मरण नक्षत्र दोष विचार—

धनिष्ठा नक्षत्र के ३-४ पाद मे शततारका, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती को पचक नक्षत्र कहते हैं। कृतिका, उत्तरा, उत्तराषाढा ये अन्त. त्रिपाद

नक्षत्र हैं। विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा बहि त्रिपाद नक्षत्र हैं। चित्रा मृगशिर, धनिष्ठा द्विपाद नक्षत्र है। रोहिणी, मघा, भरणी दुष्ट नक्षत्र है। परन्तु शनिवार रविवार मगलवार मे त्रिपाद नक्षत्र मिल जाय तो द्विपुष्कर योग होता है और २-७-१२ तिथियोको ऊपर लिखे हुए पापवार तथा त्रिपाद नक्षत्र मिल जायं तो त्रिपुष्कर योग होता है। इस त्रिपुष्कर योगमे बालकके जन्म होने पर ९ मास के लिए घर छोड कर अन्य जगह निवास करना चाहिए। द्विपुष्कर योग में शिशु जन्म के समय ६ मास के लिए, त्रिपाद मे जन्म होने पर ३ मास के लिए मृगशिर चित्रा के द्विपाद मे जन्म लेने पर दो मास के लिए, रोहिणी नक्षत्र मे जन्म होने पर १२ मास तक, भरणी और मघा मे ५ मास, धनिष्ठा के ३-४ पाद मे जन्म हो तो ८ मास, शततारका मे ६ मास, पूर्वाभाद्रपद मे जन्म होने पर ८ मास, उत्तराभाद्रपद मे जन्म होने पर ३ मास, रेवती मे बालक का जन्म होने पर एक मास के लिए घर छोड कर अन्य घर मे रहना चाहिए फिर शुभ तिथि देखकर मगल कलश सहित घर मे प्रवेश करना चाहिये।

विवाह-भग योग—

यदि भवतिसितातिरिक्तपक्षे, तनुगृहतः समराशिदः शशाङ्कः।
अशुभखचररवीक्षतोऽरिरन्ध्रे भवति विवाहविनाशकारकोऽयम् ॥

अर्थ—यदि कृष्ण पक्ष मे चन्द्रमा समराशिका होकर प्रश्न लग्न से छठे या आठवे स्थान मे हो और पाप ग्रह से दृष्ट हो तो विवाह नाशकारक होता हैं।

वैधव्य योग का विचार—

जन्मोत्थ च विलोक्य बालविधवायोग विधाय व्रत,
सावित्र्याउतपैप्पल हि सुतया दद्यादिमां वा रहः।
सल्लग्नेऽच्युतमूर्तिपिप्पलघटैः कृत्वा विवाह स्फुट,
दद्यात्तां चिरजीविनेत्र न भवेद्दोषः पुनर्भू भवः ॥

(मुहूर्त चिन्तामणि)

अर्थ—जन्म लग्न से कन्या को यदि बाल-विधवा होने का योग हो तो व्रत, पूजन, दान आदि करके उस कन्या को दीर्घजीवी वर के साथ विवाह कर देना चाहिए।

यात्रा मे सूर्य विचार—

धनुर्मेषसिंहेषु यात्रा प्रशस्ता शनिज्ञोशनोराशिगेचैव मध्या।
रवौ कर्कमीनालिसस्थेतिदीर्घा, जनुःपञ्चसप्तत्रिताराश्च नेष्टाः ॥

(मुहूर्त चिन्तामणि)

अर्थ—धनु मेष सिंह के सूर्य मे यात्रा करना शुभ है। मकर, कुम्भ, मिथुन, कन्या, वृष, तुला के सूर्य मे यात्रा मध्यम है और कर्क, मीन, वृश्चिक मे सूर्य हो तो यात्रा लम्बी होती है। यात्रा मे १-५-३-७वी तारा नेष्ट है।

गोचर विचार—

पहले लिखे अनुसार नक्षत्रो की १२ राशिया अच्छी तरह समझ लेने के बाद 'किस राशि वाले मनुष्य को कौन-सा ग्रह किस स्थान मे है, कितने स्थान मे होता है तथा वह ग्रह कितने समय तक अपना अच्छा या बुरा फल देता है।' यह विषय जानने को 'गोचर' कहते हैं। यह बात प्रत्येक मनुष्य को जाननी आवश्यक है।

गोचर ग्रह के जानने की विधि

राशि को जान लेने पर, उस राशि का ग्रह कितने स्थान मे कितने समय तक रहता है, इस बात को जानने के लिए उस वर्ष का पचांग, लेकर शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष की कुण्डली मे किस राशि मे कौन सा ग्रह है, यह देखना चाहिये तदनन्तर अपने ग्रह रहने की राशि तक गिन लेना चाहिये। गिन लेने पर उतनी संख्या मे अपना ग्रह जान कर अपना शुभ अशुभ फल जान लेना चाहिए।

उदाहरण के लिए ईश्वरचन्द्र नामक व्यक्ति के विषय मे विचार करे कि इनके कितने स्थान पर गुरु और शनि है ? तो

ईश्वर चन्द्र का प्रथम अक्षर 'ई' है जोकि अवगहड़ चक्रानुसार कृतिका
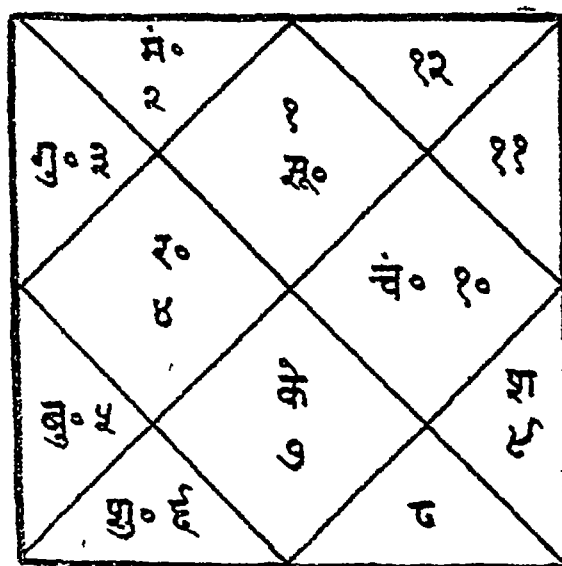
नक्षत्र के दूसरे पाद मे है। कृतिका नक्षत्र के द्वितीय पाद में वृषभ राशि होती है। इसको निम्नलिखित कुण्डली मे देखिये—(शक सवत् १८७९ आषाढ सुदी २ शनिवार।)

ईश्वरचन्द्र की १२ राशिया उपरिलिखित कुण्डली में यथा स्थान हैं। तदनुसार गुरु तीसरे स्थान पर, शनि ईश्वरचन्द्र के नौवे स्थान पर है। इसी प्रकार अन्य ग्रहो को भी समझ लेना चाहिये। परन्तु जन्म कुण्डली के ग्रह राशि के अनुसार बदलते रहते है। इसको सावधानी से देखना चाहिये।

ग्रहो द्वारा राशि परिवर्तन का विचार—

पचाग मे लिखे हुए तिथि, वार, नक्षत्र, योग कर्ण की पंक्ति मे १-'म' सिंहे ज्ञ. लिखा होता है। इसका अभिप्राय यह है कि उस दिन सिंह राशि मे बुध आया समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार का 'उत्तरा दूसरे चरण मे कन्ये शुक्र' इस प्रकार लिखा होता है इसका अर्थ यह है कि उस दिन उत्तरा नक्षत्र मे शुक्र सिंह राशि को छोड कर कन्या राशि मे आ गया है। इस प्रकार इस विषय को पचाग मे दिये गये सकेतो के अनुसार राशि बदलने की विधि समझ लेना चाहिए।

इसके सिवाय प्रत्येक मास मे तुले रवि या तुलेऽर्क. कर्के गुरु मिथुने कुज इस प्रकार पचाँग मे जहा तहा राशि परिवर्तन लिखा होता है उसके अनुसार ग्रह द्वारा राशि परिवर्तन के स्थान पर घडी पल आदि भी लिखा होता है जैसे—'सिंहे बुध ५५ घडी ४ पल' लिखा है इस का अभिप्राय यह है कि सूर्य उदय से ५५ घडी ४ पल समय वीत जाने पर बुध ग्रह सिंह राशि मे आ गया है। इस प्रकार प्रत्येक मास मे ग्रह का राशि-परिवर्तन लिखा होता है उसे देख कर मनन कर लेना चाहिए।

नव ग्रह गोचर का फल—

सूर्य का फल—

प्रथम स्थान का रविनाश को प्रगट करता है, दूसरे स्थान का रवि भय हानि को, तीसरे स्थान का रवि व्यापार मे धन लाभ को, चौथा रवि रोग पीडा मर्यादा भग को, पाचवा रवि दरिद्रता को, छठा रवि घूमने फिरने को, नौवा रवि नाश तथा अशुभ फल को, दशवा तथा ग्यारहवा रवि अनेक प्रकार का लाभ तथा सुख, बारहवे स्थान का रवि पीडा तथा नाश का सूचक है।

चन्द्र का फल—

पहले स्थान का चन्द्र पुष्टि, अन्न वस्त्र के लाभ को वतलाता है, दूसरा

चन्द्र अनेक प्रकार की द्रव्य प्राप्ति, तीसरा चन्द्र लक्ष्मी, सुख प्राप्ति, चौथा चन्द्र देह पीडा रोग आदि को, पांचवा चन्द्र पराजय, असफलता, छठा सातवा चन्द्र धन सम्पत्ति लाभ को, आठवा चन्द्र रोग को, नौवां चन्द्र राजकीय आपत्ति को, दशवा ग्यारहवा चन्द्र अनेक प्रकार के सुख तथा लाभ को, बारहवे स्थान का चन्द्र द्रव्य नाश तथा आपत्तियो को सूचित करता है।

मंगल का विचार—

प्रथम स्थान का मगल शत्रु भय को सूचित करता है। दूसरा मगल धन नाश को, तीसरा मगल व्यापार उद्योग मे द्रव्य प्राप्ति को, चौथा मंगल शत्रु की वृद्धि को, पाचवा मगल रोग पीडा को, छठा अनेक प्रकार के धन लाभ को, सातवाँ मगल देह निर्बलता तथा द्रव्य नाश को, आठवा मंगल विरोधियों के भय तथा पाप फल को, नौवां मगल अनेक प्रकार के उपद्रव तथा पीडा को, दशवा ग्यारहवा मंगल धन लाभ तथा सुख शान्ति को तथा बारहवे स्थान का मगल नाश को सूचित करता है।

बुध का फल—

पहले स्थान का बुध भय का सूचक है, दूसरे स्थान का बुध व्यापार उद्योग आदि मे धन प्राप्ति, तीसरा बुध क्लेश, भय को, चौथा बुध द्रव्य प्राप्ति, पाचवां बुध रोगादि पीडा तथा मनोव्यथा को, छठा बुध लक्ष्मी समागम को, सातवा बुध शरीर पीड़ा को, आठवाँ बुध अनेक प्रकार के धन लाभ को, नौवा बुध रोग को, दशवां बुध अनेक प्रकार के सुख भोग को, ग्यारहवा बुध अनेक प्रकार की द्रव्य प्राप्ति तथा सुख को, बारहवे स्थान का बुध अनेक प्रकार से द्रव्य व्यय तथा शारीरिक रोग को सूचित करता है।

गुरु का फल—

पहले स्थान का गुरु शत्रु द्वारा भय का सूचक है, दूसरा गुरु व्यापार आदि मे द्रव्य लाभ, तीसरे स्थान का गुरु विविध प्रकार के कष्टो को, चौथा गुरु व्यापार उद्योग मे हानि को पाचवां गुरु अनेक प्रकार के लाभ तथा सुख को, छठा गुरु अनेक प्रकार के मानसिक रोग आदि को, सातवा गुरु समस्त जनता द्वारा सन्मान तथा सुख को, आठवा गुरु अनेक प्रकार की शरीर-व्याधि तथा द्रव्यहानि को, नौवाँ गुरु अनेक प्रकार की मर्यादा (सन्मान) तथा धन धान्य की वृद्धि को, दशवा गुरु साधारण सुख शान्ति को, ग्यारहवा गुरु अनेक प्रकार के धन धान्य के लाभ को तथा बारहवें स्थान का गुरु अनेक प्रकार की पीड़ा तथा द्रव्य हानि को सूचित करता है।

शुक्र का फल—

पहले स्थान मे शुक्र हो तो सुखदाता तथा शत्रुनाशक होता है, दूसरे स्थान का शुक्र व्यापार उद्योग मे सफलता को, तीसरे तथा चौथे स्थान का शुक्र द्रव्य लाभ तथा सुख शान्ति को, पाचवें स्थान का शुक्र पुत्र लाभ को, छठे स्थान का शुक्र जनता द्वारा विरोध तथा रोग को, सातवे स्थान का शुक्र मानसिक दुख को, आठवे स्थान का शुक्र अनेक प्रकार के सुख तथा लाभ को, नौवें स्थान का शुक्र धर्म कर्म मे उत्साह को तथा वस्त्राभरण के लाभ को, दशवें स्थान का शुक्र मानसिक चिन्ता तथा विपत्ति को, ग्यारहवा शुक्र धन लाभ को तथा वारहवें स्थान का शुक्र प्रत्येक कार्य मे द्रव्य नाश का सूचक होता है।

शनि का फल—

पहले स्थान का शनि रोग तथा कष्ट को सूचित करता है, दूसरे स्थान का शनि प्रत्येक कार्य मे धन नाश तथा चिन्ता को, तीसरा शनि द्रव्य लाभ तथा सन्तोष को, चौथा शनि शत्रु की वृद्धि तथा मानसिक व्यथा को, पाचवा शनि द्रव्य नाश, शोक, स्त्री पुत्रादि द्वारा विघ्न वाधा को सूचित करता है, छठे स्थान का शनि धन लाभ, सन्तोष, कार्य कुशलता की वृद्धि को, सातवा शनि विविध अपवाद (वदनामी), भय तथा चिन्ता को, आठवा शनि शारीरिक रोग तथा विघ्न वाधा को, नौवा शनि उद्योग तथा व्यवहार मे असफलता, धर्म नाश तथा चिन्ता को, दशवा शनि साधारण लाभ तथा कार्य अनुकूलता को, ग्यारहवा शनि कार्यो मे द्रव्य लाभ तथा सुख आनन्द को एव वारहवें स्थान का शनि मानसिक व्यथा को और व्यापार उद्योग मे द्रव्य नाश को सूचित करता है।

नोट—गोचरी मे चौथे पाचवें स्थान के शनि को पचम शनि कहते है। चौथे स्थान का शनि ढाई वर्ष तक तथा पाचवें स्थान का शनि ढाई वर्ष तक यानी-कुल ५ वर्ष तक कष्ट देता है इसी कारण इसको पचम शनि कहते है। इसी प्रकार बारहवें स्थान का शनि साढे सात वर्ष तक कष्ट देता है, इसी को साढेसाती कहते हैं क्योकि बारहवे स्थान मे २॥ ढाई वर्ष, पहले स्थान मे ढाई वर्ष और दूसरे स्थान मे ढाई वर्ष तक, कुल ७॥ साढे सात वर्ष तक कष्ट देता है।

राहु केतु का फल—

राहु केतु पहले स्थान मे हो तो अनेक प्रकार के नाश तथा शरीर पीडा को बतलाता है। दूसरे स्थान का दरिद्रता, कलह, विरोध को, तीसरे स्थान मे द्रव्य लाभ, सुख को चौथे स्थान का भय की वृद्धि, शत्रु वृद्धि को, पाचवे स्थान का शोक चिन्ता को, छठे स्थान का अनेक प्रकार के धन लाभ, सुख सम्पत्ति

को, सातवें स्थान का कलह तथा राजकीय विपत्ति को, आठवे स्थान का राहु केतु अपमृत्यु, भय तथा ज्वरादि पीड़ा को, नौवे स्थान का पाप कार्य मे मन की इच्छा को, दशवे स्थान का वैर वृद्धि, चिन्ता वृद्धि को. ग्यारहवे स्थान का अनेक प्रकार सुख तथा सन्मान की वृद्धि को और बारहवे स्थान के राहु केतु अनेक प्रकार के शोक चिन्ता, शत्रु वृद्धि तथा धननाश को सूचित करते हैं।

गोचर फल का विशेष विचार—

रवि. मंगल, बुध और शुक्र इन चार ग्रहो द्वारा मास मे होने वाला गोचर फल जाना जाता है। चन्द्र से दैनिक फल, गुरु, शनि केतु से वार्षिक फल जान लेना चाहिये, परन्तु रूढ़ि मे गुरु और शनि द्वारा गोचर फल जानने की प्रथा प्रचलित है। जिस समय का शुभ अशुभ फल जानना हो उस समय शुभ अशुभ ग्रहों को अच्छी तरह देख लेना चाहिए। यदि उस समय शुभ गह अधिक हों तो उस समय सुख प्राप्त होगा, यदि अशुभ गह अधिक हो तो दु:ख मिलेगा, यदि शुभ अशुभ ग्रह समान हो तो सुख दुख समान होगा।

रवि मंगल राशि के आदि में, चन्द्र और बुध सदा, गुरु और शुक्र राशि के मध्य मे तथा शनि राहु और केतु राशि के अंत मे अपना फल देते हैं।

प्रत्येक राशि मे आने से सूर्य ५ दिन पहले, चन्द्रमा ३ घड़ी पहले, मंगल ८ दिन पहले, बुध शुक्र ७ दिन पहले, गुरु दो मास पहले, शनि ६ मास पहले और राहु केतु ४ मास पहले अपनी-अपनी दृष्टि की सूचना कर देते हैं।

राशियो के घात मास

मेष राशि वाले को कार्तिक मास तथा प्रतिपदा, छठ, एकादशी तिथि, रविवार, मघा नक्षत्र, विष्कम्भ योग, बवकरण, पहला पहर घातक है। मेष राशि वाली स्त्रियों तथा पुरुषो के लिए पहला चन्द्र घातक है।

वृष राशि वाले को मगसिर मास, पंचमी, दशमी, पूर्णिमा, शनिवार हस्त नक्षत्र, शुक्ल योग, शकुनि करण, चौथा पहर घातक है। पाचवां चन्द्र पुरुषों के लिए तथा स्त्रियो के लिए आठवां चन्द्र घातक है।

मिथुन राशि वाले को—आषाढ़ मास, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी तिथि सोमवार, स्वाति नक्षत्र, परिघ योग, कौलव करण, तीसरा पहर, नौवां चन्द्र तथा स्त्रियों के लिए सातवां चन्द्र घातक है।

कर्क राशि वाले के लिए—पौष मास, द्वितीया सप्तमी द्वादशी तिथि, बुधवार अनुराधा नक्षत्र, व्याघात योग, नागवान करण, पहला पहर, दूसरा चन्द्र तथा स्त्रियों के लिए नौवां चन्द्र घातक होता है।

सिह राशि वाले के लिए—ज्येष्ठ मास, तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी तिथि शनिवार, मूल नक्षत्र, धृति योग, बव करण, पहला पहर, छठा चन्द्र तथा स्त्रियो के लिए चौथा चन्द्र घातक है ।

कन्या राशि वाले को—भाद्र-पद मास, ५-१०-१५ तिथि शनिवार श्रवण नक्षत्र, शुक्ल योग, कौलव करण, पहला पहर, दशवा चन्द्रमा तथा स्त्रियो के लिए तीसरा चन्द्र घातक होता है ।

तुला राशि वाले को—माघ मास, ४-६-१४ तिथि गुरुवार, शततारका नक्षत्र, शुक्ल योग, तैतल करण, चौथा पहर, सातवा चन्द्र तथा स्त्रियो के लिए दूसरा चन्द्र घातक होता है ।

वृश्चिक राशि वाले को—आश्विन (आसोज) मास, १-६-११ तिथि, शुक्रवार, देवती नक्षत्र, व्यतिपात योग, गर्ग करण, पहला पहर, सातवाँ चन्द्र तथा स्त्रियो के लिए दूसरा चन्द्र घातक है ।

धनुष राशि वाले को—श्रावण मास ३-८-१३ तिथि शुक्रवार भरणी नक्षत्र, वज्रयोग, तैतिल करण, पहला पहर चौथा चन्द्र तथा स्त्रियो के लिए १०वा चन्द्र घातक है ।

मकर राशि वाले के लिए—वैशाख मास, ४-६-१४ तिथि, मंगलवार, रोहिणी नक्षत्र, वैधृति योग, शकुनि करण, चौथा पहर आठवा चन्द्र, स्त्रियो के लिए ११ वा चन्द्र घातक है ।

कुम्भ राशि वाले को—चैत्र मास, ३-८-१३ तिथि गुरुवार, आर्द्रा नक्षत्र, गण्ड योग, किंस्तुघ्न करण, तीसरा पहरा, ग्यारहवा चन्द्र तथा स्त्रियो के लिए पाचवा चन्द्र घातक है ।

मीन राशि वाले को—फागुन मास ५-१०-१५ तिथि, शुक्रवार; आश्लेषा नक्षत्र, वज्रयोग, चतुष्पाद करण, चौथा पहर, ग्यारहवा चन्द्र तथा स्त्रियो के लिए १२वा चन्द्र घातक है ।

अपनी अपनी राशि के अनुसार इन घातक मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, पहर तथा चन्द्रमा मे यात्रा व्यापार उद्योग प्रारम्भ, नवीन गृह निर्माण, नूतन वस्त्रआभरण पहनना, राजकार्य, धनधान्य संग्रह, दीक्षा, विवाह आदि कार्य नहीं करने चाहिए ।

तारा बल जानने की विधि |

वधू- वर के जन्म अथवा नाम नक्षत्र से विवाह के नक्षत्र तक गिनकर उसको ६ से भाग देने पर १ शेष रहे तो जन्म, २ शेष रहे तो सम्पत्ति, ३

शेष रहे तो विपत्ति, ४ रहे तो क्षेम, ५ शेष रहे तो पृथक्ता, ६ शेष रहे तो साधन प्राप्त होना, ७ शेष रहने पर वध, ८ रहने पर मैत्री, ९ रहने पर परम मैत्री समझना चाहिए। इनमे २-४-७-८ परम शुभ हैं, ९ मध्यम है। ये नाम और गुण के अनुसार फल देते हैं।

चन्द्र वल जानने की विधि—

विवाह कुण्डली मे वधू वर की जन्म राशि में पहला चन्द्र हो तो पुष्टि, दूसरा हो तो सुख की कमी, तीसरे स्थान मे धन लाभ, चौथे मे रोग, पांचवें में कार्य नाश, छठे मे विशेष द्रव्य लाभ, सातवे स्थान मे राज सन्मान, आठवे स्थान मे चन्द्र हो तो निश्चय से मरण, नौवे मे भय, दसवे में सम्पत्ति, ग्यारहवे मे द्रव्य लाभ और वारहवे स्थान मे चन्द्र हो तो अनेक प्रकार के दुख प्राप्त होते हैं।

सारांश—२-४-५-८-९-१२ स्थान का चन्द्र अशुभ है। शुक्ल पक्ष मे २-५-९वें स्थान पर रहने से भी कृष्ण पक्ष मे ४-८-१२ वे स्थान पर रहते हुए भी चन्द्र शुभ माना गया है।

पंचक देखने की विधि—

प्रतिपदा के पहले वीते हुए तिथि, वार, नक्षत्र की सख्या मे लग्न संख्या को मिलाकर जोड़ मे ९ से भाग देने पर शेष १ रहे तो मृत्यु २ शेष तो अग्नि, ४ शेष रहे तो राज्य, ६ रहे तो चोरी भय, ८ रह जावे तो रोग, यदि ३-५-७ शेष रहें तो निष्पंचक होता है।

ऊपर कहे हुए पचक दोष को विवाह, उपनयन, सस्कार, नवीन घर निर्माण, नूतन गृह प्रवेश इत्यादि शुभ कार्य नही करने चाहिए। ३-५-७ शुभ हैं, शेष अशुभ हैं।

रविवल तथा गुरु वल जानने की विधि—

विवाह की कुण्डली मे वर की राशि से रवि रहने की राशि तक गिनने पर यदि ३-६-१०-११ वे स्थान मे रवि हो तो उस मास मे रवि वल समझना चाहिए। इसी प्रकार गुरु की राशि तक गिनने पर २-५-७-९-१०-११ वे स्थान पर गुरु हो तो गुरु वल समझना चाहिए। वर को गुरु वल तथा रवि वल हितकारी है। स्त्रियो के लिए गुरु वल ही हितकारक होता है। विवाह मे मुकुट वांधते समय गुरु वल श्रेष्ठ माना गया है।

इस प्रकार यहां आवश्यक ज्योतिष-विषय दिया गया है, विस्तार के भय से अन्य विषय को छोड दिया है।

वैमानिक देवो का वर्णन —

द्विविधा वैमानिकाः ॥ ५ ॥

अर्थ—कल्पज और कल्पातीत वैमानिक देवो के दो भेद है। इन्द्र प्रतीन्द्रादि विकल्प वाले कल्पवासी देव होते हैं। और जहाँ पर इन्द्रादिक भेद न होकर सभी समान रूप से अहमिन्द्र हो उनको कल्पातीत कहते है.

षोडश स्वर्गाः ॥ ६ ॥

अर्थ—कल्प की अपेक्षा से सौधर्म, ईशान, सानकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये १६ स्वर्ग है। इन १६ स्वर्गों के १२ इन्द्र होते है। सौधर्मादि चार कल्पो मे सौधर्मेन्द्र ईशानेन्द्र, सानत्कुमार तथा महेन्द्र ऐसे चार इन्द्र है। मध्य मे आठ कल्पो के पूर्वापर युगलो के एक एक इन्द्र होते है। जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर का ब्रह्मेन्द्र, लान्तव कापिष्ठ का लान्तवेन्द्र, शुक्र और महाशुक्र का शुक्रेन्द्र, शतार और सहस्रार सहस्रारेन्द्र। आनतादि चार कल्पो मे आनतेन्द्र, प्राणतेन्द्र, आरणेन्द्र, तथा अच्युतेन्द्र ये चार इन्द्र है। इनके साथ १२ प्रतीन्द्र मिलकर कल्पेन्द्र २४ होते है।

नव ग्रैवेयकाः ॥ ७ ॥

अर्थ–अधो ग्रैवेयकत्रय, (३) मध्य ग्रैवेयकत्रय, (३) उपरिमग्रैवेयकत्रय, (३) ये ग्रैवेयक के नौ भेद है।

नवानुदिशाः ॥ ८ ॥

अर्थ–अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन ये पूर्वादि दिशाओ के ४ श्रेणीबद्ध है। सोम, सोमरूप, अक तथा स्फटिक ये चार आग्नेयादि दिशाओ के प्रकीर्णक है। बीच का इन्द्रक विमान मिलकर अनुदिशो के नौ विमान होते हैं।

पंचानुत्तराः ॥ ९ ॥

अर्थ—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार पूर्वादि दिशाओ के श्रेणीबद्ध विमान है और मध्य मे सर्वार्थसिद्धि का विमान है।

मेरुतलादु दिवड्ढं दिवड्ढदलछक्कएक्करज्जुम्हि।
कप्पाणमट्ठ जुगला गेवज्जादी य होंति कमे ॥२॥

मेरु पर्वत के मूल से लेकर डेढ $1\frac{1}{2}$ रज्जू उत्सेध पर सौधर्म, ईशान-कल्प, उससे ऊपर $1\frac{1}{2}$ डेढ रज्जू ऊपर मे सनत्कुमार, और माहेन्द्र कल्प है।

वहाँ से ऊपर आधी आधी रज्जू के अन्तर मे ऊपर के छ: युगल है। वहाँ से ऊपर १ रज्जू ऊ चाई पर नवग्रैवेयकादि विमान हैं।

कल्प तथा कल्पातीत क्षेत्र का अन्तर अपने अपने इन्द्रक के ध्वजदण्ड तक ही अन्त है। उससे आगे ऊपर मे क्रम से नवग्रैवेयकादि कल्पातीत विमान हैं उससे कुछ ऊपर जाकर लोकान्त है।

"त्रिषष्ठि पटलानि" ॥१०॥

ऋतु, विमल, चन्द्र, वल्गु, अरुण, नन्दन, नलिन, काञ्चन, रोहित, चरि, चतु, मरुत, रुद्धिष, वैडूर्य, रुचिक, रुचिर, अ क, स्फटिक, तपनीय, मेघ, अभ्र, हरिद्र, पद्म, लोहित, वज्र, नन्द्यार्क, प्रभकर, प्रष्टक, गज, मित्र और प्रभा ऐसे ३१ सौधर्मद्विक के पटल हैं।

अंजन, वनमाली, नाग, गरुड, लागल, वलभद्र, चक्र ये सात सनत्कुमार द्विक के पटल है।

अरिष्ट, सुरसमिति, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर ये चार ब्रह्मद्विक के पटल है ब्रह्म, हृदय, लातव, ये पटल लातवद्विक के हैं, शुक्र, विमान एक है वह शुक्र द्विक के लिए है।

सतार विमान एक ही सतार द्वय का है।

आनत प्राणत पुष्पक ऐसे तीन पटल आनतद्विक के हैं।

शातक आरण, अच्युत ये तीन पटल आरणद्विक के हैं।

सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध ये तीन पटल अधो ग्रैवेयक के हैं।

यशोधर सुभद्र, विशाल ये तीन पटल मध्यम ग्रैवेयक के है।

सुमनस, सौमनस, प्रीतकर ये तीन विमान उपरिम ग्रैवेयक के है।

आदितेन्द्र यह नवानुदिश का एक पटल है।

सर्वार्थ सिद्धि इन्द्रक नाम का एक पटल पंचानुत्तर का है।

ये सभी मिलकर त्रेसठ इन्द्रक विमान होते है। इसका खुलासा इस प्रकार है—

मेरु पर्वत शिखर पर ४० योजन ऊ ची मूल तल मे बारह योजन विस्तार वाली, मध्य मे चार योजन विस्तार वाली चूलिका है जोकि मन्दर सुमेरु नामक महिपति के मुकुट मे लगे हुए वैडूर्य मणि के समान प्रतीत होती है। उस चूलिका के ऊपर कुरुभूमिज मनुष्य के बालाग्र के अन्तर से (स्पर्श न करते हुए) ऋजु विमान है। वह मनुष्य क्षेत्र के १४५ लाख योजन का प्रमाण है। उसी प्रमाण सिद्ध क्षेत्र से नीचे बारह योजन अन्तर मे सर्वार्थ सिद्धि है।

वह सर्वार्थ सिद्धि जम्बू द्वीप के प्रमाण एक लाख योजन है। उन दोनों को घटाने पर ४४००००० योजन मे शेष ६२ पटलो का भाग करने से आया हुआ लब्ध शेष इन्द्रक विमानो के हानि चयका प्रमाण आता है। जैसा कि नीचे की गाथा मे लिखा है—

णाभिगिरिचूलिगुवरिं वालग्गंतर ट्ठियो हु उडुइंदो।
सिद्धी दो धो बारह जोयणमाणम्हि सव्वट्ठं ॥२३॥
माणुसखित्तपमाणं उडुसव्वट्ठं ट्ठ तु जम्बुदीवसम।
उभय विसेसेरूऊणिंदय भजदे दु हाणिचय ॥

पुन उस इन्द्रक की चार दिशाओ मे क्रम से रहने वाले श्रेणी-वद्ध विमान इस प्रकार है—

पहले के इन्द्रक की चार दिशाओ मे श्रेणिवद्ध ६२ है। यहाँ से ऊपर के सभी पटलो की चार दिशा मे क्रम से एक एक श्रेणीबद्ध कम होता चला गया है। वहाँ से नवानुदिश पचानुत्तर की दिशा मे एक एक ही श्रेणीबद्ध है। यह कैसे ? उसके लिए सूत्र कहते है. —

"षोडशोत्तराष्टशतसप्तसहस्रश्रेणिवद्धानि" ॥११॥

अर्थ—सात हजार आठ सौ सोलह श्रेणीबद्ध विमान है। सौधर्म कल्प मे ४३७५ श्रेणीबद्ध विमान हैं। ईशान कल्प मे १४६७ श्रेणीवद्ध हैं। सनत्कुमार कल्प मे ५८८ श्रेणिवद्ध हैं। माहेन्द्र कल्प मे १९६ श्रेणीवद्ध हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर मे ३६० है। लातव द्वय मे १५६, शुक्रद्वय मे ७२, शतारद्वय मे ६८, आनतादि चतुष्क मे ३२४, अधो ग्रैवेयकत्रय मे १०८, मध्यम ग्रैवेयकत्रय मे ७२, उपरिम ग्रैवेयक त्रय मे ३६, नवानुदिश मे ४ इस प्रकार सभी मिलकर ७८१६ श्रेणीवद्ध होते हैं। ये सभी सख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं।

चतुरशीतिलक्षैकोननवतिसहस्रैकशतचतुश्चत्वारिंशत् प्रकीर्णकानि ॥१२॥

अर्थ—प्रकीर्णक विमानो की सख्या ८४८९१४४ है। इन्द्रक से लगे श्रेणीवद्ध विमानो के बीच मे प्रकीर्णक इस प्रकार है।

सेढीणं विच्चाले पुप्फपइण्णग इव ट्ठियविमाणा।
होंति पइण्णाइणामा सेढिंदिय हीणरासिसमा ॥२५॥

अर्थ—सौधर्म कल्प मे ३१ लाख ९५ हजार पाच सौ अठानबे (३१९५-५९८), ईशान मे २७९८५४३, सनत् कुमार मे ११९९४०५, महेन्द्र कल्प मे

७९९८०४ ब्रह्मद्वय मे ३९९६३६, लातवद्वय मे ४९८४२ शुक्रद्वय मे ३९९२७ सतारद्वय मे ५९३१, आनतादि चतुष्क मे ३७०, अधोग्रैवेयकत्रम मे प्रकीर्णक नही है। मध्यम ग्रैवेयक मे ३२, उपरिम ग्रैवेयक त्रय मे ५२, नवानुदिश मे ४, पचानुत्तर मे प्रकीर्णक नही है। इस प्रकार सभी प्रकीर्णक मिलकर ८४८९१४४ होते है।

चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्त्रत्रयोविंशतिविमानानि ।।१३।।

अर्थ'—८४९७०२३ यह विमानो की संख्या है। यह किस प्रकार है यह बतलाते हैं। सौधर्म कल्प मे ३२०००००विमान है ईशान मे २८००००० विमान है। सानत कुमार मे १२०००००, महेन्द्र कल्प मे ८००००० ब्रह्मद्वय मे ४०००००, लातवद्वय मे ५०००० शुक्रद्वय मे ४००००, शतार द्वय मे ६०००, आनतादि चतुष्कों मे ७०००, अधोग्रैवेयक त्रय मे १११, मध्यम ग्रैवेयक मे १०७, उपरिम ग्रैवेयक त्रय मे ९१ नवानुदिश मे ९, पचानुत्तर मे ५ विमान है और प्रत्येक मे जिन मन्दिर है।

पुन: सौधर्मादि इन्द की महादेवी आठ आठ है। उन एक-एक देवियो के प्रतिवद्ध परिवार देवी और १६०००होनेसे,सौधर्म ईशानदेवों की सख्या १२८००० होती है और आगे पाँच युगलो मे अर्ध अर्ध यथा-क्रम से होती है जैसे कि ६४००० सानत कुमार द्वय को, ३२००० मोहन्द्र को, १६००० लातव को और महा शुक्र को ८०००। सहस्रार को ४०००। आनतादि चतुष्कों को २०००, २००० स्त्रिया होतीं है और पटरानी सौधर्म ईशान इन्द्र को ३२००० सानत १ मोहन्द्र को ८०००, ब्रह्मेन्द्र को २०००, लांतव को ५००, महाशुक्र को २५०, सहास्रार इन्द्र को १२५, आनतादि चार प्रत्येक को त्रेसठ-त्रेसठ होती है। दक्षिणोत्तर कल्प के देवो की देवियों के उत्पत्ति स्थान विमान सौधर्म कल्प मे ६००००० होते हैं। ईशान कल्प मे ४०००००। देवो के काम सुख के अनुभव को बताते हैं —

भवन वासी से ईशान कल्प तक रहने वाले देव और देवियाँ काय-प्रविचार वाली होती है। मनुष्य के समान अनुभव करे तो उनकी तृप्ति होती है। सानतकुमार माहेन्द्र कल्प के देव-देवियो को स्पर्श मात्र से तृप्ति हो जाती है। अर्थात् अन्योन्याग स्पर्श मात्र से ही काम सुख की तृप्ति हो जाती है। इस से ऊपर के चार कल्प के देव देवियों के रूप का अवलोकन करने मात्र से उनकी तृप्ति हो जाती है। अर्थात् उनके श्रृङ्गार, रूप, लावण्य, हाव भाव, विभ्रम देख कर उनकी तृप्ति हो जाती है।

हावो मुखविकारः स्याद्भावश्चितन्तु संभवः।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमः भ्रूयुगान्तयोः ।।

उसमे ऊपर चार कल्प के देवो को शब्द सुनने मे तृप्ति होती है। अर्थात् अन्योन्य मृदु वचन गीतालकार आदि को सुनकर तृप्ति को प्राप्त होते है। वहा से ऊपर चार कल्प के देव मन-प्रविचार से तृप्त होते हैं। अर्थात् अपने मन मे विचार कर लेने मात्र से मन्मथ सुख की प्राप्ति कर लेते है। वे स्त्री के साथ भोग करने के समान ही सुखी होते है और वहा से ऊपर सभी अहमिन्द्र अप्रविचार वाले हैं। उनके समान उन देवो को सुख नही, ऐसा नही है। सेवन करने वाले यह सभी वेदनीय कर्म के उदीरणा से होने वाले दुख को उपशम करने के लिए प्रतीकार स्वरूप प्रवीचार करते हैं, वह वेदना-जन्य दु ख अहमिन्द्र कल्प मे न होने के कारण वहा प्रविचार नही है। पाच प्रकार के अन्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न हुए साता, शुभ पचक मे रहने वाले उन देवो के प्रविचार सुख से अनत गुणा होता है। वह सुख कितना है ? इसकी उपमा नही है, वह उपमातीत है अथात् उस सुख के समान ऐसा और कोई सुख नही है, अत अहमिन्द्र ही सुखी है। कहा भी है:—

हृषीकजमनातंकं दीर्घकामोपलालितं।
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव ।।

और उन वैमानिक देवो की आयु अणिमादि ऐश्वर्य, सुख, कान्ति, लेश्या की विशुद्धि, इन्द्रियो के विषय, अवधि का विपय, ऊपर-ऊपर कल्प मे अधिक है। उनके रहने वाले क्षेत्र, शरीर, अभिमान, परिग्रह कम होता जाता है।

लेश्या-भवनवासी देवो से लेकर प्रथम दो कल्पो के देवो तक पीत लेश्या होती है। फिर तीसरे चौथे पाचवे युगल मे पद्म होती है। छठवे मेपद्म और शुक्ल लेश्या होती है। वहा से ऊपर सभी मे शुक्ल लेश्या वाले होते है। भवन-त्रिक को अपर्याप्ति काल मे कृष्ण नील का पोत यह अशुभ लेशा ही होती है। और उनकी विक्रिया शक्ति, अवधि का विषय, प्रथम द्वितीय युगल वालो की, प्रथम द्वितीय पृथ्वी के अत तक होता है, वहा से ऊपर तीन स्थानो मे क्रम से क्रम से चार कल्प के देव को ३-४-५ वी पृथ्वी तक होता है। नवे ग्रैवेयक वाले और नवानुदिश वालो को ६-७ पृथ्वी तक को जानते है तथा विक्रिया प्राप्त करने की शक्ति वाले होते है। पचानुत्तर के अहमिन्द्रलोग सातवी पृथ्वी तक प्रत्यक्ष से जानते है। अपने-अपने अवधि क्षेत्र तक अपने-अपने शरीरको भी फैलाते हैं और उस पृथ्वी को उलटने की ताकत भी रखते हैं।

दुसु दुसु चंदु दुसु दुसु चदु तित्तिसुसेसेसु देह उस्सेहो ।
रयणीए सत्त छप्पणए चत्तारिदले हीणकमा ।। ५४३ त्रि०स०

अब आयु बतलाते है .–

कानडी श्लोक.–

यरडेळ् पत्तु पदिना– ।
ल्केरडुत्तरेयागे पेर्चुगुं स्थितियिप्प ।।
तोरडु वरमत्ता ओंदु ।
त्तरेयिं मूवत्त मूरुवरमंबुधिगळ् ।।४४।।

सौधर्म ईशान कल्प मे कुछ अधिक दो सागरोपम उत्कृष्ट आयु है, वह आगे के तोसरे चौथै स्वर्ग मे जघन्य है, ऐसा ही क्रम ऊपर ऊपर है ।

सोहम्म वरं पल्लं वरमुहिवे सत्तदस य चोद्दसयं ।
वावीसोत्ति दुवड्ढी एक्केकं जाव तेतीसं ।।२७।।

अर्थ–सौधर्म कल्प मे जघन्य एक पल्य उत्कृष्ट २ सागरोपम फिर क्रम से ७, १०, १४, १६, १८, २०, २२, २३, २४; २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२ ३३ सागर । सर्वार्थ सिद्धि मे तेतीस सागर ही जघन्य उत्कृष्ट आयु है ।

सम्मे घादें ऊणं सायरदलमहियमा सहस्सारा ।
जलहि दल मुडुवराऊ पदलं पडि जाण हाणिचयं ।।२८।।

प्रथम कल्प द्वय मे हानि वृद्धि के प्रमाण सागरोपम के त्रिशत् भाग होने से २/२० प्रत्युत्कृष्ट आयुष्य १/२, १६/३०, २०/३०, २७/३०, २६/३०, ३१/३०, ३३/३० ३७/३०, ३६/३०, ४१/३०, ४३/३०, ४५/३०, ४७/३०, ४६/३०; ५१/३०, ५३/३०, ५५/३०, ५७/३०, ५६/३०, ६१/३०, ६३/३०, ६५/३०, ६७/३०, ६६/३०, ७१/३०, ७२/३०, ५/१ सानत कुमार युगल मे ४५/१४, ५५/१४, ६५/१४, ७५/१४, ८५/१४, ६५/१४, ब्रह्म युगल मे ३२ का छेद करने से ३३/४, ३६/४, २१/२; लातव द्वय मे ३५/२, १६/२ शुक्र द्वय ३३ मे ३३/२ शतार द्वय मे ३७ को ३७/२ आनत द्वय मे घातायुष्य (अकाल मृत्यु वाले) की उत्पत्ति नही है । १६/२, ३६/२, २० आरण युग मे ६५/३ इस से ऊपर वालो की उपर्युक्त कहे हुए घाति आयुष्य मे तीन इन्द्रकमे जघन्य आयु पल्य के तीन भाग १/३ हैं ।

उवहिदल पल्लद्धं भवणे वित्तर दुगे कमेण हिय ।
सम्मे मिच्छे घादे पल्लासखं तु सव्वत्थ ।।५४०।।

पूतायुष्य मे सम्यग्दृष्टि को अर्ध सागरोपप अधिक है । व्यंतर ज्योतिष्क मे सम्यग्दृष्टि की आयु अर्ध पल्योपम से अधिक है । किन्तु भवनवासियो मे के असुर

कुमार का डेढ सागरोपम है। व्यतर ज्योतिष्को मे डेढपल्य है। पूत आयुष्य वाले मिथ्यादृष्टि को सर्वत्र चतुर्निकायों मे पल्य के असख्यातवे भाग से अधिक है, और देवियो की जघन्य आयु प्रथम युगल मे साधिक पल्य है, उत्कृष्ट ५ आयु पल्योपम सौधर्म मे है और ग्यारहवे कल्प तक दो-दो पल्य की वृद्धि है। और चार कल्प तक सात तक वृद्धि होकर अच्युत कल्प देवियो की ५५ पल्योपम आयु होती है।

साहियपल्लं अवरं कप्पदुगित्थीरणपरणग पढमवरं।
एक्कारसे चउक्के कप्पे दो सत्त परिवड्ढी ॥३०॥

भावार्थ——सौधर्म कल्प मे साधिक पल्य जघन्य स्थिति, सौधर्मादि कल्पो मे उत्कृष्ट स्थिति ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५, २७, ३४, ४१, ४८, ५५, पल्य हैं और उन देव दम्पतियो को—

सहजांगांवर भूषरण।
सहस्र किररणंगळु निजांगप्रभेयु ॥
गृहभित्तियेमरिणकुट्टिम।
महियंशुगळु पळंचि पत्तु देशेय ॥५५॥
पासिन पोरेयोळु जनियिसि।
भासुर भूषांबर प्रसूनतें जो ॥
द्भासि गळोप्पिन तम्मा।
वासिसिदमुन्नसुख मनुर्ब्बदिवदोळ् ॥५६॥
समचतुरस्र शरीर।
समस्तमल धातु दोष रहित स्वेद ॥
श्रमरोग वर्जितदि।
व्यमूर्तिगळु दिव्यवोधररिगमादिगुरगर् ॥५७॥
सासिर वर्षक्कन।
तिशयान्नमं नेनेवरोमेंसुय्वसुखदिं ॥
मासार्धक्कें समस्त सु।
रासुररभ्युपम जीविगळु सोरभमु ॥५८॥

अर्थ–इस प्रकार देव देवियो का आयुकाल ऊपर ऊपर बढता गया है। तदनुसार उनका आहारकाल, श्वास नि.श्वास काल अधिक होता जाता है। अधिक होते होते सर्वार्थ सिद्धि के देव ३३ हजार वर्ष मे एक बार मानसिक आहार करते है। १६½ मास मे एक बार श्वास लेते हैं। देवो का शरीर अति

सुन्दर, समचतुरस्र संस्थान वाला, पसीना रहित होता है उनका शरीर वैक्रियिक होता है, अत: उनको मलमूत्र नही होता, रक्त आदि धातु उसमे नही होते। वे वहुत सुन्दर दिव्य वस्त्र आभूषण पहनते हैं। उनके रहने के स्थान बहुत सुन्दर होते हैं, उनको कभी कोई रोग नहीं होता। आदि भोग उपभोग सुख उन्हे प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मलोकान्तालयाश्चतुर्विंशतिर्लौकान्तिकाः ॥१४॥

अर्थ—ब्रह्मलोक के अन्तिम भाग मे रहने वाले लौकान्तिक देव होते हैं, वे २४ हैं।

व्याख्या—ब्रह्मलोक के अन्त मे ईशान आदि दिशाओ मे रहने वाले १—सारस्वत, २ अग्न्याभ, ३ सूर्याभ, ४ आदित्य, ५ चन्द्राभ, ६ सत्याभ, ७ वन्हि ८ श्रेयस्कर, ९ क्षेमङ्कर, १० अरुण, ११ वृषभेष्ट, १२ कामधर, १३ गर्दतोय १४ निर्माण राजस्क, १५ दिगन्तरक्षक, १६ तुषित, १७ आत्मरक्षित, १८ सर्वरक्षित, १९ अव्यावाध, २० मरुत, २१ अरिष्ट, २२ वसु, २३ अश्व, २४ विश्व नामक लौकान्तिक देव है।

सारस्वत ७०७, अग्न्याभ ७००७, सूर्याभ ९००९, आदित्य ७०७, चन्द्राभ ११०११, सत्याभ, १३०१३, वन्हि ७००७, श्रेयकर १५०१५, क्षेमंकर १७०१७, अरुण ७००७, वृषभेष्ट १९०१९, कामधर २१०२१, गर्दतोय ९००९ निर्माण राजस्क २३०२३, दिगन्तरक्षक २५०२५, तुषित ९००९, आत्मरक्षित २७०२७, सर्वरक्षित २९०२९, अव्यावाध ११०११, मरुत् ३१०३१, वसु ३३०३३, अरिष्ट ११०११, अश्व ३५०३५, और विश्व ३७०३७, हं। इस प्रकार समस्त लौकान्तिक देव ४०७८२० होते हैं।

निरजन परम ब्रह्मस्वरूप अभेद भावना के द्वारा चिन्तवन करने वाले लौकान्तिक देवो के रहने के कारण इस पचम स्वर्ग का नाम 'ब्रह्मलोक' सार्थक है। तथा संसार का अन्त करने वाले एव स्वर्ग के अन्त मे रहने के कारण उन देवों का नाम 'लौकान्तिक' यथार्थ है, लौकान्तिक देवों मे परस्पर हीन-अधिक भेद भावना नही होती, काम-वासना से रहित वे ब्रह्मचारी होते हैं, वारह भावनाओ के चिन्तवन मे सदा लगे रहते है, १४ पूर्व के पाठी होते हैं, समस्त देवो, इन्द्रो द्वारा पूज्य होते हैं और तीर्थंकर के तप कल्याणक के समय ही उनकी वैराग्य भावना को वढ़ाने लिए तथा प्रशंसा करने के लिये आते हैं। उनकी आयु ८ सागर की होती है। वे सब चतुर्थ गुणस्थानवर्ती एव शुक्ल लेश्या वाले होते है। उन देवो मे से अरिष्ट देवों की आयु ९ सागर की होती

है, ५ हाथ ऊंचा शरीर होता है। सभी लौकान्तिक ससार दुख से भयभीत, निरंजन वीतराग भावना मे सदा लीन रहते हैं।

अणिमाद्यष्टगुणाः ॥१५॥

अर्थ—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, ये आठ गुण देवो के वैक्रियिक शरीर मे होते है। उस देव गति मे भेद अभेद रत्नत्रय-आराधन सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, अतः सम्यक्त्व गुण देवों मे होता है। इन्द्र अहमन्द्रि आदि महर्द्धिक देव सम्यक्त्व गुण के भी कारण निरतिशय आध्यात्मिक सुख का अनुभव करते है।

देवगति मे उत्पत्ति के कारण—

असैनी पर्याप्तक व्यन्तर देवो मे, तापसी भोगभूमि के मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक मे, भोगभूमि के सम्यग्दृष्टि सौधर्म स्वर्ग मे उत्पन्न होते हैं। परवश रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, जेल आदि मे पराधीनता से काय-क्लेश आदि शान्ति से सहन करने वाले, बालतप करने वाले नीच देव आयु का बन्ध करते हैं। देवायु का बन्ध हो जाने के पश्चात् यदि अग्नि मे जलकर अथवा जल मे डूबकर अथवा पर्वत से गिरकर आदि ढग से शरीर त्याग करें तो वे नीच देवो मे उत्पन्न होते है। आत्म आराधक परिव्राजक पचवे स्वर्ग तक होते हैं। शान्त परिणामी परम हस साधु १६ वें स्वर्ग तक उत्पन्न होते है। पशु तथा मनुष्य असयत सम्यग्दृष्टि, देश सयमी महान तप करने वाली द्रव्यस्त्रियाँ सोलहवें स्वर्ग तक महर्द्धिक देव होती हैं। द्रव्य से महाव्रती किन्तु भाव से देशव्रती तथा असंयत सम्यग्दृष्टि, भद्र परिणामो मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक तक जाते हैं। द्रव्य एव भाव से महाव्रती, उपशम श्रेणी मे आरूढ, शुक्लध्यानी मुनि सर्वार्थसिद्धि तक उत्पन्न होते हैं।

ईशान कल्प वाले कन्दर्प देव, अच्युतस्वर्ग तक के आभियोग्य देव अपने अपने कल्प की जघन्य आयु का बन्ध करके दुख का अनुभव किया करते हैं।

कर युगमं मुगिदोंकि- ।
करवाहनदेव नप्पे नें पापियेनो- ॥
त्करकरमेंदा वाहन ।
सुरादिगळु नोंदु बे वुतिर्पर्मन दोळ् ॥५५॥

अर्थ—वाहन देवो को उनके स्वामी देव कठोर शब्दो का व्यवहार करते है। तब वाहन देव अपने मन मे बहुत दुखी होते हैं और विचारते है कि मैं पूर्व जन्म मे कुतप करने आदि से ऐसा नीच देव हुआ हू। इसके

सिवाय वे कठोर वचन बोलने वाले देवों को अपने मन मे गाली भी देते हैं।

देव उपपाद भवन मे, उपपाद शय्या पर अन्तर्मुहूर्त मे अपनी छहो पर्याप्ति पूर्ण करके नवयौवन शरीर को दिव्य वस्त्र आभूषण सहित प्राप्त कर लेते है और जैसे मनुष्य सोकर उठते हैं, उसी प्रकार वे उपपाद शय्या से परिपूर्ण शरीर पाकर उठ बैठते है।

नेरेयदे मुन्नकेत्त पडिगळु नवसौरुभ मुण्मे नोक्कळं गे
नेरेदवु रत्नतोरणगण गळु दग्रविमानराशियो- ॥
ळ्नेरेदवु जीवन दोळ् गुडिय दांगुडिगळडिदाडुवंतेसु- ।
त्तिरुदवु भोंकनातन पुरातन पुण्य फल प्रभावदिं ॥५६॥

अर्थः—उपपाद शय्या से उठने वाले देव को उसके पुण्य प्रताप से सुन्दर तारण-शोभित विमान तथा जीवन का भोग उपभोग आदि सुख सामग्री उसके चारो ओर उपस्थित मिलती है। तथा उसके परिवार के देव उस उत्पन्न हुए देव के सामने आकर जय जयकार बोलते हुये, स्वागत करने के लिये हर्ष आनन्द मनाते हैं, उसके सामने सुन्दर गान नृत्य करते है, सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं, मानो जंगम लता ही उसके सामने झुक रही हो। रत्न दर्पण शृ गार, चमर, छत्र, कनक कलश आदि सामग्री लाते है, नियोगिनी सुन्दरी देवागनाये बड़े हाव भाव विलास विभ्रम आदि द्वारा उस नये देव का चित्त अपनी ओर आकर्षित करती है। देव उसके शिर पर अक्षत रखते है। उस दिव्य सामग्री को अपने सामने उपस्थित देखकर वह हर्ष से फूला नही समाता तथा अनिन्द्य-सुन्दरी देवागनाओ को देखकर वह कामातुर हो उठता है। अपनी देवियो के मिष्ट चातुर्य-पूर्ण शब्द सुनकर, उनके चरणो के नूपुरो के शब्द सुन कर तथा उनके कटाक्ष को देखकर वह विचार करने लगता है कि मैं यहा कहां आगया हूँ, यह सब क्या है ? ऐसा विचार होते ही उसे अवधि ज्ञान से उस स्वर्ग का वैभव जान पडता है और पुण्य कर्म के उदय से वहा पर अपने उत्पन्न होने का कारण ज्ञात हो जाता है। धर्म की महिमा की प्रशसा करता है। तदनन्तर सरोवर मे स्नान करके सम्यग्दृष्टि देव जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं और मिथ्यादृष्टि देवो को पूजा करने को प्रेरणा करते है।

देव निरन्तर सुख सागर मे निमग्न रहते हैं अत वे अपने आयु के दीर्घकाल को व्यतीत करते हुये भी नही जान पाते। जब कही पर किसी तीर्थंकर का कल्याणक होता है अथवा किसी मुनि को केवल ज्ञान होता है तब चारों निकाय के देव उनका उत्सव करने जाते हैं। परन्तु अहमिन्द्र देव अपने स्थान पर रहकर

हो वहा भगवान को हाथ जोड़ कर अपने मुकुट सुशोभित शिर को झुकाकर नमस्कार कर लेते है।

देवो की आयु जब ६ मास अवशेष रहती है, तब देव अग्रिम भव का आयु का बध किया करते है और आयु समाप्त करके कर्म भूमि मे आकर जन्म लेते है। सम्यग्दृष्टि देव बल, बुद्धि वैभव, तेज, ओज, पराक्रम सौंदर्य-सम्पन्न, शुभ लक्षणधारक, भाग्यशाली मनुष्यो के रूप मे जन्म लेते हैं।

कुतप, बालतप, शीलरहित, व्रतपालन आदि से भवन-त्रिक मे उत्पन्न हुये जो देव मिथ्यादृष्टि होते है वे अपनी आयु का समस्त समय दिव्य इन्द्रिय-सुखो के भोगने मे ही व्यतीत करते है। जब उनकी आयु ६ मास अवशेष रह जाती है तब उनको अपने कल्पवृक्ष कापते हुए, निस्तेज (फीके) दिखाई देने लगते है तथा उनके गले की पुष्पमाला भी मुरझा जाती है इससे उनको अपनी आयु छह मास पीछे समाप्त होने की सूचना मिल जाती है। दिव्य सुखो की समाप्ति होते जानकर उनको बहुत दुख होता है, अपने विभंग अवधि ज्ञान से गर्भवास का दुख प्राप्त होता जानकर उन्हे बहुत विषाद होता है, वे अपनी देवियो के साथ वियोग होना जानकर रुदन करते है। इस तरह असाता वेदनीय कर्म का बन्ध कर क्लेशित परिणामो से स्थावर काय मे जन्म लेने की भी आयु बाध लेते है जिससे अपने दिव्य स्थान से च्युत होकर चन्दन, अगुरु आदि वृक्षो मे तथा पृथ्वी आदि काय मे जन्म ग्रहण करते हैं।

कुछ मिथ्यादृष्टि देव निदान बन्ध करके हाथी घोडा आदि पचेन्द्रिय पशुओ मे तथा कुछ मनुष्यो मे जन्म ग्रहण करते है।

जो सम्यग्दृष्टि देव होते हैं वे अपनी आयु समाप्त होती जानकर दुखी नही होते। उस समय उनका यह विचार होता है कि 'अब हम मनुष्य भव पाकर तत्पश्चरण करने की सुविधा प्राप्त कर लेंगे जिससे कर्मजाल छिन्न भिन्न करके मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे।' ऐसा विचार करके वे प्रसन्न होते है, उनको दिव्य सुखो के छूटने का दुख नही होता क्योकि वे इन्द्रिय-जन्य सुख और दुख को समान दृष्टि से देखते है। वे विचारते है कि हमने अब तक भेद अभेद रत्नत्रय न प्राप्त करने के कारण ससार मे अनन्त भव धारण करके भ्रमण किया, अब हमको मनुष्य भव मे इस भव-भ्रमण से छूटकर अनन्त अपार अव्याबाध अविच्छिन्न सुख प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त होगा, ऐसा विचार करके वे त्रिलोकवर्ती ८५६९७४८१ अकृत्रिम चैत्यालयो तथा भवन वासी व्यन्तर ज्योतिषियो के भवनवर्ती एव विमानवर्ती तथा अन्य कृत्रिम जिन

भवनों मे जाकर जिनेन्द्र देव का पूजन, स्तुति करते है, तीर्थंकरो के कल्याणको मे भाग लेते हैं, केवलियो की, मुनियो की वन्दना करते हुये पुण्य-उपार्जन करते हैं। अन्त मे वे दीपक बुझ जाने के समान अदृश्य होकर अपना दिव्य शरीर छोडते है जो चक्रवर्ती तीर्थंकर होने वाले होते है उनके वस्त्र आभरण फीके नही होते, न उनके गले की माला मुरझाती है। जो देव चक्रवर्ती, नारायण, वलभद्र होने वाले होते है उनकी माला भी नही मुरझाती, शेष सभी देवों के गले की माला ६ मास पहले मुरझा जाती है।

नव अनुदिश तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित इन १३ स्थानों के देव मर कर अधिक से अधिक दो मनुष्य भव पाकर मुक्त होते है और सर्वार्थ-सिद्धि के देव केवल एक महर्द्धिक मनुष्य भव पाकर ही मुक्त होते हैं।

सर्वार्थ सिद्धि से १२ योजन ऊपर 'ईषत् प्राग्भार' नामक आठवी भूमि है जो कि उत्तर से दक्षिण ७ राजू मोटी और पूर्व से पश्चिम एक राजू चौडी है उसी पर १४५ लाख योजन विस्तार वाली ८ योजन मोटी शुद्धस्फटिक मणि की आधे गोले के आकार सिद्धशिला है जिसे सितावनी (स्वच्छ सफेद पृथ्वी) भी कहते हैं।

उस सिद्धिशिला से ऊपर ४२५ धनुष, कम एक कोश मोटा घनोदधि वातवलय, उतना ही मोटा घनवातवलय तथा उसी के समान तनुवातवलय है। उस तनुवातवलय के ६००००० भाग करने पर एक भाग प्रमाण मे जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध है। तनुवातवलय के एक हजार पाच सौ १५०० भाग करने पर एक भाग मे उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्धो का निवास है।

सिद्धो की जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ प्रमाण और उत्कृष्ट अव-गाहना ५२५ धनुष प्रमाण है। सिद्धो की मध्यम अवगाहना के अनेक भेद हैं।

मध्यलोकवर्ती सम्यग्दृष्टि मनुष्य कर्मकलंक समूल नष्ट करके उस सिद्धि स्थान मे विराजमान होते हैं। सिद्ध स्व-अनन्त अव्याबाध, अक्षय, असीम, अभव्य जीवो को अप्राप्य, अनुपम सुख का सदा अनुभव करते हैं।

वरमध्यापर जिनमं- ।
दिरमर्द्धार्द्ध क्रमं विमानद नंदी- ॥
श्वरद भद्रशाल नंदन- ।
दर जिनहर्म्यमंतु उत्कृष्टंगळ् ॥५३॥
कुळ रुचक नगोत्तर कुं- ।
डल वक्षाराचलं गळिष्वाकारं ॥

गळ सौमनस वनगळ ।
निळयं मध्यदवु पांडुकदपरंगळ् ॥५७॥
आयामं नूरगलमु ।
मायामदळ द्वयार्द्ध मुत्कृष्ट गृहो ॥
च्छायं षोडशकं, द्वारांतिकता, ने दुयोजनं त्रिष्कंभं ॥५८॥
रजतगिरि जम्बुशाल्मलि ।
कुजगत भवतावळि योंदु नीळ क्रोशं ॥
त्रिजगन्नुत शेष गृह ।
व्रज यतियंतंतवक्क तवकंतवकुं ॥५९॥
श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्यलौ जम्बु वृक्षे ।
वक्षारे चेत्यवृक्ष रतिकर रुचके कुण्डले मानुषांके ॥
इष्वाकारेञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके ।
ज्योतिर्लोकेभिवन्दे भुवन महितले यानि चैत्यालयानि ॥
देवासुरेन्द्र नरनाग समर्चितेभ्यः ।
पापप्रणाशकर भव्य मनोहरेभ्यः ॥
घण्टा ध्वजादि परिवार विभूषितेभ्यो ।
नित्यं नमो जगति सर्व जिनालयेभ्यो ॥
कोदिलक्ख सहस्सं अट्ठय छप्पन्न सत्तानउ दिया ।
चउसद मेवा सीदिगणनग एचेदिए बंदे ॥३१॥
अड़दाला नवय सया सत्तीवीस सहस्स लक्ख तेवण्णा ।
कोडिपणवीसनवय सयाजिणपडिमाअक्कट्टिमा किट्टिवंदामि॥३२॥
तिहुवण जिणंद गेलो अविकट्टिमा किद्रभेति कालभवे ॥
वण कोमर भेदगामर नर रवेचद वंदिये वंदे ॥३३॥

इति माघनन्द्याचार्य विरचित शास्त्रसारसमुच्चये
करणानुयोगवर्णनो द्वितीयपरिच्छेद. ।

चरणानुयोग

सुरनरकिन्नरनुतनं, परम श्री वीरनाथनं नेनेदोलवि ।।
वरभव्यजनके पेळ्वें, निरुपम चरणानुयोगमं कन्नडदिं ।।२।।

अर्थात्–सुर नर और किन्नर लोग जिनको नमस्कार करते हैं ऐसे परम परमेश्वर श्री वीरनाथ भगवान को स्मरण करके मैं भव्य जीवों के कल्याण के लिये हिन्दी भाषा मे चरणानुयोग का व्याख्यान करता हूं।

सूत्रावतार का विशेष कारण ज्ञान और चारित्र है। उस ज्ञान और चारित्र का मूलभूत सम्यक्त्व है, जैसे कि महल के लिये नीव। सम्यक्त्व मोक्ष पुर के प्रति गमन करने वाले को पाथेय के समान है। मुक्ति लक्ष्मी के विलास के लिये मणिमयदर्पण के समान है। संसार समुद्र मे गिरते हुए प्राणियों को बचाये रखने के लिये हस्तावलम्बन के समान है। ग्यारह प्रतिमामय श्रावक धर्म रूप प्रासाद के लिए अधिष्ठान के समान है। परम कुशलता देने वाले उत्तम क्षमादि दश धर्म रूप कल्पपादप के लिये जड़ के समान है। परमोत्तम लक्ष्मी के साथ समागम करने के लिये मंगल रत्नमय महल है। विषम जो दर्शन मोह रूप उग्रग्रह, उसके उच्चाटन के लिए परमोत्तम यन्त्र है। दीर्घ संसार रूप जो काला सांप है उसके मुह से उत्पन्न हुए भयंकर विष को मिटाने के लिये मारणतन्त्र है। मोक्ष लक्ष्मी को वश मे करने के लिए परमोत्तम वशीकरण मन्त्र है। व्यन्तर विष और रोगादि-जन्य क्षुद्रोपद्रवों को नाश करने के लिए रक्षा मणि के समान है। आसन्न भव्य के लिये मनोवाछित फल प्रदान करने वाले चिन्तामणि के समान है। भव्य जीव रूप लोहे को स्पर्श मात्र से जात-रूप (सुवर्णमय या दिगम्बर मुनि मय) बना देने वाली पारस रत्न के समान है। सम्पूर्ण पाप रूप वन को जला डालने के लिए दावानल अग्नि के समान है। ज्ञान और वैराग्य रूप बगीचे के लिये वसंत ऋतु के समान है। विशिष्ट पुण्य कर्म का अनुष्ठान करने के लिये पवित्र तीर्थ है। जन्म जरा और मरण को मिटाने के लिए सिद्ध रसायनका पिटारा है, आठ अंगों की पुष्टि के लिए उत्तम पुष्प मंजरी के समान है। ऐसे उस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए पाँच लब्धियों की आवश्यकता है, उन पंच लब्धियो का वर्णन के लिए सूत्र—

पंच लब्धयः ।।१।।

अर्थ—सम्यक्त्व उदय होने के लिए ५ लब्धियां होती हैं।

अब चरणानुयोगान्तर्गत पाँच लब्धियों का वर्णन किया जाता है।

१ क्षयोपशम लब्धि, २ विशुद्धि लब्धि, ३ देशना लब्धि, ४ प्रायोग्य लब्धि और ५ वी करण लब्धि। इस प्रकार जब पाच लब्धिया प्राप्त हो जाती हैं तब इनके सहयोग से ससारी जीवो को प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। उसका विवरण यह है—जब कभी अशुभ कर्मों की अनुभाग शक्ति को प्रति समय अनन्त गुण हीन करते हुये उदीरण होने योग्य कर लिया जाता है उस अवस्था का नाम 'क्षयोपशम लब्धि' है।

सातादि प्रशस्त प्रकृतियो के बध योग्य परिणाम का होना विशुद्धि लब्धि है।

जीवादिक वस्तु के वास्तविक स्वरूप का उपदेश करने वाले आचार्यों का निमित्त पाकर उनका उपदेश सावधानी से श्रवण करना देशना लब्धि है।

अनादि काल से उपार्जित किये हुये ज्ञानावरणादि सात कर्मों की स्थिति को घटाकर अन्त कोडा कोडी सागरोपम प्रमाण कर लेने की योग्यता आ जाना तथा लता, दारु, अस्थि और शैल रूप अनुभाग वाले चार घातिया कर्मो की अनुभाग शक्ति को घटाकर केवल लता और दारु के रूप मे ले आने की शक्ति हो जाना 'प्रायोग्य लब्धि' है। ये चारो लब्धियाँ भव्य तथा अभव्य दोनो प्रकार के जीवो को समान रूप से प्राप्त होती हैं।

परन्तु अब पाँचवी करण लब्धि, जो कि केवल आसन्नभव्य जीवो को ही प्राप्त होती है, उसका स्वरूप कहते है।

भेदाभेद रत्न-त्रयात्मक मोक्षमार्ग को तथा सम्पूर्ण कर्मों के क्षय स्वरूप मोक्ष को और अतीन्द्रिय परम ज्ञानानन्दमय मोक्ष स्थल को अनेक नय निक्षेप प्रमाणो के द्वारा भली भाति जान कर दर्शन मोहनीय के उपशम करने योग्य परिणामो का होना 'करण लब्धि' है।

अदु दर्शन रत्न प्रद।
मदु सुचरित जन्म निलय संतदु भव्य॥
त्वद कण्देरवि विवेक।
वकदु फलमदु बुधजन प्रणूतं ख्यात॥१॥
करणं त्रिविधम्॥२॥

अर्थ—१ अध प्रवृत्तिकरण, २ अपूर्व करण तथा ३ अनिवृत्ति करण इस प्रकार करण के ३ भेद होते हैं। प्रत्येक करण का काल अन्त र्मुहूर्त होता है। फिर भी एक से दूसरे का काल सख्यात गुणा हीन होता है। उसमे अध प्रवृत्तिकरण काल मे यह जीव प्रति समय उत्तरोत्तर अनन्त गुणी विशुद्धि को

प्राप्त होता हुआ चला जाता है। जिसमे प्रति समय संख्यात लोक मात्र परिणामो के चरम समय तक समान वृद्धि से बढता चला जाता है। इस अधः प्रवृत्ति करण का कार्य स्थिति बंधापसरण है। अब इसके आगे अपूर्ण-करण का प्रारम्भ होता है जिसमें असंख्यात लोक प्रमाण विशुद्धि क्रम से प्रति समय समान संख्या के द्वारा बढती जाती है। इसका काम स्थिति बंधापसरण, स्थिति काडक घात अनुभाग, काडक घात तथा गुण संक्रमण और गुण श्रेणी निर्जरा होना है।

अधः प्रवृत्ति करण मे भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम भी समान हो सकते हैं तथा एक समयवर्ती जीवों के परिणाम विसदृश भी हो सकते हैं। परन्तु अपूर्व करण मे भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम भिन्न जाति के ही होते हैं। फिर भी एक समयवर्ती जीवो के परिणाम सभी जीवो के समान न होकर विभिन्न जाति के ही होते है।

अब इसके आगे आने वाले अनिवृत्ति करण मे भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम भिन्न जाति के ही होते हैं। और एक समयवर्ती जीवों के परिणाम सभी के एक से ही होते हैं। इस प्रकार सुदृढ़ परिणामो के द्वारा वह भव्य जीव पूर्व की अपेक्षा और भी अधिक स्थिति बंधापसरण करने वाला होता है। इस अनिवृत्ति करण के अन्त समय मे चतुर्गति मे उत्पन्न होने वाला भव्य जीव ही गर्भज पचेन्द्रिय सैनी पर्याप्तक अवस्था को प्राप्त होता हुआ शुभ लेश्या सहित होकर ज्ञानोपयोग मे परिणत होता हुआ वह जीव इस अनिवृति करण नामक वज्रदड के घात से ससार वृद्धि के कारण रूप मिथ्यात्व रूपी दुर्ग को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। और सम्यग्ज्ञान लक्ष्मी के अलंकार स्वरूप सम्यग्दर्शन को उस शुभ मुहूर्त में प्राप्त हो जाता है।

उदयिसि दुदु वर भव्यन।
हृदय दोळ्मिरततरणि सकला भिमत ॥
प्रदचिन्तामणितविलि।
ल्लिद संवेगादि गुणदकणि सम्यक्त्वं ॥२॥
अंतु परमात्मपदमन।
नंतज्ञानादि गुणगणआजितमं।
आंतिसदे लब्धिवशदिं।
दतिळि दडिगडिगे रागिसुत्तिर्पागळ् ॥३॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है।

१—आप्त, आगम और पदार्थों के स्वरूप को जानना और उन पर समुचित रूप से ठीक ठीक श्रद्धा करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

२—निज शुद्धात्मा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है, इस प्रकार जानकर दृढ विश्वास करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। अथवा नय निक्षेपादि के द्वारा पदार्थ के स्वरूप को अपने आप जानना निसर्गज सम्यग्दर्शन है। और पराश्रय से पदार्थों के स्वरूप को जानकर विश्वास करना अधिगमज सम्यग्दर्शन है। तथा जहाँ तक सम्यग्दर्शन मे स्व और पर के विकल्प रूप आश्रय हो वह सराग सम्यग्दर्शन होता है और वीतराग निर्विकल्प स्वसवेदन मात्र का अवलबन जहा पर होता है वह वीतराग सम्यग्दर्शन है।

त्रिविधम् ॥४॥

अर्थ—औपशमिक, वेदक और क्षायिक के भेद से सम्यग्दर्शन तीन प्रकार का भी होता है। वह इस प्रकार है—

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियो के उपशम होने से औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। अनन्तानुबन्धी, कषाय, मिथ्यात्व तथा सम्यग्मिथ्यात्व के उपशम होने से और सम्यक् प्रकृति के उदय होने से जो सम्यक्त्व होता है उसे वेदक सम्यक्त्व कहते है। सातो प्रकृतियो के परिपूर्णतया नाश होने से क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

वेदक सम्यग्दृष्टि जब उपशम श्रेणी के सन्मुख होता है तब द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। जिस वेदक सम्यक्त्व से क्षायिक सम्यक्त्व होता है वह कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व कहलाता है।

दशविधं वा ॥५॥

अर्थ—अथवा सम्यग्दर्शन १० प्रकार का है—१ आज्ञा सम्यक्त्व, २ मार्ग सम्यक्त्व, ३ उपदेश सम्यक्त्व, ४ सूत्र सम्यक्त्व, ५ बीज सम्यक्त्व, ६ सक्षेप सम्यक्त्व, ७ विस्तार सम्यक्त्व, ८ अर्थ सम्यक्त्व, ९ अवगाढ सम्यक्त्व, १० परमावगाढ सम्यक्त्व,

जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का श्रद्धान करने से जो सम्यग्दर्शन होता है वह आज्ञा सम्यक्त्व है। ॥१॥ जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रदर्शित मुक्ति मार्ग ही यथार्थ है ऐसे अचल श्रद्धान से जो सम्यक्त्व होता है वह मार्ग सम्यक्त्व है ॥२॥ निर्ग्रन्थ मुनि के उपदेश को सुनकर जो आत्म-रुचि होकर सम्यदर्शन होता है वह

उपदेश सम्यक्त्व है ।।३।। सिद्धान्त सूत्र सुनने के पश्चात् जो सम्यक्त्व होता है वह सूत्र सम्यक्त्व है ।।४।। वीज पद सुनकर जो सम्यक्त्व होता है वह वीज सम्यक्त्व है ।।५।। सक्षेप से तात्विक विवेचन सुन कर जो सम्यग्दर्शन होता है वह सक्षेप सम्यक्त्व है ।।६।। विस्तार के साथ तत्व विवेचन सुनने के बाद जो सम्यक्त्व होता है वह विस्तार सम्यक्त्व है ।।७।। आगम का अर्थ सुन कर जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है वह अर्थ सम्यक्त्व है ।।८।। द्वादशागवेत्ता श्रुतकेवली के जो सम्यक्त्व होता है उसे अवगाढ सम्यक्त्व कहते है ।।९।। केवल ज्ञानी का सम्यक्त्व परमावगाढ सम्यक्त्व है ।।१०।।

इस प्रकार जिन्होने सम्यक्त्व प्राप्त किया उन्होने जिनेन्द्र भगवान के मार्ग का अनुगमन किया और मार्दवधर्म, विनय-सम्पन्नता को स्वीकार किया ।

मृदुशठ वचनद बकवे । बद मरेयोळु सवियमरेय विषदु ग्रतेयं
ददिनिप्पवंगागदु स । त्याधिष्टितं जिनेश्वर मार्ग ।७।
इदु योग्यमयोग्य । मिदेन्नदोवियदलंघनिमिरेगतिहानिगम
ळदिनडेव कानरंगा । गदु सकलत्याग साधक जैनमत ।८।
इवु सप्तप्रकृतिगळिं । विवुगळुपशमदिं क्षयोपशमदिं क्षयदिं ।
पवणिल्लद दशिविल्लद । भवसमितिगेपवणं माडुत्तमुदयिपुदुसम्यक्त्वं

इस प्रकार मोक्ष मार्ग के प्रतिकूल जैसे.—

बयसि निदानमं सुकृतमिल्लद वर्भरदितदग्रभू
मियनेगळुत्तमिर्दु निधिगाण्बेडेयोळ् मरुळागि पोपमा
ळ्केयिन पवर्गमार्गदोदवि फलरं पिरिदोदितत्वनि
र्णय जलकोक्कियलिल जडरप्परिदे नघशक्ति चित्रमो ।९।
जिनदीक्षेगेळगुमह । मिंद्रंरागिपुट्टुगुमनन्त भवदोळु जीव
मनदोळु सम्यग्दर्शन । क्नोर्सेयु पोर्द दिनमघटित मोळवे ।१०।
ज्ञात्वातलामलक रुद्भुवि सर्व विद्या ।
कृत्वा तपांसि बहुकोटि युगांतराणि ।
दर्शनामृतरसायन पान वाह्या
नात्यति किमनुभव त हि मोक्ष लक्ष्मी ।११।
अदु दूरभव्यनोळ्कू । डददेन्तुमभव्य जीवनौळ्पुट्टिविसदं ।
तदु दुर्लभमदु भवभय । विदूर मदासन्न भव्यनोळ् समनिसुगुं ।१२।

आराध्यननागमम । चारु पदार्थममल योगीश्वरर
सारासार विचारदि । नारैदरिदु वोलिदुनबुवुदु सम्यक्त्व ।१३।
परमगुरु बचन दीप । स्फुरितदबलदिंसुयुक्ति लोचनदिं नो
ळ्पर मन दोळाद वस्तु । स्वरूपवादात्म निश्चय सम्यक्त्व ।१४।
चलियिसुगुमेत्तलानु । कुल भूदर मग्नि शैत्यम कैकोळ्गु
तळेगुं चद्रं बिसुपं । तकरदु जिनवचन मे बबगे सम्यक्त्व ।१५।
स्थिरतेयोळमरुविनोळमो । वैरनोर्वमिंगुवपुरुषरुळ्ळु दरिदे
ल्लरुम मिगुवनुमोळना । परमात्मने दैव मेंदबगे सम्यक्त्वं ।१६।
सकल विमोह क्षतदिं । सकल जगद्द्यवीतराग ते जिनरोळ्
सकलावरणक्षयदिं । सकल ज्ञानते ये सगु मे बबगे सम्यक्त्वं ।१७।
येनितोंदु मोह पाशम । दनितु विडे मोक्षमदरिनळिपेंबुद
नेनिनितुमनोल्लदुमुक्तिगे । जिनमार्गमे मार्ग में बबगे सम्यक्त्वं ।१८।
इदु पापास्रव कारण । मिदुपुण्यास्रवनिमित्त मिंतिदु मोक्ष
प्रद मेंदु जीव परिणा– मद तेरनं पिटदि नरिव वगे सम्यक्त्वं ।१९।
मनद पदुळिकेगे कंटक- । मेनिप बहिर्विषय विषमदे उदोचित्सं-
जनित स्वास्थ्य सुधारस- । मनुपम मेंदरिदु नेच्चुवुदु सम्यक्त्वं ।२०।
मान धनमेनिप सम्य- । ज्ञानिगे तक्कुदु निजोपशम जनित स्वा-
धीन सुखं पर विषया- । धीन सुखं नष्ट मेंब बगे सम्यक्त्वं ।२१।
इदे मोक्ष मार्ग-मिदे मो । क्षद लक्षण मिदुवे मोक्ष फल मे बुदनु-
ळ् ळुदनुळ्ळमाळ्केयित- । प्पदे मनदोळु तिळिदुनंबुवदु सम्यक्त्वं ।२२।
वरबोध चरित्रंगळ- । नेरेवं पारदेगुमेक चत्वारिंशद् ।
दुरितगळ बंधमनप- । हरिपुद चित्यप्रभाव निधि सम्यक्त्वं ।२३।
परम जिनेश्वररं सि- । द्धरनाचार्यादि दिव्यमुनिगळ नरिदा
दर दिनडिगडिगे तत्व- । स्वरूपसं नेनेवुदेंब बगे सम्यक्त्वं ।२४।
जिन बिंबा कृतियं लो- । चनदिं काणबंते तिळिदु सिद्धाकृतियं
नेनेय लोडं प्रव्यवत मि- । देने मनदिं काण्ब काण्केयदु सम्यक्त्वं ।२५।
अनिमिष लोचन सिहा- । सनकंपनिमित्त तीर्थंकरं पुण्य निबं-
धनमेनिसुव षोडशभा- । वनेयोळु तानग्रगण्यमिदु सम्यक्त्वं ।२६।

जितमूढत्रयमपसा- । रित षडनायन नमपगताष्ट मदंगळं व-
र्जित शंकाद्यष्ट मलं - । प्रतीत नव सप्त तत्व मिदुसम्यक्त्वं ।२७।
परनिंदितखिळ हेया- । चरणदि संसार दुःखमद्य संतति सं-
स्मरण मुपादेयदिनिदु- । परमार्थं तप्पदेब वगे सम्यक्त्वं ।२८।
कर कजळर्ल्पिदं- । परिणमिसुव तेरदि निर्निमित्तं कालं
दोरे कोळे तन्निदंतां । परसात्म नप्पेनेंब वगे सम्यक्त्वं ।२९।
नडेवेडेयोळ् नुडिवेडेयोळ् । केडेवेडेयोळ् दुःख मेय्दुवेडे योळ् जवनो
यूवेडेयोळ् तत्व स्मरणम- । नेडेवरियदेनेच्चिनोळ्पुददुसम्यक्त्वं ।३०।
अनशन मोदलारु तनु -। तनुकृद्नितु भूत बाह्य तप सं-
जनिता यासदोळेने. । दनवरत निजव नेनेवुददु सम्यक्त्वं ।३१।
निरुतं बोध चरित्र दो- । ळेरडुं तानेनिसदेक चत्वारिंशद्-
दुरिताप हनर्वाचित्य- । स्वरूप नविकल्प में बवगे सम्यक्त्वं ।३२।

अर्थ—मायाचार, छलकपट, वचनवक्रता (बचन मे टेढ़ापन) आदि रखकर जो मनुष्य जैन धर्म की आराधना करता है उसको वास्तव मे जैन धर्म प्राप्त नही होता ॥६॥

'यह योग्य है या अयोग्य' इस प्रकार विशेष विचार न करके केवल इन्द्रियो के अधीन विषय कषायो की पुष्टि के लिए प्रयत्नशील मनुष्य को भी जैनधर्म की प्राप्ति नही होती ॥७॥

दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृतियो (मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति) तथा अनन्तानुवन्धी कषाय के क्रोध, मान, माया, लोभ, इन सात कर्म प्रकृतियो के उपशम, क्षय, क्षयोपक्षम होने पर ही सम्यक्त्व प्रगट होता है, इसके सिवाय सम्यक्त्व उदय होने का अन्य कोई उपाय नही है ॥८॥

पुण्यहीन मनुष्य द्रव्य पाने की इच्छा से एक पर्वत पर चढता है, और उस पर्वत के मार्ग मे इधर उधर निधि को ढूंढता है, ढूंढते ढूंढते जब उसको वह निधि मिलने का समय आता है तब वह पागल हो जाता है। पागल हो जाने पर उसको उस पास पडी हुई द्रव्य का ज्ञान भी नही रहता। उसी प्रकार मोक्ष के इच्छुक मनुष्य अनेक शास्त्र वेद पुराण आदि पढकर भी आत्मतत्व के यथार्थ निर्णय की बुद्धि न होने के कारण जैसे के तैसे अज्ञानी ही बने रहते हैं, पाप कर्म की कितनी शक्ति है ! ॥९॥

दिगम्बर मुनि होकर कठोर तपस्या करके मनुष्य अहमिन्द्र पद भी

पा लेता है परन्तु सम्यक्त्व न होने से उसका ससार-भ्रमण नही छूट पाता ॥१०॥

हाथ पर रक्खे हुए आवले के समान समस्त विद्याओ और कलाओ को जानकर करोडो युग तक तपस्या करके भी सम्यग्दर्शन रूपी अमृत-रस का आस्वादन न करने वाले मनुष्यो को मोक्ष प्राप्त नही होती ॥११॥

यह सम्यग्दर्शन अभव्य की तो बात ही क्या दूर-भव्य को भी दुर्लभ है, यह तो निकट-भव्य प्राणी को ही प्राप्त होता है ॥१२॥

जैसे कितना भी प्रकाश क्यो न हो अन्धे मनुष्य को कुछ दिखाई नही देता, इसी प्रकार अभव्य को चाहे जितना उपदेश दिया जावे, व्रताचरण कराया जावे किन्तु उसे सम्यक्त्व नही होता। नेत्र-रोग वाले मनुष्य को नेत्र ठीक हो जाने पर दिखाई देने लगता है उसी तरह दूर-भव्य को दीर्घ समय पीछे मिथ्यात्व हटने से सम्यक्त्व प्राप्त होता है। किन्तु ठीक नेत्र वाले मनुष्य को प्रकाश होने पर तत्काल दिखाई देने लगता है। उसी तरह निकट भव्य को सम्यक्त्व की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।

व्यवहार सम्यग्दर्शन—

परम आराध्य श्री वीतराग भगवान, जिनेन्द्र देव का उपदिष्ट आगम तथा पदार्थ और जिनेन्द्र देव के चरण-चिन्हो पर चलने वाले परम निर्मल निर्ग्रन्थ योगी का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

अर्हन्त भगवान, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु का तथा जिनवाणी मे प्रतिपादित पदार्थों का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है ॥१३॥

निर्ग्रन्थ गुरु के वचन रूपी दीपक द्वारा प्रकाशित और अपने सुयुक्ति रूपी नेत्रो से देखे हुए आत्म-स्वरूप का निश्चय सम्यग्दर्शन है ॥१४॥

अचल सुमेरु भी कदाचित् चलायमान हो जावे, अग्नि भी कदाचित् शीत (ठडी) बन जावे तथा चन्द्र मे भी कदाचित् उष्णता प्रगट होने लगे, तो हो परन्तु जिनेन्द्र भगवान के वचन कदापि अन्यथा नही हो सकते, ऐसी अचल श्रद्धा का नाम सम्यक्त्व है ॥१५॥

ससार मे कोई भी देव या मनुष्य उत्कृष्ट (सर्वोच्च) नही है, एक दूसरे से बढकर पाये जाते है, अत उनका बड़प्पन अस्थिर है। वीतराग अर्हन्त भगवान ही सबसे उत्कृष्ट हैं अत वे ही पूज्य देव हैं, ऐसी अचल श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है ॥१६॥

मोहनीय कर्म के समूल क्षय से अर्हन्त भगवान पूर्ण शुद्ध वीतराग है

तथा ज्ञानावरण का पूर्ण क्षय हो जाने से वे समस्त लोक अलोक, भूत भविष्यत् वर्तमान काल के ज्ञाता हैं, ऐसी श्रद्धा करना सम्यक्त्व है ।।१७।।

समस्त संसार मोह-जाल मे फसा हुआ है उस मोह जाल को छिन्न-भिन्न करके मोक्ष की ओर आकर्पित करने वाला जिनमार्ग है, अन्य कोई मार्ग नही है, ऐसी निश्चल श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है ।।१८।।

पापास्रव के कारण, पुण्य कर्म-आस्रव के कारण तथा मुक्त होने के कारण रूप जीव के परिणामो का ज्ञान होना, और उसका श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन है ।१६।

मन को व्याकुल करने वाले बाहरी विषय हैं, अत॰ वे त्याज्य हैं और चैतन्य-जनित स्वातम-स्थिरता-रूप सुधारस अनुपम पेय है, ऐसा विश्वास करना सम्यक्त्व है ।।।२०।।।

सम्यग्दृष्टि जीव स्वाभिमानी होता हैं, अत. उसको उपशमजनित अपना स्वाधीनसुख ही रुचिकर है, इन्द्रिय विषयादि-जन्य पराधीन सुख उसे इष्ट नही है । ऐसी धारणा ही सम्यक्त्व है ।।२१।।

"यही (जैनागम-प्रदर्शित) मोक्ष का लक्षण है, यही मोक्ष का फल है और यही मोक्ष को देने वाला है" इस प्रकार संशय-रहित श्रद्धान सम्यक्त्व है ।।२२।।

दुष्कर्मों के बन्धन नष्ट करने वाला तथा ज्ञान और चारित्र को सम्यक बनाने वाला, ऐसा अचिन्त्य प्रभावशाली गुण सम्यक्त्व है ।।२३।।

परमजिनेश्वर अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय सर्वसाधु को मनमे अच्छी तरह समझकर, बार बार उनके स्वरूप का अपने मन मे रुचिपूर्वक भावना करना सम्यक्त्व है ।।२४।।

जिनेन्द्र देव की जैसी आकृति आखो से देखी है, उसको मन मे रखकर फिर सिद्ध परमेष्ठी को साक्षात् देख लेने की हृदय मे भावना करना सम्यक्त्व है ।।२५।।

देवो के सिहासनो को कम्पायमान कर देने वाले तीर्थंकर प्रकृति के उपार्जन की कारणभूत १६ भवनाऐं हैं; उनमे अग्रसर जो भावना है वह सम्यक्त्व है ।।२६।।

तीन मूढता, छ. अनायतन, आठ मद, शंका आदि आठ दोष रहित जो नौ पदार्थ तथा सात तत्वो का श्रद्धान करना है सो सम्यक्त्व है ।।२७।।

लोक-निन्दित समस्त पापाचरण हेय (त्याज्य) है और स्मरण करने

योग्य भी नही क्योकि पापाचरण और पाप-चिन्तन से संसार-दु ख तथा पाप-संतान बढती है ।'

अपना आत्म-तत्व ही उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है। ऐसी श्रद्धा सम्यक्त्व है ॥२८॥

पीने के लिये अजलि मे लिये हुए जल मे जिस प्रकार अचानक मुख दीख जाता है, इसी प्रकार दर्शन मोहनीय के उपशम से अचानक अदृष्ट आत्म-स्वरूप स्पष्ट दीखकर उसकी अनुभूति होना सम्यक्त्व है ॥२९॥

चलते फिरते, बोलते, गिरते समय, दुख आपत्ति के समय, मृत्यु आने के अवसर पर भी तत्व-चिन्तन मे लगे रहना सम्यक्त्व है ॥३०॥

आत्म-अनुभूति के विना अनशन आदि तप व्यर्थ है, सम्यक्त्व के साथ तप लाभकारक है, उनसे कर्म-निर्जरा होती है। ऐसी प्रतीति के पश्चात् शुद्ध आत्मा की अनुभूति होना सम्यक्त्व है ॥३१॥

ज्ञान चारित्र से भिन्न पापाचार तथा पापचिन्तन को त्याग कर आत्म-स्वरूप का चिन्तवन करना सम्यक्त्व है ॥३२॥

आवों भव्यानंदक। भावं भुवनैक वन्दितं निश्चयदिं।
दावननंतचतुष्टय। दाविभुतां दातूवेंबबगे सम्यक्त्वं ।३३।
येंतिर्दुवखिळ वस्तुग। ळंतनितु मिर्द परियोळरिदनितरोळ।
आतं विट्टु निजात्मन। नंतर्मुख नागिनेनेवुदडु सम्यक्त्वं ।३४।
परमेष्ठिस्वामिगळै। वरभेदमनरिदुनंबि किल्बिषमं सं।
हरिसलुनेरेवनिजात्म। स्वरूपमं बिडदेनेनेवुदडु सम्यक्त्वं ।३५।
इंता श्रद्धानं सं। भ्रांतियोळें करणलब्धि कैकोळ्गुं।
मंतणमें वाग्जालदि। नंतंतें दूळ्वडक्कुमे सम्यक्त्वं ।३६।
निजतत्वद रुचि रचितं।
निजतत्वद रुचि समस्त वोधाद्वैतं।
निजतत्वद रुचि जिनतुति। निजतत्वदरुचिये संयमंपेरतुंटे ।३७।
निजतत्वं सदैवं। निजतत्वं पन्निर्त्तोरदतपमदेनिक्कुं।
निजतत्वं चारित्रं। निजतत्वं शील मेंबबगे सम्यक्त्वं ।३८।
निजतत्वं नयनिकरं। निजतत्व तां प्रमाणमक्कुमवश्यं।
निजतत्वं निक्षेपं। निजतत्व तत्वमेब बगे सम्यक्त्वं ।३९।

निजतत्वं सुख जनितं । निजतत्वं ब्रह्मचरियमपगत दंडं ।
दिजतत्वं सिद्धत्वं । निजतत्वं क्षांतियेंब बगे सम्यक्त्वं ।४०।
निजतत्वं गुणनिकरं । निजतत्व समितिगुप्ति मार्दव शौच ।
निजतत्व किंचन्यं । निजतत्वं तत्वमेंब बगे सम्यक्त्वं ।४१।
निजतत्वं अर्जवत्वं । निजतत्वं सयमं महाव्रतमेनिकु ।
निजतत्वं जिनपतिनुतिनिजतत्व कार्यं मेंबबगे सम्यक्त्वं ।४२।
निजतत्व दुरित हर । निजतत्वमेतप्पदप्पुदायषिट्कं ।
निजतत्वमुपादेयं । निजतत्वं तत्वमेंब बगे सम्यक्त्वं ।४३।
इदु मुख्यं ग्राहृदलि । तिदु गौण त्याज्यमेंदु बिडुव पाल ।
पदुळं पिडिदविचारदि । तुदिगय्यलिकदलने पिडिद मरुळ पोल्कुं ।४४
दोषघ्नेयात्प्तं स । दुभाषात्मक मप्पुदागमं तत्कथिता ।
शेषाळिपदार्थं जिन । भाषित में दरिदु नंबुवदु सम्यक्त्वं ।४५।
एंदुं मुन्दनेनेन यदत । न्नं दमेन विकल्प नप्पनं चिंतिसुवा ।
नंदं परिणामं घटियिसि । दंदातशुद्ध दर्शनाव्हयनेनिकुं ।४६।
निजवं तप्पदे नोडुव । निजवं पल्लटिसुवरिवतद्वय सहितं ।
निजदोळ् चारित्रिप परिणाति । वृजिनघ्नं शुद्धदर्शनंतानेनिकुं ४७
पिरिदुं मातिनोळेनु बाह्य जनित व्यापार मं बिट्टुस ।
द्गुरु विन्नागममेंबरन्न सोर्डारं मिथ्यातमोबंध सं ।
हरितांतमुंखनागि निश्चलमनं स्वाधीन सौख्यामृता ।
करमग्न .वर शुद्ध दर्शननवं संसार पारंगतं ।४८।
किडेसम्यक्त्वं मण्गोड । नोडेदंदं चरितमळियै हाटक कुंभं ।
पुडियाद भंगियदरिं । केडिसदे दर्शन मनोवि नडेवुदु भव्यं ४९।
जिनपूजोत्सवदिं जिनेंद्र महिमा सानंददिं जैनशा ।
सॅन विस्तारित हर्षदिं जिनपदांभोजानतोत्साहदिं ।
जिनधर्मोद्गत सारतत्व रुचियिं श्री जैन गेहावलो ।
कन सौख्यामृत लंपिनिं चरियिपं सम्यक्त्व युक्तोत्तमं ।५०।
मनमोंदेंबुदु सुप्रसिद्ध मदुतां सम्यक्त्व दोळ् मिथ्येयोळ् ।
जनितैकत्व दोळ् दियोंदुससय प्रोद्भूतवेंदेंब मा ।

तिनभेदं सकल ज्ञागोचर म द पूर्वोक्तम नंबुवा ।
तनु वादं प्रतिभाप्रयुक्त हृदयं सम्यक्त्व युक्तोत्तमं ।५१।
परम गुरूपदेशदि नशेष पदार्थमनुळ्ळभेदवि ।
स्तरतेयनावगं तिळिदु तन्नोळेतां नेलेगोंडु नच्चुमे ।
च्चिरेनिजतत्व संजनितनिश्चल निर्मल दिव्य सौख्य सा ।
गर दोळहर्निशंनेलसिनिंदने दर्शन शुद्ध नुत्तमं ।५२।
जिनपति काळिकारहित कांचनदंते निरस्त कर्मब ।
धन नेनिसिर्देनां दुरित बंधदि काळिके पविदोंडु कां ।
चन दवोलिर्देनी दुरित मीतेरदिंदमगल्वुदु जिनें
द्रन दोरेयप्पेनेंदु तिळिदातनेदर्शन शुद्धमुत्तम ।५३।
मुन्ननिजात्मननरियदे । इन्नेवरपरपरगळ्नानेंदु करं ।
मन्निसि केट्टें बगेयदे । सन्नुतमप्पात्म लब्धि दुर्लभदिंदं ।५४।
मानवनागदंदु खगमुं पशुकीट मागिरल् ।
ज्ञानमदिल्लतप्पेडरोळकट मानसनागियुं निज ।
ज्ञानमनोक्कु मत्तं पशुयोनियोळोय्यने बीळदात्मतं ।
ज्ञान घनत्वदिं तिळिदु नबुवुदी परमोपदेशदिं ।५५।
हरियल्लं हरनल्लं ।
सरसिज भवनल्लनखिळ सुगतनुमल्लं ।
परमार्थं चिज्योति । स्वरूपनेन्नात्म नेंब बगे सम्यक्त्वं ।५६।
हुट्टद योनि मेट्टद नेलं नेरेकोळ्ळ दाहार मोमेंयु ।
मुट्टद भावमोंददभवं पेरतिल्लेने दुर्मोहदिं ।
तिट्टने बंदु नी तिरियदक्कट निन्ननि जस्वरूपम ।
नेट्टने नोडि कूडि पडे नित्य निरजन मोक्षलक्ष्मियं ।५७।
जिनरोळ् जिनवचन दो । ळाजिन वचरार्थ दोळ् पक्षपात मोह ।
क्किनितेनेडेगुडदिरे निसिद । मनदेरकं गुण निबधनं सम्यक्त्वं ।५८।
हेयमदति विषमविष । प्रायं जीवक्कधर्म मेंतुं धर्मं ।
श्रेयममृतोपमं सुख । दायक मादेयमेंब बगे सम्यक्त्व ।५९।
ओंदु गुणंतन्नोळुनि । स्सदेहं नेलसलोड मशेष गुणंगळ् ।
बंदिदु मंदुवगे । यदुवुं दृढतर दुरितविजय जिन विश्वासं ।६०।

बिडुवोडिव बेरसि कोळ्वी । जडत्वमं पोर्दिदिनितनर्हत्पदम ।
विडदिर्दडर्गिदि किडे । बेडंगनोळ कोंड मनमे दृढ सम्यक्त्वं ।६१।
जिननेनगेननुसिर्दनद । नितुं तथ्यं दले नगे पथ्यं पोगि ।
नेनें वेडपेरतनेंबि । मनद विनिश्चयमनर्घ्य दर्शन रत्नं ।६२।
तोप्पलेनेलनं पोयिदोडे । तप्पलक्कुमेतानुं कै ।
तप्पदु जिन भाषितमें । दप्पोडमेंदरिदु नबिनेगळ्वने भव्यं ।६३।
तप्पुवोडर्हद्वचनं । तप्पुगुमावार्द्धि मेरेयंमेरुनगं ।
तप्पुगुमिर्देडेयिदं । तप्पुगुमर्कोदयास्तमानक्रममं ।६४।
बोंदुभवं सर्वज्ञं । गेंदीवररुं निजोत्तमांग दोळनंता ।
नन्ददोळिर्दंपडेगु । कुंदद सोख्य मेनिपदोंदु धात्रिगे चित्रं ।६५।

इस प्रकार वीतराग देव, जिन वाणी, निर्ग्रन्थ गुरु, सात तत्व, नौ पदार्थ के श्रद्धान स्वरूप व्यवहार सम्यग्दर्शन कषायाश्रित भव्य जीवो के होता है। अब सम्यक्त्व के प्रतिबन्धक कारण दूर हो जाने पर जो निश्चय सम्यक्त्व होता है, उसको वतलाते हैं.—

भावक कुषत्वमं स । भाविप दृग्मोहुदंदुयदिल्लमेयि ।
भावविशुद्धतेयक्कुं । पावन सम्यक्त्वमदुवे निजरुचि गम्यं ।६६।
कांचन मेंतपगतदो । षंचेलवं पडेगुमन्ते दर्शन रत्नं ।
पंचाधिक बिंशति मल । सचर्यादं पिंगेसहजभावदि नेसेगुं ।६७।
जिन वचन रसामृत दोळ् । मनदेरकं नच्चु मेच्चु नलवोन्न मेंबी
विनुत श्रद्धानार्थंम । नन्नूसोख्यक्के बीजम तानुसिगुं ।६८।
सम्यक्त्वमे परमपदं । सम्यक्त्वमे सकल सुखद निलय मक्तं ।
सम्यक्त्वमे मुक्ति पथं । सम्यक्त्वदि कूडिनंगळ्द तपमदु सफलं ।६९
इनितं भव्यने केळ्पा । वन सम्यक्त्व वर्तिकुं श्रद्धानं ।
जिन भक्ति तत्व रुचिद । संनमात्म ज्ञनमेंब परियायंगळ् ।७०।
नीनुमिदं तिळिनाना । योनिय दुःखाग्नि तापमं नीगु श्रोढ ।
ज्ञान मयं शास्वतस्वा । धीन सुखामृ तदकडलोळोळाडुवो डं।।७१।

भव्यो को आनन्ददायक, त्रिलोक-पूज्य, अनन्त चतुष्टय के स्वामी, ज्ञान द्वारा सर्वव्यापक, जिनेन्द्र भगवान् ही यथार्थ मे मुक्तिदाता है, ऐसा श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥३३॥

समस्त बाह्य पदार्थो को जानकर उनमे भ्रान्तिवश लीन न होना, अन्तर्मुख होकर आत्म-अनुभूति मे लगना ही सम्यक्त्व है ॥३४॥

पच परमेष्ठी के भेद (रहस्य) को जानकर, पाप मल दूर करने के लिए निरन्तर आत्मस्वरूप का अनुभव करना सम्यक्त्व है ॥३५॥

आत्मा आदि पदार्थो का स्वरूप ऐसा है कि नही ? इत्यादि भ्रामक या सन्देहयुक्त वाग्जाल मे न फसना, करण-लब्धि होने के पश्चात् आत्मा का साक्षात्कार होना ही सम्यक्त्व है ॥३६॥

निज आत्मा की रुचि ही वोध चारित्र आदि की भेदभावना मिटाकर अद्वैत भाव प्रगट करती है, निजतत्व की रुचि ही जिनेश्वर की स्तुति है, निज तत्व की रुचि ही सयम है और अन्य कुछ नही है ॥३७॥

निज तत्व (आत्म स्वरूप) ही सत् दैव (भाग्य) है, निज तत्व ही तप है, निज तत्व ही चारित्र है और निज तत्व ही शील है। ऐसा श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥३८॥

निज तत्व ही नय-समुदाय है, निज तत्व ही प्रमाण है, निज तत्व ही निक्षेप है, इस प्रकार आत्मा का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥३९॥

निज आत्मा ही सिद्धत्व है, निज तत्व ही शान्ति (क्षमा) है, ऐसी भावना करना सम्यक्त्व है ॥४०॥

निज तत्व (आत्मा) ही गुणो का भडार है, निज तत्व ही गुप्ति, समिति, मार्दव, शौच और आकिंचन्य है इस कारण निजतत्व ही तत्व है, ऐसी भावना करना ही सम्यक्त्व है ॥४१॥

निज तत्व ही आर्जव है, निज तत्व ही सयम और महाव्रत है, निज तत्व ही जिनेन्द्र देव का स्तोत्र है एव निज तत्व ही हमारा कार्य है, ऐसा चिन्तवन करना सम्यक्त्व है ॥४२॥

निज तत्व ही पापहारी है, निज तत्व ही मुनियो का षट् आवश्यक कर्म है, निजतत्व ही उपादेय है, ऐसी भावना करना सम्यक्त्व है ॥४३॥

नीर क्षीर का विवेक न करने वाले, मुख्य गौण, ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) अग्राह्य (न ग्रहण करने योग्य) का विचार न करने वाले मनुष्य को सम्यक्त्व प्राप्त नही होता ॥४४॥

रागद्वेष आदि दोषो से रहित ही आप्त (पूज्य देव) है, आप्त की वाणी ही आगम है, जिनेन्द्र द्वारा कहे गये पदार्थ ही यथार्थ हैं, ऐसा श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है ॥४५॥

अनादि काल से आत्मा विकल्प रूप से भी दृष्टिगोचर नही हुआ, वही आत्मा अब निर्विकल्प रूपसे प्रतीत हो रहा है, ऐसा परिणाम ही शुद्ध दर्शन का है ॥४६॥

मौन भाव से आत्मा को देखना (अनुभव करना) और उसे उलट पलट कर विचारना तथा अपने आत्मा मे ही लीन रहना, ऐसी परिणति पापनाशक है ऐसा चिन्तवन करने वाला शुद्ध सम्यग्दृष्टि है ॥४७॥

बहुत कहने से क्या प्रयोजन, बाह्य क्रियाओ को छोड दो, सद्गुरु के उपदेश रूपी रत्न-ज्योति से मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को हटा कर अन्तर्मुख हो जाओ, निश्चल चित्त बन जाओ, स्वाधीन सुखामृत मे मग्न हो जाओ। ऐसी वृत्ति रखने वाला शुद्ध सम्यग्दृष्टि है और संसार-सागर के पार पहुँचने वाला है ॥४८॥

सम्यक्त्व का नष्ट होना मिट्टी के घडे के टूटने के समान है और चारित्र का नष्ट होना सुवर्ण घड़े के टूटने के समान है। यानी—मिट्टी का घड़ा टूट जाने पर फिर नही जुड़ सकता किन्तु सोने का घड़ा टूट जाने के बाद भी फिर जुड़ जाता है, इसी प्रकार सम्यक्त्व के नष्ट हो जाने पर आत्मा का सुधार नही हो सकता, चारित्र नष्ट हो जाने पर फिर भी आत्मा सुधर जाती है ॥४९॥

जहा पर जिनेन्द्र देव का पूजन महोत्सव होता है वहां जाकर हर्ष मनाना, जिनेन्द्र भगवान की महिमा सुन कर और देखकर आनन्द मनाना, जैन शास्त्रो के महान विस्तार को देखकर हर्ष मनाना, जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करने मे आनन्दित होना, जिनागम में सारतत्व का विवेचन देखकर प्रसन्न होना जिन-चैत्यालय को देखकर हर्षित होना, इस प्रकार की प्रवृत्ति वाला शुद्ध सम्यक्त्वी है ॥५०॥

यह मन एक है जब सम्यक्त्व का अनुभव करता है तब सम्यग्दृष्टि होता है, जब मिथ्यात्व मे जाता है तब आत्मा मिथ्यादृष्टि होता है, परिणाम बदलने से एक ही समय मे बदल जाता है। इन सब रहस्यो का ज्ञाता सर्वज्ञ है। ऐसा समझ कर मेधावी जो पूर्वोक्त रीति से श्रद्धान करता है वह उत्तम सम्यग्दृष्टि है ॥५१॥

परमगुरू के उपदेश से जैसा है वैसा समस्त पदार्थों को अच्छी तरह जानकर अपने आपमे स्थिर होकर, "हमने अद्भुत पदार्थ पा लिया" इस प्रकार अपने आत्मा से उत्पन्न हुए निश्चल, निर्मल, दिव्य सुखसागर मे निरन्तर मग्न रहने वाला शुद्ध सम्यक्त्वी और उत्तम है ॥५२॥

शुद्ध सुवर्ण के समान निर्मल जिनेन्द्र भगवान है और मैं कालिमा-मिश्रित अशुद्ध सुवर्ण के समान हूँ। जब मेरी कर्म-कालिमा दूर हो जायगी तब मै जिनेन्द्र भगवान के समान शुद्ध निर्मल बन जाऊगा। ऐसा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ॥५३॥

अनादि काल से मैने निज आत्मा को नही समझा, मै आत्मा से भिन्न पर-पदार्थ शरीर आदि को अपना तत्व समझ कर पथ-भ्रष्ट रहा आया। सर्वोत्कृष्ट आत्मलब्धि को मैने आज दुर्लभ से प्राप्त किया है ॥५४॥

पशु, पक्षी, कीडे मकोडे आदि जीव जन्तुओ की पर्यायमे ज्ञान की कमी से आत्म-बोध होता ही नही, इस कारण अनेक कष्ट सहन करते हुए मैने कठिनाई से मनुष्य शरीर पाया है, एवं स्व-आत्म-बोध प्राप्त करके मै अपने आत्मा का भी अनुभव करने लगा, ऐसा हो जाने पर क्या मैं पशु-योनि मे जा सकता हूँ ? कदापि नही। मेरा ज्ञानघन रूप है। श्री जिनेन्द्र देव का परमोपदेश गुरु द्वारा सुनने का यह लाभ मुझे प्राप्त हुआ है। ऐसी भावना करना श्रेष्ठ है ॥५५॥

मै न तो हरि हू, न शिव हूँ, न ब्रह्मा हूँ, न बुद्ध हू, मैं तो चैतन्य-स्वरूप आत्मा हू, इस प्रकार चिन्तवन करना सम्यक्त्व है ॥५६॥

हे भव्य जीव ! तू इस संसार मे अनादि समय से भटक रहा है इस लोकाकाश का कोई भी ऐसा प्रदेश शेष नही रहा जहा तू उत्पन्न नही हुआ, कोई ऐसा पदार्थ नहीं बचा जिस को तूने भक्षण नही किया, तू जगत के समस्त प्रदेशो मे घूम आया, कर्म-बन्धन के समस्त भाव भी तूने प्राप्त किये, ससार की समस्त पर्यायें तू प्राप्त कर चुका है। इतना सब कुछ होकर भी दुर्मोह से तू फिर उन्ही पदार्थो की भिक्षा मांगता है यह तुझे शोभा नही देता, तू अपने स्वरूप को प्रत्यक्ष अवलोकन कर, यही श्रेष्ठ है और अन्त में नित्य निरञ्जन मोक्ष-वैभव को इसी से प्राप्त करेगा ॥५७॥

जिनेन्द्र भगवान का, जिन वाणी का तथा निर्ग्रन्थ गुरु का पक्ष लेकर मोह को रचमात्र भी हृदय में स्थान नही देना, ऐसी हार्दिक प्रबल भावना और गुणानुराग ही सम्यक्त्व है ॥५८॥

जो त्याज्य, अति विषम और विषमय है, वह अधर्म है। जो धर्म है वह श्रेयस्कर है, उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है, अमृत-तुल्य है, सुखदायक है। ऐसी श्रद्धा करना सम्यक्त्व है ॥५९॥

श्री जिनेन्द्र भगवान पर सन्देह-रहित विश्वास करने का एक गुण ही यदि प्राप्त हो जावे तो आत्मा के अन्य समस्त गुण स्वय प्राप्त हो जाते है। ऐसी अचल श्रद्धा ही पाप-निवारक है ॥६०॥

ससार मे पर-पदार्थ छोड़ने योग्य हैं और निज पदार्थ ग्रहण करने योग्य है। आत्म-वैभव पाने के लिए अर्हन्त भगवान के चरणो का निश्चलता से आश्रय लेना ही सम्यक्त्व है ॥६१॥

जिनेन्द्र भगवान ने जो कुछ कहा है वही सत्य और हितकर है, अन्य वचन सत्य और कल्याणकारक नही, ऐसा निश्चय करना अमूल्य सम्यक्त्व रत्न है ॥६२॥

पृथ्वी पर हाथ का आघात करने से पृथ्वी पर चिन्ह पडता है, वह कदाचित् चूक जाय या विफल हो जाय परन्तु जिनेन्द्र भगवान का उपदेश कभी निष्फल नही हो सकता, ऐसी श्रद्धा रखने वाले ही भव्य जीव है ॥६३॥

यदि अर्हन्त भगवान की वाणी निष्फल हो जायगी तो समुद्र अपनी मर्यादा छोड देगा, अचल सुमेरु चलायमान हो जायगा तथा सूर्य के उदय अस्त होने का क्रम भी भग हो जावेगा ॥६४॥

जिनेन्द्र भगवान ने अर्हन्त अवस्था पाने से पहले अनन्त भव धारण किए किन्तु अन्तिम एक भव मे ही उस अनन्त जन्म-परम्परा का अन्त करके अनन्तानन्त सुख प्राप्त किया, जगत मे यह एक बड़ी विचित्र बात है ॥६५॥

इस प्रकार वीतराग देव, जिनवाणी तथा निर्ग्रन्थ गुरु का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। अब सकषाय जीव को सम्यक्त्व के प्रतिबन्धक कारण हट जाने पर निश्चय सम्यक्त्व किस तरह प्राप्त होता है, यह बतलाते है—

परिणामो की कलुपता से द्रव्य मोह (मोहनीय कर्म या दर्शन मोहनीय कर्म) होता है। वह भाव-कलुषता अब मुझ मे नही है। भाव कलुषता से विरुद्ध भाव-विशुद्धता अब प्रगट हो गई, यह पवित्र सम्यक्त्व है, यही निज आत्म-अनुभव-गम्य है ॥६६॥

जिस प्रकार कालिमा आदि दूर हो पर जाने सुवर्ण अपने स्वाभाविक स्वच्छ रूप मे प्रगट हो जाता हैं ॥६७॥

जिनेन्द्र देव के वचन रसामृत का आस्वादन करना, उसको श्रेयस्कर मानना, उसमे ही निमग्न होना, उसी मे आनन्द अनुभव करना, अनुपम सुख का बीज है ॥६८॥

सम्यक्त्व ही परम पद है, सम्यक्त्व ही सुख का घर है, सम्यक्त्व ही मुक्ति का मार्ग है, सम्यक्त्व-सहित तप ही सफल है ॥६९॥

हे भव्य जीवो! सुनो, सम्यक्त्व मे प्रवृत्ति करना, आत्म-श्रद्धा करना, जिन-भक्ति करना, तत्वो मे रुचि करना, आत्म-ज्ञान होना, यह सब सम्यग्दर्शन के पर्याय नाम है ॥७०॥

यह भी समझ लो कि त्रिविध योनियो के दुख सताप को दूर करना ही, ज्ञानमय स्वाधीन सुखामृत सागर मे डुबकी लगाकर आनन्द से रहना हो तो सम्यक्त्व को प्राप्त करो ॥७१॥

अब वेदक सम्यक्त्व के दोष बतलाते है—

तत्र वेदकसम्यक्त्वस्य पंचविंशतिमलानि ॥६॥

अर्थ--वेदक सम्यक्त्व के २५ दोष होते है ।

उक्त च—

मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ, तथानायतनानि षट् ।
अष्टौ शकादयश्चेति, दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः ॥

यानी--तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन, शका आदि आठ दोष इस तरह सब मिल कर २५ दोष वेदक सम्यक्त्व हैं ।

मूढता—

दाम्भिक (अभिमानी), स्वार्थी, मायाचारी लोगो की बातो पर विश्वास रखकर, सत्य असत्य की परीक्षा न करके निराधार निष्फल बातो को धर्म समझ लेना मूढता (मूर्खता) है । मूढता के तोन भेद है--१ लोक मूढता, २ देव मूढता और ३ पाखण्ड मूढता ।

लोक मूढता—

सत्शास्त्रो का स्वाध्याय न किया हो, तत्व अतत्व का विचार न हो, सद्-गुरु का उपदेश न सुना हो, आचार विचार का ज्ञान न हो, ऐसे अनभिज्ञ मनुष्य दूसरे लोगो के देखा-देखी चाहे जो कुछ क्रिया करके जो धर्म मानने लगते है । अथवा ठग मायाचारी साधुओ के द्वारा दिखाये गये किसी चमत्कार को देखकर उनके कहे हुए ऊटपटाग क्रिया काडो मे धर्म मानने लगते हैं, इष्ट अनिष्ट से अनभिज्ञ (अनजान) रहकर भेडो की चाल की तरह गतानुगतिक बन कर धर्म मान लेते है सो 'लोक मूढता' है ।

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥

अर्थ--धर्म समझ कर नदी, सरोवर समुद्र मे स्नान करने, पत्थरो तथा बालूका ढेर लगाने, अग्नि मे जलने, पर्वत से गिरने को धर्म मानना' लोक मूढता' है । तथा घर की पूजा करना, नदी को पूजना, गाय, पीपल, मील के पत्थरो की पूजा करना, पीर पैगम्बर पूजना, ताजियो के नीचे बच्चो को लिटाना, मस्जिद मे मुल्ला से मुख मे थुकाना, ये लोक मूढता के काम हैं । नदी आदि मे स्नान करने से

केवल शरीर का मैल छूट जाता है परन्तु आत्मा का मेल नहीं छूटता, अतः नदी आदि मे स्नान करना भावतीर्थ नही है।

सत्य तप, पाचो इन्द्रियो का निग्रह, सम्पूर्ण जीवो पर दया करना भाव तीर्थ है। इस भावतीर्थं मे स्नान करने से आत्मा का कर्म मल नष्ट होता है तथा अन्त मे स्वर्ग की या मोक्ष की प्राप्ति होती है। नदी समुद्र आदि नाम के ही तीर्थ है। इन मे स्नान करने से कभी कर्म मल नही धुलता। अगर कर्म मल इन में स्नान करने से धुलता तो उनमे रहने वाले मेढक, मगर मच्छ आदि अन्य जीव क्यो नही शुद्ध होते हैं? क्यो जन्म मरण किया करते हैं ? उन को न स्वर्ग मिलता है न मोक्ष ही मिलता है। नदी आदि तीर्थ मे स्नान करने से तो शरीरके बाहिरी मल का नाश होता है। अगर इससे पुण्य होने लगे तो उसी जल मे उत्पन्न होने वाले उसी मे बढने और उसी जल को पीने वाले और उसी के अन्दर हमेशा रहने वाले जल-चर जीव मगर मछली आदि तथा जो सिंह वकरी हिरन आदि पशु पक्षी उसी का जल पीने वाले है उनको भी पुण्य बध होना चाहिए। मनुष्य को इस प्रकार सकल्प करके धर्म की भावना करना और उसे स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति का साधन मानना तो रेत को पेल कर उस मे से तेल निकालने के समान है। इसी तरह शस्त्र–घात से, अग्नि-घात से या पर्वत से गिर कर मरने वाले को पुण्य हो जावे और पानी मे कूद कर या विप खाकर मरने को पुण्य माना जाय और इस से ही कर्मो की निर्जरा मान ली जाय तो 'ऋषि मुनियो के द्वारा बताये गये जप, तप, व्रत सयम, नियम आदि कर्म निर्जरा के कारण हैं' वह सब युक्ति-युक्त वचन अन्यथा हो जायेगे। इस मन--माने तीर्थ और लोक मूढता के स्थानो मे जाने से, मानने से कर्म बध होता है, इसे दूर से ही छोडना चाहिए।

इस लोक को और परमार्थ को न जानने वाले, ढोगी तथा पाखडी पापी, द्वारा माने हुए हिंसा मय धर्म पर विश्वास रखकर, स्त्री द्वारा पुरुष का रूप और पुरुष द्वारा स्त्री का रूप धारण कर आचार विचार से रहित अपने आपको देव देवी मानने वाले स्त्री पुरुषो के वचनो को मान कर पाप वृद्धि करना और उस पर विश्वास करना सभी 'लोक मूढता' है।

पाखण्ड-मूढता

जिनको आत्मा परमात्मा, ससार मोक्ष, कर्मबन्धन, कर्ममोचन, लोक परलोक आदि का ज्ञान नही है, तप कुतप आदि का जिन्हे परिज्ञान नही, जिनको अपनी महत्ता, ख्याति प्रशसा की तीव्र उत्सुकता रहती है, भोजन,

वस्त्र, द्रव्य आदि से जिनकी मोह ममता बनी हुई है फिर भी जो अपने आपको साधु मानते तथा मनवाते हैं। इसके लिए कोई अपनी जटा बढा लेते हैं, कोई नाखून बढा लेते हैं तथा दण्ड, चीमटा आदि अनेक तरह की चीजे अपने पास रखते है, गाजा, सुलफा, तमाखू, भंग, आदि पीते है, जिनके क्रोध, मान, माया, लोभ बने हुए हैं, वे साधु-गुण-शून्य पाखण्डी कहलाते हैं। ऐसे पाखण्डियो को गुरु श्रद्धा से मानना, पूजना, विनयसत्कार करना 'पाखण्डि मूढता' है।

आध्यात्मिक गुणो का गौरव जिनमे पाया जाता है, जो सासारिक मोह माया, आरम्भ, घर, गृहस्थी, परिग्रह से दूर रहते है, दया, शान्ति, क्षमा, धैर्य, अटल ब्रह्मचर्य, सत्य, शौच, सयम, वैराग्य जिनमे सदा पाया जाता है, जो ज्ञानाभ्यास, आत्मचिन्तन, हित-उपदेश, ध्यान, स्वाध्याय मे लगे रहते हैं वे सच्चे गुरु या सच्चे साधु होते है। विवेकी पुरुष को ऐसे साधु गुरु की उपासना करनी चाहिए, क्योकि उनकी ही पूजा उपासना से उनके गुण अपनी आत्मा मे आते है। उनके सिवाय पाखडी साधुओ की उपासना से आत्मा का कुछ कल्याण नही होता। इस कारण पाखण्डियो की विनय पूजा उपासना 'पाखडि मूढता' है।

देव-मूढ़ता

परमात्मगुण-शून्य कल्पित देवो को या रागो द्वेषी आदि कुदेवो को आत्म-कल्याण की भावना से पूजना 'देव मूढता' है।

देवो के ४ भेद है—१ देवाधिदेव, २ देव, ३ कुदेव, ४ अदेव।

रागद्वेष आदि भाव कर्म तथा मोहनीय आदि द्रव्य-कर्मों का नाश करके जो परम शुद्ध, परमात्मा, वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशक, त्रिलोक-पूज्य हैं वे 'देवाधिदेव' हैं।

जिन्होने पूर्वभव मे सुकृत पुण्य कार्य करके देव शरीर पाया है ऐसे सम्यग्दृष्टि कल्पवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क देव 'देव' या 'सुदेव' कहलाते हैं। वे सुमार्गगामी, देवाधिदेव वीतराग के अनुयायी, सेवक होते हैं।

मिथ्यात्व भावना सहित जो क्रोधी, कुमार्गरत, कलहप्रिय, तीव्र राग द्वेषधारक देव हैं, वे 'कुदेव' होते हैं।

स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ साधन के लिए अपनी कल्पना से जिसको चाहे उसको देव मानकर पूजने पुजवाने लगते हैं, जोकि वास्तव मे देव होते भी नहीं हैं; वे 'अदेव' हैं।

इनमे से आत्म शुद्धि के लिए, ससार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए, सर्व कर्म कलङ्क से छूटने के लिए वीतराग देवाधिदेव की ही पूजा उपासना करना चाहिए, अन्य किसी देव की नही।

धार्मिक तथा लौकिक सत्कार्य मे सहायता सहयोग प्राप्त करने के लिए जिनेन्द्र भक्त यक्ष, पद्मावती आदि सम्यग्दृष्टि देवो का भी सांधर्मीवात्सल्य भावना से उचित आदर सत्कार करना चाहिए। जैसा कि प्रतिष्ठा आदि के समय करते है, परन्तु उन्हे आत्म-शुद्धिका कारण न समझना चाहिए और न अर्हन्त सिद्ध देवाधिदेव के समान पूजना चाहिए।

कुदेव तथा अदेवो की पूजा उपासना कदापि न करनी चाहिए। जो मनुष्य हेय उपादेय ज्ञान से शून्य हैं जिन्हे कर्तव्य, धर्म, अधर्म का विवेक नही, ऐसे भोले भाले (मूर्ख) मनुष्य दूसरो की देखादेखी या किसी की प्रेरणा से अथवा अपने किसी कार्य-सिद्धि की भावना से जो कुदेवो अदेवो की पूजा उपासना करते हैं, वह 'देवमूढता' है।

देवमूढता से आत्म-पतन होता है आत्म-कल्याण नही होता, अत विवेकी आत्म-श्रद्धालु इस मूढता (मूर्खता) से भी बचा रहता है।

८ मद

मदमेंवुदु मिथ्यात्वद। मोदलदुतानेंदुभेदमवकु तन्नो- ॥
ळदितमेने पेळ्वडतदु। मदविरहितदर्शनिक नक्कु पुरुषं ।१०६।

अर्थ—मिथ्याश्रद्धा के कारण मनुष्य विविध कारणो से अभिमान करता है, जब मनुष्य मद छोड देता है तभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का पात्र होता है, तभी वह दार्शनिक श्रावक होता है।

अपने आपको अन्य व्यक्तियो से बडा समझकर दूसरो से घृणा करना 'मद' या अभिमान हैं। मद के ८ भेद हैं १ कुलमद, २ जाति मद, ३ रूप मद, ४ ज्ञान मद, ५ धन मद, ६ बल मद, ७ तप मद तथा ८ अधिकार मद।

पिता के पक्ष को 'कुल' कहते है। अपने कुल मे अपना पिता-मह (दादा), पिता, चाचा, ताऊ, भाई, भतीजा, पुत्र, आदि कोई भी व्यक्ति या स्वय आप राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, पहलवान, विद्वान, चारित्रवान, यशस्वी आदि हो तो उसका अभिमान करना, दूसरो के कुल परिवारो को तुच्छ हीन समझना, उनसे घृणा करना कुलमद है। जैसे मरीचिकुमार ने किया था कि मेरा पिता (भरत) चक्रवर्त्ती है, मेरा पितामह (बाबा) भगवान ऋषभनाथ पहले तीर्थङ्कर हैं, मेरे प्रपितामह (पर दादा) महाराजा नाभिराय, अन्तिम,

कुलकर है, मैं भी तीर्थंकर होने वाला हूँ। इस प्रकार मेरा कुल सबसे अधिक श्रेष्ठ है। इसी कुलमद के कारण मरीचि को अनेक योनियो मे भटकना पडा।

माता के पक्ष को 'जाति' कहते है। तदनुसार अपनी माता के कुल परिवार मे—अपना नाना, मामा, नाना-पुत्र आदि उच्च पदाधिकारी, राजा, मत्री, सेठ, जमीदार, धनिक आदि हो तो उसका अभिमान करना, दूसरो को हीन समझकर उनसे घृणा करना 'जातिमद' है।

अपना शरीर सुन्दर हो तो उस सुन्दरता का अभिमान करके अन्य असुन्दर स्त्री पुरुषो से घृणा करना 'रूपमद' है। सनत्कुमार चक्रवर्ती बहुत सुन्दर थे, उनकी सुन्दरता देखने स्वर्ग से दो देव आये थे। इस कारण सनत्कुमार को अपनी सुन्दरता का वहुत अभिमान हुआ किन्तु कुछ क्षण पीछे उनकी सुन्दरता कम होने लगी। यहा तक कि मुनि अवस्था मे उनको कोढ हो गया जिससे उनका शरीर वहुत असुन्दर हो गया।

अपनी धन सम्पत्ति का अभिमान प्रगट करना 'धनमद' है।

कनक-कनक तैं सौगुनी, मादकता अधिकाय।
जा खाये बौरात है, वा पाये बौराय॥

यानी सोने (धन) मे मद पैदा करने की शक्ति धतूरे से भी अधिक है। तभी धतूरे को खाकर मनुष्य बौराता है किन्तु धन पाते ही बौराने लगता है।

इस तरह धन का अभिमान अन्य सब अभिमानो से अधिक नशा लाता है। धन के नशे मे अन्धा होकर मनुष्य अपना विवेक खो वैठता है।

अपने शरीर के वल का अभिमान करना 'वलमद' है। वलमद मे चूर होकर मनुष्य निर्वल जीवो को सताता है, उन्हे ठुकराता है, मारता है, उन्हे लूटता खसोटता, अपमानित करता है। भरत चक्रवर्ती ने बलमद मे आकर अपने भाई वाहुवली से युद्ध ठान लिया किन्तु जव वह मल्लयुद्ध, जलयुद्ध, तथा दृष्टि युद्ध मे वाहुवली से हार गये तव उनको प्राण रहित करने के लिए उनपर चक्र चला दिया ऐसा अकृत्य मनुष्य वलमद मे कर वैठता है।

तपश्चरण आत्म शुद्धि के लिए किया जाता है, परन्तु जब उसी तपस्या का अभिमान किया जाता है तव वह तपस्या एक अवगुण वन जाती है। तपमद करने वाला व्यक्ति अपने आपको महान तपस्वी, धर्मात्मा, महात्मा, शुद्धात्मा समझता है अन्य साधु मुनि ऋषियो को हीन समझता है। उनको घृणा की दृष्टि से देखने लगता है।

मनुष्यो को पूर्व पुण्य कर्म उदय से राजकीय, सामाजिक, जातीय, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्त.राष्ट्रीय अधिकार प्राप्त हुआ करते है। उस प्राप्त

अधिकार का अभिमान करना 'अधिकारमद' है। अधिकारमद मे चूर होकर मनुष्य दूसरो का अपमान करता है, उनको आर्थिक, शारीरिक दण्ड देता है। इस तरह अपने पद का दुरुपयोग करता है।

इस तरह ८ मद सम्यग्दर्शन को मलिन करने वाले दोप हैं।

छह अनायतन

'आयतन' शब्द का अर्थ **'घर'** है। यहाँ सम्यक्त्व के प्रकरण मे 'आयतन' का अर्थ **'धर्म का घर'** या **'धर्म का स्थान'** है। जो **'धर्म का स्थान'** न हो, अधर्म या मिथ्यात्व का स्थान हो उस को **'अनायतन'** कहते है।

अनायतन ६ है–१ कुदेव, २ कुदेवालय, ३ मिथ्या ज्ञान, ४ मिथ्याज्ञानी, ५ मिथ्या तप, ६ मिथ्या तपस्वी।

आत्मा, राग द्वेष, क्रोध, काम आदि दुर्भावो के कम होने या दूर होने से शुद्ध होता है। अत वीतराग देव की भक्ति से वह आत्म-शुद्धि मिलती है। जो देव राग, द्वेष आदि दुर्भाव धारी है, कुदेव है, उनकी भक्ति से आत्मशुद्धि नही हो सकती, अत कुदेव धर्मायतन नही, अनायतन है, इसी कारण सम्यग्दृष्टि उनकी भक्ति नही करता। जो व्यक्ति किसी स्वार्थ या प्रलोभनवश उनकी भक्ति करता है वह अपने सम्यक्त्व मे दोष लगाता है।

कुदेवो के स्थान भी इसी कारण त्याज्य है कि वहा आने जाने से आत्म-शुद्धि की प्रेरणा नही मिलती। अत कुदेवालय भी अनायतन है।

जिन शास्त्रो के पठन-पाठन से आत्मा मे काम क्रोध आदि दुर्भाव उत्पन्न हो, आत्मज्ञान वैराग्य की प्रेरणा न मिले वे ग्रन्थ मिथ्या ज्ञान के उत्पादक है, अत. वे भी अनायतन हैं।

आत्मा के अहितकारक ग्रन्थो को पढकर यदि कोई विद्वान हो तो उस की विनय सेवा सुश्रूषा से कुज्ञान ही प्राप्त होगा, अतः मिथ्याज्ञानी भी अनायतन रूप है।

कर्म निर्जरा करा कर आत्मा को शुद्धता की दिशा मे ले जाने तप तो श्रेयस्कर है। किन्तु जिस तप से आत्मा की मलिनता कम न हो पावे, वह तप कुतप या मिथ्या तप है और इसी कारण अनायतन है।

मिथ्या तप करने वाले आत्मज्ञान-शून्य तपस्वी अपने अनुयायियो को ससार से पार नही कर सकते; वे तो पत्थर की नाव की तरह ससार-सागर मे स्वयं डूबते हैं और अपने भक्तो को डुबाते हैं, अत वे भी अनायतन रूप हैं।

आठ दोष

जिन से सम्यग्दर्शन दूषित होता है उसे दोष कहते हैं। वे आठ हैं–१ शका, २ काक्षा, ३ विचिकित्सा, ४ मूढदृष्टि, ५ अनुपगूहन, ६ अस्थितीकरण, ७ अवात्सल्य, ८ अप्रभावना।

वीतराग और सर्वज्ञ होने के कारण जिनेन्द्र भगवान यथार्थ वक्ता (आप्त) हैं, अत उनके वचनो मे सम्यग्दृष्टि को नि शक रहना चाहिए। ऐसा न होकर यदि उनके उपदिष्ट किसी सिद्धान्त या किसी बात मे सन्देह प्रगट किया जाय तो वह 'शका' दोष है।

आत्मा के स्वतन्त्र शान्त, अनुपम, अनन्त सुख से अनभिज्ञ या विमुख रहकर सासारिक, कायिक, इन्द्रियजन्य, भौतिक भोग उपभोग-जन्य सुख की इच्छा करना **'कांक्षा'** दोष है।

रत्नत्रय रूप आध्यात्मिक गुणो का आदर न करते हुए ऋषियो, मुनियो का मलिन शरीर देखकर उनसे घृणा करना **'विचिकित्सा'** दोष है।

चेतन, जड, ससार, मुक्ति, पुण्य पाप, हेय उपादेय आदि के आवश्यक ज्ञान से शून्य मूढ बने रहना **'मूढदृष्टि'** दोष है।

अपने गुण प्रगट करना, दूसरे के दोष प्रगट करना, धर्मात्मा के अवगुणो को न ढकना **'अनुपगूहन'** दोष है।

दरिद्रता, मूर्खता या अन्य किसी कारण से कोई मनुष्य अपना धर्म छोड कर विधर्मी हो रहा हो तो उसे उपाय करके अपने धर्म मे स्थिर करने का प्रयत्न न करना **'अस्थितिकरण'** है।

अपने साधर्मी व्यक्ति से कलह करना, उससे प्रेम न करना **'अवात्सल्य'** दोष है।

अपने धर्म का प्रचार करने तथा इसका प्रभाव जगत मे फैलाने का यथा-साध्य प्रयत्न न करना 'अप्रभावना' दोष है।

इस प्रकार ३ मूढता, ८ मद, ६ अनायतन और ८ दोष, ये सब मिलकर सम्यग्दर्शन के २५ मल दोष है। इनके द्वारा सम्यग्दर्शन गुण स्वच्छ निर्मल न रह कर, मलिन हो जाता है।

अष्टागानि ॥७॥

अर्थ—जिस प्रकार शरीर को ठीक रखने के लिए हाथ, पैर, शिर, छाती, पीठ, पेट आदि आठ अग होते है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन को पूर्ण-स्वस्थ रखने के लिए आठ अग होते है। उनके नाम–

१ निःशंकित, २ निःकाक्षित, ३ निर्विचिकित्सा, ४ अमूढ-दृष्टि, ५ उपगूहन, ६ स्थितिकरण, ७ वात्सल्य, ८ प्रभावना ।

जिनवाणी में रंच मात्र भी शका सन्देह न करना **निःशंकित** अंग है।

सासारिक विषय भोगो की इच्छा न करना **निःकांक्षित** अंग है ।

निर्ग्रन्थ साधु के मलिन शरीर से घृणा न करना उनके आध्यात्मिक गुणो से अनुराग करना **निर्विचिकित्सा** अग है ।

आत्मा, अनात्मा, आचार अनाचार, पाप, पुण्य, हेय उपादेय आदि आवश्ययक बातों का ज्ञान प्राप्त करना, इनसे अनभिज्ञ (अजान) न रहना **अमूढ दृष्टि** अंग है।

किसी साधर्मी भाई, मुनि ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी आदि व्रती से आत्म-निर्बलता के कारण कोई दोष या त्रुटि हो जाय तो उसको प्रगट न करना, गुप्त रूप से सुधारने का यत्न करना **उपगूहन** अग है ।

कोई साधर्मी स्त्री पुरुष किसी कारण-वश अपना धर्म छोडने को तैयार हो तो उसे समझा-बुझा कर तथा अन्य अच्छे उपाय से धर्म मे स्थिर रखना **स्थितिकरण** अंग है।

अपने साधर्मी व्यक्ति से ऐसा प्रेम करना जैसे गाय अपने बछड़े के साथ करती है, यह **वात्सल्य** अंग है ।

दान, परोपकार, ज्ञान प्रचार, शास्त्रार्थ, उच्चकोटि का चारित्र पालन करना, व्याख्यान, पुस्तक वितरण आदि विविध उपायो से धर्म का प्रभाव सब जगह फैलाना **प्रभावना** अग है ।

इन आठ अगो के आचरण करने से सम्यग्दर्शन पूर्ण एव पुष्ट रहता है।

इन आठ अगो को पालन करने मे निम्नलिखित व्यक्ति प्रसिद्ध हैं—

अंजन चोर निःशकित अंग मे, अनन्तमती निःकाक्षित अंग मे, उद्दायन राजा निर्विचिकित्सा अंग मे, अमूढ-दृष्टि अंग मे रेवती रानी, जिनेन्द्रभक्त सेठ उपगूहन अंग मे, वारिषेण स्थितीकरण मे, विष्णुकुमार ऋषि वात्सल्य अग में और वज्रकुमार मुनि प्रभावना अंग में जगविख्यात हुए है। विस्तार भय से यहां उनकी कथा नही देते है अन्य ग्रन्थो से उन्हे जान लेना ।

जलस्नानत्यागी महाव्रती साधुओ का शरीर मैला देखकर उससे घृणा करना **विचिकित्सा** अतिचार है।

अष्ट गुणाः ॥८॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन के आठ गुण है।

१ धर्मानुराग, २ निर्वेग, ३ आत्म निन्दा, ४ गर्हा, ५ उपशम, ६ भक्ति, ७ अनुकम्पा और ८ आस्तिक्य ये उन ८ गुणो के नाम है।

धर्म से, धर्म के फल से तथा धर्मात्मा के साथ अनुराग रखना सम्यग्दर्शन का पहला **'धर्मानुराग'** गुण है।

ससार, तथा शरीर विषय भोगो से विरक्त रहना **'निर्वेग'** गुण है।

अपने दोषो की निन्दा करना **'आत्मनिंदा'** नामक गुण है।

प्रायश्चित्त लेने के लिये अपने दोषो को गुरु के सामने आलोचना करना **'गर्हा'** नामक गुण है।

क्रोध आदि उग्र कषायो का मन्द होना शान्त भाव आना **'उपशम'** नामक गुण है।

अर्हन्त भगवान, आचार्य तथा उपाध्याय आदि पूज्यो की पूजा, विनय, स्तुति आदि करना **'भक्ति'** गुण है।

समस्त चर, अचर, छोटे बडे जीवो पर दया भाव रखना, उनको कष्ट न होने देना **अनुकम्पा** गुण है।

आत्मा, परमात्मा, इहलोक परलोक, पुण्य पाप, स्वर्ग, नरक, मोक्ष आदि को मानना, कर्म, कर्म के फल के अस्तित्व की श्रद्धा रखना **'आस्तिक्य'** गुण है।

सम्यग्दृष्टि मे ये ८ गुण होते है। इनसे सम्यग्दर्शन की अच्छी शोभा होती है।

अब सम्यग्दर्शन के अतिचार बतलाते है—

पंचातिचारा. ॥९॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन के ५ अतिचार है।

१ शका, २ काक्षा, ३ विचिकित्सा, ४ अन्यदृष्टि प्रशसा, ५ अन्य-दृष्टि-सस्तव, ये ५ अतिचार सम्यग्दर्शन के हैं।

वीतराग सर्वज्ञ देव के प्रतिपादित सिद्धान्त 'मे पता नही यह बात ठीक है या नही है' ऐसा सन्देह करना **'शका'** है।

धर्म-साधन का फल सासारिक विषय भोगो की प्राप्ति चाहना **'काक्षा'** नामक अतिचार है।

जलस्नानत्यागी महाव्रती साधुओ का शरीर मैला देखकर उससे घृणा करना **विचिकित्सा** अतिचार है।

मिथ्याश्रद्धालु व्यक्ति की प्रशसा (उसके पीछे तारीफ) करना **अन्य दृष्टिप्रशंसा** नामक अतिचार है।

मिथ्या श्रद्धानी व्यक्ति के सन्मुख उसके गुणो का वर्णन करना **अन्य-दृष्टि सस्त्व** नामक अतिचार है।

सम्यग्दर्शन का आवश्यक वर्णन करके अब चारित्र का वर्णन प्रारभ करते हैं, उससे सबसे पहले गृहस्थ चारित्र को लिखते हुए गृहस्थ की ११ श्रेणियो (प्रतिमाओ) को कहते हैं।

एकादश निलयाः ॥१०॥

चारित्रधारक गृहस्थ के ११ निलय यानी श्रेणी (प्रतिमाऐं) है।

दसरण वयसामाइय पोसहसचित्तरायभत्ते य।
बम्हारभपरिग्राह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदीए ॥

अर्थ—१ दर्शन, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ प्रोपध, ५ सचित्तविरत, ६ रात्रि भुक्ति त्याग, ७ ब्रह्मचर्य, ८ आरम्भ त्याग, ९ परिग्रह त्याग, १० अनुमति त्याग, ११ उद्दिष्ट त्याग, ये गृहस्थ श्रावक के ११ निलय या प्रतिमाऐं है।

दर्शन प्रतिमा

ससार तथा शरीर, विषय भोगो से विरक्त गृहस्थ जब पांच उदुम्बर फल (विनाफूल के ही जो फल होते है १ वड, २ पीपल, ३ पाकर, ४ ऊमर, ५ कठूमर) भक्षण के त्याग तथा ३-मकार (मद्यपान, मास भक्षण मधुभक्षण) के त्यागके साथ सम्यग्दर्शन (वीतराग देव, जिन वाणी, निर्ग्रन्थ साधु की श्रद्धा) का धारण करना दर्शन प्रतिमा है।

व्रतप्रतिमा

हिसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह, इन पाच पापो के स्थूल त्याग रूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिगह परिमाण, ये पाच अणुव्रत, दिग्व्रत, देश व्रत, अनर्थ दण्ड व्रत, ये तीन गुणव्रत, सामायिक, प्रोपधोपवास भोगोपभोग परिमाण अतिथि सविभाग, ये ४ शिक्षाव्रत (५+३+४=१२) हैं, इन समस्त १२ व्रतो का आचरण करना व्रत प्रतिमा है।

सकल्प से (जान बूझकर) दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवो को न मारना

अहिंसा अणुव्रत है। राज-दंडनीय, पचो द्वारा भडनीय असत्य भाषण न करना सत्य अणुव्रत है। सर्व साधारण जल मिट्टी के सिवाय अन्य व्यक्ति का कोई भी पदार्थ विना पूछे न लेना, अचौर्य अणुव्रत है। अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय शेष सब स्त्रियो से विषय-सेवन का त्याग ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। सोना, चादी, वस्त्र, बर्तन, गाय आदि पशु धन, गेहूँ आदि धान्य, पृथ्वी, मकान, दासी (नौकरानी), दास (चाकर) तथा और भी परिग्रह पदार्थो को अपनी आवश्यकतानुसार परिमाण करके शेष परिग्रह का परित्याग करना परिग्रह परिमाण व्रत है। पच पापो का आशिक त्याग होने से इनको अणुव्रत कहते हैं।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य तथा ऊर्ध्व (पृथ्वी से ऊपर आकाश) और अध (पृथ्वी से नीचे), इन दस दिशाओ मे आने जाने की सीमा (हद) जन्म भर के लिए करना 'दिग्व्रत' है।

दिग्व्रत के भीतर कुछ नियत समय तक आवश्यकतानुसार छोटे क्षेत्र की मर्यादा करना 'देशव्रत' है।

जिन क्रियाओ से बिना प्रयोजन-व्यर्थमे पाप- अर्जन होता है उन कार्यों का त्याग करना अनर्थदण्ड व्रत है।

नियत समय तक पच पाचो का त्याग करके एक आसन से वैठकर या खडे होकर सबसे रागद्वेप छोडकर, आत्म-चिन्तन करना बारह भावनाओ का चिन्तवन करना, जाप देना, सामायिक पाठ पढना, **सामायिक** है।

अष्टमी और चतुर्दशी के दिन समस्त आरम्भ परिग्रह को छोडकर खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इन चारो प्रकार के आहार का त्याग करना तथा पहले और पीछे के दिन (सप्तमी, नवमी, त्रयोदशी पूर्णिमा) प्रोषध (एकाशन एक बार भोजन) करना प्रोषधोपवास है।

भोग्य (एक बार भोगने योग्य-भोजन, तेल आदि पदार्थ) तथा उपभोग्य (अनेक वार भोग्ने योग्य पदार्थ-वस्त्र, आभूषण, मकान, सवारी आदि) पदार्थों का अपनी आबश्यकता अनुसार परिमाण करके शेष अन्य सबका त्याग करना **भोगोपभोग परिमाण** वत है।

अपने यहा आने की तिथि (प्रतिपदा द्वितीया आदि दिन) जिनकी कोई नियत नही होती, ऐसे मुनि, ऐलक, क्षुल्लक आदि अतिथि व्रती पुरुपो को भक्तिभाव से तथा दीन दुखो दरिद्रो को करुणा भाव से एव साधर्मी गृहस्थो को वात्सल्य भाव से, भोजन कराना, ज्ञान दान, औपधदान तथा अभयदान करना '**अतिथि सविभाग व्रत**, है।

सामायिक प्रतिमा

निर्दोष (अतिचार सहित) प्रात, दोपहर और सायकाल कम से कम दो-दो घड़ी (२४ मिनट की एक घडी) तक नियम से सामायिक करना, **सामायिक प्रतिमा** है। सामायिक का मध्यम समय ४ घडी और उत्तम समय ६ घडी है।

रागद्वेप आदि विकार भाव न आने देकर सब मे समता (समान) भाव रखना सामायिक है। विषय भेद से उसे १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ क्षेत्र, ५ काल, और ६ भाव; छ भेद रूप माना गया है।

सामायिक करते समय किसी भी अच्छे नाम से राग न करना, बुरे नाम से द्वेष न करना, दोनो मे समभाव रहना **नाम सामायिक** है।

सामायिक के समय किसी सुन्दर चित्र, मूर्ति स्त्री, पुरुप के चित्र, मूर्ति, प्रतिमा आदि पर राग भाव चिन्तवन न करना, असुन्दर चित्र आदि के लिए द्वेष भाव हृदय मे न आने देना, समता भाव रखना स्थापना सामायिक है।

इष्ट अनिष्ट चेतन अचेतन पदार्थो मे द्वेषभावना तथा हर्ष-भावना न लाकर सामायिक के समय समताभाव रखना **द्रव्य सामायिक** है।

सामायिक काल मे शुभ, मनोहर, रमणीक क्षेत्रो (स्थानो) मे राग भाव हृदय मे न आने देना और अशुभ स्थानो से द्वेष भाव न आने देना, साम्यभाव-रखना **क्षेत्र सामायिक** है।

शुभ अशुभ कालो के विषय मे सामायिक के समय राग द्वेष भाव उत्पन्न न होने देना **काल सामायिक** है।

सामायिक के समय क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, काम, भय, शोक, आदि दुर्भाव उत्पन्न न होने देना **भाव सामायिक** है।

सामायिक करने के लिए ७ प्रकार की शुद्धि का ध्यान रखना भी आवश्यक है। वे है क्षेत्र, काल, आसन, मन, वचन, काय और विनय।

मदिर, धर्मशाला, बाग, पर्वत, नदीतट, वन आदि कोलाहल रहित तथा जीव जन्तुआदि रहित स्थान का होना **क्षेत्र शुद्धि** है।

तीन घडी रात्रि का अन्तिम समय और तीन घडी सूर्योदय समय प्रात काल, बारह बजे दिन से तीन घड़ी पहले और पीछे ६ घडी तक एव ३ घडी दिन का अन्त समय, तीन घडी रात्रि का प्रारम्भ समय इस तरह तीनो संध्याओ के ६-६ घडी समय मे सामायिक के लिये उपयुक्त है यह **काल शुद्धि** है।

पद्यासन, खड्गासन, आदि दृढ आसन मे स्थिर होकर चटाई, तख्त, शिला पर निश्चल रूप से सामायिक करना **आसन शुद्धि** है।

मन को दुर्भावना से शुद्ध रखना **मन शुद्धि** है।

सामायिक पाठ, मत्र आदि के उच्चारण के सिवाय अन्य वचन न बोलना मौन रहना **'वचन शुद्धि'** है।

हाथ पैर धोकर या स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनना आदि **काय शुद्धि** है।

देव, शास्त्र, गुरु, चैत्य, चैत्यालय आदि के लिये विनय भावना रखना **विनय शुद्धि** है।

सामायिक करने की विधि

सवसे पहले पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर मुख करके खडा हो फिर नौ वार णमोकार मन्त्र पढ कर ढोक दे (दण्डवत नमस्कार करे)। तदनन्तर उसी तरह खडे होकर ९ वार णमोकार मन्त्र पढकर तीन आवर्त [दोनो जुडे हुए हाथो को वायी ओर से दाहिनी ओर तीन वार घुमाना] और एक शिरोनति [नमस्कार] करे। तत्पश्चात् दाहिने हाथ की ओर खडे खडे घूम जावे और ९ वार णमोकार मत्र पढे फिर तीन आवर्त, एक शिरोनति करे। इसके वाद दाहिने हाथ की ओर घूम जावे, उस ओर भी ९ वार णमोकार मन्त्र पढ कर ३ आवर्त, १ शिरोनति करे। तत्पश्चात् दाहिनी ओर घूमकर भी ९ णमो, कार मन्त्र पढ कर, ३ आवर्त, एक शिरोनति करे। यह सव कर लेने के बाद उसी पूर्व या उत्तर दिशा की ओर खडे होकर या बैठ कर सामायिक करे।

सामायिक करते समय अपने मन को एकाग्र करे, आत्म चिन्तवन करे कि 'मै निरञ्जन, निर्विकार, सच्चिदानन्द रूप हू, अर्हंत सिद्ध भगवान का रूप मेरे भीतर भी है, कर्म का पर्दा हटते ही मेरा वह शुद्ध रूप प्रगट हो जायेगा, ससार मे मेरा कोई भी पदार्थ नही, मै सव से अलग हू, सव पदार्थ मुझ से जुदे है, ससार मे मेरा न कोई मित्र है, न शत्रु। समस्त जीवो के साथ मेरा समता भाव है।' इत्यादि।

जब तक चित्त ऐसे आत्मचिन्तवन मे ठहरे तव तक ऐसा चिन्तवन करता रहे। फिर श्री अमिति गति आचार्य—रचित **'सत्वेषु मैत्री'** आदि ३२ श्लोको वाला सस्कृत भाषा का सामायिक पाठ पढे। अथवा **'काल अनन्त भ्रम्यौ इस जग मे'** आदि भाषा सामायिक पाठ पढे। उसके वाद णमोकार आदि किसी मन्त्र की जाप देवे। जाप के लिये—

३५ अक्षरो का **णमोकार** मन्त्र, १७ अक्षरो का **अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो नमः**, ६ अक्षरो का **अरहतसिद्ध**, ५ अक्षरो वा **असिआउसा**, ४ अक्षरो का **अरहत**, दो अक्षरो का मन्त्र 'सिद्ध' तथा एक अक्षर का मन्त्र 'ॐ' है। इसके सिवाय और भी अनेक मत्र माला फेरने के लिए है। जाप देकर समय और सुविधा हो तो भक्तामर आदि पाच स्तोत्र, स्वयम्भूस्तोत्र का या एक स्तोत्र का पाठ करले। अन्त मे उसी स्थान मे कायोत्सर्ग (हाथ नीचे लम्बे करके निश्चल खडा होना) के रूप मे खडे होकर ९ बार णमोकार मन्त्र. पढे और ढोक देकर नमस्कार [दण्डवत] करे।

प्रोषध प्रतिमा

प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी को सब आरम्भ परिग्रह छोडकर मन्दिर या धर्मशालादि एकान्त शान्त स्थान मे आहार पान छोडकर धर्मध्यान करे, कोई अतिचार न लगने दे। अष्टमी को प्रोषधोपवास करना हो तो सप्तमी को एकाशन करे, अष्टमी को उपवास करे और नवमी को दोपहर पीछे भोजन करे। इस तरह सप्तमी के आधे दिन के २ पहर, रात के ४ पहर, अष्टमी दिन रात के ८ पहर और नवमी के २ पहर, सब १६ पहर [४८घटे] तक खान पान का त्याग करना चाहिये। १६ पहर को प्रोषधोपवास उत्कृष्ट है। १२ पहर का मध्यम [सप्तमी की रात्रि के ४ पहर अटष्मी के दिन रात के आठ पहर धर्मध्यान से बिताना] है और ८ पहर का [अष्टमी दिन रात के आठ पहर धर्मध्यान मे व्यतीत होना] जघन्य हैं।

इसमे कोई अतिचार न लगाना चाहिए। दूसरी प्रतिमा का प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के रूप मे होता है उसमे अतिचारो का त्याग नही होता। चौथी प्रतिमा मे अतिचारो का त्याग होता है।

सचित्त त्याग प्रतिमा

जीव सहित पदार्थ को **सचित्त** कहते है। जघन्य श्रावक के भी दो इन्द्रिय आदि जीवो की हिंसा तथा उनके मास भक्षण का त्याग होता है। स्थावर जीवो की हिंसा का त्याग चौथी प्रतिमाधारी तक के स्त्री पुरुषो के नही होता। इसी कारण वे छने हुए सचित्त जल [कच्चा पानी] तथा सचित्त वनस्पति [शाक फल आदि] खाते है। परन्तु पाचवी प्रतिमा ग्रहण करने पर उस कच्चे जल का पीना और सचित्त [सजीव हरी] वनस्पति खाने का त्याग कर देते है।

जो जल सचित्त है वह गर्म कर लेने पर ४ पहर तक अचित रहता है और औटा हुआ [खौला हुआ] जल ८ पहर [२४ घण्टे] तक अचित रहता है।

छने हुए जल मे वारीक राख या पिसी हुई लोग, इलायची, मिर्च आदि चीजे मिलाकर जल का रस रूप गन्ध बदल देने पर दो पहर [छह घटे] तक जल अचित्त [जल कायिक जीव रहित] रहता है तदनन्तर सचित्त हो जाता है।

शाक फल आदि सचित्त [हरित]वनस्पति सूख जाने पर या अग्नि से पक जाने आदि के बाद अचित्त [प्रासुक--वनस्पति काय रहित] हो जाती है।

इस प्रकार पाचवी प्रतिमाधारी को अचित्त जल पीना चाहिए तथा अचित्त वनस्पति खानी चाहिए। जीभ की लोलुपता हटाने तथा जीव-रक्षा की दृष्टि से पाचवी प्रतिमा का आचरण है।

रात्रि भोजन त्याग

खाद्य [रोटी, दाल आदि भोजन], स्वाद्य [मिठाई आदि स्वादिष्ट वस्तु] लेह्य (रवडी, चटनी आदि चाटने योग्य चीजे), पेय (दूध पानी शर्बत आदि पीने की चीजे), इन चारो प्रकार के पदार्थों का रात्रि के समय कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना **रात्रि भोजन त्याग** प्रतिमा है।

सूर्यास्त से सूर्योदय तक रात मे भोजन पान न स्वय करना, न किसी दूसरे को भोजन कराना और न रात मे भोजन करने वाले को उत्साहित करना, सराहना करना, अच्छा समझना इस प्रतिमाधारी का आचरण है। यदि अपना छोटा पुत्र भूख से रोता रहे तो भी इस प्रतिमाकधारी व्यक्ति न उसको स्वय भोजन करावेगा, न किसी को उसे खिलाने की प्रेरणा करेगा। या न कहेगा।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा

काम सेवन को तीव्र राग का, मनकी अशुद्धता का तथा महान हिंसा का कारण समझकर अपनी पत्नी से भी मैथुन सेवन का त्याग कर देना **ब्रह्मचर्य** नामक सतवी प्रतिमा है।

इस प्रतिमा का धारक नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाता है।

नौ बाड

जैसे खेत मे उगे हुए धान्य को गाय आदि पशुओ से खाने बिगाडने से बचाने के लिए खेत के चारो ओर काटो की बाड लगा दी जाती है उसी प्रकार ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य सुरक्षित रखने के लिये निम्नलिखित ९ नियमो का आचरण करना आवश्यक है, इनको ब्रह्मचर्य की सुरक्षा करने के कारण 'बाड' कहते हैं।

१—स्त्रियो के स्थान मे रहने का त्याग।

२—राग भाव से स्त्रियो के देखने का त्याग ।

३—स्त्रियो के साथ आकर्षक मीठी बात चीत करने का त्याग ।

४—पहले भोगे हुए विषय भोगो के स्मरण करने का त्याग ।

५—काम-उद्दीपक गरिष्ठ भोजन न करना ।

६—अपने शरीर का शृ गार करके आकर्षक बनाने का त्याग ।

७—स्त्रियो के विस्तर, चारपाई, आसन पर बैठने सोने का त्याग ।

८—काम कथा करने का त्याग।

९—भोजन थोडा सादा करना जिससे काम जाग्रत न हो ।

इस प्रतिमा के धारी को सादा वस्त्र पहनने चाहिए । वह घर मे रहता हुआ व्यापार आदि कर सकता है ।

आरम्भ त्याग

सब प्रकार के आरम्भ का त्याग करदेना **आरम्भ त्याग** नामक आठवी प्रतिमा है ।

आरम्भ के दो भेद हैं— १— घर सम्बन्धी, ५ सूना का [चक्की, चूल्हा ओखली, बुहारी और परीडा यानी पानी का कार्य] २—व्यापार-सम्बन्धी । जैसे दूकान, कारखाना खेती, आदिक कार्य ।

आरम्भ करने मे जीव हिंसा होती है तथा चित्त व्याकुल रहता है, कषाय भाव जागृत रहते हैं, अत आत्म-शुद्धि और अधिक दया भाव का आचरण करने की दृष्टि से यह प्रतिमा धारण की जाती है । इस प्रतिमा का धारी अपने हाथ से रसोई बनाना बन्द कर देता है । दूसरों के द्वारा बनाये हुए भोजन को ग्रहण करता है ।

परिग्रह त्याग

रुपये पैसे, सोना चादी, मकान खेत, आदि परिग्रह को लोभ तथा आकुलता का कारण समझकर अपने शरीर के सादे वस्त्रो के सिवाय समस्त परिग्रह के पदार्थो का त्याग कर देना **परिग्रह त्याग** प्रतिमा है ।

इस प्रतिमा को धारण करने से पहले वह अपने परिग्रह का धर्मार्थ तथा पुत्र आदि उत्तराधिकारियो मे वितरण करके निश्चिन्त हो जाता है। विरक्त होकर धर्मशाला, मठ आदि मे रहता है। शुद्ध प्रासुक भोजन करने के लिये जो भी कहे उसके घर भोजन कर आता है, किन्तु स्वय किसी प्रकार के भोजन बनाने के लिये नही कहता । पुत्र आदि यदि किसी कार्य के विषय मे पूछते है । तो उनको अनुमति [सलाह] दे देता है ।

अनुमति त्याग

घर गृहस्थाश्रम के किसी भी कार्य मे अपनी अनुमति (इजाजत) तथा सम्मति देने का त्याग कर देना अनुमति त्याग प्रतिमा है।

इस प्रतिमा का धारक अपने पुत्र आदि को किसी व्यापारिक तथा घर-सम्बन्धी कार्य करने, न करने की किसी भी तरह की सम्मति नही देता। उदासीन होकर चैत्यालय आदि में स्वाध्याय, सामायिक आदि आध्यात्मिक कार्य करता रहता है। भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करके घर पर भोजन कर आता है।

उद्दिष्ट त्याग

अपने उद्देश्य से बनाये गये भोजन ग्रहण करने का त्याग करना उद्दिष्ट-त्याग प्रतिमा है।

श्रावक का यह सर्वोच्च आचरण है। इस प्रतिमा का धारक घर छोड कर मुनियो के साथ रहने लगता है, मुनियो के समान गोचरी के रूपमे जहा पर ठीक विधि से भोजन मिल जावे वहाँ भोजन लेता है। निमन्त्रण से भोजन नही करता।

इस प्रतिमा के धारक के दो भेद है १– क्षुल्लक, २–ऐलक।

जो कौपीन [लगोटी] और एक खण्ड वस्त्र [छोटी चादर, जो कि सोते समय शिर से पैर तक सारा शरीर न ढक सके] पहनने के लिये रखता है, अन्य कोई वस्त्र उसके पास नही होता तथा एक कमण्डलु और मोर के पखो की पीछी भी रखता है।

ऐलक–केवल लगोटी पहनता है अन्य कोई वस्त्र उसके पास नही होता।

यहाँ यह बात ध्यान रखनी चाहिये कि आगे की प्रतिमा धारण करने वाले को उससे पहले की प्रतिमाओ के यम, नियम आचरण करना आवश्यक है।

त्रिविधो निर्वेगः ॥११॥

अर्थ—निर्वेग तीन प्रकार का है—१ ससार निर्वेग, २ शरीर निर्वेग, ३ भोग निर्वेग।

चतुर्गति रूप ससार मे जन्म मरण, चिन्ता, आकुलता, भूख प्यास आदि दु खो का प्राप्त होना प्रत्येक जीव के लिए अनिवार्य है, अत दु खपूर्ण ससार से विरक्त होना **ससार-निर्वेग** है।

शरीर आत्मा के लिए कारागर]जेल] के समान है। रक्त मास हड्डी का पुतला है, पीप, टट्टी, पेशाब, कफ थूक आदि घृणित पदार्थों का भडार है,

रोगो से भरा हुआ है। ऐसे शरीर से विरक्त होना **शरीर-निर्वेग** है।

इन्द्रियो के विषय भोग आत्मा की तृष्णा को बढाते है, पाप अर्जन कराते हैं, आत्मा को चिन्तित व्याकुल करते है, आत्म-शक्ति क्षीण करते है, भोगने के पश्चात् नीरस हो जाते हैं. ऐसा विचार कर भोगो से विरक्त होना **भोग-निर्वेग** है।

सप्त व्यसनानि ॥१२॥

अर्थ—आत्मा को दुखदायक, आत्मा का पतन कराने वाली आदतों को व्यसन कहते है। व्यसन ७ प्रकार के है—१ जुआ खेलना, २ मास खाना, ३ मद्य पान, ४ वेश्यागमन, ५ शिकार खेलना, ६ चोरी करना, ७ परस्त्री सेवन।

१—बिना परिश्रम किये झटपट धन उपार्जन करने के विचार से कौडियो ताश आदि के द्वारा शर्त लगाकर द्यूत क्रीडा करना जुआ खेलना है। जुआ समस्त व्यसनो का मूल है। जुए मे जीतने वाला कुसगति के कारण वेश्यागमन, परस्त्री सेवन, माँस भक्षण, शराब पीने आदि का अभ्यासी बन जाता है। और जुआ मे हारने वाला चोरी करना सीख जाता है। जुए के कारण श्रावस्ती के राजा सुकेत, राजा नल तथा पाडव अपना सर्वस्व हार कर तथा राजभ्रष्ट होकर दीन, दरिद्र, असहाय बन गये।

२—मास भक्षण करने का अभ्यास **मांस भक्षण** व्यसन है। दो इन्द्रिय आदि जीवो [जिनके शरीर मे खून हड्डी होती है] के शरीर का कलेवर मांस होता है जिसमे सदा त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं, अत. मास खाने से बहुत हिंसा होती है। मास भक्षण के व्यसन से प्राचीन काल मे कुम्भ राजा की दुर्गति हुई।

३-अनेक पदार्थो को सडा कर उनका काढा [अर्क] निकाल कर मद्य [शराव] तयार होती है, अत उस मे त्रस जीव उत्पन्न होते है। इस कारण शराब पीने से हिंसा भी होती है और बुद्धि नष्ट भ्रष्ट होती है। इसके सिवाय धर्म और शुद्ध आचार भी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। यादववंशी राज कुमारो ने द्वारिका के बाहरी कुण्डो मे भरी हुई शराब पीकर ही नशे मे द्वीपायन मुनि पर पत्थर फेंके थे जिस से क्रुद्ध हो कर द्वीपायन ने अपनी अशुभ तैजस ऋद्धि द्वारा द्वारिका भस्म कर डाली।

वेश्या व्यभिचारिणी स्त्री होती है। जो कि बाजारू वस्तुओ की तरह अपने शील धर्म [ब्रह्मचर्य] को सदा बेचती रहती है। सब तरह के ऊच नीच, लुच्चे लफंगे द्रव्य देकर वेश्या से काम-क्रीड़ा किया करते हैं, अत वेश्याओ को

उपदंश [गर्मी, आतिशक] आदि रोग हो जाया करते है। इस तरह वेश्यागमन से धर्म, शुचिता (पवित्रता) तथा धन नाश हो कर अनेक रोग प्राप्त होते हैं। प्राचीन समय मे चारुदत्त सेठ ने वेश्या व्यसन द्वारा जो अपना सर्वस्व नाश किया था उसकी कथा प्रसिद्ध है।

जलचर, थलचर, नभचर पशु पक्षियो को धनुष बाण, भाला, तलवार, बंदूक आदि से मारना शिकार खेलना है। यह एक महान निर्दय हिंसा का कार्य है जिससे नरक--आयु का बन्ध होता है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती इस व्यसन के कारण नष्ट हुआ। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है।

धन गृहस्थ मनुष्य का बाहरी प्राण है इस कारण चोरी करने वाला मनुष्य दूसरे की चोरी करके बडी भारी भावहिंसा किया करता है। चोर का सारा जगत अपमान करता है। उसे राज-दड मिलता है और पर-भव मे उस की दुर्गति हुआ करती है। विद्युद् वेग चोर की कथा प्रसिद्ध है तथा चोरी व्यसन से जो दुर्दशा मनुष्य की होती है, उसके उदाहरण प्रत्येक युग मे अगणित मिलते है।

प्रत्येक मनुष्य अपनी पुत्री, बहिन, पत्नी, माता आदि पारिवारिक स्त्री का सदाचार [शील, ब्रह्मचर्य] सुरक्षित रखना चाहता है। अन्य मनुष्य जब उनकी ओर काम दृष्टि से देखता है या उन से व्याभिचार करता है तब उसे असह्य दुख होता है। जिसके प्रतिकार मे बडे बडे युद्ध तक हो जाते है। सीता के अपहरण से रावण का सर्वस्व नाश हुआ। द्रोपदी के अपमान से कीचक तथा कौरव वश का नाश हुआ।

पहली दर्शन प्रतिमा का धारक दार्शनिक श्रावक सात व्यसनो का त्याग कर देता है।

शल्यत्रयम् ॥१३॥

शल्य के ३ भेद है—१-माया, २-मिथ्यात्व, ३-निदान।

काटा, कील, काच आदि शरीर में चुभने वाली वस्तु को 'शल्य' कहते है। जब तक शरीर मे काटा आदि चुभा रहता है तब तक शरीर मे व्याकुलता बनी रहती है, जब काटा कील या काच शरीर से निकल जाता है तब शरीर मे आकुलता नही रहती। इसी प्रकार व्रती का व्रत तभी स्वस्थ या यथार्थ व्रत होता है जब कि उस के हृदय मे कोई शल्य नहीं रहती।

माया यानी छल कपट शल्य व्रती के व्रत को यथार्थ व्रत नही रहने देती, मायाचारी मनुष्य दूसरों को भ्रम मे डालने के लिये अपना व्रती रूप बनाता है

उसके हृदय मे व्रताचरण की भावना नही होती। जैसे कि एक चोर, सेठ जिनेन्द्र भक्त के चैत्यालय से छत्र मे लगे हुए रत्न को चुराने के लिये मायावी क्षुल्लक बन कर चैत्यालय मे ठहर गया था। और रात मे उसे चुरा कर भागा था।

आत्मा का विपरीत श्रद्धान मिथ्यात्व है।

सम्यक्त्व (आत्मा की सच्ची श्रद्धा) के साथ ही व्रत आचरण सच्चा होता है, आत्म-श्रद्धा के अभाव मे, मिथ्यात्व रहते हुए व्रत यथार्थ नही होते। इस कारण मिथ्यात्व भी व्रताचरण के लिए शल्य है।

व्रत चारित्र आत्मा को कर्म-जाल से छुडाकर मुक्त होने के अभिप्राय से ग्रहण किया जाता है। व्रती पुरुष के यदि सासारिक विषय भोगो को प्राप्त करने की अभिलाषा रूप निदान बना रहे, तो व्रत चारित्र का अभिप्राय ही गलत हो जाता है, अत. निदान भी व्रती पुरुष के लिए शल्य है।

जो व्यक्ति माया, मिथ्यात्व, निदान, इन तीनो शल्य को दूर करके व्रत पालन करता है, वही सच्चा व्रती होता है। 'नि शल्यो व्रती' यह व्रती का लक्षण है।

अब श्रावक के मूल गुणो को बतलाते हैं —

अष्टौ मूलगुणाः ॥१४॥

अर्थ—श्रावक के आठ मूल गुण है।

जिस प्रकार मूल (जड़) के बिना वृक्ष नही ठहर सकता उसी प्रकार गृहस्थ धर्म के जो मूल (जड है, जिनके बिना श्रावक धर्म स्थिर तथा उन्नत नही हो सकता, वे मूलगुण ८ है। पाच उदुम्बर फलो का तथा ३ मकार (मद्य माँस, मधु) के भक्षण का त्याग। ये आठ अभक्ष्य पदार्थो के त्याग रूप ८ मूल गुण हैं।

पेडो पर पहले फूल आते है फूल झड जाने पर उनके स्थान पर फल लगते हैं किन्तु वड (बरगद), पीपर, गूलर ऊमर (अंजीर) और कठूमर वृक्षो के फल बिना फूल आये ही उत्पन्न हो जाते हैं, इन पाचो फलो मे बहुत से त्रस जीव होते है, बहुतो मे उडते हुए भी दिखाई देते है, इस कारण इन इन फलो के खाने से मास भक्षण का दोष लगता है।

मद्य (शराब) मनुष्य के विवेक बुद्धि को नष्ट भ्रष्ट करने वाला नशीला पदार्थ है, इस के सिवाय उसमे त्रस जीव भी पाये जाते है, अत. मद्य दोनो तरह त्याज्य है।

दयालु धार्मिक गृहस्थ को मास तो खाना ही नही चाहिए क्योकि वह त्रस

जीवो की हिंसा से उत्पन्न होता है और उसमे सदा (कच्चे, पक्के, सूखे मांस में) अनन्तो जीव उत्पन्न होते रहते है।

मधु (शहद) मधु मक्खियो का फूलो से चूसे हुए रस का वमन (उल्टी, कय) है, अत उसमे भी सदा अनेको जीव उत्पन्न होते रहते हैं, इस कारण वह अभक्ष्य है।

कनडी टीकाकार मूलगुणो को निम्नलिखित रूप मे कहते हैं—

इदु सत्यं नुडियदुन्दय । वधूहरणमुयद्दि मद्य मास ।
मधुवें बिनितुमनु ळिवुदु । बुधसंदोहक्के मूल गुणमीएंदु ।१११।

यानी—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील का आंशिक त्याग रूप अणुव्रत तथा परिग्रह का परिमाण इन पाच अणुव्रतो के साथ मद्य, मास मधु का त्याग होना आठ मूलगुण है।

अन्य आचार्यो के मत मे मूलगुण अन्य प्रकार भी बतलाये गये हैं—

सात व्यसनो को तथा मिथ्यात्व (कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की श्रद्धा) का त्याग रूप आठ मूलगुण है। तथा —

हिंसासत्यास्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च वादरभेदाः ।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिःगृहिणामष्टमूलगुणाः ॥
मद्योदुम्बरपंचकामिषमधुत्यागः कृपा प्राणिनाम् ।
नक्तंभुक्तिविमुक्तिराप्तविनुतिस्तोय सुवस्त्रस्रुतम्,
एतेऽष्टौ प्रगुणा गुणा गणधरैरागारिणां वर्णिताः ।
एकेनाप्यमुना विना भुवि तथा भूतो न गेहाश्रमी ॥

यानी—किसी आचार्य के मतानुसार पूर्वोक्त पाच अणुव्रत तथा मद्य मास मधु का त्याग ये आठ मूलगुण है। दूसरे आचार्य के मत मे १—मद्यपान त्याग (शराब पीना,) २—पञ्चउदम्बर फलका त्याग, ३—मास त्याग, ४—मधु त्याग, ५—जीवो की दया, ६—रात्रि मे भोजन न करना, ७—वीतराग भगवान का दर्शन पूजन और ८—वस्त्र से छाना हुआ जल पीना, यह आठ मूलगुण गणधर देव ने गृहस्थो के बतलाये है। इनमे से यदि एक भी मूल गुण कम हो तो गृहस्थ जैन नही हो सकता।

अब श्रावको के अणुव्रत बतलाते है—

पञ्चाणुव्रतानि ॥१५॥

अर्थ—पाच अणुव्रत होते है। १—अहिंसा, २—सत्य, ३—अचौर्य, ४—ब्रह्मचर्य तथा ५—परिग्रह परिमाण।

किसी देवी देवता पर बलि चढ़ाने के लिए, श्राद्ध मे पितरो के लिए या किसी औषधि के लिए अथवा किसी अन्य कारण से किसी त्रस जीव की संकल्प से हत्या नही करना **अहिंसा अणुव्रत** है।

स्वार्थ-वश या राग, द्वेष, मोह, लोभ, भय के कारण झूठ बोलने का त्याग करना **सत्य-अणुव्रत** है

जल मिट्टी के सिवाय किसी दूसरे व्यक्ति के किसी भी पदार्थ को बिना दिये नही लेना **अचौर्य अणुव्रत** है।

अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय जगत की समस्त स्त्रियो से विषय-सेवन का त्याग **ब्रह्मचर्य अणुव्रत** है। इसका दूसरा नाम **स्वदार-सन्तोष** भी है।

धन, खेत, मकान, सोना, चाँदी, वस्त्र, आदि का अपनी आवश्यकतानुसार परिमाण करके अन्य परिग्रह का सचय न करना **परिग्रह परिमाण अणुव्रत** है।

अब गुणव्रतो को कहते हैं—

गुणव्रतत्रयम् ॥१६॥

अर्थ—तीन गुणव्रत है। १—दिग्व्रत, २—देशव्रत, ३—अनर्थदण्ड व्रत।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ये चार दिशा, इन दिशाओं के कोने की चार विदिशाऐं तथा ऊपर आकाश और पृथ्वी के नीचे, ऐसे ऊर्ध्व, अधः ऐसी दो दिशाऐ और हैं। इन दशो दिशाओ मे आने जाने के लिए दूरी का परिमाण जन्म भर के लिए करना **दिग्व्रत** है।

दिग्व्रत मे घटा दिन मास आदि समय तथा क्षेत्र का संकोच करके मुहल्ला, नगर, मकान आदि मे आने जाने का नियम करना **देशव्रत** है। जैसे चातुर्मास मे हम उपनगरो सहित दिल्ली नगर से बाहर न जावेंगे। इन दोनों व्रतो के कारण नियम किए हुए क्षेत्र से बाहर होने वाली हिंसा आदि पापो का अ श व्रती को नही लगता, अत. वहाँ अणुव्रत भी महाव्रत के समान होते है।

जिन कार्यो के करने मे बिना कारण पाप बन्ध होता है ऐसे कार्यों का त्याग करना अनर्थदण्ड व्रत है। अनर्थदण्ड के पाँच भेद हैं— १ हिंसा-प्रदान, २ पापोपदेश, ३ दु श्रु ति, ४ अपध्यान और ५ प्रमादचर्या।

तलवार, छुरी, भाला, धनुष वाण, बन्दूक, चाकू, विष, अग्नि आदि हिंसा के उपकरणों का दूसरे लोगो को देना **हिंसा प्रदान अनर्थदण्ड** है। ये

पदार्थ दूसरो को देने से अपना प्रयोजन कुछ सिद्ध नही होता परन्तु उन पदार्थो से अन्य व्यक्ति हिंसा कर सकता है। इसके सिवाय कुत्ता, बिल्ली, नौला आदि हिंसक जानवरो को पालना भी इसी अनर्थदण्ड मे सम्मिलित है।

खेती करने तथा वहुत आरम्भी व्यापार करने, जिन उद्योगो मे जीव हिंसा अधिक होती हो ऐसे कार्यो के करने की सम्मति तथा उपदेश देना **'पापोपदेश'** अनर्थदण्ड है।

किसी की विजय (जीत), किसी की पराजय (हार), किसी की हानि किसी का लाभ, किसी का वध, मरण, रोग, इष्ट-वियोग, अनिष्ट-सयोग आदि सोचना, विचारना, अपध्यान अनर्थदण्ड है। ऐसा करने से व्यर्थ पाप बन्ध हुआ करता है।

राग, द्वेष क्रोध, कामवासना, भय, शोक, चिन्ता दुर्भाव उत्पन्न करने वाली वातो का कहना, सुनना, सुनाना, आल्हा आदिक पुस्तको का पढना सुनाना, युद्ध की, तथा शिकार खेलने की वाते सुनना सुनाना **दुःश्रुति** अनर्थदण्ड है।

बिना प्रयोजन पृथ्वी खोदना, जल बखेरना, आग जलाना, हवा करना पेड़ पौधे आदि तोड़ना मरोडना आदि कार्य **प्रमादचर्या** अनर्थदण्ड है।

इसके सिवाय पाप-वन्ध-कारक बिना प्रयोजन के जो कार्य है वे सभी अनर्थदण्ड हैं।

शिक्षाव्रतानि चत्वारि ॥१७॥

अर्थ—शिक्षाव्रत चार है— १ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ भोगोपभोग परिमाण, ४ अतिथिसविभाग।

जिनके आचरण करने से उच्च चारित्र धारण करने की शिक्षा मिलती है उन्हे शिक्षाव्रत कहते हैं।

सामायिकः—

समस्त इष्ट पदार्थों से रागभाव और अनिष्ट पदार्थो से द्वेष भाव छोड कर समताभाव धारण करना, आत्मचिंतन करना, परमेष्ठियो का चिन्तवन करना, वैराग्य भावना भाना सामायिक है।

शरीर शुद्ध करके, शुद्ध वस्त्र पहन कर एकान्त शान्त स्थान मे मन वचन काय शुद्ध करके, सामायिक करने के समय तक पच पापो का त्याग करके पहले लिखी हुई विधि के अनुसार प्रात, दोपहर, शाम को सामायिक करना पहला शिक्षाव्रत है।

एरडिरदावर्तन प- ।
त्रेरडिरदेरक मनदर्थियिंदिवेरसा - ॥
दर्रिंद त्रिसञ्जेयोळु नुत जिन - ।
वररं स्तुतिगेय्व मानवं सामयिकं ॥

अब यहा संस्कृत भाषा का सामायिक पाठ देते हैं, समायिक करते समय इसको पढना चाहिये ।

॥ सामयिक पाठ ॥

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थ–सिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्र–प्रतिपादनम् ॥१॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्ट–पादपद्मांशुकेसरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमङ्गलम् ॥२॥
सिद्धवस्तुवचो भक्त्या, सिद्धान् प्रणमतां सदा ।
सिद्धकार्याः शिव प्राप्ताः सिद्धिं ददतु नोऽव्ययाम् ॥३॥
नमोस्तु धुतपापेभ्यः सिद्धेभ्यः ऋषिपरिषदम् ।
सामायिकं प्रपद्येऽहं भवभ्रमणसूदनम् ॥४॥
समता सर्वभूतेषु, संयमे शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागः तद्धि सामायिकं मतम् ।५।
साम्यं मे सर्वभूतेषु, वैरं मम न केनचित् ।
आशाः सर्वाः परित्यज्य समाधिमहमाश्रये ॥६॥
रागद्वेषान्ममत्वाद्वा हा मया ये विराधिताः ।
क्षाम्यन्तु जन्तवस्ते मे, तेभ्यो मृष्याम्यहं पुनः ॥७॥
मनसा, वपुषा, वाचा कृतकारितसंमतैः ।
रत्नत्रयभवं दोष गर्हे निन्दामि वर्जये ॥८॥
तैरश्चं मानवं दैवमु पसर्गं सहेऽधुना ।
कायाहारकषायादि प्रत्याख्यामि त्रिशुद्धितः ॥९॥
राग द्वेषं भय शोकप्रहर्षौत्सुक्यदीनता ।
व्युत्सृजामि त्रिधा सर्वामरतिं रतिमेव च॥१०॥
जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये ।
बंधावरौ सुखे दुःखे, सर्वदा समता मम ॥११॥

आमैव मे सदा ज्ञाने दर्शने चरणे तथा ।
प्रत्याख्याने ममात्मैव, तथा संसारयोगयोः ॥१२॥
एको मे शाश्वतश्चात्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः ।
शेषा वहिर्भवा भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः ॥१३॥
संयोग मूला जीवेन प्राप्ता दुःख परम्परा ।
तस्मात् संयोग सम्बन्ध त्रिधा सर्वं त्यजाम्यह ॥१४॥
एव सामायिक सम्यक् सामायिक मखण्डितम् ।
वर्ततां मुक्तिमानिन्या वशीचूर्णायित मम ॥१५॥
शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्ताना गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ॥१५॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे ।
स पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्ग ॥१६॥
तव पादौ मम हृदये मम हृदय तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणस प्राप्तिः ॥१७॥
अक्खरपयथिहीण मत्ताहीण च जमये भणिय ।
त खमउ णाण देव य मज्झवि दुक्खक्खय दितु ॥१८॥
दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरण च बोहिलाहोय ।
मम होउ जगतबधव जिणवर तव च रणसरणेण ॥१९॥

इति सामायिक पाठ

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन पाचो इन्द्रियो को अपने अपने विषय से रोककर अन्न, पान, खाद्य, लेह्य इन चार प्रकार के आहार को आठ पहर के लिए अष्टमी, चतुर्दशी पर्व दिनो मे त्याग करना उपवास है। एक ही बार भोजन करना एक भुक्त या प्रोषध कहलाता है। प्रोपध (एकाशन) के साथ उपवास को **प्रोषधोपवास** कहते है, यानी-अष्टमी, चतुर्दशी के दिन उपवास और एक दिन पीछे एक दिन पहिले एकाशन करना। चारो प्रकार का आहार त्याग कर के पानी को रखलेना इसे भी एकाशन कहते हैं। सब सरस आहार को त्याग कर अथवा नीरस आहार को लेना अथवा कांजी (माड) या पानी लेकर अन्न भोजन १६ पहर का छोड़ना भी प्रोषधोपवास व्रत है।

अन्न, पान, गध, पुष्प माला इत्यादि एक बार भोगे जाने वाली भोगवस्तु,

वस्त्र, आभूषण आदि उपभोग वस्तुओ को समय की मर्यादा करके त्याग करना कि इतनी देर अमुक पदार्थ हम ग्रहण नही करेगे, नही भोगेगे, इसे भोगोपभोग परिमाण कहते हैं।

उसमे त्रसघात कारक, प्रमाद कारक, बहुबध कारक, अनिष्ट और अनुपसव्य पदार्थो का यमनियम करना चाहिये। जिन पदार्थो के खाने से त्रस जीवो का घात होता है वे त्रस घात कारक पदार्थ, मास, मधु आदि है।

जैसे कहा है—

आमासु च पक्वासुच विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
उत्पत्तिर्जीवानांतज्जातीनां निगोदानांम्॥
यः पक्कं वाऽपक्वांवा पलस्यखण्डं स्पृशेच्च।
हन्ति किलासौ खण्ड वहुकोटो नांहि जीवानाम्॥

अर्थ—मास की डली कच्ची हो या पक्की, (सूखी, अग्नि से भुनी) हो उसमे उसी जाति के निगोदितया जीव सदा उत्पन्न होते रहते है। जो मनुष्य कच्चे, पके, सूखे को छूता है वह भी करोडो जीवोंकी हिंसा करता है-यानी-मास छूते ही मास के जीव मर जाते है।

प्रमाद या नशा करने वाले चरस, भाग, गाजा, शराब आदि पदार्थो का त्याग कर देना चाहिए, क्योकि इन पदार्थों के खाने पीने से नशा होता है जिस से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मद्यपान करने वाले को जाति-भेद आदि विवेक नही रहता। शराब पीने के कारण शराबी को प्रमाद अधिक होता है, विषय वासना जाग्रत होती है। मद्य सेवन करने वाले को अपनी स्त्री या माता का भेदभाव नही होता। उसके लज्जा आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं, उसके काम-विकार बढता जाता है। मद्य पीने वाले किसी दोष से वच नही सकते। पक्ति-भोजन या गोष्ठी मे वैठने योग्य नही रहते।

तुरन्त व्याही हुई गाय का दूध तथा जिन पेडो मे दूध निकलता हो उनके फल (बरगद पीपर आदि) का दूध, शहद इत्यादि को सदा के लिए छोड देना चाहिये।

फूल, अचार, अदरक, प्याज, मूली की जड, आलू, गाजर, आदि कद चलितरस पदार्थ, यानो देर तक रक्खे रहने से जिन दाल साग आदि पदार्थों का रस बिगड गया हो, ऐसे पदार्थों के खाने से अनन्त जीवो का घात होता है। इसलिए इनको त्याग देना चाहिए।

क्योकि इनमे जीवघात बहुत होता है और फल थोड़ा होता है अतः

ये 'वहुघात अल्पफल' वाली वस्तुये छोड देनी चाहिये । वहुघात अल्पफल-दायक अन्य पदार्थ, गीली हल्दी, सूरण, कन्द ताड, शकरकन्द गोभी, अरबो, इत्यादि मे अनन्त जीव होते हैं, अत इनके खाने से घात अधिक होता है । फल थोड़ा मिलता है । तथा दो अन्त मुहूर्त वाद के मक्खन का भी दयालु श्रावक को त्याग कर देना चाहिये

कहा भी है—

जो पदार्थ अपनी प्रकृति के विरुद्ध हो, जिनके खाने पीने से स्वास्थ्य बिगड़ जावे, अनेक तरह के रोग जिनसे उत्पन्न हो, ऐसे पदार्थ **अनिष्ट** कहलाते है, उनका त्याग कर देना चाहिये । जैसे खासी के रोग वाले को वर्फी, हैजे वाले को जल तथा अतिसार रोग वाले को दूध अनिष्ट है ।

जो पदार्थ सत्पुरुषो के सेवन करने योग्य न हो उन्हे अनुपसेव्य कहते है जैसे गाय का मूत्र आदि । ऐसे अनुपसेव्य पदार्थों का भी त्याग कर देना चाहिये ।

इन ही अभक्ष्य पदार्थो के विषय मे श्री समन्तभद्र आचार्य ने कहा है—

> अल्पफलबहुविघतान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि ।
> नवनीतनिम्ब कुसुम कैतकमित्येवमवहेयम् ॥
> यदनिष्टं तद् व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
> अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योगाद् कृता भवति ।

यानी-वहुविघात, त्रसघात, मादक, अनिष्ट तथा अनुपसेव्य पदार्थो का अभिप्राय पूर्वक (समझ बूझकर) त्याग करना चाहिए ।

अभक्ष्य पदार्थ त्याग कर देने पर जो पदार्थ खाने पीने योग्य (भोग्य) है तथा जो पदार्थ उपभोग (बार बार भोगने मे आने वाले वस्त्र, भूषण, मोटर मकान आदि) करने योग्य हैं उनका भी शक्ति और आवश्यकता अनुसार **यम** तथा **नियम** रूप से त्याग करना चाहिए ।

जन्म भर के लिये त्याग करना **यम** है । मास भक्षण,परस्त्री सेवन, वैश्या गमन, आदि महान कुकृत्यो का त्याग **यम** रूप से (जन्म भर के लिए) करना चाहिए ।

दिन, पक्ष, मास, घडी घटा आदि कुछ समय की मर्यादा से त्याग करना **नियम** कहलाता है ।

इस तरह भोग्य उपभोग्य पदार्थो का यम नियम रूप से परिमाण करना और शेष का त्याग करना **भोगोपभोग परिमाण** व्रत है ।

अतिथि संविभाग व्रत

शुद्धात्मा की एकत्व भावना मे लीन रहने वाले, राग, द्वेष विषयो से विरक्त, ऋद्धि से गर्व रहित, नीरस आहार करने वाले, चारो पुरुषार्थों के ज्ञाता, मोक्ष पुरुषार्थ करने वाले, चूल्हा, चक्की, ओखली, (खण्डिनी) बुहारी (प्रमार्जनी) तथा उदक कुम्भ (पानी भरना आदि) इन ५ सूना कार्यों के त्यागी इहलोक भय, परलोक भय अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, आकस्मिकभय, इन सात प्रकार के भयो से रहित, पल्य, सागर, सूच्यङ्गुल, प्रतरांगुल, घनागुल, जगत्श्रेणी, लोक प्रतर,लोक पूर्ण ऐसे ८ प्रकार के प्रमाण के निपुण ज्ञाता, ९ प्रकार के ब्रह्मचर्य सहित, १० प्रकार सयम से युक्त तपस्वी को निर्दोष, आहार औषधि, उपकरण, आवास ऐसे चार प्रकार के दान देना वैयावृत्य हैं। उन पर आयी हुई आपत्ति को दूर करना, उनकी थकावट दूर करना, उनके पाव दवाना, पेर धोना, ये सब वैयावृत्य हैं। ये सब क्रिया श्रावको के गृहस्थाश्रम के होने वाले पापो को धोने वाली है।

"गृहकर्मणापिनिचित कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानां
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमल धावते वारि"

अर्थात्—गृहमुक्त अतिथियो की पूजा भक्ति गृहस्थो के गृह-कर्म से बधने वाले कर्म को नष्ट कर देती है। जैसे जल रुधिर को धो देता है।

विधिद्रव्यदातृपात्रभेदात्तद्विशेषः।

यानी—दान करने की विधि, दान देने योग्य द्रव्य, दाता तथा पात्र (जिसको दान दिया जावे) इन चारो की विशेषता से दान तथा दान के फल मे विशेषता आजाती है। दान करने से साक्षात् पुण्य कर्म का वन्ध होता है और परम्परा से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

कनडी श्लोक—

मनेगेळ्तरे सत्पात्रमि-
देन गभिमत फलमनीयलेळ्तदुदुस-।।
न्मुनिरूपदिंदीकल्पा ।
वनिरुहमेनासिर्ददु रागरस संभ्रमदिं ।।११५।।

नवधा भक्ति

मुनि आदि पात्रो को दान नवधा (नौ प्रकार की) भक्ति से देना चाहिये।

१-प्रतिग्रह (अपने द्वार पर आये हुए मुनि को ' आइये, ठहरिये, अन्न, जल शुद्ध है, कहकर पडगाहना, ठहराना), २उ-च्च स्थान (घर मे लेजाकर उन्हे ऊच्चे स्थान कुर्सी तख्त आदि पर बिठाना), ३-पादोदक (उनके चरण धोना ४—उनकी अष्ट द्रव्य से पूजा करना ५—उनको प्रणाम करना, ६—मनशुद्धि बतलाना, ७—वचन-शुद्धि बतलाना, ८—काय-शुद्धि बतलाना, और ९— भोजन शुद्धि बतलाना, ये नवधा भक्ति है ।

मुनियो को ऐसा निर्दोष आहार पान आदि देना चाहिये जिससे उनके स्वाध्याय, ध्यान आदि मे विघ्न न आने पावे ।

पांच आश्चर्य

तीर्थंकर आदि विशेष पात्र को विधि पूवक आहार दान करने से पाँच प्रकार के आश्चर्य होते हैं—१—रत्न वर्षा २—पुष्पवर्षा ३—सुगन्धित वायु चलना, ४—देव दुन्दुभि वजना, ५—आकाश मे देवो द्वारा जय जय-कार होना ।

दाता के गुण

सद्धाभक्तीतुट्ठीविण्णाणमलुद्धयाखमासन्ती,
जत्थेदे सन्तगुणा तं दायारं पसंसंति ।

अर्थ—जिस दान करने वाले दाता मे १—श्रद्धा, २—भक्ति, ३—सतोष, ४—विज्ञान ५—निर्लोभता, ६—क्षमा, ७—शक्ति, ये सात गुण होते है, उस दाता की सभी लोग प्रशसा करते हैं ।

नेरद त्रिशक्ति भक्तिद ।
लरिदौदार्यं दयागुणं क्षमे एंबिं ॥
तुरगिद गुणवेळ रोळं ।
नेरेदिर्दु द दावुददुवे दातृ विशेषं ॥११६॥

अर्थ—भेदाभेद रत्नत्रय के आराधक मुनि सुपात्र उत्तम पात्र कहलाते है। देशसयत श्रावक मध्यम पात्र कहलाते है। असयत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं। इस तरह पात्र के तीन भेद हैं। चारित्राभास कुचारित्र वाले स्वभाव से पापी और मार्दव आदि गुणो से रहित, अपने मनमाने धर्म के अनुसार चलने वाले कुपात्र हैं। सप्त व्यसन मे आसक्त, दम्भी हासप्रयुक्त कथा तथा प्रलाप करने वाले, हमेशा माया प्रपञ्च युक्त ये सभी अपात्र है। इनको दिया हुआ दान निष्फल तथा ससार का कारण है ऐसा जिनेंद्र भगवान ने कहा है। इसलिये कभी भी ऐसे अपात्रो को दान न देना चाहिये ।

बेविगे परिद नीरिन ।
पाविगार्तेरद पालपय वुलिगिदं ॥
भाविसि भाळपुपकृति ।
यवोलेळ्वुदा पात्र दानदाविषमतेयं ॥११७॥

अर्थ—इन अपात्रो को दान देने से जैसे नीम के पेड़ को मीठे पानो से सीचा जावे तो भी वह फल कडुवा देता है इसी तरह कुपात्रो की दिया हुआ दान संसार-भ्रमण का कारण होता है। इसलिये दयालु सम्यग्दृष्टीश्रावको को अपने हित के लिये सत्पात्र को दान देना चाहिये।

कुपात्र दान से कुभोगभूमि मे उत्पन्न होकर कुत्सित भोगो के अनुभव करने वाले होते हैं। अत कुपात्र को त्यागकर सत्पात्र को दान देना ही इहलोक व परलोक मे आत्म-कल्याण का कारण है। वालवृद्ध, गू गा, वहरा व्याधि-पीड़ित दीन जीव को यथोचित वस्तु देना करुणा दान कहलता है। सत्पात्र को दान देने वाला सम्यग्दृष्टि जीव कल्पवासी देवो मे जन्म लेकर ससार के भोगो को अनुभव कर कुछ समय के वाद मुक्त होता है। कुछ मार्दव आर्जव गुण-रहित मिथ्याद्दृष्टि जीव सत्पात्र को दान देने के कारण उत्तम, मध्यम,जघन्य भोग भूमि मे उत्पन्न होकर और वहा के सुखानुभवकर पूर्व विदेह को जाते है।

पूर्व विदेह के पुष्करावती विपय सम्वन्धी सविय सरोवर के किनारे पर श्रीमती तथा वज्र जन्घ दोनो ने श्री सागरसेन मुनि को आहार दान दिया और उस समय आहार दान की अनुमोदना करने वाले व्याघ सूकर, वन्दर और नेवला यह चार जीव भोगभूमि के सुख को प्राप्त हुये तथा उस वज्रजघकी परम्परा से आदिनाथ भगवान के भव मे उनके पुत्र होकर मुक्त होगये और श्रीमती का जीव अभ्युदय सुख-परम्परा को प्राप्त होकर राजा श्रेयासकुमार हुआ उसने भगवान आदिनाथ को दान देकर दानतीर्थ की प्रवृत्ति की तथा सिद्धपद प्राप्त किया

इस भरत क्षेत्र सम्वन्धी आर्यखण्ड मे मलयदेश के रत्न संचय पुर के शासक श्री सेण राजा व उनकी रानी सिहनन्दिता, आनदिता सत्यभामा ब्राह्मणी इन चारो ने अनंतगति और अरिंजय नामक दो चारण मुनियो को दान दिया तथा उस दान का अनुमोदना की, जिसके फल से वे अनुपम सुख भोगी हो गईं।

सत्पात्र दान का फल—

ई दोरे युत्तम पात्र-। क्कादर दिदित्त दान फलमेनेयुंदा ॥
नोदयसिल्लिद नरपशु -। चादिनोळे वगेदुनोडेकुरिगळभावं ॥११८॥

ई दोरेयु पात्रम पडे-। दादं बडवं निधानमं पडेदवोलु -।।
त्पादिसिमुदमं मनदो -। ळ्सादरदिंदित्त दानुमदु केवलमे ।।११९।।
सुक्षेत्रमागि केलसद -ध्यक्षतेय पडेदुपददीमळे कोळदरोळ् ।।
निक्षिप्तमादबीजं- । साक्षात्फलमेतुंटेतद्दानफल ।।१२०।।
भरतादि क्षितिपालकगुंदितलोभाशक्तियिदादुदी ।
सिरि भिक्षार्तिगळार्गे कोटदु तिरियुत्तं बंदपपुंण्यदों ।।
दिरविंद सिरिनिल्कुमिल्लदोडे तामुं पोकुमेदेंदु लो-।
भरे निष्पेग्गिके पात्रदानतेयशः पुण्यर्द्धिय ताळ्दिरे ।।१२२।।
परमानन्द दि वज्र जघनरप सत्पात्र दान क्रिया -।
निरतं सत्प्रियनुत्तरोत्तर कुरु श्री नाथ नाददुतं ।
नरपाल प्रियकारिगळ् नकुलगोळांगुळशार्दूलसू -।
करिगळ् दानदोडर्वडि पडेदुवा भोगोर्वियोळ्भोगमं ।।१२२।।
माडिद पात्रदान विभवं बिभवास्पद भोगभूमियोळ् ।
माडिनिवासमं वसथमन्ते विभूषण तूर्य भाजनो -।
न्मीड सुदीप्ति दीप्तिवर भाजनपानद कल्प भूरु हुं -।
माडि मनोनुराग दोदवंप्रियवार वधू विराजितं ।१२३।
रतिवर रतिवेगाव्हायं । कृत सुकृत कपौल मिथुनमुत्तमपात्रं।
नुत दानदोडंबडिकेयि । नतिशय सुखनिरतखचरदपतियादर् ।
श्रीवेरगं प्रियळायत । वेषगतदोष निखिल विषयज सुखसं-।
तोषंसुखामृतरगिंव । तोषाकरनागिपरम पदमं पडेदं ।।१२५।।
इस पात्रदान के फल से:—
उत्तमपात्रदान फलदिं निज कीर्ति विळास मादिशा-।
भित्तिगळं पळचलेय सार सुखप्रद कल्प वृक्षस-।
धृत्तविभासि भोग भुवनास्पद देवविळासिनी महो-।
धृत्तपयोधरावसथ मोक्षसुखं निजहस्त संगतं ।१२६।
वित्तमदागदादोडमदाग दुचित मदादोडं गुणो-।
दात्तसहाय संपदमदागद वादोड मागदल्ते-।
त्तुत्तमपात्रिमन्तिनिट्टु मागळ्पूपुवळापहारिय-।
प्पुत्तमदानदिंदमदनन्त चतुष्टयमागदिक्कुमे ।१२७।

अर्दारिंदी निरति चारा । स्पद मागिर लन्नदानमं माळ्केमहा-।
भ्युदय सुखमूलमं शिव-। प्रदमहिनिक्षिप्त बीजं भव्यजनं ।१२८।

अर्थ—इस तरह राजा और रानी ने दान देकर उसका उत्तम फल प्राप्त किया, जो मनुष्य दान नही करते उन मनुष्यो का जीवन बकरे के समान है, जो सदा घास पत्ते खाया करता है और किसी दिन बधिक (कसाई) की छुरी से मारा जाता है ॥११८॥

राजा श्रीषेण पात्रदान करने की भावना से वन को नही गया था, उसको तो अकस्मात् चारण मुनि सौभाग्य से प्राप्त हो गये, उनको दान देकर उसने जब श्रेष्ठ फल प्राप्त किया तो जो व्यक्ति पात्र दान के लिये सत्पात्रो को ढूढने का श्रम करते हैं सत्पात्र मिल जाने पर उन्हे दान देकर सन्तुष्ट होते हैं, उनके फल के विषय मे तो कहना ही क्या है ॥११९॥

जिस तरह भूमि को पत्थर आदि हटाकर शुद्ध कर लेने पर, उसमे खाद डालने के अनन्तर ठीक रीति से यदि बीज बोया जावे और आवश्यकतानुसार उसमे जल सीचा जावे तो क्या वह भूमि विना फल दिये रहेगी ? अर्थात् नही । इसी तरह सत्पात्र को दिया हुआ दान अवश्य फल प्रदान करता है ॥१२०॥

भरत आदि चक्रवर्ती सम्राट लोभ कषाय या कंजूस होने के कारण नही हुए, वे उदारता से दान देने के कारण इतने बडे वैभवशाली हुए । भिखारी ने पहले भव मे किसी को कुछ नही दिया, इसी कारण उसका जीवन भीख मागते मागते ही समाप्त हो जाता है । पुण्य कर्म के उदय से धन वैभव प्राप्त होता है और वह वैभव स्थिर रहता है तथा बढता रहता है । इस कारण सत्पात्र को दान करते रहो ॥१२१॥

राजा बज्रजघ और श्रीमती ने बडी भक्ति से मुनियो को दान किया जिसके फल से वे उत्तोरत्तर उन्नति करते हुए मुक्तिगामी हुए । उनके उस पात्र-दान को देख कर बन्दर, सिंह, शूकर और न्यौले ने उस दान की अनुमोदना की । उस अनुमोदना से वे पशु भी भोगभूमि मे गये तथा अन्त मे मुक्तिगामी हुए ॥१२२॥

पात्र को दान करने से भोग भूमि मे जन्म होता है जहाँ पर गहाग, भोजनाग, वस्त्राग, माल्याग, भूषणाग, तूर्यांग, भाजनाग,ज्योतिरग, दीप्तिअंग पानाँग इन १० प्रकार कल्पवृक्षो के द्वारा समस्त भोग उपभोग की सामग्री प्राप्त होती है तथा सुन्दर गुणवती स्त्रिया प्राप्त होती हैं ॥१२३॥

रतिवर तथा रतिवेगा नामक कबूतर कबूतरी ने सत्पात्र को दान देते

हुए देखा, उस दान की दोनो ने अनुमोदना की । उस दान-अनुमोदना के फल से वे दोनो भवान्तर मे विद्याधर विद्याधरी हुए ॥१२४॥

राजा श्रीषेण तथा उनकी रानियो ने बहुत आनन्द से जीवन व्यतीत किया तथा सत्पात्र-दान के कारण वे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ फल प्राप्त करते रहे ॥१२५॥

सत्पात्रो को जिन्होने दान किया, पहले तो उनकी कीर्ति समस्त दिशाओ मे फैली, तदनन्तर दूसरे भव मे उन्होने भोगभूमि के सुखो का अनुभव किया । फिर वहा से स्वर्ग मे जन्म पाकर दिव्य सुखो का देवागनाओ के साथ बहुत समय अनुभव किया । तदनन्तर मनुष्य भव पाकर मुक्ति प्राप्त की ॥१२६॥

पहले तो शुभकर्म के अभाव मे धन नही मिलता, यदि धन मिल जावे तो सत्पात्र नही मिलता, यादि सत्पात्र मिल जावे तो पात्र दान करने की प्रेरणा करने वाले सहायक व्यक्ति नही मिलते । यदि पुत्र, स्त्री, मित्र आदि दान करने मे अनुकूल सहायक भी मिल जावे तो फिर सत्पात्रो को दान करने से अनन्त चतुष्टय प्राप्त होने मे क्या सन्देह है ? अर्थात् कुछ नही ॥१२७॥

सत्पात्रो को आहार दान करने से महान अभ्युदय प्राप्त होता है । जिस तरह निर्दोष भूमि मे बीज डालने से फल अवश्य मिलता है, इसी तरह भव्य द्वारा सत्पात्र को दिया हुआ दान अवश्य मोक्ष फल देता है ॥१२८॥

इस प्रकार जिनको ससार-रूपी दुख से जल्दी निकल कर निश्चित सुख पाना हो तो दाता के गुण सहित चार प्रकार का दान सदा देना चाहिये ।

संक्षेप मे दाता के सात गुणो का खुलासा किया जाता है । दान-शासन तथा रयणसार आदि ग्रन्थो मे दाता के सप्त गुणो का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

कनडी श्लोक—

दाता का लक्षण

सदा मनःखेदनिदानमाना, न्वितोपरोधं गुणसप्तयुक्तः ।
त्रिकालदातृप्रमुदैहिकार्थी, नतंच दातारमुशन्ति संतः ॥

अर्थ—जो व्यक्ति दान कार्य मे 'हाय ! जन्म भर कमाया हुआ धर्म मेरे हाथ से जाता है, इस प्रकार मन मे खेद नही करता है, जो दान के बदले मे कुछ चाहता नही, अभिमान व पर-प्रेरणा से रहित होकर दान देता है और दाता के लिये सिद्धात शास्त्र मे कहे गये सप्तगुणो से युक्त है,जिसे भूत भविष्यत वर्तमान काल सम्बन्धी दाताओ के प्रति श्रद्धा है और जिसे ऐहिक सुख की इच्छा नहीं है आचार्यों नें उसी दाता की प्रशसा की है ।

विनयवचनयुक्तः शांतिकांतानुरक्तो ।
नियतकरणवृत्तिः संघजातप्रसक्तिः ।।
शमितमदकषायः शांतसर्वान्तरायः ।
स विमलगुणविशिष्टो दातृलोके विशिष्टः ।।

अर्थ–जो विनय वचनयुक्त है, शाति का अनुरागी है । इन्द्रियो को जिसने वश मे कर रखा है, जिसे जैन सघ मे प्रसन्नता है, आठमद और कषाय को जिसने शात किया है । एव जिसके सर्व अन्तराय दूर हो गये है और निर्मल गुणो को धारण करने वाला है । उसे उत्तम दाता कहते है ।

और भी कहते हैं ।

वैद्या नृप्रकृतिर्यथानलविधिं ज्ञात्वैव रक्षन्ति तान् ।
सर्वेष्टा दशधरान्य लोभमतयः क्षेत्रं यथा कार्षिकाः ।।
गांधारार्थजना अवन्ति चयथा रक्षेयुरुर्वीश्वराः ।
नित्यं स्वस्थलवर्तिनो वृषचितो धर्मं च धर्माश्रितान् ।।

अर्थ–जिस प्रकार वैद्य रोगियो की प्रकृति वा उदराग्नि को जानकर और योग्य औषधि वगैरह देकर उनकी रक्षा करते है, जिस तरह किसान अपने खेत की रक्षा करते हैं, ग्वाले दूध के लिये गाय की रक्षा करते है, एव राजा जिस तरह अपने राज्य की रक्षा करते है । उसी तरह धर्मात्मा लोग आहार दान द्वारा धर्म की तथा मुनि आदि धर्मात्माओ की रक्षा करते है ।

औषध-दान–रोग दूर करने के लिये शुद्ध औषधि (दवा) प्रदान करना औषधदान है । मुनि आदि व्रती पुरुषो के रोग निवारण के लिये उनको प्रासुक औषध आहार के समय देना चाहिये, भोजन भी ऐसा होना चाहिये जो रोगवृद्धि मे सहायक न होकर रोग शान्त करने मे सहायक हो । अन्य दीन दुखी जीवो का रोग दूर करने के लिए करुणा भाव से उनके लिए विना मूल्य औषध बाटना, औषधालय खोलना, बिना कुछ लिये मुफ्त चिकित्सा करना औषधदान है । औषधदान मे वृषभसेन प्रसिद्ध हुआ है ।

ज्ञान-दान—मुनि व्रती त्यागी पुरुषों को स्वाध्याय करने के लिये शास्त्र प्रदान करना, ज्ञानाभ्यास के साधन जुटाना तथा सर्वसाधारण जनता के लिए पाठशाला स्थापित करना, स्वयं पढाना, प्रवचन करना उपदेश देना, जिन वाणी का उद्धार करना, पुस्तके बाँटना ज्ञानदान है । ज्ञान दान मे कौण्डेश प्रसिद्ध हुआ है ।

अभयदान—मुनि आदि अनगार व्रतियो के ठहरने के लिये नगर के वाहरी प्रदेशो, वन, पर्वतो मे तथा नगर पुर मे मठ बनवाना, जिसमे कि जङ्गली जीवों से सुरक्षित रहकर वे ध्यान आदि कर सके। आगन्तुक विपत्ति से उनकी रक्षा करना तथा साधारण जनता के लिए धर्मशाला बनवाना, विपत्ति मे पडे हुए जीव का दुख मिटाना, भयभीत प्राणियो का भय मिटाना आदि अभयदान है। अभयदान मे शूकर प्रसिद्ध हुआ है। इन प्रसिद्ध व्यक्तियो की कथा अन्य कथा ग्रन्थो से जान लेना चाहिये।

दान का फल

सौरूप्यमभयादाहुराहाराद्भोगवान् भवेत्।
आरोग्यमौषधाद्ज्ञेयं श्रुतात् स्यात् श्रुतकेवली॥
गृहाणिनामता नैव तपोराशिर्भवादृशः।
सम्भावयति यो नैव पावनैः पादपांशुभिः॥
देव धिष्ण्यमिवाराध्यमध्यप्रभृति यो गृहं।
युष्मत्पादरजःपातःधौतनिःशेषकल्पषः॥

अर्थ—पाप कर्मो से निर्मुक्त, पवित्र पुण्य मूर्ति ऐसे तपस्वियो के पाद (चरण) मे लगी हुई धूलि जिनके गृहं मे पड गई है (या ऐसे मुनियो ने जिनके गृह में प्रवेश किया है) वह गृह देव गृह से भी अधिक पवित्र समझना चाहिए। उस तपस्वी को झुककर नमस्कार करने से उत्तम कुल की प्राप्ति होती है। नवधा भक्ति पूर्वक आहार दान देने वाले दाता अनेक भोग और उपभोगो के भोगने वाले होते हैं। शास्त्र दान देने से जगत मे पूज्य तथा अगले जन्म मे उसी दान के फल से श्रुत केवली होता है। उत्तम सर्वांगो से सुन्दर शरीर वाला होता है, भक्ति से स्तुति करने वाले इस जन्म और पर-जन्म मे धवल कीर्ति पाता है। तथा देवगति को प्राप्त होकर वहाँ के भोग भोग कर अन्त मे मनुष्य लोक मे आकर अत्यन्त सुखानुभव करता है फिर तपश्चरण करके कर्म क्षय करने के वाद मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है।

अभयदान से (सम्पूर्ण जीवो पर दया तथा अभय करने से) इस लोक मे तथा परलोक मे निर्भय होकर इह लोक मे सुख पूर्वक शत्रु रहित अपना जीवन पूर्ण करता है अन्त मे निर्वाण पद प्राप्त कर लेता है।

सप्त शीलानि ॥१८॥

अर्थ—सात शील इस प्रकार हैं।

तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत मिलकर सात शील होते हैं। पहिले

शिक्षाव्रतो और गुणव्रतो का वर्णन हो चुका है। जैसे वाड़ खेत की रक्षा करती है उसी तरह शील अहिंसा आदि व्रतो की रक्षा करते है।

अब अतिचार कहते हैं---

व्रतशीलेषु पंच पंचातिचाराः ॥१६॥

अर्थ---पांच व्रतो तथा ७ शीलो के ५-५ अतिचार होते हैं।

व्रतो मे कुछ त्रुटि होना अतिचार है। उन अतिचारो को वताते हैं---

१—अहिंसाणुव्रत के ५ अतिचार है---

१—रस्सी आदि से पशुओ को वाधकर रखना २—उन्हे समय पर चारा पानी न देना, ३—डण्डे आदि से मारना, ४—उनकी नाक आदि छेदना, ५—अधिक बोझा लादना ये पांच अहिंसाणव्रत के अतिचार हैं ?

२—सत्याणुव्रत के पांच अतिचार—

१ मिथ्यात्व का उपदेश देना, सुनना, २ स्त्री पुरुषो की एकात मे सुनी हुई बात को सुनकर प्रगट करना ३, कूट लेखादि या झूठे लेखादि बनावटी बहीखाते लिखना ४, किसी की रक्खी हुई धरोहर को घटा कर देना ५, किसी भी तरह की चेष्टा से मन्त्र आदि का प्रकट करना, ये पाँच सत्याणुव्रत के अतिचार है ?

३ अचौर्याणुव्रत के पांच अतिचार—

१ स्वयं चोरी न करके चोरी का उपाय बताना, २ चोरी का धन लेना, ३ नापने तोलने के बाट कमती ज्यादा रखना, ४ राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना, ५ अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य वाली वस्तु मिलाकर बेच देना; यह अचौर्याणुव्रत के पाच अतिचार है।

४ ब्रह्मचर्याणुव्रत के पांच अतिचार—

१ दूसरे का विवाह कराना, २ काम सेवन के लिए नियत अगों के सिवाय अन्य अंगो से काम-क्रीडा करना, ३ काम की अधिक इच्छा रखना, ४ पति रहित स्त्रियो के घर आना जाना, ५ चुम्बन आदि मे लालसा रखना, स्वदार सतोष व्रत के यह पाच अतिचार हैं। कहा भी है —

अन्यविवाहकरणानंगक्रीड़ाविटत्वविपुलतृष—
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पंच व्यतीपाता ॥

५ परिग्रह परिमाण अणुव्रत के पाच अतिचार—

१ गाय भैंस आदि का अधिक सग्रह करना २ धन आदि का अधिक सग्रह करना, ३ लाभ की इच्छा से अधिक भार लादना, ४ अन्य का ऐश्वर्य

देखकर अत्यन्त आश्चर्य करना ५ और दानादि मे सकोच करना, यह परिग्रह परिमाण अणुव्रत के ५ अतिचार है ?

गुण व्रत के अतिचार

(१) पहाड टेकडी आदि पर, अथवा आकाश मे (ऊर्ध्व दिशा मे) इतने गज या इतने धनुष चढेगे आदि का जो नियम किया हो (२) तथा खान, पानी आदि मे इतने नीचे उतरेगे, इससे अधिक नही जावेंगे इस प्रकार जो मर्यादा की हो, उस मर्यादा से बाहर अपने को कभी लाभादि होने पर चले जाना और लाभ के लालच मे पड कर उस मर्यादा को उल्लघन करना (३) पूर्व आदि आठो दिशाओ की मर्यादा का उल्लघन करना (४) इतनी दूर जावेगे इस प्रकार जो मर्यादा की है उसको लाभ अधिक होता देख कर बढा लेना, (५) की हुई मर्यादा को भूल जाना, ये पाँच दिग्व्रत के अतिचार है।

[१] मर्यादा किया हुआ जो क्षेत्र है, उसके बाहर से चीज को मगाना, [२] मर्यादित क्षेत्र से बाहर नौकर आदि भेज कर काम कराना, [३] मर्यादा के बाहर अपनी ध्वनि के द्वारा यानी आवाज देकर सूचना देना, [४] अपनी मर्यादा के बाहर ककडी आदि फेक कर सकेत करना, [५] अपनी मर्यादा के बाहर अपना शरीर दिखाकर, इशारा आदि करके काम कराना रूपानुपात है। इस प्रकार ये पाच देशव्रत के अतिचार है।

१—**कन्दर्प**—हंसी मजाक की राग-उत्पादक बाते करना, २—**कौत्कुच्य**—शरीर की कुचेष्टा बनाकर हसी मजाक करना, ३—**मौखर्य**—व्यर्थ बोलना, बक-वाद करना, ४—**असमीक्ष्याधिकरण**—विना देखे भाले, बिना सम्भाले हाथी घोडे रथ मोटर आदि वस्तुऐ रखना, ५—**भोगोपभोगानर्थक्य**—भोग उपभोग के व्यर्थ पदार्थो का सग्रह करना, ये पाच अतिचार अनर्थदण्ड व्रत के है।

शिक्षा व्रत के अतिचार

सामायिक के अतिचार—१ मनःदुःप्रणिधान—सामायिक करते समय अपने मन मे दुर्भाव ले आना, २—**वचनदु.प्रणिधान**—सामायिक के समय कोई दुर्वचन कहना, ३—**कायदुःप्रणिधान**—सामायिक मे शरीर को निश्चल न रखकर हिलाना, डुलाना, ४—**अनादर** अरुचि से सामायिक करना, ५—**स्मृत्यनुपस्थान** सामायिक पाठ, मत्र जाप आदि भूल जाना। ये सामायिक शिक्षा व्रत के ५ अतिचार हैं।

प्रोषधोपवास के अतिचार—१ उपवास के दिन जीव जन्तु बिना देखे

बिना शोधे स्थान पर टट्टी पेशाब करना, २ बिना देखे, बिना शोधे वस्तुओं को रखना उठाना, ३ बिना देखे, बिना शोधे विस्तर विछाना, ४ अरुचि के साथ उपवास करना, ५ प्रोषधोपवास की क्रियाओ को भूल जाना। ये ५ अतिचार प्रोपधोपवास व्रत के हैं।

भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार—१ सचित्त आहार करना, २ सचित्त अचित्त पदार्थ मिला कर भोजन करना ३ सचित्त पदार्थ से संबन्धित (छुआ हुआ) आहार करना, ४ काम उद्दीपक प्रमाद-कारक गरिष्ठ भोजन करना, ५ कच्चा पक्का भोजन करना। ये ५ अतिचार भोगोपभोग परिमाण व्रत के है।

अतिथि संविभाग व्रत के अतिचार—१ मुनि आदि को दिये जाने वाले अचित्त भोजन को किसी पत्ते आदि सचित्त वस्तु पर रख देना, २ अचित्त भोजन को पत्ते आदि सचित्त पदार्थ से ढक देना, ३ मुनि आदि के लिए आहार तैयार करके आहार कराने के लिए दूसरे व्यक्ति को कहना, ४ ईर्ष्या भाव से दान करना, ५ आहार दान कराने का समय चुका देना, ये ५ अतिचार अतिथि सविभाग व्रत के है।

कहा भी है कि.—

गृहकर्माणि सर्वाणि दृष्टिपूतानि कारयेत्।
द्रवद्रव्याणि सर्वाणि पटपूतानि कारयेत् ॥
आसनं शयनं मार्ग मनमन्यञ्च वस्तु यत्।
अदृष्टं तन्न सेवेत यथाकालं भजन्नपि ॥

अर्थ—घर के कार्य अच्छी तरह देख भालकर करने चाहिए, जल, दूध, काढा, शर्वत आदि पतले बहने वाले पदार्थ वस्त्र से छानकर काम मे लेने चाहिए। शयन (शैया-पलग बिस्तर), आसन (बैठने का स्थान कुर्सी, तख्त, मूढा, आदि) मार्ग (रास्ता) तथा और भी दूसरे पदार्थ हो उनको यथा समय बिना देखे भाले काम मे न लेना चाहिए।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥
मद्यपादिकगेहेषु पानमन्नं च नाचरेत्।
तदमत्रादिसम्पर्कं न कुर्वीत कदाचन ॥

कुर्वन् नाव्रतिभिः सार्द्धं संसर्गं भोजनादिकम् ।
प्राप्नोति वाच्यतामत्र परत्र च न तत्फलम् ॥

अर्थ—भूमि पर देख भालकर पैर रखना चाहिए, कपडे से छान कर जल पीना चाहिए, वचन सत्य बोलना चाहिए, अपना मन शुद्ध करके चारित्र आचरण करना चाहिए, शराब, भग आदि पीने वालो के घर खान पान नही करना चाहिए। ऐसे मनुष्यो के साथ किसी प्रकार का सम्वन्ध भी नही रखना चाहिए। शुद्ध खान पान न करने वाले अव्रती लोगो के साथ भोजन आदि का सम्पर्क कभी न करे। क्योकि ऐसा करने से इस लोक मे निन्दा होती है और परलोक मे शुभ फल नही मिलता।

कानडी श्लोक—

व्रतहीनर ससर्ग, व्रतहीरित भुक्तं ।
व्रतहीनर पंक्ति-, उणिसदागदमोथं ।१२९।

यानी—व्रती पुरुषो को व्रत-हीन पुरुषो के साथ ससर्ग नही रखना चाहिए, न उनके बर्तनो से अपने बर्तन मिलाने चाहिए, न व्रतहीन मनुष्यो के हाथ का बना भोजन करना चाहिए तथा न कभी अव्रती पुरुषो के साथ पक्ति-भोजन करना चाहिए।

त्याज्य पदार्थ—

चर्मपात्रेषु पानीयं स्नेहं च कुडुपादिषु ।
व्रतस्थो वर्जयेन्नित्यं योषितश्च व्रतोज्झिताः ।६।
वत्सोत्पत्ति समारभ्य पक्षात्प्राग्दग्धदुग्धकम् ।
तद्दध्यादि परित्याज्यमाजं गव्यं च माहिषम् ।७।
नवनीतं प्रसूनं च श्रृङ्गवेरमसंस्कृतम् ।
पलाण्डुं लशुणं त्याज्यं मूलञ्च कलिङ्गकम् ।८।

अर्थ—चमडे के बने हुए कुप्पे आदि मे रक्खा हुआ घी, तेल आदि का व्रती पुरुष को त्याग कर देना चाहिए। व्रत रहित (विधर्मी) स्त्रियो का पाणिग्रहण न करना चाहिए।

बच्चा उत्पन्न होने से १५ दिन तक गाय, भैस, वकरी का दूध, दही नही खाना चाहिए।

मक्खन (दो मुहूर्त पीछे का), फूल, अप्रासुक, अदरक, प्याज, लहसुन, मूल (मूली की जड, गाजर आदि) और तरबूज (मास-जैसा दिखाई देने के कारण) त्याग देना चाहिए।

मौनं सप्तस्थानम् ।२०।

अर्थ—सात स्थानो पर मौन रखना चाहिए, मुख से कुछ बोलना नही चाहिए ।

मौन के सात अवसर.—

हदनं मूत्रणं स्नानं पूजनं परमेष्ठिनाम् ।
भोजनं सुरतं वमनं स्तोत्रं मौनसमन्वितम् ।६।
मृष्टवाक् सुरनरेन्द्रसुखेशो बल्लभश्च कवितादिगुणानाम् ।
केवलद्यु मणिबोधितलोको मौनसुव्रतफलेन नरः स्यात् ।१०।
दूरः कलत्रपुत्रादि वर्जनादिविर्वाजितः ।
मौनहीनो भवेन्नित्यं घोरदुःखैकसागरः ।११।
अतिप्रसंगदहनाय तपसः प्रवृद्धये ।
अन्तरायस्कृता सद्भि व्रतंबीजव्रतिक्रिया ।१२।

अर्थ—टट्टी करने, पेशाब करने, भगवान की पूजन करने, भोजन करने, मैथुन करने, कय (वमन) करने तथा भगवान की स्तुति करने के समय मौन रखना चाहिए । (पूजन करते समय तथा स्तोत्र पढते समय अन्य कोई बात न करनी चाहिए, शेप टट्टी, पेशाब, भोजन, मैथुन और कय करते समय सर्वथा चुप रहना चाहिए) । मौन व्रत के फल से मनुष्य शुद्ध बोलने वाला, देव चक्रवर्ती राजा का सुख भोगने वाला, कविता आदि गुणो का प्रेमी, केवल ज्ञान से जगत को प्रकाश देने वाला होता है । पुत्र, स्त्री आदि के वियोग से रहित होता है । उक्त ७ अवसरो पर मौन न रखने वाला व्यक्ति घोर दु.ख पाता है ।

अति प्रसंग (अति मैथुन) को नष्ट करने के लिए तथा तप की वृद्धि के लिए व्रत को बीजभूत व्रती की मौन क्रिया है । मौन भङ्ग को बुद्धिमानों ने अन्तराय वतलाया हैं ।

अन्तराय को कहते है.—

अन्तरायं च ।२१।

अर्थ—भोजन करते समय मांस को देखना, मास की बात सुनना, मन मे मांस का विचार आना, पीप का देखना या पीप का नाम सुनना, रक्त का देखना या सुनना तथा भोजन करते समय थाली मे मरा हुआ कीडा मकोड़ा आदि आ जाना भोजन का अन्तराय है । यानी-भोजन के समय मांस आदि देखने पर भोजन का अन्तराय समझकर भोजन करना छोड देना चाहिए ।

कोई त्याग किया हुआ पदार्थ यदि थाली मे आ जावे तो भोजन छोड देना चाहिए और उसी समय मुख शुद्धि कर लेना चाहिए।

यदि अपने बर्तन अन्य मासभक्षक आदि लोगो के बर्तनो से छू जावे तो कासे का बर्तन फेंक देना चाहिए, ताबे पीतल के बर्तन अग्नि से शुद्ध करने चाहिए। भोजन मे यदि बाल आदि निकल आवे तो भी भोजन छोड देना चाहिए।

भोजन करने मे लगे हुए दोष का प्रायश्चित्त गुरु से लेना चाहिए पर यदि गुरु न हो तो श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के सामने स्वय प्रायश्चित्त ले लेना चाहिए। तथा—

अस्पर्श्याङ्गं विलोक्यापि तद्वच. श्रवणगोचरे।
भोजनं परिहर्तव्यं दुर्दर्शं श्रवणादपि ॥

अर्थ—अस्पर्श्य (न छूने योग्य) अग को देख लेने पर या उसका नाम सुन लेने पर तथा न देखने योग्य पदार्थ का नाम सुनने से भी भोजन छोड़ देना चाहिए।

होस माडदवंगं- । प्रातुकुमं दोळ्ववगे परमयिगळा ॥
वासदोळिप्पगर्हं- । तृशासन दोळ्पेळ्दमुळुलदं नडेदतुदे ।१३०।

यानी-रात्रि भोजन करने वाले, अशुद्ध भोजन करने वाले, विधर्मियो के घर रहने वाले क्या अर्हन्त भगवान के उपदिष्ट धर्म का आचरण कर सकते है ? अर्थात् नही।

रात्रि भोजन त्याग-

अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये।
निशायां वर्जयेद्भुक्तिमिहामुत्र च दु खदाम् ॥

अर्थ---अहिसा व्रत की रक्षा के लिए तथा मूलव्रत की विशुद्धि के लिए इस लोक परलोक मे दु खदायक रात्रि भोजन को छोड देना चाहिए।

पिपीलिकादयो जीवा भक्ष्यं तदपि कानिशि।
गिल्यन्ते भोक्तृभि पुम्भिस्ते पुन कबलं सम ।१५।
स्फुटितांघ्रिकरणादिनो ये काष्ठ तृणवाहकाः।
कुचेला दुष्कुला सन्ति ते रात्र्याहारसेवनात् ।१६।
निजकुलैकमण्डनं त्रिजगदीशसम्पदम्।
भजतीह स्वभावतः त्यजति नक्तभोजनम् ।१७।

अर्थ—जो मनुष्य रात को भोजन करते है वे भोजन के साथ चीटी आदि जीवों को खा जाते हैं। जो मनुष्य रात्रि भोजन करते हैं वे अन्य भव मे लूले, लगडे, गूंगे, बहरे आदि अपाग, लकडहारे, घसियारे, नीचकुली, मैले कुचेले मनुष्य होते हैं। जो मनुष्य रात्रि भोजन त्याग देता है वह अपने कुल के भूषण तथा तीन लोक की सम्पदा को प्राप्त करता है।

श्रावक धर्मश्चतुर्विध ।२२।

अर्थ—श्रावक का धर्म ४ प्रकार का है–१ दान, २ पूजा, ३ शील और ४ उपवास अपने तथा अन्य के उपकार करने के लिए जो आहार आदि पदार्थों का त्याग किया जाता है वह मौन ४ प्रकार का है–१ आहार, २ औषध, ३ ज्ञान और ४ अभय।

देवशास्त्र गुरु की विधि अनुसार ८ द्रव्यो से पूजन करना पूजा है।

अपने ग्रहण किये हुये व्रतो की रक्षा करना शील है।

अष्टमी चतुर्दशी पचमी आदि को पंच इन्द्रियो के विषय. कषाय तथा चारो प्रकार के आहार का त्याग करना है। केवल जल ग्रहण करना अनुपवास (ईषत् उपवास-छोटा उपवास) है और एक बार भोजन करना एकाशन है।

जैनर नेरे जैनर केले। जैनर व्रतनिष्ठे जैन धर्म श्रवणं।
जैनप्रतिमाराधने। जैनगिकूडि वंदोडवने कृतार्थं ।१३१।

अर्थ—जैन कुल मे जन्म लेकर मनुष्य भव सफल करने के लिए सदा जैन भाइयो की सगति करनी चाहिये, जैनो से मित्रता करनी चाहिए, जैन धर्म की श्रद्धा करनी चाहिए, जैन शास्त्रो का श्रवण करना चाहिये, जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा की आराधना करनी चाहिये।

जैनाश्रमाश्च ।२३।

अर्थ–१ ब्रह्मचारी, २ गृहस्थ, ३ वाणप्रस्थ और ४ भिक्षु।

विवाह करने से पहले ब्रह्मचर्य आचरण से रहना (विद्यार्थी जीवन) **ब्रह्मचारी आश्रम** है। विवाह करने के अनन्तर कुलाचार धर्माचार से रहना **गृहस्थाश्रम** है मुनि दीक्षा ग्रहण करने के पहले घर बार छोड़कर खण्ड वस्त्र धारण करके तपस्या करना **वाणप्रस्थ आश्रम** है। सब परिग्रह त्याग कर मुनि दीक्षा लेकर महाव्रत धारण करना **भिक्षु आश्रम** है।

ब्रह्मचारिण· पञ्चविधा ।२४।

अर्थ–ब्रह्मचारी ५ प्रकार के होते है। १ उपनयन, २ अवलम्बन, ३

अदीक्षा, ४ गूढ़ तथा ५ नैष्ठिक ब्रह्मचारी।

यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करके विद्याध्ययन करने वाले **उपनयन ब्रह्मचारी** है।

क्षुल्लक रूप से समस्त शास्त्रो का अध्ययन करने वाले (बाद मे गृहस्थ-आश्रम मे जाने वाले) **अवलम्ब ब्रह्मचारी** है।

व्रत का चिन्ह (जनेऊ आदि) धारण न करके समस्त शास्त्र पढकर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने वाले **अदीक्षा ब्रह्मचारी** है।

बाल्य अवस्था मे गुरु के पास रहकर समस्त शास्त्रो का अभ्यास किया हो, संयम धारण किया हो फिर राज भय से, या परिवार की प्रेरणा से अथवा परिषह सहन न करने के कारण जो संयम से भ्रष्ट हो गया हो - और बाद मे गृहस्थ आश्रम मे आ गया हो, वह **गूढ ब्रह्मचारी** हैं।

व्रत के चिन्ह चोटी, जनेऊ, करधनी, श्वेतवस्त्र धारण करके ब्रह्मचर्य व्रत लेकर रहने वाले **नैष्ठिक ब्रह्मचारी** हैं।

आर्यषट् कर्माणि।२५।

अर्थ—आर्य (गृहस्थाश्रमी श्रावक) के ६ कर्म है। १ इज्या (पूजा), २ वार्ता (धन-उपार्जन विधि), ३ दत्ति (दान), ४ स्वाध्याय(शास्त्र पढना, सुनना) ५ संयम (जीवरक्षण तथा इन्द्रियो तथा मन का दमन), ६ तप, (उपवास एका-शन आदि वहिरग, प्रायश्चित आदि अन्तरग तप)।

तत्रेज्या दशविधा: ।२६।

अर्थ—पूजा १० प्रकार की है।

देव इन्द्रो के द्वारा किये जाने वाली अर्हन्त भगवान की पूजा **महामह** पूजा है।

इन्द्रो के द्वारा की जाने वाली पूजा **इन्द्रध्वज** पूजा है।

चारो प्रकार के देवो द्वारा की जाने वाली पूजा का नाम **सर्वतोभद्र** है।

चक्रवर्ती के द्वारा की जाने वाली पूजा का नाम **चतुर्मुख** पूजा है।

विद्याधरो के द्वारा होने वाली पूजा का नाम **रथावर्तन** पूजा है।

महामण्डलीक राजाओ के द्वारा की जाने वाली पूजा का नाम **इन्द्रकेतु** है।

मडलेश्वर राजा जिस पूजा को करते हैं वह **महापूजा** है।

अर्द्ध मडलेश्वर राजाओ द्वारा की जाने वाली पूजा का नाम **महामहिम** है।

नन्दीश्वर द्वीप मे जाकर आषाढ, कार्तिक, फागुन मास के अन्तिम दिनों मे जो देव इन्द्र आदि पूजा करते हैं सो **आष्टान्हिकपूजा** है ।

स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, ये आठ द्रव्य लेकर मदिर मे प्रतिदिन पूजा करना **दैनिक पूजा** है ।

अपनी शक्ति अनुसार द्रव्य खर्च करके मन्दिर बनवाना, प्रतिमा निर्माण कराना, प्रतिष्ठा कराना, मन्दिर की सुव्यवस्था करना, मदिर की व्यवस्था के लिये जमीन, मकान, गाव आदि दान करना पूजा के उपकरण देना आदि दैनिक पूजा मे सम्मिलित है ।

अर्थानि षट्कर्माणि ॥२७॥

अर्थ—आर्य पुरुषो के धन-उपार्जन के ६ कर्म हैं । १ असि (सेना आदि मे नौकरी आदि से अस्त्र शस्त्र द्वारा धन कमाना), २ मसि (लिखने पढ़ने के द्वारा आजीविका करना), ३ कृषि (खेती वाड़ी करना), ४ वाणिज्य (व्यापार करना) ५ पशु पालन (गाय, भैस, घोड़ा आदि पशुओ का व्यापार करना), ६ शिल्प (वस्त्र बुनाना आदि कला कौशल से आजीविका करना) ।

दत्तीश्चतुर्विधाः ॥२८॥

अर्थ–दत्ति (दान) चार प्रकार है—१ दयादत्ति, २ पात्रदत्ति, ३ समदत्ति, ४ सर्व दत्ति ।

समस्त जीवो पर दया करना, दीन दुखी अनाथ प्राणियो को दया भाव से भोजन वस्त्र आदि देना **दयादत्ति** है ।

रत्नत्रय धारक, संसार से विरक्त, सयम आराधक मुनि, आर्यिका आदि को भक्तिभाव से शुद्ध निर्दोष आहार, औषध, शास्त्र, आवास देना और अपने आपको कृतार्थ मानना **पात्रदत्ति** है ।

अपने समान सदाचारी धार्मिक योग्य वर को अपनी कन्या देना, साधर्मियो को भोजन कराना आदि **समदत्ति** है ।

घर बार छोडकर दीक्षा लेते समय या समाधि मरण के समय अपनो समस्त सम्पत्ति धर्मार्थ मे दे डालना अथवा पुत्र आदि उत्तराधिकारी को प्रदान करना **सर्वदत्ति** है ।

यह तीसरा आर्यकर्म है ।

तत्वज्ञान का पढना, पढाना **'स्वाध्याय'** नामक चौथा आर्य कर्म है ।

पांच अणुव्रतो का आचरण करना **'सयम'** नामक पाचवां आर्य कर्म है।

चारो प्रकार के आहार तथा विषय कषाय का परित्याग करना **अनशन या उपवास** तप है। एकग्रास, दो ग्रास क्रमसे घटाते बढाते हुए चान्द्रायण आदि व्रत करना, भूख से कम भोजन करना **अवमौदर्य या ऊनोदर** तप है। घर, गली, मुहल्ला अथवा अन्य पदार्थो परिग्रह करने वाले आदि की अटपटी आखड़ी करना **व्रतपरिसंख्यान** तप है। घी, तेल, दूध, दही, खाड नमक छह रसो मे से सब रसो का या १–२ आदि रस का त्याग करना **रसपरित्याग** तप है। एकान्त स्थान मे, भूमि, तख्त, खाट आदि सोने आदि का नियम करना **विविक्त शैयासन** तप है। कुक्कुट आसन, खड्गासन आदि आसन लगाकर, प्रतिमा योग आदि रूप से ध्यान करना **कायक्लेश** तप है। ये ६ बहिरग तप है।

व्रत आदि मे कुछ दोष लग जाने पर उसका दड लेना गुरु से और गुरु न होने पर अर्हन्त प्रतिमा के समक्ष स्वय दण्ड लेना **प्रायश्चित्त** तप है। आलोचना प्रतिक्रमण आदि भेद प्रायश्चित के है। सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय धारको का विनय करना **विनय** तप है। आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि व्रती जनो की सेवा करना **वैयावृत्य** तप है। ज्ञानाभ्यास, शास्त्र पढना पढाना, सुनना, पाठ करना आदि **स्वाध्याय** तप है। पापो को बाहरी तथा अन्तरग से छोडना **व्युत्सर्ग** तप है। पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ये ध्यान करने की चार पद्धति हैं उसके अनुसार चित्त को एकाग्र करना **ध्यान** तप है। ये ६ अन्तरङ्ग तप है। इस तरह ६ बहिरग, ६ अतरग—समस्त १२ तप है। इनमे से प्रतिमा योग के सिवाय अन्य समय **कायक्लेश** तप गृहस्थ के लिए निषिद्ध है।

जिन स्त्री पुरुषो मे देव शास्त्र गुरु की विनय भक्ति, ज्ञान का अभ्यास, शास्त्र स्वाध्याय, दान शक्ति अनुसार व्रत नियम आदि नही है वे मनुष्य शरीर पाकर भी पशुओ के समान है।

ज्ञानद सत्परिणामं। दानद रूचि समय भक्ति तत्वविचार।
जैनंगिविल्लादिर्दोडे। मौन दोळुण्वंते पशुवेदनेय निदाना।१३२।

अर्थ—जिस जैन धर्मानुयायी स्त्री पुरुष को विवेक नही, दान देने मे रुचि नही, देव शास्त्र गुरु की भक्ति नही, तत्व का विचार नही, वह मौन पूर्वक घास चरने वाले पशुओ के समान हैं।

क्षत्रिया द्विविधा ॥२९॥

अर्थ—क्षत्रिय के दो भेद हैं १ जाति क्षत्रिय, तीर्थ क्षत्रिय। ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारवर्ण हैं। इनमें से क्षत्रिय वर्णमें जन्म लेने वाले की **जाति क्षत्रिय** है। तीर्थङ्कर, नारायण, बलभद्र चक्रवर्ती आदि महान पराक्रमी क्षत्रिय**तीर्थ क्षत्रिय** होते हैं।

भिक्षुश्चतुर्विधः ॥३०॥

अर्थ—भिक्षु चार प्रकार के है—१ यति, २ मुनि, ६ अनगार, ४ देव-ऋषि (ऋषि)।

यतयो द्विविधाः ॥३१॥

अर्थ-यति के दो भेद हैं-१ उपशम श्रेणी आरोहक (उपशम श्रेणी चढ़ने वाले), २ क्षपक श्रेणी आरोहक (क्षपक श्रेणी पर चढने वाले)।

मुनयस्त्रिविधाः ॥३२॥

अर्थ-मुनि तीन प्रकार के है-१ अवधिज्ञानी, २ मनःपर्ययज्ञानी, ३ केवलज्ञानी।

ऋषयश्चतुर्विधाः ॥३३।

अर्थ-ऋषि चार प्रकार के हैं —१ ऋद्धि प्राप्त ऋषि (ऋद्धिधारी), २ ब्रह्मर्षि, ३ देवर्षि, ४ परर्षि।

तत्र राजर्षयो द्विविधाः ॥३४॥

अर्थ-राजर्षि दो प्रकार के है—१ विक्रिया ऋद्धिधार, ३ अक्षीण ऋद्धिधारी

ब्रह्मर्षि द्विविधः ॥३५॥

अर्थ-ब्रह्मर्षि के दो भेद हैं—१ बुद्धि ऋद्धि धारक, २ औषध ऋद्धि-धारक। अकाश मे गमन करने वाले देवर्षि है। अर्हन्त भगवान परमऋषि है।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रश्चश्च भिक्षुद्यः।
इत्याश्रमास्तु जैनानां सप्तांगाद्दिनिसृताः॥

अर्थ-जैनों के ४ आश्रम है—१ ब्रह्मचारी, २ गृहस्थ, ३ वानप्रस्थ और ४ भिक्षुक। ये सातवे उपासकाध्यय अग से बतलाये गये है। (आश्रमों का लक्षण पीछे लिखा जा चुका है।)

दर्शन प्रतिमा से लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा तक श्रावक के १० भेद है। इनके उत्तरभंग ६६ होते हैं। इसका विवरण अन्य ग्रन्थ से जाम लेना चाहिए।

श्रावक अपने गृहस्थाश्रम चलाने के लिये असिमसि आदि षट् कर्मों से अर्थ उपार्जन करता है, उससे वह जीव हिंसा से बचता रहता है। कदाचित कभी हिंसा उससे हो जावे तो पक्ष अष्टमी, चतुर्दशी आदि को उस दोष को दूर

करने के लिए प्रायश्चित आदि-लेकर शुद्धि करता है। श्रावक स्वच्छन्द वृत्ति से चलकर प्राणि हिंसा नही करते हैं। यदि कभी उन से हिंसा होती है तो उसका प्रायश्चित लेते हैं। यदि कभी गृह-त्याग करने भावना होती है तो पुत्र को, पुत्र न हो तो अपने गोत्र के किसी सदाचारी बालक को दत्तक पुत्र बनाकर उस दत्तक पुत्र को अथवा अन्य भतीजे, भानजे आदि को अपनी समस्त सम्पत्ति सोंपकर उसको अपना उत्तराधिकारी बनाता है। उसको मीठे वचनो से समझाता कि "जिस तरह मैने अब तक धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थो का सेवन किया गृहस्थाश्रम, कुल मर्यादा, जातिमर्यादा तथा धर्ममर्यादा का पालन किया उसी तरह तू भी करना।" इस तरह समझा कर आप घर छोड मुनियो के चरणो में जाकर दीक्षा ले, धर्म सेवन करे।

मरण-निमित्त-ज्ञान

दाहिनी आख की पुतली को सूर्य और बायी आंख की पुतली को चंद्र कहते हैं। दोनो नेत्रो (आखो) के ऊपरी निचलो पलको के नेत्र को दो दो भाग कहते हैं।

१—बायी आँख (चन्द्र) केऊपरी पलकको उगली से दबाने पर यदि नीचे की वस्तुए दिखाई न पडे तो समझना चाहिए कि छह मास के भीतर मृत्यु होगी।

२—यदि उगली से नीचे की पलकें दबाने पर ऊपर की ज्योति काम न दे यानी—ऊपर की वस्तुए दिखाई न दे तो समझना चाहिए कि तीन मास मे मृत्यु होगी।

३—बांयी आख के प्रारभिक भाग (नाक के निकट) दबाने पर कान की ओर दिखाई न दे तो दो मास मे मृत्यु होने की सूचना है।

४—यदि उस आख के अतिम भाग (कान की ओर से) को दबाने पर नाक की ओर ज्योति दिखाई न दे तो एक मास मे मृत्यु समझनी चाहिये।

५—सूर्य आँख (दाहिनी आख) के ऊपरी पलक को दबाने पर नीचे ज्योति दिखाई न पडे तो समझना चाहिये कि १५ दिन मे मृत्यु होगी।

६—उसी नेत्र के नीचे के पलक को दबाने पर ऊपर की ज्योति न दीख पडे तो आठ दिन मे मृत्यु होगी।

७—उसी नेत्र के अतिम भाग (कान के पास वाले) को दबाने पर कान की ओर ज्योति दिखाई न दे तो ६ दिन मे मृत्यु होगी।

८—इस नेत्र के मूल भाग (नाक के पास) को दबाने पर कान की ज्योति यदि दिखाई न दे तो एक दिन आयु शेष रही समझनी चाहिये।

श्री खंड निमित्त ज्ञान —

सुचिर वृत्त होकर श्री भगवान पारसनाथ तीर्थङ्कर को अभिषेक और आठ द्रव्यो से पूजा करके दाहिना हाथ शुक्ल पक्ष और बांया हाथ कृष्ण पक्ष करके इस प्रकार से अपने मन मे कल्पना करके दोनो हाथों में गोमूत्र लगाकर बाद मे गरम पानी और दूध से धो डाले। इसके पश्चात् ठण्डे पानी से साफ धो लेना चाहिए। एक-एक अंगुली मे तीन-तीन रेखा की गिनती से पांच अगुली मे १५ रेखा होती है। अंगूठे के पहले पर्व से लेकर कनिष्ठ अंगुली के पर्व तक पाच सात वार पंच नमस्कार से प्रत्येक मे सात-सात वार अभिमत्रित करके लगाया हुआ चदन सूखने तक ठहर कर अंगूठे के पहले पर्व की प्रतिपदा आदि गिनती करने से १५ पोटो मे उसके कही पर काला दाग दिखाई दे तो उसी दिन उनकी मृत्यु समझना चाहिए। कर्म से गिनती करने पर जिस गिनती मे पर्व का गिनते वह बिन्दी किस पर्व पर आयेगा जिस पर आवे इतना ही दिन उनके समाधि का दिन समझना चाहिए। जैसे कहा भी है।

लक्ष्यं लक्षण् लक्षितेन मनसा सम शुद्ध भानोज्वेले।
क्षीरा दक्षिरा पश्चिमोत्तरंपुरे षटत्रिद्विम सैककम् ॥
छीद्र पश्यति मध्यमे दश दिनम् धूमाकुलं तद्दिनम्।
कृष्ण सप्तदिनं सकंपनमथ.पक्षे बिनिदृश्ताम् ॥१९॥

चन्द्र और सूर्य के निमित्त ज्ञान.—

भगवान श्री शान्तिनाथ तीर्थङ्कर को यथा विधि पूर्वक अभिषेक करके इस गंदोदक को प्रकाश मे रखकर चन्द्र या सूर्य को उसी रखे हुए गदोदक चंद्र या सूर्य को दक्षिण मुख होकर के देखना चाहिए। दक्षिण दिशा के तरफ यदि चन्द्रमा या सूर्य हानि दिखाई देता हो तो ६ माह उनकी आयु समझना चाहिए। यदि पश्चिम दिशा मे मलीनता दिखाई पडे तो तीन मास की उनकी आयु समझना चाहिए। यदि उत्तर दिशा मे मलीनता दिखाई पडे तो २ महीना और यदि पूरब मे मलीनता दिखाई पडे तो १ मास की उनकी आयु समझना चाहिए।

यदि बीच मे छिद्र दिखाई पडे तो १० दिन आयु समझना चाहिए।

यदि कापते हुए दिखाई पडे तो १५ दिन समझना चाहिए दोनों चन्द्र सूर्य बिम्ब काला दिखाई देता हो तो उनकी आयु सात दिन का समझना चाहिए

वृक्ष छाया आदि निमित्त ज्ञान —

वृक्ष की छाया देखने वाले को यदि उसी छाया मे वृक्ष की डालो टूटी हुई तथा भूत पिशाचादि दिखाई पडे तो १० मास की आयु समझनी चाहिए ।१।

यदि सूर्य को देखने पर उसकी किरणें न दिखाई दे और अग्नि को देखने पर उसकी किरणे न दिखाई पडें तो उसकी आयु ११ मास समझना चाहिए ।२।

मूत्र और मल चादी और स्वर्ण के रग के समान यदि दिखाई पडे तो, और स्वप्न मे अथवा मन मे कोई एक आदमी दिखाई पडे तो ९ मास उसकी आयु समझना चाहिए ।३।

शरीर स्वस्थ होने पर भी यदि क्षीण दिखाई पडे तो, या अपने मन मे कोई अमुक काम करने की इच्छा होने पर भी यदि दूसरा काम शुरू करदे तो उसकी आयु आठ मास की समझना चाहिए ।४।

जाते हुए व्यक्ति को देखने पर यदि जाने वाले व्यक्ति का पाव कटा हुआ दिखाई पडे तो ७ मास की आयु समझना चाहिए ।५।

यदि काक दोनो पखो से मारे तो अथवा बालू की वर्षा दिखाई पडे तो, या अपनी छाया न मालूम होकर उसके विपरीत दिखाई पडे तो ६ मास उसकी आयु समझना चाहिए ।६।

यदि काक सिर के ऊपर बैठा हुआ दिखाई पडे तो, अथवा मास खाने वाला पक्षी उसके ऊपर बैठा हुआ दिखाई पडे तो उसकी आयु ५ मास की समझना चाहिए ।७।

यदि दक्षिण दिशा मे बादल नही होते हुए भी बिजली दिखाई पडे तो, अथवा पानी के अन्दर इन्द्र धनुष दिखाई पडे तो उसकी आयु चार मास समझना चाहिए ।८।

यदि स्वप्न मे चन्द्र और सूर्य के अन्दर छिद्र होकर दिखाई पडे तो उसकी आयु तीन मास की समझना चाहिए ।९।

शरीर का वास मुर्दे के दुर्गन्ध ऐसा आभास हो, अथवा दात गिरकर पडे मालूम हो तो, अथवा गर्म पानी ठडा दिखाई पडे, या शरीर कोयले के समान रहे तो उसकी आयु दो मास की समझना चाहिए ।१०।

यदि पानी ऊपर से अपने शरीर पर गिर पडे अथवा यदि कोई व्यक्ति

पानी से मारे या सबसे पहले स्पर्श अथवा हृदय मे लगे तो उसकी आयु१ मास की समझना चाहिए ।११।

गर्म पानीसे नहाये अथवा न नहाये यदि सिर पर से धुआ निकले तो उसकी आयु १ मास की समझना चाहिए ।१२।

दर्द हुये बिना अथवा कुछ न गिरने पर भी यदि आख से पानी निकले अथवा आख निकल कर गिर जाये ऐसा प्रतीत हो, या कान सिकुड़ गया हो तो अथवा नाक मुड़ी हुई मालूम पडे तो उसकी आयु १ मास की समझना चाहिए ।१३।

दोपहर के समय अपनी छाया सूर्य के ऊपर दिखाई पडे तो १२ मास आयु समझना चाहिए ।१४।

पानी अथवा शीशी मे यदि अपनी छाया नही दिखाई पडे तो, अथवा मस्तक दो दिखाई पडे तो उसकी आयु ११ दिन की समझना चाहिए ।१५।

मुख निस्तेज दिखाई पडे और शरीर मे दुर्गंध अथवा कमल के समान गन्ध, अथवा देवदारु गन्ध अगर गन्ध ऐसी सुगन्ध मालूम पडे तो, अथवा चन्द्र, मण्डल की कान्ति निस्तेज दिखाई पडे तो उसकी आयु १७ दिन की समझनी चाहिए ।१६।

बिना कारण शब्द निकल पडे तो, अथवा बर्तन के टूटने का शब्द सुनाई पडे किन्तु दूसरे को वह शब्द न सुनाई पडे अथवा बिना कारण हृदय व्याकुल हो या मूत्र-मल अपने खाने ऐसा प्रतीत हो और मल, मूत्र का निरोध हो गया हो तो उसकी आयु आठ दिन की समझनी चाहिए ।१७।

घर के दरवाजे के पास से निकलते समय मे शरीर मे दर्द मालूम पडे और अन्दर जाने के समय मे दर्द मालूम पडे और मर्म स्थान मे दर्द मालूम हो अथवा अपने शरीर मे कोई पानी से मारे और यह अपने को न प्रतीत हो कि कच्चा पानी है या पक्का पानी तो, उसकी आयु सात दिन की समझनी चाहिए ।१८।

जीभ काली और सूक्ष्म दिखाई पडे तो, और बार-बार जंभाई आवे तो उसकी आयु चार दिन की समझनी चाहिए ।१९।

यदि कान में शब्द सुनाई न पडे तो उसकी आयु दो दिन की समझनी चाहिए ।२०।

इस प्रकार सलेखना करने वाला गृहस्थ इन मरण-चिन्हों को देख लेता है। यहा पर कुछ कानडी श्लोक पुस्तक के विस्तार भय से

छोड़ दिये गये है। अब आगे सलेखना किस-किस अवसर में की जाती है। इसका वर्णन किया जाता है —

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसिरुजायाञ्व निःप्रतीकारे।
धर्मायतनु विमोचन-माहु सलेखना मार्याः ॥१॥

अर्थ—अर्थात् उपसर्ग दुर्भिक्ष वृद्ध अवस्था असाध्य रोग के हो जाने पर जो धर्म के लिए शरीर छोडा जाता है अर्थात् निश्चय और व्यवहार धर्म से आत्मा मे लीन होकर शरीर को छोडना ही सलेखना है और यही शरीर छोडने का फल है। ऐसी निश्चय समाधि-विधि (मरण करने की विधि) श्री सर्वज्ञ देव ने कही है।

विषयेयन रमशख्य भयसत्तम् गहत् सपतम् ग१ग संकिलेस सेकल्लेसोद।

उस्साहरणन् निरोदधौ क्षिज्जयेआऊ २

अर्थ—कदली घात से जो मरण होता है उसे अकाल मृत्यु या मरण कहते है। जैसे कि रक्त का क्षय हो जाने से, भय के कारण, शस्त्र प्रहार के कारण अथवा अधिक सक्लेश के कारण, श्वास के निरोध होने के कारण, आहार निरोध के कारण, जल मे डूबने के कारण, अग्नि दाह के कारण, इत्यादि कारणो से जो मरण होता है इसको कदलीघात मरण कहते हैं। इसके अतिरिक्त आयु कर्म का क्रमश क्षय हो जाने पर जो मरण होता है। उसे सविपाक मरण कहते हैं। अव आगे मरण के भेद को वतलाने के लिए सूत्र कहते है -

मरणं द्वित्रिचतुःपंचविधवा॥३६॥

अर्थ - मरण दो तीन चार अथवा पांच प्रकार का है।

१ नित्य मरण और स्तद्भव मरण यह दो प्रकार का है।

१ भक्तप्रत्याख्यान मरण, २ इगिनी मरण, ३ प्रायोपगमन मरण, इस प्रकार मरण के तीन भेद है।

१ सम्यत्व मरण, २ समाधि मरण, ३ पडित मरण और ४ वीर मरण प्रकार से मरणके चार भेद हैं।

१ वाल वाल मरण, २ वाल मरण, ३ वाल पडित मरण, ४ पडित मरण ५ पडित २ मरण इस प्रकार पडित मरण के पाच भेद है।

आगे इस मरण का पृथक् रूप से कथन निम्न भांति है (१) पूर्वो-पार्जित आयु कर्म की स्थिति पूर्ण करके जो मरण होता है वह नित्य मरण

है, इसे आवीचि मरण भी कहते है। जैसे तालाब के चारो ओर से बन्धा हुआ पानी यथाक्रम झरते-झरते काल क्रम से समाप्त हो जाता है, तथैव जीव गर्भाधान से लेकर आयु के अन्त तक क्रमश: आयु कर्म की स्थिति दिन प्रतिदिन घटते २ पूर्ण हो जाती है, यह आवीचि मरण है।

जन्मान्तर प्राप्ति होने वाला मरण तद्भव-मरण है।

शारीरिक वैय्यावृत्ति के साथ होने वाला समाधि मरण भक्त प्रत्याख्यान है।

स्वपरअपेक्षा से वैय्यावृत्ति के बिना, स्वय अपनी अपेक्षा भी न रखते हुए जो समाधि मरण होता है, वह इंगिनी मरण है।

स्वपर वैय्यावृत्ति की अपेक्षा से जो मरण किया जाता है, यह भक्त-प्रत्याख्यान मरण है। प्रायोपगमन मरण का अन्यत्र वर्णन है।

(१) वात पित्त श्लेष्मादि शारीरिक दोषो से अति संक्लेश होने पर भी स्वधर्म और स्व-स्वभाव मे अरुचि आदि न करके स्वधर्म और स्वभाव मे तल्लीन होकर जो मरण होता है, वह सम्यक्त्व मरण है।

(२) सासारिक कारणो से निवृत्ति-पूर्वक शारीरिक भार को त्याग करना समाधि मरण है।

(३) निवृत्ति-पूर्वक, स्वात्मतत्व भावना-सहित शरीर का त्याग कर देना पडित मरण है।

(४) धैर्य्य और उल्लास के साथ, भेद-विज्ञान-पूर्वक शरीर त्याग करना वीर मरण है।

(१) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक चारित्र, और तप इन चार आराधनाओ से रहित मिथ्यादृष्टि जीव का जो मरण होता है, उसे बाल-बालमरण कहते है।

(२) सम्यग्दर्शन आराधना से युक्त जो असयत सम्यग्दृष्टि का मरण होता है, उसे बाल-मरण कहते है।

(३) सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा एक देशचारित्र धारण करके जो देशव्रती मरण करता है, उसको बाल पडित मरण कहते है।

(४) सम्यग्दर्शनादि चारो प्रकार की आराधनाओ सहित निरतिचार पूर्वक महाव्रती का मरण, पडित मरण है।

(५) उसी भव मे कर्मक्षय करके समय मात्र मे लोकाग्रवासी होने वाले मरण को पडित-पडित मरण कहते है।

(१) सायुमरण (२) निरायुर्मरण, इस प्रकार भी दो भेद है।

आयुकर्म की वर्तमान स्थिति विनाश होते ही, जन्मान्तर के कारण भूत जन्मान्तरबंध मनुष्य आदि आयु स्थिति के योग्य, ससारी जीवो का मरण; सायुर्मरण है।

इसके भी दो भेद है, (१) निर्गुण सायुर्मरण (२) सगुण सायुर्मरण। यति धर्म और श्रावक धर्म मे उत्तरोत्तर आचरणपूर्वक अत्यन्त विशुद्ध चारित्र सहित होने वाले मरण को सगुणसायुर्मरण कहते है।

यति धर्म और श्रावक धर्म दोनो प्रकार की धार्मिक भावनाओ से शून्य जो मरण होता है उसे दुर्मरण यानी निर्गुण सायुर्मरण कहते हैं।

वर्तमान तथा भावी जन्म के सम्पूर्ण आयुकर्म को इगिति करके, केवल-ज्ञानपूर्वक निर्वाण पद प्राप्त करने को निरायुर्मरण कहते है।

अब सल्लेखना की विधि का वर्णन करते हैं।

समाधि मरण के इच्छुक दिव्य तपस्वियो के लिए जिनागम मे यह आदेश है कि समाधि मरण की विधि से परिपूर्ण ज्ञानी, अत्यन्त चतुर आचार्य, यदि पाच सौ कोस दूर हो, तो उन आचार्यदेव के निकट, मन्द-मन्द गति से ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक पहुचे। अपने समस्त दोपो को प्रगट करते हुए, आत्मनिन्दा, गर्हणा आदि आलोचना करके, अपने दोपो की निवृत्ति के लिए, उनके द्वारा दिये हुये प्रायश्चित्त को लेकर, अन्त मे शारीरिक रोग और दुर्वलता आदि देखकर वह आचार्य, समाधि-मरण के इच्छुक तपस्वी की शेष आयु के समय को जान लेते है, पश्चात् वे सुचतुर आचार्य अपने मन मे विचारते हैं कि "यह अपने कल्याण के लिए इच्छुक है, अत इस भव्य को समाधि-मरण करादेना चाहिए। इस प्रकार सोच समझकर चार प्रकार के गोपुर सहित समचतुष्क एक आराधना मण्डप, गृहस्थो के द्वारा तैयार करवाते हैं, इसके बीच मे, शुद्ध मिट्टी के द्वारा समचतुष्क अर्थात् चौकोर वेदी तैयार कर, पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर वीतराग सर्वज्ञ देव की मूर्ति को, पूजा अर्चना-पूर्वक स्थापित करके वेदी मे समाधि के इच्छुक उस तपस्वी को, उस प्रतिमा के निकट मुख करके, पर्यङ्क अथवा एक पार्श्व पर विठाकर, तोरण, भाति-भाति की ध्वजाए, चन्दन, काला-गुरु, दीप धूप, भृगार कलश दर्पण, अठारह धान्य, मादल फल (विजौरा) तीन छत्र, चँवर आदि मगल द्रव्यो से पुण्य धाम को सुशोभित करे फिर अभीष्ट श्री भगवज्जिनेन्द्र देव के अभिपेक पूर्वक, पूजा अर्चादि से महान आराधना के पश्चात् आचार्य अपने सघ के निवासियो को बुलाकर मण्डप के पूर्व द्वार पर प्रथमानुयोग को पढते हुए, सात मुनियो को नियुक्त कर देते है। इसी भाति

दक्षिण द्वार पर करणानुयोग पढते हुए सात मुनियो को नियुक्त कर देते है। इसी तरह पश्चिम द्वार पर चरणानुयोग पढते हुए सात मुनियों को नियुक्त कर देते है, इसी प्रकार उत्तर द्वार पर द्रव्यानुयोग पढते हुए सात मुनियो को नियुक्त कर देते है। तत्पश्चात् वह आचार्य समाधिप्रिय उस मुनिराज के पास आकर इस प्रकार आदेश देते है कि तुम चारो प्रकार की आराधनाओ को पढते रहो, इसके पश्चात् सात मुनियो को आदेश देते हैं कि तुम लोग चारो आराधनाओ को उनके पास पढते रहो, इस प्रकार उनको नियत कर वाद मे समाधि के इच्छुक मुनि को पथ्यपान आदि को देते हुए उनके मल मूत्र को निर्विन्घ-पूर्वक वाहर निकालने के लिए पुकार के सात मुनियो को नियुक्त कर देते हैं। तत्पश्चात् चारो दिशाओ का अवलोकन करने के लिए गाव के वाहर जाकर, क्षाम, डामर, परिचक्र, देश, काल, राष्ट्र, ग्राम, राज्यादि की स्थिति, सुस्थिति देखकर, अपने मन मे उन दोनो की परिस्थिति को ठीक विचार कर, उपर्युक्त कथनानुसार उसकी देखभाल करने के लिए दो मुनियो को नियुक्त करते है। पश्चात् समाधि के इच्छुक मुनि के पास समाधि मरण की विधि जानकार एक मुनि को नियुक्त कर देते हैं। फिर षोडश भावनाए, चौतीस अतिशय को, परम चिदानद स्वरूप वीतराग निर्विकल्प समाविस्वरूप को सभी मुनिजन सुनाते रहते हैं, उसको वह उपयोग पूर्वक सुनते हुए, प्रयत्न पूर्वक गुरु निरुपित क्रम से शरीर को त्याग करूं, ऐसी भावना करता है। जैसे नौकर को जहा तहा नियुक्त कर देते है, वैसे ही आचार्य देव अपने शिष्य मुनियो को उनकी वैय्यावृत्ति अथवा चारो अनुयोग पढने के लिए नियुक्त कर देते हैं। इसके वाद वरअपनी इच्छापूर्वक गत्यन्तर होने वाले मरण को करता है, इस तरह के मरण को भक्त प्रत्याख्यान मरण कहते है।

नो कर्म, द्रव्य कर्म और भाव कर्म इन तीनो कर्मों से रहित सहज शुद्ध केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणो से सहित अभेद रत्नत्रयात्मक वीतराग निर्विकल्पक समाधि रूप समुत्पन्न हुए परमानन्द रूप, स्व-स्वभाव से च्युत न होते हुये समाधि मे रत रहते हैं। इस प्रकार समाधि मे रत हुए मुनि के शरीर मे कदाचित् शीत हो जावे तो शीत की वाधा को दूर करने के लिए उपचार तथा ज्यादा उष्ण हो जाने पर शीत की जाती है। अपने को जो इष्ट हो पल्यक-आसन, मुक्तासन, या शय्या-आसन इनमे से कोई भी आसन निश्चय करके तत्कालोचित सम्पूर्ण क्रिया को करके तत्पश्चात्

निष्क्रिया-रूप शुद्धात्म भावना मे अपने मन के परिणाम को प्रयत्न-पूर्वक आकर्षित करते हुए स्वपर-वैय्यावृत्ति की अपेक्षा न रखकर शरीर भार को छोडना इगिनी मरण है।

१ पर्य्यकासन, २ एक पार्श्वासन, ३ पादोपादान, इन तीनो मे से किसी एक आसन को नियत करके चतुर्विंशति तीर्थंकरके गुणस्तवन, रूपस्तवन, और वस्तुस्तवन करते हुए आलोचना, प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त नियमादि दण्डको मे अपने वचन को स्थिर करके दर्शन विशुद्ध यादि षोडश भावनाओ को भाते हुए देव मनुष्य, तिर्यंच इन तीनो से होने वाले चेतनोपसर्ग, अशनिपात (अग्निपात) शिलापात, वज्रपात, भूपात, गिरिपात, वृक्षपात, वज्राग्नि दावाग्नि, विषभूमि, (नदी की बाढ) नदी पूर, जल वर्षण, शीतवात आतप इत्यादि से होने वाले अचेतनोपसर्ग और प्रबल अग्निपुटपाक से गलते हुए निर्मल कान्ति युक्त सोने के समान परम उपशान्त होते हुए निज परमात्म स्वरूप मे अपनी परणति को अविचल वृत्ति से रखते हुए सम्यक सन्यसन रूप वीर शय्यासन को स्वीकार करके परवैय्या वृत्ति की अपेक्षा बिना शरोर परित्याग करने को प्रायोपगमन मरण (प्रायोग मरण) कहते है। इन तीन प्रकार के मरण को पण्डित मरण कहते है।

तद्भव अर्थात् उसी भव मे समस्त कर्मो को क्षय करके समय मात्र मे लोकाग्रनिवासी होने वाले जीवो के मरण को पडित मरण कहते है। अथवा पूर्व जन्म मे बधी हुई आयुकर्म की स्थिति विनाश को मरण कहते है। स्नेह, वैर, मोह आदि सब परिग्रह त्याग कर, बन्धु जन से क्षमा याचना करके, नि शल्य भाव से परस्पर क्षमा करते हुए, प्रिय वचन से समाधान पूर्वक, बन्धु जनो की सम्मति से, अपने गृह से बाहर निकलकर, मुनिजन के निवास मे जाकर, अपने समस्त दोषो को आलोचन करके, शुद्धान्तरग हो आमरण महाव्रत धारण करके, गुरु की अनुमति से चारो आराधना पूर्वक सस्तरण पर बैठकर पेय पदार्थ को छोड बाकी तीनो प्रकार के, आहारो को त्याग करके प्रत्याख्यान पूर्वक स्निग्धपान खरपान दोनो मे से किसी एक का परिणामो की शान्ति निमित्त पान करे फिर आत्म शक्ति के विकास होने पर इस का भी त्याग कर देते है। इस प्रकार निरवधि प्रत्याख्यान रूप उपवास धारण करते हुए पच परमेष्ठी को स्वात्म स्वरूप मे स्थापित कर, मन को अपने अधीन कर सब प्रयत्न से, शीत, उष्ण, दशमशम आदि परिषह को सहन करके दृढ पर्य्यंकासन से बैठकर, मुनि जनो के द्वारा पठित णमोकार मत्र आदि को सुनते हैं। मत्र इस तरह है

पण तीस सोल छप्पण, चदुदुग मेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णच्च गुरूवएसेन ॥४॥

अरिहंता अशरीरा, आइरिया तह उवज्झाया मुणिणो ।
पढमक्खरनिप्पण्णो, ओंकारो पंच परमेट्ठी ।।५।।
अरहंत सिद्ध आइरिया, ऊवज्झायसाधु पंच परमेट्ठी ।
ते विहु चेत्तइ अदे तम्मा आराहुमे शरणं ।।६।।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं, इस पच नमस्कार मंत्रके सर्वाक्षर ३५, अरिहंत, सिद्ध, आइरिया, उव ज्झाया, साहू इन सोलह अक्षरों को, "अरहंत सिद्ध" ऐसे छै अक्षरो को "अ सि, आ उ सा' इन पाच अक्षरो को "अ सि सा हू" इन चार अक्षरो को "आ सा" इन दो अक्षरो को, 'अ' अर्हम् "ॐ" इस एकाक्षर को जिह्वा ग्र पर लाकर इस तरह धीरे धीरे भाते हुए, इसकी भावना की शक्ति भी कम हो जाने पर, वाह्य वस्तुओं से उपयोग हटाकर अपने निर्मल स्वरूप को प्राप्त हो, शरीर भार को त्याग करना पडित मरण है ।

पंचातिचाराः ३७।।

अर्थ—जीविताशा, मरणाशंसा, भय, मित्रस्मृति और निदान ये पाच सल्लेखना के अतिचार हैं ।

(१) हम नित्य यह भावना करते रहे कि हमे समाधि मरण हो, यदि यह मरण अभी प्राप्त हो तो अति अच्छा है । अथवा अभी थोड़े दिन जीवित रहने की इच्छा करना और विचारना कि यदि इसी समय मृत्यु हो जाय तो मे क्या करूंगा, यह विचार "जीविताशा" है । २-परीषह होने पर, परीषह सहन मे असमर्थ होते हुए विचारना कि इससे तो मृत्यु हो जाए तो अति अच्छा है इस प्रकार सोच विचार करना मरणाशंसा है ।

३—इह लोक भय, परलोक भय, अत्राण भय, अगुप्ति भय, मरणभय, व्याधि भय, आगन्तुक भय, इस प्रकार सातो भयों से भयभीत होना सल्लेखना मे भयातिचार है । ४—पुत्र, कलत्र, मित्र आदि वन्धुजनो का स्मरण करना, सो मित्र स्मृति है ।

५—इस प्रकार समाधि मरण करके, परलोक और इह लोक में धन, वैभव ऐश्वर्य, आदि प्राप्त होने की भावना करना निदान नामक अतिचार है ।

इस प्रकार समाधि मरण के फल से, सौधर्म आदि कल्पो (स्वर्ग) में इन्द्र आदि पद के सुख सुधा रस को अनुभव करते हुए, मनुष्य भव मे तीर्थंकर चक्रवर्त्यादि पद का अनुभव करके, जिन दीक्षा धारण कर समस्त घाति अघाति कर्म

विनाश करके नित्य, निरामय, निर्मल निर्विकार निजात्मस्वरूप मे लीन रहू, इस प्रकार की भावनाओ से संसार समुद्र से पार हो जाता है ।

इस प्रकार श्रावकाचार का निरूपण हुआ आगे द्वादशानुप्रेक्षा का विवेचन करेंगे ।

सारतरनात्मनतिनिस्सारतर देहमेंम्ब निश्चलमतियिं ।
नारैवडेवे सशगोळ बने धीरं तत्तनुवनुळिवपददोकु पेररं ॥१९४॥

अर्थ—ससार मे एक आत्मा ही सारभूत है और शरीर निस्सार है । ऐसी निश्चल बुद्धि-पूर्वक भावना से शरीर को त्यागने वाला व्यक्ति धीर पुरुष है ॥१९४॥

दूरिसदेनेनेदु कूळु । नीरमन ज्ञानदिंदमिरुळु पगलु ॥
सरतर परम सौख्यसु-। धारस भरितात्मतत्वम नेनेमनदोळ् ॥१९५॥

अर्थ—हे जीवात्मन् ! तू रात दिन अज्ञानवश अन्न-पानादिक खाद्य पेय पदार्थो का ध्यान करके अपनी आत्मा का अध पतन न कर, किन्तु सारतर परम सौख्य सुधारस-भरित आत्म-तत्व का ध्यान कर ॥१९५॥

पट्टिर्के कुळिळ्कॅम । नेट्टने निंदिर्क्केवोडल देंतिदोडेमेण ॥
दिट्ढनिजदल्लि निले हो- गट्टि सर्ने मुक्ति कन्नेगा मुदिमान्पं ॥१९६॥

अर्थ—उठते बैठते, सोते, जगते चलते तथा फिरते समय कभी भी शरीर का ध्यान न करके अपने निजात्मध्यान मे मग्न रहने वाले प्रधान मुनि मोक्ष-रूपी कन्या के अधिपति होते है ॥१९६

सुत्तितोळललासदेमनमं । मत्तदरोळिरलुमियदोय्य ने नंदी ।-॥
चित्तित्व दोळिरिसनिजा । यत निर्वाध बोध सुखमण्पिनेगं ॥१९७॥

अर्थ—अपने मन को वाह्य विषय वासनाओ मे न घुमाकर सदा अपने उपयोग मे स्थिर करके निरावाध केवल ज्ञान होने पर्यन्त स्थिर रहो ॥१९७॥

भाविसु भाविसु भव्य म -। नोवचन शरीरदत्तण मेदिसि चि-॥
द्भावमनेंपिडिद निच्चं । भावनेयिंदल्लदक्कुमे भवनाशं ॥१९८॥

अर्थ—हे भव्य जीव ! मन वचन काय की प्रवृत्ति बाहर की ओर से हटाकर अन्तर्मुख करो, तथा अपने चैतन्य भाव को गहण करो । ऐसा किये बिना ससार की परम्परा नही टूटती ॥१९८॥

द्वादशानुप्रेक्षा:॥३८

अर्थ—वैराग्य जाग्रत करने के लिए चिन्तवन करने योग्य १२ भावनाऐं

है। १ अनित्य, २ अशरण, ३ संसार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६, अशुचि, ७ आस्रव, ८ सवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभ, १२ धर्म, ये १२ बारह भावनाओ के नाम है।

अद्धुवमसरणमेकत्तमण्णत्त संसारलोकमसुचितं ।
प्रासव संवरणिज्जरधम्मं बोहिच्च चित्तेज्जो ।।

घनबुद्भुद सदृशं वे-। वन तनुधनपुत्रमित्र वर्गं ध्रुवम-।।
ल्तनुपम चित्कार्यं ध्रुव । मेनगे निजात्मार्थभोपे निजगुणनिरता ।।

अर्थ—गाव, नगर, स्थान, चक्रवर्ती, इन्द्र, धरणीन्द्र-पद, शरीर, माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि सासारिक पदार्थ इस जीव के लिये अनित्य है। शुद्ध अविनाशी आत्मा ही चिन्तवन करने योग्य है क्योकि आत्मा ही नित्य है। यह **अनित्य** भावना है।

नरकादि चतुर्गतिसं-। सरण जनित दुःख सेवना समयदोळा-।
शरणं निनगे जिन धर्मं । शरणल्लदोडेंदु नेने निज गुण रत्ना ।।२।।

हे जीवात्मन्! मनुष्य, देव, नरक, निर्यञ्च इन चार गतिमय संसार मे जन्म लेने वाले जीव को सदा दुख भोगते समय या मरते समय जल, पर्वत, दुर्ग (किला), देव, मत्र, औषधि, हाथी, घोडा, रथ, सेना तथा धन, सुवर्ण, मकान, स्त्री, पुत्र, भाई आदि कोई भी शरण (रक्षक—बचानेवाला) नही है। केवल पच परमेष्ठी द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म तथा चैतन्य चमत्कार रूप अपना आत्मा ही शरण है। यह **अशरण** भावना है।

जनन मरणादि गतिसं-। जनित सुखासुखमनात्मरुचिवत्सेवा ।।
जनित सुखममृत सुखमु-। मननुभविकुं जीवनोदे निज गुणरत्ना ।।३।।

अर्थ—जन्मते, बढते, मरते समय, शुभ अशुभ कर्म करते समय तथा उन कर्मो का फल भोगते समय, सुख दुख का अनुभव करने के समय केवल सिद्ध भगवान ही सुख शान्ति प्रदान करते है, अन्य माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बन्धुवर्ग कोई भी जोव को सुख शान्ति नही देते, वे तो केवल भोजन करते समय एकत्र हो जाते है। यानी—वे केवल स्वार्थ के साथी है। ऐसा विचार करना **एकत्व** भावना है।

चिदगुणमल गुणनात्म द्रव्य-। दिद भिन्नं समस्तगुण पर्यायं ।।
सदसद्भूत व्यवहार-। दिंद मन्यमेनं पडगु निजगुण निरता ।।४।।

अर्थ—ज्ञान दर्शन सुख वीर्य ही आत्मा के स्वाभाविक गुण है, अत

वे ही आत्मा के साथ सदा रहते है। इनके सिवाय अन्य कोई भी पदार्थ आत्मा के साथ नही रहता इस प्रकार विचार करना **अन्यत्व** भावना है।

जिन वचनंपुसियल्लें- । दुर्नबिदविडदे पंच संसार विद्- ॥
र ननात्म ननादरदिं । नेनेदोडे संसार मुंटे निजगुण निरता ॥५॥

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव, इन पच परावर्तन रूप ससार वन मे, अनादिकालीन वासना से वासित मिथ्यात्व एवं अविरत-रूपी, गहन अन्धकार मे रहने वाले, जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित मार्ग को न देखते हुए, इधर उधर भटकते हुए अज्ञानी जीव-रूपी हिरणो को ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रूपी व्याध (शिकारी) क्रुद्ध होकर घेरते हुए अपने दुर्मोह रूपी वाण से वीधते हैं। वह वाण भीतर घुसते ही उन ससारी जीव रूपी हिरणो को मूर्छित करके नीचे गिरा देता है । तब वह जीव आर्त रौद्र परिणामो से मर कर नरक आदि दुर्गति मे जाते है। इस प्रकार विचार करके स सार से विरक्त होकर व्रतादि आचरण करने वाले जीवो को स्वपर-भेद-विज्ञान तथा निश्चल सहानुभूति रूप रत्नत्रयात्मक मोक्ष रूपी दुर्ग (किला) प्राप्त होता है। ऐसा चिन्तवन करना **संसार** भावना हैं ॥

स्वीकृतरत्नतृतयं- । गाकाशाद्यखिळ वस्तु विरहित निजचि- ॥
ल्लोक मनालोकिसु वदे लोकानुप्रेक्षेयन्ते निजगुण निरना ॥६॥

अर्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये ६ द्रव्य जहा पाये जाते हैं वह लोक है, वह अकृत्रिम है तथा आदि अन्त (काल की अपेक्षा) रहित है। उस लोक के तीन भेद है, ऊर्ध्व, मध्य, अध (पाताल)। नीचे से ऊपर की ओर सात, एक, पाच, एक राजू है, उत्तर दक्षिण मे सब जगह ७ राजू मोटा है। १४ राजू ऊचा है। घनोदधि, घन तथा तनुवातवलयो से वढ़ा हुआ, सब ओर से अनन्तानन्त लोकाकाश के मध्य मे स्थित है। उसके अग्र भाग मे सिद्ध क्षेत्र है। वह सिद्ध-क्षेत्र सर्व कर्म क्षय किये विना किसी को प्राप्त नही होता। इस प्रकार समझ करके उस सिद्ध क्षेत्र मे पहुचने के लिये उद्यम करना चाहिये। ऐसा विचार करना **लोक** भावना है।

शुचियेनिसिद वस्तुगळम- । शुचियेनिकुंमोर्द लोडनेकायमनर्दार ॥
शुचियेनिसदु संहननं- । शुचि निजचित्तत्वमोंदे निजगुणमिरता ।।७॥

अर्थ—रज वीर्य से उत्पन्न, सप्त धातुमय इस शरीर के ९ द्वारो से दुर्गन्धित घृणित मैल बहता रहता है, इसमे अनेक प्रकार की व्याधिया भरी

हुई हैं, यह अनित्य है, एवं जीव के लिये कारावास (जेल) के समान है, गलन पूरण (गलने पूरे होने) स्वरूप है। इस तरह समस्त दुर्गुणो से पूर्ण इस शरीर रूपी घर मे रहते हुए जीव को इसके साथ नष्ट न होना चाहिये। यह शरीर घुने हुए गन्ने के समान यद्यपि नीरस है फिर भी चतुर किसान जिस तरह उस घुने हुए गन्ने को खेत मे वोकर वहुत से मीठे गन्ने पैदा कर लेता है, उसी तरह इस असार शरीर को अविनाशी (मोक्ष) फल पाने के उद्देश से तपस्या द्वारा कृश कर लेना चाहिये। ऐसा विचार करना **अशुचि** भावना है।

भववारिधि पोत्तमना-। स्रवरहितमनात्मतत्वभंभाविसुवं ॥
भवजलधियंदोटने-। सममं सप्तयुतयोगि निजगुणनिरता ॥८॥

अर्थ—जिस प्रकार गर्म लोहे का गोला यदि जल मे रख दिया जाय तो वह अपने चारो ओर के जल को खीच कर सोख लेता है। इसी प्रकार क्रोध मान हास्य शोक आदि दुर्भावों से सतप्त ससारी जीव सर्वाग से अपने निकटवर्ती कार्माण वर्गणाओ को आकर्पित करके अपने प्रदेशो मे मिला लेता है। विभावपरिणति के कारण जीव को यह कर्म आस्रव हुआ करता है। ऐसा विचार करना **आस्रव** भावना है।

परमात्म तत्वसेवा-। निरतं व्रतसमिति गुप्तरूप सकल सं- ॥
वरे युक्तं मुक्तिवधू-। वरनागपिरं विवेक निजगुणनिरता ॥६॥

अर्थ—जीव मे कर्मों के आगमन रूप मिथ्यात्व द्वार को सम्यक्त्व रूपी वज्र कपाट से वन्द कर देना चाहिये तथा हिंसादि पच पाप रूपी कर्म आगमन द्वार को पंच अणुव्रत, महाव्रत, समिति के वज्र-कपाट द्वारा वन्द कर देना चाहिये। इस प्रकार चिन्तवन करना **संवर** भावना है ॥६॥

परम तपश्चरणात्मक। निरंजन ध्यानदल्लि संवरेयिं ॥
निर्जरेयुदोरेकोंडोडेमु-। क्तिरमापतियप्पुदरिदेनिजगुणनिरता ॥१०॥

अर्थ--विभाव परिणति द्वारा आत्म-प्रदेशो मे दूध, जलके समान मिले हुए कर्म रूपी कीचड को व्रत चारित्र से युक्त भेद-विज्ञान रूपी जल से धो डालने का चिन्तवन करना **निर्जरा** भावना है ॥१०॥

अमृत सुख निमत्तं दश-। धर्ममुमनमलगुणरत्नत्रय ॥
धर्ममुमंनेनेवने। निर्मलविवेकिनिजगुण निरता ॥११॥

अर्थ—रत्नत्रय से युक्त ११ प्रकार के गृहस्थ धर्म तथा १० प्रकार के

मुनि धर्म को जीव निरति चार वृत्ति से पालन न करे तो मोक्ष सुख प्राप्त होना असम्भव है । ऐसा समझ कर सदा धर्मानुरागी बने रहना **धर्म** भावना है ॥११॥

कुलकोटियोनिमुख सं- । कुलदोळु जात्यादि बोधि दुर्लभमर्दरि-॥
दलसदेंनेनेदुर्लभ बो- । धिलाममं पडेदु बिडदे निजगुणनिरता ॥
आयदनिजशुद्धरत्न- । त्रययत्नमेलाभमेनलबोधि भाविसुगति ॥
शयनाबोधियनेय्दि सुवदल्लि नि- । श्चयदसमाधियल्लेनिजगुणनिरता
॥१२॥

अर्थ—पृथ्वी जल, वनस्पति आदि अनन्त एकेन्द्रिय स्थावर जीवो से यह लोक भरा हुआ है, उन स्थावर जीवो मे से निकल कर दोइन्द्रिय आदि होना कठिन है, दो इन्द्रियो से विकलेन्द्रिय होना महादुर्लभ है । विकलेन्द्रिय से पचेन्द्रिय जीव का शरीर पाना और भी अधिक कठिन है, पचेन्द्रिय जीवो मे पशु जीवो की सख्या प्रचुर है, अतः पशुओ से मनुष्य-भव पाना महाकठिन है । मनुष्य भी यदि हित अहित विवेक-रहित नीच म्लेच्छ कुल मे जन्म लेते है । आर्यखण्ड के सत्कुल मे उत्पन्न होना कठिन है । अच्छे कुल मे उत्पन्न होकर अल्पायु, असुन्दर, इन्द्रिय-विकलता, पचेन्द्रियो मे लीनता का होना, कुसग, और दरिद्रता सरल है, दीर्घायु, सुन्दर, पूर्णेन्द्रिया, धर्म मे रुचि, सम्पत्ति, सत्सगति मिलना और भी कठिन है । सौभाग्य से यह सब सुयोग मिल भी जावे तो जैनधर्म का सुयोग मिलना महाकठिन है । कदाचित् सत्धर्म का योग भी मिल जावे तो रत्नत्रय की शुद्धता, तत्वश्रद्धा, तप करने का भाव, धर्म भावना, ससार शरीर भोगो से विरक्ति तथा समाधिमरण की एव अत मे बोधि का प्राप्त होना महान दुर्लभ है । इस प्रकार चिन्तवन करना **बोधिदुर्लभ** भावना है ॥१२॥

इस प्रकार गृहस्थ धर्म का सक्षेप वर्णन हुआ ।

यति धर्म

यतिधर्मो दशविधः ॥३९।

अर्थ—मुनियो का धर्म १० प्रकार का है। [१] उत्तम क्षमा, [२] उत्तम मार्दव, [३] उत्तम आर्जव, [४] उत्तम शौच, [५] उत्तम सत्य, [६] उत्तम सयम, [७] उत्तम तप, [८] उत्तम त्याग, [९] उत्तम आकिञ्चन्य, तथा [१०] उत्तम ब्रह्मचर्य ये उन धर्मो के नाम है।

यदि कोई मनुष्य गाली दे, मुक्का लात डडे आदि से मारे, तलवार, छुरा आदि से मारे अथवा प्राणरहित कर दे तो अपने मन मे क्रोध भाव न लाकर, यो विचार करना कि मैं भेदात्मक तथा अभेदात्मक रत्नत्रय का धारक हूँ मुझे किसी ने गाली नही दी, न मुझे मारा, न शस्त्र से घायल किया और न मुझे कोई अपने चैतन्य प्राणो से पृथक् कर सकता है, ऐसी भावना का नाम **उत्तम क्षमा** है।

ज्ञान, तप, रूप आदि आठ प्रकार का अभिमान न करना, अपने अपमान होने पर भी खेद-खिन्न न होना तथा सन्मान होने पर प्रसन्न न होना **मार्दव धर्म** है।

मन वचन शरीर की क्रियाओ (विचार, वाणी और काम) मे कुटिलता न आने देना **आर्जव धर्म** है।

किसी भी पदार्थ पर लोभ न करके अपना मन पवित्र रखना **शौच धर्म** है।

राग द्वेष मोह आदि के कारण झूठ न बोलना **सत्य धर्म** है। सत्य १० प्रकार है—१ जनपदसत्य-भिन्न भिन्न देशो मे बोले जानेवाले शब्दोंका रूढि अर्थ मानना। जैसे पकाये हुए चावलो को '**भक्त**' कहना। २ सम्मतिसत्य-अनेक मनुष्यो की सम्मति से मानी गई बात सम्मति सत्य है, जैसे किसी गृहस्थ को महात्मा कहना। ३ स्थापना सत्य— अन्य पदार्थ मे अन्य को मान लेना जैसे पाषाण प्रतिमा को भगवान मानना। ४ बिना किसी अपेक्षा के व्यवहार के लिए कोई भी नाम रखना **नाम सत्य** है जैसे इन्द्रसेन आदि। ५ **रूप सत्य**—किसी के शरीर के चमडे का काला गोरा आदि रग देखकर उसे गोरा या काला आदि कहना। ६ अन्य पदार्थ की अपेक्षा से अन्य पदार्थ को लम्बा, बड़ा छोटा आदि कहना **प्रतीत्य सत्य** है। ७ किसी नय की प्रधानता से किसी बात को मानना **व्यवहार सत्य** है जैसे आग जलाते समय कहना कि मै रोटी बनाताहू। ८ सभावना (हो सकने) रूप वचन कहना **संभावना सत्य** है। जसे इन्द्र जम्बू द्वीप को उलट सकता है। ९ आगमानुसार अतीन्द्रिय बातो को सत्य मानना **भाव सत्य** है। जैसे उबाले हुए जल को प्रासुक मानना। १० **उपमा सत्य** किसी की उपमा से किसी बात को सत्य मानना। जैसे गढे मे रोम भरने आदि की उपमा से पल्य-सागर आदि का काल प्रमाण। यह १० प्रकार का सत्य है।

मन वचन काय की शुद्धि द्वारा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार

का कष्ट नही देना **संयम धर्म** है। सयम धर्म को निर्मल रखने के लिए भाव-शुद्धि, शरीर शुद्धि, विनय शुद्धि, ईर्यापिथ शुद्धि, प्रतिष्ठापन शुद्धि, शयन सन शुद्धि वाक् शुद्धि तथा भिक्षा शुद्धि ये आठ प्रकार की शुद्धिया हैं।

अनशनादिक बहिरङ्ग तथा प्रायश्चित्त आदि अन्तरङ्ग तपो का आचरण करना **तप धर्म** है।

कः पूरयति दुःपूरमाशागर्तं चिरादहो।
चित्रं यत्क्षणमात्रेण त्यागेनैकेन पूर्यते ॥२२॥

अर्थ—कठिनाई से पूर्ण होने वाले इस आशा-रूपी गढे को संसार मे कौन पूर्ण कर सकता है? अर्थात् कोई भी नही। किंतु यह बडे आश्चर्य की बात है कि एक त्याग धर्म के द्वारा ही वह आशा का खड्डा क्षण-मात्र मे पूर्ण हो जाता है।

जिस तरह हजारो नदियो के जल से समुद्र की तृप्ति नही होती, असंख्य वृक्षो की लकडी से जिस तरह अग्नि तृप्त नही होती, इसी प्रकार संसार के समस्त पदार्थो से भी मनुष्य की तृष्णा शान्त नही होती। ऐसा विचार करके परमाणु मात्र भी पर-पदार्थ अपने पास न रखकर उनका त्याग कर देना **त्याग धर्म** है।

अन्य पदार्थों की बात तो दूर है, अपना शरीर तथा शरीर से उत्पन्न हुआ पुत्र पौत्र आदि परिवार भी आत्मा का अपना नही है, ऐसा विचार करके किसी भी पदार्थ मे ममत्व भाव न रखना **आकिञ्चन्य धर्म** है।

छक्करण चउविहिंदिकदकारिद अणुमोदय चेव
जोगे छगघणमेत्तो बम्भाभगाहु अक्खसंचारे ॥८॥

अर्थ—स्त्री, देवी, मादा पशु (तिर्यंचिनी) तथा अचेतन स्त्री (मूर्ति चित्र आदि) ४ प्रकार की स्त्रियो से स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कर्ण तथा मन इन ६ इन्द्रियो द्वारा, कृत, कारित, अनुमोदना तथा मन वचन काय योगो द्वारा (यानी ६ इन्द्रिय × ३ योग × ३ कृत कारित अनुमोदना = ५४ भगों द्वारा × ४ प्रकार की स्त्रिया = २१६) विषयवासना का त्याग करके अपने आत्मा मे रत रहना **ब्रह्मचर्य** धर्म है।

अष्टाविंशतिर्मूलगुणाः ॥४०॥

अर्थ—मुनियो के २८ मूलगुण होते है। ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रिय विजय, ६ आवश्यक, सात शेष गुण—१ स्नान का त्याग, २ दन्त धावन का

त्याग, ३ वस्त्र त्याग, ४ पृथ्वी पर सोना, ५ दिन में एक बार भोजन, ६ खड़े होकर भोजन करना और ७ केश लोच, ये उन मूलगुणों के नाम हैं। मुनि चारित्र के मूल कारण ये २८ प्रकार के व्रत होते हैं।

५ महाव्रत

स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कर्ण, मन बल, वचन बल कायबल, आयु और श्वासो च्छ्वास ये ससारी जीव के १० प्राण हैं इनको मन वचन काय, कृत कारित, अनुमोदन, सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ तथा क्रोध मान माया लोभ, चारो कषायो के १०८ भगो (३ योग × ३ कृतकारित अनुमोदन × ३ सरम्भ समारम्भ आरम्भ × ४ क्रोध मान माया लोभ = १०८) से घात न करना **अहिंसा महाव्रत** है।

किसी काम को स्वयं करना **कृत** है, अन्य किसी के द्वारा कराना **कारित** है, किसी के किये हुए कार्य की सराहना (प्रशसा) करना **अनुमोदना** है। किसी कार्यको करने का विचार करना **संरम्भ** है, कार्य करने की साधन-सामग्री जुटाना **समारम्भ** है तथा कार्य करनेका प्रारंभ करना **आरम्भ** है। इनके भंग निम्न प्रकार से बनने हैं—

[१] मन कृत संरम्भ, [२] मन कृत समारम्भ, [३] मन कृत आरम्भ, [४] मन कारित संरम्भ, [५] मन कारित समारम्भ, [६[मनकारित आरम्भ, [७] मन अनुमोदन संरम्भ, [८] मन अनुमोदन समारम्भ, [९] मन अनुमोदन आरम्भ। ये ९ भग एक **मन योग** के हैं। इसी प्रकार ९ भग वचन के हैं, ९ भग काय के हैं। इस तरह तीनों योगो के २७ भंग होते हैं। ये २७ भंग क्रोध, मान, माया लोभ प्रत्येक कषाय के कारण हुआ करते हैं, अतः चारों कषायो के आश्रय से समस्त भग १०८ होते है। ये १०८ भंग अनन्तानुबन्धी कषाय के है, इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन कषाय के भी १०८-१०८ भग होते हैं, अत चारो प्रकार की कषायों के आश्रय समस्त ४३२ भग होते है।

इस प्रकार हिंसा के भेद प्रभेदो को समझकर समस्त हिंसा का त्याग करना **अहिंसा महाव्रत** है।

राग द्वेष के कारण होने वाले असत्य भाषण का त्याग करना **सत्य महाव्रत** है।

जल मिट्टी आदि पदार्थ भी विना दिये ग्रहण न करना **अचौर्य महाव्रत** है।

ससार की समस्त स्त्रियो, देवियो आदि से २१६ प्रकार के अतिचार सहित विषयवासना का त्याग करना **ब्रह्मचर्य महाव्रत** है। २१६ अतिचार पीछे ब्रह्मचर्य धर्म के स्वरूप मे बतला चुके हैं।

दश प्रकार का बहिरग और १४ प्रकार अन्तरङ्ग परिग्रह त्याग कर अणुमात्र भी पर-पदार्थ ग्रहण न करना **अपरिग्रह** महाव्रत है।

जिस मार्ग पर मनुष्य, हाथी, घोडे, गाय, बैल आदि पशु चलते रहते हो ऐसे मार्ग पर चार हाथ आगे की भूमि देखकर चलना **ईर्या समिति** है।

काम कथा, युद्ध कथा, कठोर वाणी आदि का त्याग करके हितकारक, परिमित, प्रिय तथा आगम-अनुकूल वचन बोलना **भाषा** समिति है।

मन कृत, मन कारित, मन अनुमोदित, वचन कृत, वचन कारित, वचन अनुमोदित, काय कृत, काय कारित, काय अनुमोदित, इन नौ कोटियो से शुद्ध भिक्षाचर्या से शुद्ध कुलीन श्रावक के घर, दाता को रच मात्र भी दुख न देते हुए, राग द्वेष रहित होकर शुद्ध भोजन करना **एषणा** समिति है।

ज्ञान के उपकरण शास्त्र, सयम के उपकरण पीछी, शौच के उपकरण जल रखने के कमण्डलु को अच्छी तरह भूमि देखकर (प्रतिलेखन करके) रखना और देख भाल कर उनको उठाना **आदान निक्षेपण** समिति है।

जीव-जन्तु-रहित एकान्त स्थान मे नगर के वाहर दूर प्रदेश मे जहा दूसरो को वाधा न हो, वहा पर मलमूत्र करना **प्रतिष्ठापन** समिति है।

स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी इष्ट अनिष्ट विषयो मे राग द्वेष का त्याग करना ११ वा मूल गुण है।

रसनेन्द्रिय के इष्ट अनिष्ट विषयो मे राग द्वेष को त्याग कर देना १२ वा मूल गुण है।

घ्राणेन्द्रिय के इष्ट अनिष्ट विपयो मे रागद्वेष को त्याग देना १३ वा मूल गुण है।

चक्षु इन्द्रिय के इष्ट अनिष्ट विषय मे राग द्वेष को त्याग देना १४ वा मूल गुण है।

श्रोत्रेन्द्रिय विषय-सम्वन्धी इष्ट अनिष्ट विषयो मे राग द्वेष का त्याग कर देना १५ वा मूल गुण है।

सर्व प्राणियो मे समताभाव रखकर आत्मचिन्तन करना समता या सामायिक नाम का १६ वा मूल गुण है।

वस्तुस्तवन, रूपस्तवन, गुणस्तवनादिक से अरहत परमेश्वर की स्तुति करना, यह **स्तवन** नामका १७ वा मूल गुण है ।

देवता स्तुति करने मे अपनी शक्ति का न छिपाते हुए खडे होकर या बैठकर त्रिकरण-शुद्धिपूर्वक दोनो हाथ जोड़कर जो क्रिया करते है उस तरह करना स्तवन है । उस क्रिया का नाम लेकर कायोत्सर्ग पूर्वक सामायिक दंडक का उच्चारण करे, तीन वार आवर्त और एक शिरोनति करके दडक के अन्त मे कायोत्सर्ग कर पंच गुरुचरण कमल का स्मरण करके द्वितीय दडक के आदि और अंत मे भी इसी प्रकार करे । इस तरह वारह आवर्त और चार शिरोनति होते है । इसी तरह चैत्यालय प्रदक्षिणा मे भी तीन-तीन आवर्त एक एक शिरोनति होकर चारो दिशा-सम्वन्धी बारह आवर्त चार शिरोनति होते हैं । जिन प्रतिमाके सामने इस प्रकार करने से दोप नहीं है ।

दुबोण दंज हाजादं बारसा वदमेवयं ।
चदुस्सिरं तिसुद्धि च किरिय कंमपउज्जये ।।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये क्रम से पुण्य तथा पापास्रव के कारण हैं । तो भी सम्यग्दृष्टि के लिये चैत्य चैत्यालय, गुरू के निपिधिकादि सस्थान क्रियाकाड करने योग्य है, ऐसा कहा गया है ।

शका—नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव ये पुण्यास्रव तथा पापास्रव के कारण हैं । जिन मंदिर, गुरु निपिधिका आदि वनवाने मे, जिनेन्द्र-विम्ब-निर्माण तथा पूजन आदि करने मे आरम्भ करना पडता है, इस कारण ये क्रियाएं करने योग्य नही है ।

समाधान—जिस कार्य मे थोडे से सावद्य (दोष) के साथ महान पुण्य लाभ हो वह कार्य करना उचित है । जैसे क्षीर सागर मे दो चार बूंद विष कुछ हानि नही करता, उसका अवगुण स्वय नष्ट हो जाता है इसी प्रकार मंदिर प्रतिमा वनवाने, पूजन आदि करने मे जो थोडा सा आरम्भ होता है वह मदिर मे असख्य जीवो द्वारा धर्म साधन करने से वीतराग प्रतिमा के दर्शन पूजन से असंख्य स्त्री पुरुषो द्वारा भावशुद्धि, विशाल पुण्य उपार्जन करने मे स्वयं विलीन हो जाता है, पुण्य रूप हो जाता है, अत. दोष नही है, थोड़ी सी हानि की अपेक्षा महान लाभ है । जिस तरह कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न, गरुड, मुद्रा आदि अचेतन जड़ पदार्थ मनुष्यो को महान सुख सम्पत्ति प्रदान करते है, तथैव जिन-मदिर, जिनप्रतिमा भी अचेतन होकर दर्शन भक्ति आदि करनेवाले को वीत-रागता, भाव शुद्धि, शान्ति आदि आत्मनिधि (निमित्त रूप से) प्रदान करते है,

अत जिन मदिर बनवाना, प्रतिमा बनवाना, पूजन आदि क्रियायें हानिकारक न होकर लाभदायक है, एक बार का बनवाया हुआ मदिर तथा प्रतिमा दीर्घकाल तक अगणित स्त्री पुरुषो को आध्यात्मिक शुद्धि, पुण्य कर्म-सचय करने मे सहायक हुआ करते है। अत. जिन-मदिर, जिन चैत्य, गुरु निषिधिका, शास्त्र निर्माण, पूजन, प्रक्षाल तीर्थ यात्रा आदि बहुत लाभदायक है।

इस कारण स्वाधीनता तथा प्रसन्नता के साथ दर्शन, पूजन आदि क्रिया करनी चाहिए, पराधीनता से दर्शन पूजन आदि धर्म-क्रिया नही करनी चाहिये तथा पूजन प्रक्षाल भी स्वय करना चाहिए, अन्य मनुष्य के द्वारा न कराना चाहिए। एव स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन करके मदिर मे आना चाहिये। जल से अपने पैर धोकर मदिर मे नि सहि नि सहि नि सहि कहते हुये प्रवेश करना चाहिए।

तत्पश्चात् तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान के सामने खडे होकर ईर्या-पथस्तुति बोलना चाहिए। उसके बाद कायोत्सर्ग करके आलोचना करे। तदनन्तर 'चैत्य-भक्ति-कायोत्सर्गं करोमि' ऐसी प्रतिज्ञा करके चैत्य भक्ति पढनी चाहिए।

चैत्य भक्ति इस प्रकार है—

मानस्तभा सरांसि प्रमिलजलल्सत्खातिका पुष्पवाटी।
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकांतर्ध्वजाद्या॥
शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृतवनं स्तूपहर्म्यावली च।
प्राकार स्फटिकोंतर्नृ सुरमुनिसभाः पीठिकाग्रे स्वयंभूः॥
वर्षेषु वर्षान्तिरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानाम्॥
अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां॥
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां,
जिनवरनिलयानां भावतोहं स्मरामि॥
जंबूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाः,
चंद्रांभोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभा जिनाः
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धनाः,
भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे।
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचके कुंडले मानुषांके।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके।
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि॥
देवासुरेन्द्रनरनागसमर्चितेभ्यः, पापप्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः।
घंटाध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्यः नित्यं नमो जगतिसर्वजिनालयेभ्यः॥

इच्छामि भंते चेइभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, अहलोयतिरियलोयउड्ढ लोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिनचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोयेसु भवणवाणवितरजोइसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अच्चति पुज्जति वंदति, णमंसंति, अहमवि इह संतो तत्थ संताइ, णिच्चकाल अच्चेमि पूजेमि वंदामि, णमसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

इस तरह लघु चैत्यभक्ति पढ़ने के वाद खडे होकर नौ वार णमोकार मन्त्र पढकर कायोत्सर्ग करे। तत्पश्चात् वहुत आनन्द प्रसन्नता से भगवान के मुख का दर्शन करना चाहिए। जिस तरह चन्द्रमाके उदय होने पर चन्द्रकान्त मणि से जल निकलने लगता है, इसी प्रकार भगवान का मुखचंन्द्र देखते ही नेत्रो से आनन्द जल निकलना चाहिए। उस आनन्दाश्रु जल से भीगे हुए नेत्रो से अनादि भवो मे दुर्लभ अर्हन्त परमेश्वर की महिमामयी प्रतिमा का हाथ जोड़कर मस्तक झुकाते हुए पुलकित मुख से अवलोकन करना चाहिए, अष्टांग अथवा पचाग नमस्कार करना चाहिए। आदि अन्त मे दण्डक करके चैत्य-स्तवन (प्रतिमा की स्तुति) करते हुए तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए। फिर बैठकर आलोचना करे।

तदन्तर 'पचगुरुभक्तिकायोसर्ग करोमि' रूप प्रार्थना करके खडे होकर पंच परमेष्ठी की स्तुति करनी चाहिए। स्तुति इस तरह है—

श्रीमदमरेंद्रमुकुटप्रघटितमणिकिरणवारिधाराभिः।
प्रक्षालितपदयुगलान्प्रणमामि जिनेश्वरान्भक्त्या॥१॥
अष्टगुणैः समुपेतान्प्रणष्टदुष्टाष्टकर्मरिपुसमितीन्।
सिद्धान्सततमनन्तान्तान्नमस्करोमीष्टतुष्टिसंसिद्ध्यै॥२॥

साचारश्रुतजलधीन्प्रतीर्य शुद्धोरुचरणनिरतानाम् ।
आचार्याणां पदयुगकमलानि दधे शिरसि मेहम् ॥३॥
मिथ्यावादिमदोग्रध्वांतप्रध्वंसिवचनसदर्भान् ।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारिप्रणाशाय ॥४॥
सम्यग्दर्शनदीपप्रकाशकामेयबोधसभूताः ।
भूरिचरित्रपताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु ॥५॥
जिनसिद्धसूरिदेशकसाधुवरानमलगुणगणोपेतान् ।
पंचनमस्कारपदैस्त्रिसंध्यमभिनौमि मोक्षलाभाय ॥६॥
एष पंचनमस्कारः सर्वपापप्रणाशन ।
मंगलानां च सर्वेषां प्रथमं मंगलं भवेत् ॥ ७॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधव ।
कुर्वन्तु मंगला सर्वे निर्वाणपरमश्रियम् ॥८॥
सर्वान् जिनेंद्रचंद्रान् सिद्धानाचार्यपाठकान् साधून् ।
रत्नत्रयं च वंदे रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या ॥९॥
पांतु श्रीपादपद्मानि पंचानां परमेष्ठिनाम् ।
लालितानि सुराधीशचूडामणिमरीचिभिः ॥१०॥
प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरान् स्वमातृभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून्योगांगैरष्टभिः स्तुवे ॥११॥

इच्छामि, भते पचगुरुभत्ति काउस्सग्गो तस्सालोचेउ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताण अरहताण अट्ठगुणसंपण्णाण उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाण, अट्ठपवयणमउसजुत्ताणं आयरियाण आयारादिसुदणाणोवदेसयाण उवज्झायाण, तिरयणगुणपालणरयाण सव्वसाहूणनिच्च णिच्चकाल अचेमि, पूजेमि, वदामि, णमसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमण समाहिमरण, जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ ।

इस प्रकार स्तुति करके पुन तीस बार बैठकर आलोचना करना चाहिए। इस तरह इस स्तवन क्रिया के ६ भेद हैं—(१) आत्माधीनत्व (पराधीन होकर-अन्य की प्रेरणा से ऐसा न करते हुए, अपने उत्साह भक्ति से स्वाधीन रूप मे स्तवन करना), (२) प्रदक्षिणा (जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा की परिक्रमा करना), (३) वार त्रय (तीन बार स्तुति आलोचना करना),

(४) निषण्णत्रय (तीन वार बैठकर क्रिया करना), ५ चतु.शिरोनति (चारों दिशाओं में घूमकर सिर-झुकाकर नमस्कार करना), (६) द्वादश आवर्त चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त—हाथ जोड़कर तीन वार घुमाना)।

देव-स्तवन के ३२ त्याज्य दोष—

भगवान की स्तुति करने मे निम्न लिखित ३२ दोष हो सकते हैं उनको दूर करके निर्मल रूप से स्तुति करनी चाहिए। दोषो के नाम—

(१) विनाविश्वास के दर्शन करना, (२) कष्ट के साथ दर्शन करना, (३) एकदम भीतर घुसकर करना, (४) दूसरे को डराते हुए करना, (५) शरीर को डुलाते हुए करना, (६) मस्तक को ऊचा उठाकर करना, (७) मन मे कुछ और ही विचार करना, (८) मछली के समान चंचलता-पूर्वक दर्शन करना, (९) क्रोध से युक्त होकर करना, (१०) दोनो हाथो को प्रमाद से जमीन मे टेककर दर्शन करना, (११) मुझे देखकर और लोग भी दर्शन करेंगे, इस भाव से करना, (१२) धन के अभिमान से करना, (१३) ऋद्धि गौरव के मद से करना, (१४) छिपकर अर्थात् अपने स्थान मे बैठे-बैठे दर्शन करना, (१५) संघ के प्रतिकूल होकर करना, (१६) मनमे कुछ शल्य-रखकर करना, (१७) कातने के समान अर्थात् दुःख के समान दर्शन करना, (१८) किसी दूसरे के साथ बोलते हुए करना, (१९) दूसरे को कष्ट देते हुए करना, (२०) भृकुटि तानकर करना, (२१) ललाट की रेखाओ को तानकर करना, (२२) अपने अंगोपांग की आवाज करते हुए करना (२३) कोई आचार्यादि को आते हुए देखकर करना, (२४) अपने को वे देख न सकें ऐसे दर्शन करना, (२५) वेगार सी काटते हुए दर्शन करना, (२६) कोई उपकरण प्राप्त होने के बाद करना, (२७) उपकरण प्राप्त हो इस दृष्टि से करना, (२८) नियत समय से पहले ही, दर्शन कर लेना, (२९) समय बीत जाने के बाद करना, (३०) मौन छोडकर दर्शन करना, (३१) दूसरे किसी को इशारा करते हुए करना, (३२) यद्वा तद्वा गाना गाते हुए दर्शन करना। इन बत्तीस दोषो को टालकर दर्शन करना चाहिए।

श्री कुन्द-कुन्दाचार्य स्वामी का मूलाचार—

अणाढिदं च थद्धं च पविट्ठं परिपीडिदं।
दोलाइयमंकुसियं तहा कच्छवरिंगियं ॥१३०॥

अर्थ—अनादर दोष—आदर के विना जो क्रिया—कर्म किया जाता है वह अनादृत नामक दोष है। स्तब्ध—विद्यादि गर्व से युक्त होकर जो कर्म

करता है उसको स्तब्ध दोष उत्पन्न होता है। प्रविष्ट दोष—पंचपरमेष्ठियों के अति निकट होकर कृतिकर्म करना प्रविष्ट दोष है। परिपीडित दोष—अपने दोनो हाथो से दो गोडो को स्पर्श करके क्रिया करना परिपीडित दोष है। दोलायितदोप-झूला के समान अपने को चला चलाकर क्रियाकर्म करना अथवा स्तुतियोग्य अर्हंतादि परमेष्ठियो की स्तुति और क्रिया कर्म सशय-युक्त होकर करना दोलायित दोष है। अकुशित दोष—अकुश के समान हाथ के अगूठे वनाकर ललाट मे रखना अकुशित दोष है। कच्छपरिंगितदोष—वैठकरके कछवे के समान आगे चलना कच्छपरिंगित दोष है।

मच्छुव्वत्तं मणोदुट्ठं वेदिआबद्धमेव य।
भयसा चेव भयत्तं इड्ढिगारवगारवं ॥१३१॥

अर्थ— दोसवाडो के द्वारा वदना करना अथवा मच्छके समान कटि भाग से पलटकर वदना करना मत्सोद्वर्त नामक दोष है। मन से आचार्य के प्रति द्वेष धारण कर जो वन्दना करता है उसको मनो दुष्ट कहते हैं। अथवा संक्लेश मनसे वदना करना मनो दुष्ट दोष होता है। वेदिकाकार से हाथो को आपस मे वद्ध करना अथवा हाथ को पिंजडे के समान कर दायें और वायें स्तन को पीड़ा करके अथवा दोनो गोडो को वद्ध करके वदना करना वेदिका-वद्ध दोष है। मरणादिक सात भय से डर कर वदना करना भय दोष है। जो गुरु आदि से भय धारण कर वदना करता है वह विम्य दोष है। चातुर्वर्ण्यसंघ मेरा भक्त होगा ऐसे अभिप्राय से वदना करना **ऋद्धिगारव** दोष है। अपना महात्म्य आसनादिको के द्वारा प्रगट करके अथवा रस के सुख के लिए वदना करना गौरव वदना दोष है

तेणिदं पडिणिद चावि पदुट्ठ तज्जिदं तथा।
सद्दं च हीलिदं चावि तहा तिविलिदकुंचिदं ॥१३२॥

अर्थ—स्तेनितिदोष—आचार्यादि को मालूम न पडे ऐसे प्रकार से वंदना करना, दूसरे न समझ सके ऐसी वदना, कोठरी के अन्दर रहकर वदना करना स्तेनित दोष है। प्रतिनिति दोष—देव गुरुआदिको के साथ प्रतिकूलता धारण कर वदना करना, प्रदुष्ट दोष-अन्यो के साथ वैर, कलहादिक करके क्षमा याचना न करते हुए वदनादिक क्रिया करना तर्जित दोष— दूसरोको भय उत्पन्न करके यदि साधु वंदन हो तो तर्जित दोष होता है। अथवा आचार्यादिकों द्वारा अंगुली आदि से भय दिखाने पर यदि साधु वंदना करेगा तो तर्जित दोष होता

है। अर्थात् यदि तुम नियमादिक क्रिया नही करोगे तो हम तुमको संघ से अलग करेंगे ऐसे क्रोध से डाटे जाने पर वदना करना भी तर्जित दोष है। शब्द दोष— शब्द बोलकर मौन छोडकर जो वदनादिक है वह शब्द दोष है।

अथवा, शब्द, के स्थान मे, सट्ठ, ऐसा भी पाठ है अर्थात् शाठ्यसे, मायाचारी से कपट से वंदना आदिक करना हिलित दोष है। आचार्य वचन के द्वारा परवश हो कर वंदनादिक करना त्रिविलित दोष है। कमर, हृदय और कंठ मोड़कर वंदना करना अथवा ललाट मे त्रिवली करके वदना करना कुंचित दोष है। सकुंचित किये हाथो से मस्तक को स्पर्श करके वंदना करना अथवा दो गोड़ो के बीच मे मस्तक रखकर संकुचित होकर जो वंदना की जाती है वह कुंचित दोष है। इस प्रकार अतीत दोषो का परिहार कर निंदा और गर्हा से युक्त होकर त्रिकरण शुद्धि से करने-वाला **प्रतिक्रमण** १९ वां मूल गुण है।

प्रतिक्रमण के भेद

दैवसिक, रात्रिक, गोचरिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सवत्सरिक, युगांतर प्रतिक्रम, ईर्यापथिक, केशलोचातिचार, सस्तारातिचार, पचातिचार, सर्वाचार, सर्वातिचार और उत्तमार्थ ऐसे प्रतिक्रमण के अनेक भेद हैं।

अनागत दोषो का परिहार करने के लिये की जाने वाली प्रत्याख्यान क्रिया २० वां मूल गुण है।

शुभ परिणाम से अर्हंतादि परमेष्ठियों का स्मरण करना कायोत्सर्ग नामक २१ वां मूल गुण है। अर्थात् अगुष्ठो मे बारह अगुल अंतर तथा एड़ियो मे चार अंगुल का अतर करके खड़ा होना तथा अपनी गर्दन को ऊंचा न कर समान वृत्ति से, रज्जु के आकार अपनी दोनों बाहुओ को लटकाकर खडे होना चाहिये। अगर इस आसन से खडे होने की शक्ति न हो तो पल्यंकासन मे अपनी बाई जंघा पर दाहिनी जंघा को रखकर और जानुकडे पर वाम हाथ के ऊपर दाहिना हाथ रखकर ध्यान करना चाहिये अर्थात् पंच गुरु के गुण स्मरण पूर्वक जाप करना चाहिये। जैसे कि—

करणंगळु कुसिदिरे मन- ।
मिरे नोसलोळु लोचनंगळुळरेदुगुळ्दो
प्पिरे दसनंदसनदोळों- ।
दिरे मंद दरदंताचाल्यदंतिरे तनवुं ॥

इस तरह पंचगुरु को स्मरण पूर्वक जाप करना चाहिये और एक जाप नि:श्वास पूर्वक मन मे करना चाहिये

अब आगे कहे जाने वाली क्रियाओ के उच्छ्वास काल के नियम को वतलाते हैं—अहिंसा व्रत मे अगर कोई अतिचार लग जाय तो एक सौ आठ जाप करना चाहिये। दैवसिक मे १०८, रात्रिक में उसका आधा ५४ करना चाहिये और पाक्षिक मे ३०० सौ, चातुर्मासिक में ४०० सौ, संवत्सरिक मे ५०० सौ, गौचरिक मे जाते समय तथा ग्राम से ग्रामातर को जाते समय या अरहृत के दर्शन करते समय तथा किसी मुनि की **निषिधिका** का दर्शन करते समय, एवं उच्चार प्रश्न करते समय पच्चीस श्वासोच्छ्वास मात्र कायोत्सर्ग करना, ग्रन्थ प्रारम्भ मे तथा उसकी परिसमाप्ति मे, स्वाध्याय करते समय तथा निष्ठापन मे, देवता स्मरण मे जहा जहा इस प्रकार क्रिया हो वहा सत्ताईस उच्छ्वास जप मन ही मन मे करना चाहिये।

तथा इसी तरह शीतोष्ण दश-मशकादि परीषहो को सहन करते हुए त्रिकरण शुद्धि से जिन-प्रतिमा के समान कायोत्सर्ग मे रहकर जो अनुष्ठान कहा हुआ है उसके प्रमाण के अत मे हलन चलन न करते हुए एकाग्रता से निरजन नित्यानद स्वरूप के समान धर्मशुक्ल का ध्यान स्मरण करना चाहिये।

कायोत्सर्ग के ३२ दोष

१—किसी दीवाल के सहारे खडे होना कुड्याश्रित नामक दोष है। २ वायु के द्वारा हिलती हुई लता के समान शरीर को हिलाते रहना लतावक्र नामक दोष है। ३ किसी खम्भे के सहारे खडे होना अथवा खम्भे के समान खडे होना स्तभावष्टभ नामक दोष है। ४ शरीर के अवयवो को संकोच कर खडे होना कुंचित नामक दोष है। ५ अपनी छाती को आगे निकालकर इस प्रकार खडे होना जिससे छाती दिखाई दे, वह स्तनेक्षा दोष है। ६ कौवे के समान इधर उधर देखते रहना काक नामक दोष है। ७ शिर को हिलाते जाना शीर्षकपित नामक दोष है। ८ जिस वैल पर जुवा रक्खा जाता है वह जिस प्रकार अपनी गर्दन को आगे को लम्बी कर देता है उसी प्रकार जो गर्दन को आगे की ओर लम्बा करके खडा हो जाता है वह युगकधर नामक दोष है। ९ कायोत्सर्ग मे भृकुटियो का चलाते जाना भ्रूक्षेप नामक दोष है। १० मस्तक को ऊपर उठाकर कायोत्सर्ग करना उत्तरित नामक दोष है। ११ कायोत्सर्ग मे उन्मत्त के समान शरीर को घुमाते रहना उन्मत्त नामक दोष है। १२ पिशाच के समान कापते रहना पिशाच नामक दोष है। १३ पूर्व दिशा की ओर देखना। १४ अग्नि दिशा की ओर देखना। १५ दक्षिण दिशा की ओर देखना। १६ नैऋत्य दिशा की ओर देखना। १७ पश्चिम दिशा की

ओर देखना। १८ वायव्य दिशा की ओर देखना। १६ उत्तर दिशा की ओर देखना। २० ईशान दिशा की ओर देखना। इस प्रकार आठो दिशाओ की ओर देखना आठ दोष कहे जाते है। २१ गर्दन को नीचा करके खड़े होना ग्रीवानमन नामक दोष है। २२ गूगे मनुष्य के समान मुख और नासिका को विकारो से इशारा करना मूक-सज्ञा नामक दोष है। २३ उगलियो के द्वारा गिनना अंगुली चालन नामक दोष है। २४। थूकना निष्ठीव नामक दोष है। २५ लगाम लगाये हुये घोडे के समान दांतो को घिसना शिर को हिलाना आदि को खलिनित दोष कहते है। २६ भीलिनी के समान हाथो से गुद स्थानो को ढककर खड़े होना, शवरी गुदगूहन नामक दोष हैं। २७ कैंथ के समान मुट्ठियों को बांधकर खडे होना कंपित मुष्ठि नामक दोष हैं। २८ गर्दन को ऊची करके खडा होना ग्रीवोन्मत्त नामक दोष है। २६ अपने पैरो को सांकल से वंधे हुए के समान करके खडे होना शृंखलित नामक दोष है। ३० मस्तक को रस्सी तथा माला आदि के सहारे रखकर खडा होना मालिकोद्वहन नामक दोष है। ३१ इधर उधर से शरीर का स्पर्श करना स्वाग-स्पर्श नामक दोष है। ३२ घोडे के समान एक पैर को ऊचा करके खडे होना घोटकानवी नामक दोष है। इस प्रकार कायोत्सर्ग के बत्तीस दोष है। तथा इनके सिवाय और भी दोष है उनको छोड़कर कायोत्सर्ग करना चाहिये। यह इक्कीसवां मूल गुण है।

वस्त्र वल्कल पत्रादि से निर्ग्रन्थपने [अपनी नग्नता] को नही छिपाना वस्त्रत्याग तेईसवा मूलगुण है।

प्राणी तथा इन्द्रिय संयम के निमित्त स्नान न करना २४ वा मूलगुण है।

समान भूमि, शिला, लकड़ी का पाटा, घास की चटाई इत्यादि पर धनुष के आकार सोना २५ वां मूलगुण है।

अपनी उगली के द्वारा दातो को न घिसना २६ वा मूलगुण है।

खडे होकर भोजन करना २७ वा मूल गुण है।

दिन मे एक वार भोजन करना एकभुक्त नामक २८ वां मूलगुण है।

अब आगे पाच महा व्रतो को स्थिर करने के लिये उनकी पाच भावनाओ को बतलाते है—

अर्थ—वाग्गुप्ति १, मनोगुप्ति २, ईर्या समिति ३, आदाननिक्षेपण समिति ४, आलोकित पान भोजन ये पांच पाच अहिंसा व्रत की भावनाये है। १ क्रोध को त्यागना, २ लोभ को त्यागना, ३ हास्य को त्यागना, ४ भय

को त्यागना, ५ अनुवीचि भाषण ये सत्य व्रत की पाच भावनायें हैं। शून्यागार में रहना, दूसरे लोगो के छोड़ कर गये हुए स्थानो मे रहना, दूसरे के आने जाने मे बाधा पडे ऐसे स्थानो मे न रहना, भिक्षाशुद्धि, सद्धर्म मे रुचि रखना अर्थात् हमेशा अचल रहना ये अचौर्यव्रत की पाच भावनाये है।

अब आहार मे आने वाले ४६ दोषो को बतलाते है —

उद्गम दोष १६ सोलह, उत्पाद दोष १६ सोलह, ऐषणा दोष दश, सयोजन दोष चार।

पहले उद्गम दोषो को कहते है :—उद्दिष्ट, अध्यवधि, पूति, मिश्र, स्थापित, बलि, प्राभृत, प्राविष्कृत, क्रीत, प्रामृष्य, परिवृत, अहित, उद्भिन्न, मालिकारोहण, आच्छेद्य और नि सृत, इस प्रकार ये सोलह उद्गम दोष कहलाते हैं। अब अनुक्रम से इसका वर्णन करते है—

छ कायिक जीवो को घात कर साधु के निमित्त तैयार किये हुये आहार को लेना, प्रासुक मे अप्रासुक मिले हुये आहार को लेना, किसी पाखडी के निमित्त तैयार किया हुआ आहार, अपने घर के वर्तन मे बनाये हुये आहार को दूसरे बरतन मे निकाल कर अर्थात् अलग निकाल कर अपने घर मे या दूसरे के घर रक्खे हुये आहार को लेना, किसी बलि के निमित्त तैयार किये हुये आहार को लेना, समय को अतिक्रम करके लाये हुये आहार को लेना, अघेरे मे तैयार किये हुये आहार को लेना, बलि के निमित्त तैयार किये हुये आहार मे से निकाल कर अलग रक्खे हुए आहार को लेना, अति पक्व किये हुये आहार को लेना, ठडे आहार मे गरम आहार को मिलाकर लेना, पहले से ही किसी ऊपर के स्थानो मे अलग निकाल कर रक्खे हुये आहार को उतार कर लेना, कोई दाता अपने घर से आहार लाकर किसी दूसरे दाता के घर मे रखकर कहे कि तुम्हारे घरमे यदि कोई साधु आ जाएँ तो आहार को देना क्योकि मुझे फुरसत नही है इस तरह कहकर रक्खे हुए आहार को लेना, किसी बरतन मे बहुत दिनो से बन्द कर रक्खे हुए बरतन को दाता के द्वारा तोडकर आहार को लेना, अपने घमड से दूसरे के ऊपर दबाव डालकर तैयार किये गये अन्न को लेना, दान मंद के द्वारा तैयार किये गये अन्न को लेना, प्रधान दाताओ के द्वारा तैयार किया हुआ आहार लेना, अधिक मुनियो को आता देख भोजन बढाने के लिये दाता द्वारा अपक्व पदार्थ मिलाये हुए आहार को लेना, ये सोलह उद्गम दोष है।

आगे उत्पाद दोष को कहते है—दाता के आगे दान ग्रहण करने से पूर्व

उसकी "तू दानियो मे अग्रेसर है और तेरी जगत् में सर्वत्र कीर्ति फैल गई है," ऐसा कहना पूर्व-संस्तुति दोष है। और जो दाता आहार देना भूल गया हो उसको "तू पूर्व काल मे महान दानपति था, अब दान देना क्यो भूल गया है, ऐसा उसको सम्बोधन करना यह भी पूर्व सस्तुति दोष है। कीर्ति का वर्णन करना और स्मरण करना यह सब पूर्व सस्तुति दोष है।

पश्चात्संस्तुति दोष—

आहारादिक ग्रहण करके जो मुनि दाता की "तू विख्यात दान-पति है, तेरा यश सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ है" ऐसी स्तुति करता है उसको पश्चात्-संस्तुति दोष कहते है। किसी गाव के दाता को खबर देकर उसके यहां आहार करना, निमन्त्रण दोष है। ज्योतिप ग्रह आदि को बतलाकर आहार लेना, अपने आप ही अपनी कीर्ति ख्याति इत्यादिक कहकर आहार लेना, दाता के मन मे दान देने की भावना उत्पन्न कराके आहार लेना; लाभ दिखाकर आहार लेना, मान करके आहार करना, माया से आहार करना, लोभ करके लेना, आहार के पहले दाता की प्रशसा करके वाद मे उसके घर मे आहार लेना, भोजन करने के बाद दाता की स्तुति करके उसे अपने वश कर लेना, विद्या यन्त्र-मन्त्रादिक को देकर अपने वश कर लेना, केवल यन्त्र से अपने वश कर लेना, वैद्यक अर्थात् दवाई इत्यादिक दाता को बतला-कर आहार करना इत्यादि उत्पाद दोष हैं।

शकित दोषः—

आहार पानादिक लेने वाले आहार मे शंका करके आहार लेना शकित दोष है। अप्रासुक पानी से बरतनादिक को धोकर उसमे अन्न परोस कर साधु को देना, अशन भात, रोटी आदिक, दही, दूध आदिक, खाद्य-लड्डू आदिक, स्वाद्य-एला, लवग, कस्तूरी कंकोलादिक, "ये पदार्थ मेरे लिए भक्ष्य हैं अथवा अभक्ष्य हैं" ऐसा मन मे संशय उत्पन्न होने पर यदि साधु आहार करेगे तो उनको शकित आहार नामक दोष होता है अथवा आगम मे 'ये पदार्थ भक्ष्य है या अभक्ष्य हैं, ऐसा सशय-युक्त होकर जो साधु आहार करता है उसको शकित दोष होता है।

प्रक्षिप्त दोष—घी, तेल आदि, स्निग्ध पदार्थ से लिप्त हाथ से अथवा स्निग्ध तेलादिक से लिप्त कलछी अथवा पात्र से मुनियो को आहार देना प्रक्षिप्त दोपो से दूषित होता है। इस दोष का मुनि सदा त्याग करें। ऐसे आहार मे सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होते है।

निक्षिप्त दोष का स्वरूप –

सचित्त पृथ्वी, सचित्त पानी, सचित्त अग्नि, सचित्त वनस्पति, बीज और त्रस जीव द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय जीवो पर रक्खा हुआ आहार मुनियो को ग्रहण योग्य नही है ।

सचित्तपृथ्व्यादिक के छ भेद है। अ कुर शक्ति योग्य गेहू आदि धान्य को बीज कहते हैं ।

हरित–अम्लान अवस्था के तृण, पर्ण आदि को हरित कहते है। इनके ऊपर स्थापन किया हुआ आहार निक्षिप्त दोष सहित होता है। अथवा अप्रासुक पृथ्व्यादिक कायो पर रक्खा हुआ आहार मुनियो को अयोग्य है ।

पिहित दोष—जो आहारादिक वस्तु सचित्त से ढकी हुई है अथवा अचित्त भोजन किसी वजनदार पदार्थ से ढका हुआ है उसके ऊपर का आवरण हटाकर मुनियो को देना पिहित दोष है ।

धायक दोष·—

जो वालक को आभूषणादि से सजाती है, उसको दूध पिलाती हैं और धाय का काम करती है वे आहार दान मे अयोग्य है, जो मद्यपान मे लम्पट है, जो रोग से ग्रस्त है, जो मृतक को स्मशान रख आया है और जिसको मृतक का सूतक है, जो नपुसक है, जो पिशाचगस्त है, अथवा वातादिक रोग से पीडित है, जो वस्त्रहीन है अथवा जिसके एक ही वस्त्र है, जो मल विसर्जन करके आया है तथा जो मूत्र करके आया है, जो मूर्छित है, जिसको वाति हुई है, जिसके शरीर से रक्त वह रहा है, जो आर्जिका है,अथवा जो लाल रग के वस्त्र धारण करने वाली रक्त-पाटिका आदि अन्य धार्मिक सन्यासिका है, जो अग मर्दनक-स्नान करती है, ऐसी स्त्री और पुरुष आहार देने योग्य नही हैं। अति वृद्धा हो, पान तमाकू खाई हो, क्रोध से आई हो, अगहीन हो, या भीत का सहारा लेकर वैठी हो, उन्मत्ता हो, झाडू देते-देते आई हो, "यह अग्नि है" ऐसा अपने मुख से कहती हुई आ रही हो, दीवाल लीपती हो, है व्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य जाति के अलावा अन्य किसी के हाथ का भोजन दोषी समझकर आहार त्याग कर देना चाहिए ।

आगे साधुओ के भोजनो के अन्तराय को कहते है—

मौनत्यागे शिरस्ताडे मार्गे हि पतिते स्वयम् ।
मांसामेध्यास्थिरक्तादिसंस्पृष्टे शवदर्शने ।।४८।।

ग्रामदाहे महायुद्धे शुना दष्टेत्विदं पथि ।
सचित्तोदे करे क्षिप्ते शंकाया मलमूत्रयोः॥४६॥
शोणितमांसचर्मास्थिरोमविट्पूयमूत्रके ।
दलनं कुट्टन छिदिर्दीपप्रध्वंसदर्शने ॥५०॥
ओतौ स्पृष्टे च नग्नस्त्री-दर्शने मृतजंतुके ।
अस्पृश्यस्य ध्वनौ मृत्युवाद्ये दुष्टविरोधने ॥५१॥
कर्कशाक्रन्ददुश्शब्दे शुनकस्य ध्वनौ श्रुते
हस्तमुक्ते व्रते भग्ने भाजने पतितेऽथवा ॥५२॥
पादयोश्च गते मध्ये मार्जारमूषिकादिके ।
अस्थ्यादिमल-मिश्रान्ने सचित्तवस्तुभोजने ॥५३॥
आर्त्तरौद्रादिदुर्ध्याने कामचेष्टोद्भवेऽपि च ।
उपविष्टे पदग्लानात् पतने स्वस्य मूर्च्छया ॥५४॥
हस्ताच्च्युते तथा ग्रासेऽव्रतिना स्पर्शने सति ।
अयं मांसोऽस्ति संकल्पेऽन्तरायश्च मुनेः परे ॥५५॥

अर्थ—सिर ताडन करना, मौन का त्याग कर देना, मार्ग मे गिर पडना, मास हड्डी रक्तादि अपवित्र वस्तुओ का स्पर्श होना, मुर्दे को देखना, नगर व ग्राम मे अग्नि लगने का हाल सुनना, भयंकर युद्ध की बातचीत सुनना, मार्ग मे कुत्तो का कलह होना या उनके द्वारा काटना, भोजन के समय अपने हाथ में अप्रासुक पानी पड़ना, आहार के समय में मलमूत्र की शका होना, रक्त मास, चर्म, हड्डी केश, विष्टा खून तथा मूत्र आदि अपवित्र पदार्थों का स्पर्श होना, जिस घर मे आहार हो उसमे चक्की चलना, धान कूटना, उल्टी हो जाना या दूसरो की उल्टी देखना, बिल्ली का स्पर्श होना, कोई जीव मर जाना, चाडाल आदि के शब्दो को सुनना, नग्न स्त्री का दीख जाना, मृतक वाद्य सुनना, किसी दुखिया के करुण क्रन्दन या कर्कश शब्द सुनना, लडते हुए कुत्ते के शब्दों को सुनना, भोजन करते समय बन्धी हुई अँजुली छूट जाना, व्रत भग होना, हाथ से नीचे पात्रो का गिरना, दोनो पैरो के बीच से चूहे-बिल्ली का निकल जाना, भोजन मे हड्डी या कचरा आदि मल मिश्रित होना, बिना पका ही भोजन करना, या सचित्त पदार्थो मे अचित्त पदार्थ मिलना, मनमे आर्त, रौद्र इत्यादि दुर्ध्यान का आ जाना, मन मे काम वासना उत्पन्न होना, अशक्त होकर नीचे बैठ जाना, या मूर्छित होकर गिर पड़ना, हाथ से ग्रास गिर जाना, अव्रती

का स्पर्श होना तथा 'यह मास है' ऐसा सकल्प हो जाना, आहार के ये ३२ अन्तराय हैं।

इनमे से यदि कोई एक भी अन्तराय आ जाय तो मुनियो को आहार नही ग्रहण करना चाहिए। इसके विषय मे और भी कहा है कि—

विण्मूत्राजिनरक्तमांसमदिरापूयास्थिवान्तीक्षणा–
दस्पृश्यान्त्यजभाषणश्रवणतात् स्वग्रामदाहेक्षणात् ॥
प्रत्याख्याननिसेवनात् परिहरेद् भव्यो व्रती भोजने–
ऽप्याहारं मृतजन्तुकेशकलितं जैनागमोक्तक्रमम् ॥
कागामज्जाछद्दीरोहणरुहिरंचअंसुपादं च ।
जण्हू हेठा परिसंजण्हू वरिवदिक्कमो चेव ॥

ब्रह्मचर्य की भावना—(१) स्त्रियो के राग उत्पन्न-कारक कथाओ के कहने सुनने का त्याग, स्त्रियो के अगोपांगो के देखने का त्याग करना, पहले भोगे हुए इन्द्रिय-जन्य सुखो का स्मरण न करना, शरीर का सस्कार न करना, इन्द्रिय मद-वर्द्धक खाद्य व पेय पदार्थों की अरुचि रखना, ये पाच नियम ब्रह्मचर्य व्रत के हैं।

गुप्तित्रयम् ॥४२॥

अर्थ—मन गुप्ति, वचन गुप्ति, तथा कायगुप्ति, ये तीन प्रकार की गुप्तिया हैं।

कालुस्स मोहसण्णा राग दोसादिअसुहभावस्स ।
परिहारो मणगुत्ती ववहारणयादु जिण भणियं ॥१०॥
राज चोर भंडकहादिवयणस्स पावहेउस्स
परिहारो वचगुत्ती अलियाणि एत्ति वयणंवा ॥ ११॥
छेदन बंधन मारण तहपसारणादीय ।
कायकिरियाणियट्टी णिद्दिट्ठा कायगुत्तीति ॥१२॥
रागादिणियत्ति वा मनस्स जाणाहि तं मनोगुत्ति ।
अलियाणियत्ति वा मौनं वा होदि वचगुत्ती ॥१३॥
कायकिरियाणियत्ती काओ सग्गो सरीरगे गुत्ति ।
हिंसादिणियत्ति वा सरीरगुत्ती हवेदित्तो ॥१४॥

अष्टौ प्रवचनमातृका ॥४३॥

अर्थ—५ समिति तथा ३ गुप्ति ये ८ प्रवचनमातृका है।

चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणा· ।।४४।।

अर्थ—२२ परीषह और १२ प्रकार के तप ये कुल ३४ उत्तर गुण कहलाते हैं।

द्वाविंशत् परिषहाः ।।४५।।

अर्थ—मोक्ष मार्ग के साधन मे आने वाले कष्ट विघ्न वाधा परिषह है। वे २२ है।

उनके नाम ये हैं—(१) क्षुधा, (२) पिपासा, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) दशमशक, (६) नग्नता, (७) अरति, (८) स्त्री, (९) निषद्या, (१०) चर्या, (११) शय्या, (१२) आक्रोष, (१३) वध, (१४) याचना, (१५) अलाभ, (१६) रोग, (१७) तृणस्पर्श, (१८) मल, (१९) सत्कार पुरस्कार, (२०) प्रज्ञा, (२१) अज्ञान और [२२) अदर्शन।

ये २२ परिषह पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से होते है। किस कर्म के उदय से कौन सी परिषह होती है, इसका वर्णन करते हैं।

ज्ञानावरण कर्म के उदय से प्रज्ञा और अज्ञान परिषह होती हैं। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से अदर्शन परिषह तथा अन्तराय कर्म के उदय अलाभ परिषह होती है।

चारित्र मोहनीय के उदय से नग्न, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार पुरस्कार ये सात परिषह होती है। वेदनीय कर्म के उदय से क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दशमच्छर, चर्या, शय्या, वध, रोग तथा तृणस्पर्श, और मल ये ११ परिषह हाती है।

प्रश्न—एक साथ एक जीव के अधिक से अधिक कितनी परिषह हो सकती हैं?

उत्तर—शीत उष्ण इन दोनो मे से एक होगी, निषद्या, चर्या और शय्या इन तीन परिषहो मे से एक परिषह होती है, शेष दो नही होती इस तरह तीन परिषहों के सिवाय शेष १९ परिषह एक साथ एक कालमे हो सकती है। सातवे गुणस्थान तक सभी परिषह होती है। अपूर्वकरण नामक आठवे गुणस्थान मे तथा सवेद अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे अदर्शन परिषह कम हो जाने के कारण २१ परिषह होती हैं। तदनन्तर ३ वेदो के नष्ट हो जाने पर अनिवृत्तिकरण के निर्वेद भाग मे स्त्री परिषह न रहने के कारण तथा अरति परिषह न होने से १९ परिषह होती हैं। तत्पश्चात् मान कषाय के अभाव हो जाने पर नग्नता, निषद्या, आकोश, याचना, सत्कार पुरस्कार इन पाचों परिषहो

के कम हो जाने पर शेष अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे तथा सूक्ष्म-सांपराय, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय इन गुण स्थानो मे १४ परीषह होती है ।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के नष्ट हो जाने के कारण १३वें गुण स्थान मे प्रज्ञा, अज्ञान तथा अलाभ परीषह नही होती अत शेष ११ परीषह होती हैं ।

वेदनीय कर्म की सत्ता के कारण १३वे गुण स्थानवर्ती अरहन्त भगवान को ११ परीषह कही जाती है, किन्तु वास्तव मे ये परीषह अनन्त बली, तथा अनन्त सुख सम्पन्न अरहन्त भगवान को रच मात्र भी कष्ट नही दे सकती । जिस प्रकार औषधि द्वारा शुद्ध किया हुआ शखिया आदि विष भी मारण शक्ति से रहित होकर खाने पर कुछ अनिष्ट नही करता इसी प्रकार मोहनीय कर्म के न रहने से वेदनीय कर्म भी अपना अनिष्ट फल देने योग्य नही रहता तथा वृक्ष की जड कट जाने के पश्चात् उसमे फल, फूल पत्ते आदि नही आते, बल्कि वह सूखकर नीरस हो जाता है इसी प्रकार मोहनीय कर्म के समूल नष्ट हो जाने पर वेदनीय कर्म भी शक्ति रहित नीरस हो जाता है । वह मोहनीय कर्म की सहायता न मिलने के कारण अपना कुछ भी फल नही दे पाता तथा जिस प्रकार आत्मध्यान निमग्न योगियो को शुक्ल ध्यान के समय वेद कर्मों की सत्ता रहने पर भी तथा लोभ कषाय और रति के रहते हुए भी मैथुन सज्ञा और परिग्रह सज्ञा नही होती, इसी प्रकार अरहन्त भगवान को अनन्तात्म सुख मे निमग्न होने के कारण वेदनीय कर्म की परीषह दु खदायी नही बन पाती ।

वेदनीय अघाती कर्म है । इसलिए वह घाती कर्म की सहायता के बिना अपना फल नही दे सकता । वेदनीय कर्म का सहायक मोहनीय कर्म है । वह १३ वे गुण स्थान मे समूल नष्ट हो जाता है । अत वेदनीय कर्म असहाय हो जाने से अरहन्त भगवान को वह दु ख प्रदान नही कर सकता । इस कारण वास्तव मे १३वें गुण स्थान मे कोई भी परीषह नही होती ।

नरक गति और तिर्यंच गति मे सभी परीषह होती है । मनुष्य गति मे भिन्न-भिन्न गुण स्थानो मे यथायोग्य परीषह होती है । देव गति मे भूख, प्यास, नग्नता, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ये १४ परीषह होती हैं ।

इन्द्रियमार्गणा और कषाय मार्गणा मे सभी परीषह होती है ।

बारह तप —

द्वादशविधंतप ॥४६॥

अर्थ—तप १२ प्रकार के होते हैं । भेद अभेद रूप प्रकट होने मे या कर्म

क्षय के मार्ग मे विरोध न हो इस अभिप्राय से इच्छाओं को, रोकना [इच्छा निरोघस्तप] तप' कहलाता है। वह तप अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान रस परित्याग, विविक्त शयनासन तथा कायक्लेश ये ६ वाह्य तप हैं और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये ६ प्रकार के अन्तरग तप हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर १२ प्रकार के तप है।

मन्त्र साधनादि किसी लौकिक स्वार्थ सिद्धि का अभिप्राय न रखकर तथा इन्द्रिय संयम की ख्याति की इच्छा न रखकर ध्यान स्वाध्याय एवं आत्म-शुद्धि के अभिप्राय से पचेन्द्रियो के विषयो का तथा कषायों के त्याग के साथ जो चार प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है उसको **अनशन** तप कहते हैं। इसके नियत काल और अनियत काल ये दो भेद होते है।

नियतकाल—एकान्तर त्रिरात्रि, महारात्रि अष्टोपवास, पक्षोपवास, मासोपवास, चातुर्मासोपवास, षण्मासोपवास, संवत्सरोपवास इत्यादि काल मर्यादा को लिए हुए उपवास करना नियत कालोपवास है।

अनियत काल—समाधिमरण करने के समय आयु-पर्यन्त जो उपवास किया जाता हैं वह अनियत काल है।

अवमोदर्य—ध्यानाध्ययन मे किसी प्रकार की वाधा न हो, इस अभिप्राय से भूख से कुछ कम आहार लेना **अवमोदर्य** तप है।

व्रतपरिसंख्यान—इस प्रकार की वस्तु चर्या के समय मिले, अमुक व्यक्ति अमुक वस्तु लेकर खड़ा हो, या अमुक घर आदि की अटपटी आखड़ी लेकर चर्या के लिए निकलना **व्रतपरिसंख्यान** कहलाता है। घी, दूध, दही आदि रसो मे से किसी एक या सवका त्याग करना **रसपरित्याग व्रत** कहलाता है। 'पद्मासन, पल्यङ्कासन, 'वज्रासन' मकरमुखासन आदि आसनों से वैठना या एक पार्श्व दण्डासन 'मृतशय्यासनादि आसनो से अथवा शुद्धात्म ध्यानाध्ययन मे किसी प्रकार का कोई विघ्न न हो ऐसे स्त्री पुरुष पण्ढ आदि से रहित एकान्त स्थान मे ध्यान करने के लिए वैठ जाना, **विविक्तशय्यासन** कहलाता है। निरुपाधि निजात्मभावना पूर्वक कंकड़ीली पथरीली जमीन मे शरीर के मोह को छोड़कर कठिन तप करना **कायक्लेश तप** है।

कायक्लेश तप करने के कारण.—

शुभ ध्यानाभ्यास के लिए, दुःख नाश के लिए, विषय सुख की निवृत्ति के लिए तथा परमागम की प्रभावना के लिए जो ध्यान किया जाता है उससे

सभी दुःख द्वन्द्व मिटकर चित्त शुद्ध हो जाता है। अतः यह कायक्लेश तप प्रयत्न के साथ करना चाहिए।

प्रमादवश छोटे-मोटे दोष हो जाने से देश काल तथा शक्ति सहनन आदि के अनुसार सयम पूर्वक उपवास आदि करना **प्रायश्चित्त** तप कहलाता है। सम्यक्त्वादि उत्तम गुणो से सुशोभित गुणी पुरुषो का विनय करना तथा उनके शरीरस्थ पीडा को दूर करने के लिए औषधिआदि उपचारो से स्वय सेवा करना या दूसरो से कराना **वैयावृत्य** कहलाता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव की शुद्धि पूर्वक शास्त्र का स्वाध्याय करना तथा स्वाध्याय करानेवाले श्रुतगुरुओ की भक्ति भाव से पूजा तथा आदर सत्कार करना **स्वाध्याय** नामक तप कहलाता है। कर्म बन्धन के कारणभूत सभी दोषो को त्याग देना **व्युत्सर्ग** तप कहलाता है। बाह्य समस्त पर पदार्थां से मन को सर्वथा हटाकर केवल अपने शुद्धात्मा मे एकाग्रता पूर्वक लीन रहना **ध्यान** तप है।

पच पद का महत्त्व —

श्री करमभीष्टसकल, सुखाकरमपवर्ग कारण भवहरण
लोकहित मन्मनडो—। के काग्रतेनिल्के निरुपमं पचपदम् ।२००।
दशविधं प्रायश्चित्तानि ।।४७।।

अर्थ—आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार, उपस्थापना और श्रद्धान ऐसे प्रायश्चित्त के १० भेद हैं। इस प्रायश्चित्त को बुधजन प्रमाद परिहार के लिए, भावशुद्धि के लिए, मन की निश्चलता के लिए और मार्ग मे लगे हुए दोषो के परिहार के लिए, सयम की दृढता के लिए एव चतुर्विधाराधन की वृद्धि के लिए निरन्तर करते रहते हैं। गुरु के द्वारा प्रश्न करने पर अपने मानसिक दोषो को एकान्त स्थान मे स्पष्ट रूप से बतलाकर पाप क्षालनार्थ शिष्य जब अपने गुरु के संनिकट प्रायश्चित लेने को प्रस्तुत हो जाता है और उत्तम श्रावक जघन्य श्रावक ब्रह्मचारी क्षुल्लक ऐलक आर्यिका आदि गर्व तथा लज्जा का त्यागकर किए हुए पापो की आलोचना करता है तो उसका व्रत सफल होता है किन्तु यदि उपर्युक्त आलोचना न करके अपने पापो को छिपाता है तो उसके सभी व्रत व्यर्थ हो जाते है। इस प्रकार जिसे स्वर्गापवर्ग की प्राप्ति करनो हो उसे विशुद्ध मन से गुरु के निकट अपने पापो को नष्ट करने के लिए प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न—मूल प्रायश्चित्त का भागी कौन है ?

उत्तर—पार्शस्थ, कुशील, संसक्त अवसन्न तथा मृगचारी ऐसे पांच मुनि स्वच्छन्द वृत्ति हैं। अब इनके लक्षण बतलाते है:—

वसतिका मे प्रेम रखनेवाले, उपकरणो को एकत्रित करनेवाले, मुनि समुदाय मे न रहनेवाले पार्शस्थ कहलाते है।

क्रोधादिकषायों से युक्त व्रत गुणो से च्युत संघ के अपाय के लिए वैद्य मन्त्र ज्योतिष द्वारा इधर उधरघूम फिरकर जीवन निर्वाह करने वाले कुशील कहलाते हैं।

रागादि सेवा मे युक्त जिन वचन से अनभिज्ञ चारित्र भार से शून्य ज्ञानाचार से भ्रष्ट तथा करुणा मे आलसी रहनेवाले ससक्त कहलाते है।

गुरुद्रोही स्वच्छन्दचारी, जिन वचन मे दोप देखनेवाले अवसन्न कहलाते है।

जिन धर्म मे बाह्यचरणी उन्मादी, महा अपराधी पार्श्वस्थ की सेवा करनेवाले मृगचारी आदि मुनियो को मूलछेद प्रायश्त्ति दिया जाता है।

आलोचनञ्च ॥४८॥

अकम्पित, अनुमानित, दृष्ट, बादर सूक्ष्म, छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन अव्यक्त, तत्सेवित ये प्रायश्चित के १० भेद है।

चतुर्विध विनयः ॥४९॥

अर्थ—ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय तथा उपचार, ये विनय के चार भेद हैं।

शुद्ध मन से मोक्ष मार्ग के लिए जो ज्ञान, ग्रहण, ज्ञान अभ्यासादि किया जाता है उसे **ज्ञानविनय** कहते है।

द्वादशाग, चतुर्दश प्रकीर्णकादि श्रुतज्ञान समुद्र मे जितने भी अक्षर है उनके प्रति और पदो के प्रति नि.शकित रूप से पूर्ण विश्वास करना **दर्शनविनय** कहलाता है।

ज्ञान, विनय दर्शन, तप, वीर्य तथा चारित्र से युक्त होकर दुर्द्धर तपस्या मे लीन तथा साधुओ की त्रिकरण शुद्धि पूर्वक विनय करना **चारित्र-विनय** है। प्रत्यक्ष उपचार विनय और परोक्ष उपचार विनय ये उपचार विनय के दो भेद है।

इसमे से आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणाधरदि पूज्य परमऋषि

के निकट जाकर विनय करना अथवा उनकी कुशलता पूछकर यथायोग्य सेवा करना ये शब्द विनय हैं।

मन वचन काय से सुशील योग्यता धर्मानुराग की कथा श्रवण करना तथा अर्हदादि मे प्रमाद व मानसिक दोषो को छोडकर भक्ति करना गुरु वृद्ध सेवाभिलाषा आदि से सेवा करना या गुरु के वचन सर्वथा सत्य है यह विश्वास करके मन मे कभी हीनता का भाव न लाना, कुल आदि धनैश्वर्य, रूप, जाति बल, लाभ वृद्धि आदि का अपमान न करना सदा सभी जीवो के साथ क्षमा-भाव को रखकर मैत्रीपूर्ण विश्वास रखकर देशकालानुकूल हितमित वचन बोलना सेव्य, असेव्य भाव्य अभव्यादि विवेको का विचार पहले अपने मन मे कर लेने के बाद प्रत्यक्ष प्रमाणित करना **प्रत्यक्ष उपचार विनय** है। आचार्य व मुनिवगैरह यदि पास न हो तो भी अपने हृदय मे भक्ति रखना व नमस्कार करना यदि कदाचित् भूल भी जाएँ तो भी पश्चात्ताप करना आदि **प्रोक्षविनय** है।

इस भव और परभव के प्रति सासारिक सुख की अपेक्षा न रखना अक्षय अनन्त मोक्ष यत्न की इच्छा करके ज्ञान लाभ व चरित्र की विशुद्धि से सम्यगाराधना की सिद्धि के लिए जो विनय करता है वह शीघ्र स्वात्मोपलब्धि लक्षण रूपी मोक्ष मार्ग (द्वार) मे पडे हुए अर्गल को तोडकर मोक्ष महल मे प्रवेश करता है।

दशविधानि वैयावृत्यानि ॥५०॥

यदि किसी गुणवान धर्मात्मा पुरुष को कदाचित् शरीर पीडा हो या दुष्परिणाम हो, तो उनकी वैयावृत्य (सेवा) करना धर्मोपदेश देकर सन्मार्ग मे स्थिर करना तथा धर्म चर्चा सुनाना आदि वैयावृत्य कहलाता है। इस प्रकार वैयावृत्य के १० भेद है।

(१) आचार्य की वैयावृत्य, (२) उपाध्याय की वैयावृत्य, [३] कवल, चान्द्रायण आदि व्रतो के धारण करने से जिनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया है उन तपस्वी मुनि की वैयावृत्य करना [४] ऋतु ज्ञान शिक्षा तथा चारित्र शिक्षा मे तत्पर शिष्य रूप मुनियो की वैयावृत्य करना, [५] विविध भांति के रोगो से पीडित मुनियो की वैयावृत्य करना, [६] वृद्ध मुनियो की शिष्य परम्परा [गण] मुनि जनो की वैयावृत्य करना, [७] आचार्य की शिष्य परम्परा रूप मुनियो [कुल] की वैयावृत्य करना, [८] चातुर्वर्ण्य सघ की वैयावृत्य करना, [९] नव दीक्षित साधुओ की वैयावृत्य करना तथा [१०]

आचार्यादि मे समशील मनोज्ञ मुनियो की वैयावृत्य करना १० प्रकार का वैयावृत्य कहलाता है।

पंचविध स्वाध्यायः ॥५१॥

अर्थ—द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि तथा भावशुद्धि के साथ शास्त्र और श्रुतज्ञानी मुनियों की विनय करना स्वाध्याय है। बांचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश ये स्वाध्याय के पांच भेद हैं। करुणाभाव से दूसरे को पढाना बाचना है। अपने ज्ञान का अभिमान न करके शंका निवारण के लिए अधिक ज्ञानी से प्रश्न करना शंका समाधान करना, कोई बात पूछना **पृच्छना** है।

पढे हुए विषयो को बारम्बार चिन्तन-मनन करना **अनुप्रेक्षा** है। पद अक्षर मात्रा व्यञ्जनादि में न्यूनाधिक न करके जैसे का वैसा पढना, पाठ करना **आम्नाय** है। भव्य जीवो के हृदयस्थ अन्धकार को दूर करने के लिए जो उपदेश दिया जाता है वह **धर्मोपदेश** कहलाता है।

द्विविधो व्युत्सर्गः ॥५२॥

बाह्य और आभ्यन्तर भेद से व्युत्सर्ग दो प्रकार का है। बाह्य उपाधि-क्षेत्र घर गाय, भैस, दासी, दास, सोना, चांदी, यान, शयनासन, कुप्य, भाड आदि १० प्रकार के हैं। इनका त्याग करना बाह्य व्युत्सर्ग है।

अन्तरग उपाधि—मिथ्यात्व, वेदराग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये १४ आभ्यन्तर उपाधि हैं। इनका त्याग करना आभ्यन्तर व्युत्सर्ग हैं। व्युत्सर्ग के दो भेद है। उसमे जो जीवन पर्यन्त का त्याग है वह भक्त प्रत्याख्यानादि मरण के भेद से अनियत व्युत्सर्ग है। कुछ दिनो का नियम लेकर परिग्रह का त्याग करना नियत काल व्युत्सर्ग है और आवश्यकादि नित्य क्रिया, पर्वक्रिया व निपद्यादि क्रिया नैमित्तिक क्रियाये है।

इसके आगे छठवे बाह्य क्रिया काण्ड को कहते हैं—

(कौनसी भक्ति कहां करनी चाहिए)

कार्य	भक्ति
जिनप्रतिमावन्दन	चैत्यभक्ति पचगुरु भक्ति लघु सिद्धभक्ति
आचार्य वन्दना [गवासन से]	लघुआचार्य भक्ति

सिद्धांतवेत्ता आचार्य की वन्दना—सिद्ध, श्रुत आचार्य भक्ति

साधारण मुनियो की वन्दना—सिद्ध भक्ति

सिद्धातवेत्ता मुनियो की वन्दना--सिद्धभक्ति,श्रुतभक्ति

स्वाध्याय का प्रारम्भ—	लघुश्रुत भक्ति आचार्य भक्ति
स्वाध्याय की समाप्ति—	लघुश्रुत भक्ति ।
आचार्य की अनुपस्थिति मे पहले दिन उपवास वा प्रत्याख्यान ग्रहण किया हो तो दूसरे दिन आहार के समय	सिद्ध भक्ति पढकर उसका त्याग वा आहार के लिए गमन
आहार की समाप्ति पर अगले दिन के उपवास वा प्रत्याख्यान का ग्रहण करने मे	सिद्ध भक्ति ।
आचार्य की उपस्थिति मे आहार के लिए जाने जाने के पहले आहार के	लघुयोगि भक्ति, लघुसिद्ध भक्ति
अनन्तर प्रत्याख्यान वा उपवास की प्रतिज्ञा के लिए	लघुयोगि भक्ति लघुसिद्ध भक्ति
आचार्य वन्दना	— लघु आचार्य भक्ति
चतुर्दशी के दिन त्रिकाल वन्दना के लिए	चैत्य भक्ति, श्रुतभक्ति, पचगुरु भक्ति । अथवा सिद्ध भक्ति चैत्य भक्ति, श्रुत भक्ति, पचगुरु भक्ति, शाति भक्ति ।
नंदीश्वर पर्वमे	--सिद्धभक्ति, नन्दीश्वर भक्ति, पच गुरु भक्ति, शातिभक्ति ।
सिद्धप्रतिमा के सामने तीथङ्कर के	— सिद्धभक्ति
जन्म दिन	— चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति पचगुरु भक्ति अथवा सिद्ध भक्ति चैत्यभक्ति, पचगुरु भक्ति, श्रुतभक्ति शातिभक्ति ।
अष्टमी चतुर्दशी की क्रिया मे अपूर्व चैत्य वन्दना वा त्रिकाल नित्य वन्दना के समय	चैत्यभक्ति, पंचगुरु भक्ति शातिभक्ति ।
अभिषेक वन्दना—	सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पचगुरु भक्ति, शातिभक्ति ।
स्थिरबिंवप्रतिष्ठा—	सिद्धभक्ति, शातिभक्ति
जल बिंवप्रतिष्ठा के चतुर्थ अभिषेक मे	सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पचमहा गुरु भक्ति शातिभक्ति ।

तीर्थंकरों के गर्भ जन्म कल्याणक मे—सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति शान्ति भक्ति।

दीक्षाकल्याणक	— सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति शांतिभक्ति।
ज्ञानकल्याणक	—सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, शांति भक्ति।
निर्वाणकल्याण	— सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, निर्वाण और शांतिभक्ति।
वीरनिर्वाण- सूयर्योदय के समय	— सिद्ध भक्ति, निर्वाण, पचगुरु, शांति भक्ति।
श्रुतपचमी	— बृहत्सिद्धभक्ति, बृहत्श्रुतभक्ति श्रुत-स्कंध की स्थापना, बृहत्वाचना, बृहत्-श्रुतभक्ति, आचार्य भक्ति पूर्वक स्वाध्याय, श्रुतभक्ति द्वारा स्वायध्याय की पूर्णता अन्त मे शांति भक्ति कर क्रिया पूर्णता
श्रुतपंचमी के दिन गृहस्थो को	—सिद्ध, श्रुत, शांतिभक्ति
सिद्धांत वाचना=	सिद्ध, श्रुतभक्ति द्वारा प्रारम्भ श्रुतभक्ति आचार्यभक्ति कर वाचना अन्त मे श्रुत और शांति भक्ति।
गृहस्थों को सन्यास के प्रारम्भ मे	—सिद्ध, श्रुत, शांतिभक्ति।
गृहस्थो को सन्यास के अन्त मे	—सिद्ध, श्रुत, शांति
वर्षायोग धारण करते समय	—सिद्ध, योगि, चैत्यभक्ति।
वर्षायोग धारण की प्रदक्षिणा मे	—यावन्ति जिनचैत्यानि, स्वयम्भ स्तोत्र की दो स्तुति चैत्यभक्ति।
वर्षायोग स्वीकार करते समय	—गुरुभक्ति शान्ति भक्ति।
वर्षायोग समाप्ति मे	—वर्षायोग धारण करने की पूर्णविधि
आचार्यपद ग्रहण करते समय	—सिद्ध, आचार्य शान्ति भक्ति।
प्रतिमायोग धारण करने वाले मुनि की वन्दना करते समय	सिद्ध, योगि, शान्ति भक्ति।

यदि चतुर्दशी की क्रिया चतुर्दशी के दिन न हो सके तो पौर्णिमा वा अमावस्या के दिन अष्टमी की क्रिया करे अर्थात् सिद्ध, श्रुत, चारित्र और शांति भक्ति पढ़े।

दीक्षा ग्रहण करते समय—	बृहत्सिद्ध भक्ति, लघु योगिभक्ति ।
दीक्षा के अन्त मे—	सिद्धभक्ति ।
केशलोच करते समय—	लघु सिद्धभक्ति, लघु योगिभक्ति ।
लोच के अन्त मे—	सिद्धभक्ति ।
प्रतिक्रमण मे—	सिद्ध, प्रतिक्रमण, वीरभक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्ति ।
रात्रियोग धारण—	योगिभक्ति ।
रात्रियोग का त्याग—	योगिभक्ति ।
देव वन्दना मे दोष लगने पर—	समाधिभक्ति ।
सामान्य ऋषि के स्वर्गवास होने पर उनके शरीर और निषद्या की क्रिया मे	सिद्ध, योगि, शान्तिभक्ति ।
सिद्धातवेत्ता साधु के स्वर्गवास मे—	सिद्ध, श्रुत, योगि, शान्तिभक्ति ।
उत्तर गुणधारी साधु के स्वर्गवास होने पर	सिद्ध, चारित्र, योगि, शातिभक्ति ।
उत्तरगुणधारी सिद्धान्तवेत्ता साधु के स्वर्गवास पर	सिद्ध, श्रुत चारित्र योगिशाति भक्ति
आचार्य के स्वर्गवास होने पर	— सिद्ध, योगि, आचार्य, शातिभक्ति
सिद्धातवेत्ता आचार्य के स्वर्गवास पर—	सिद्धश्रुत योगि आचार्य शातिभक्ति
उत्तरगुणधारी आचार्य के स्वर्गवास पर	सिद्ध चारित्र योगि आचार्य शाति भक्ति ।
उत्तरगुणधारी सिद्धात वेत्ता आचार्य के स्वर्गवास पर	सिद्ध, श्रुत, योगि, आचार्य शान्ति भक्ति ।
पाक्षिक प्रतिक्रमण मे	—सिद्ध, चारित्र, प्रतिक्रमण, वीर भक्ति, चतुर्विंशतिभक्ति, चारित्रालोचना गुरुभक्ति, बृहदालोचना, गुरुभक्ति, लघुआचार्य भक्ति ।
चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे	
वार्षिक प्रतिक्रमण मे	

दश भक्ति

अथ ईर्यापथशुद्धिः

निःसगोऽहं जिनानां सदनमनुपम त्रिः परीत्येत्य भक्त्या, स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम्। भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवन्द्यं, निन्दादूरं सदाप्त क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम्॥ १ ॥ श्रीमत्पवित्रमकलंकमनन्तकल्पं, स्वायंभुवं सकलमंगलमादितीर्थम्। नित्योत्सव मणिमयं निलयं जिनानां, त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये॥ २ ॥ श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्। जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य, शासन जिनशासन ॥ ३ ॥ श्रीमुखालोकनादेव, श्रीमुखालोकन भवेत्। आलोकनविहीनस्य, तत्सुखावाप्तयः कुतः॥ ४ ॥ अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य, देव! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन। अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे, ससारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणं॥ ५ ॥ अद्य मे क्षालित गात्रं, नेत्रे च विमलीकृते। स्नातोऽह धर्मतीर्थेषु, जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥ ६ ॥ नमो नमः सत्वहितकराय, वीराय भव्याम्बुजभास्कराय। अनन्तलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥ ७ ॥ नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय, विनष्टदोषाय गुणार्णवाय। विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥ ८ ॥ देवाधिदेव! परमेश्वर! वीतराग! सर्वज्ञ तीर्थकर! सिद्ध! महानुभाव! त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव! वर्द्धमान! स्वामिन्! गतोऽस्मि शरण चरणद्वय ते॥ ९ ॥ जितमदहर्षद्वेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः। जितजन्ममरणरोगा जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः॥ १० ॥ जयतु जिनवर्द्धमानस्त्रिभुवनहितधर्मचक्रनीरजबन्धुः। त्रिदशपतिमुकुटभासुरचूडामणिरश्मिरजितारुणचरणः॥ ११ ॥ जय जय जय त्रैलोक्यकाण्डशोभिशिखामणे, नुद नुद नुद स्वान्तध्वान्त जगत्कमलार्क नः। नय नय नय स्वामिन् शांतिं नितान्तमनन्तिमां, नहि नहि नहि त्राता लोकैकमित्र भवत्परः॥ १२ ॥ चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे, भक्तिं स्तुतिं विनतिमञ्जलिमञ्जसैव। चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति। यश्चर्करीति तव देव स एव धन्यः॥ १३ ॥ जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं, तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः। अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते, क्षुद्व्यावृत्त्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः॥ १४ ॥ रूपं ते निरुपाधि-सुन्दरमिदं पश्यन् सहस्रेक्षणः, प्रेक्षाकौतुककारि कोऽत्र भगवन्नोपत्यवस्थान्तरम्। वाणीं गद्गदयन्वपुः पुलकयन्नेत्रद्वयं स्रावयन्, मूर्द्धानं नमयन्करौ मुकुलयन्श्चेतोऽपि निर्वापयन्॥ १५ ॥ त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति, श्रेयः सूतिरिति श्रियां निधिरिति श्रेष्ठः सुराणामिति। प्राप्तोऽहं शरणं शरण्यमगतिस्त्वां तत्त्यजोपेक्षणं। रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन किं विज्ञापितैर्गोपितैः॥ १६ ॥ त्रिलोकराजेन्द्रकिरीटकोटिप्रभाभिरालीढपदारविन्दम्। निर्मूलमुन्मूलितकर्मवृक्षं, जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या॥ १७ ॥ करचरणतनुविघातादटतो निहतः प्रमादतः प्राणी। ईर्यापथमिति भीत्या मुञ्चे तद्दोषहान्यर्थम्॥ १७ ॥ ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादादेकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकाय-

बाधा। निर्वर्तिता यदि भवेद्युगांतरेत्वा, मिथ्या तदस्तु दुरित गुरुभक्तितो मे ॥ १८ ॥
पडिक्कमामि भंते इरियावहियाए विराहणा अणागुत्ते, आइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे चंकमणे, पाणुग्गमणे विज्जग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणय वियडिय पइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, वेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, पचेंदियावप-किरिच्छिदा वा, लेसिदा वा छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा ठाणचंकमणदो वा तस्स उत्तरगुणं तस्स पायच्छित्तकरणं तस्स विसोहिकण जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकार करोमि तावक्कायं पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि। "ॐ णमो अरहंताणं, णमोसिद्धाण, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" ॥ जाप्यानि ॥ ९ ॥ ॐ नमः परमात्मने नमोऽनेकान्ताय शान्तये इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेउं पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमचउदिसु विदिसासु विहरमाणेण, जुगंतरदिट्ठिणा, भव्वेण दट्ठव्वा, पमाददोसेण डवडवचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं एदेसिं उवघादो कदो वा कारिदो वा कारिंतो वा, समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना, रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्। त्रैलोक्याधिपते, जिनेन्द्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना, निन्दापूर्वमहं जहामि सततं निवर्त्तये कर्म्मणाम् ॥ १ ॥ जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्ध, प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम्। अनन्तबोधादिभव गुणौघ क्रियाकलाप प्रकट प्रवक्ष्ये ॥ २ ॥ अथार्हत्पूजारभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमत्सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण। चत्तारि मगलं, अरहन्ता मगल सिद्धा मगलं, साहूमगल, केवलपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरहन्ता लोगुत्मा, सिद्धालोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरण पव्वज्जामि, अरहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धं सरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णत्तो धम्मो सरण पव्वज्जामि। अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णरसकम्मभूमिसु, जाव अरहन्ताणं, भयवताणं, आदियराणं तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाण केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं, परिणिव्वुदाण, अतगडाणं, पारयडाणं धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाण धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं दसणाणं, चरित्ताणं, सदा करोमि, किरियम्म। करेमि भत्ते, सामायिय सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवं तिविहेण मणसा-वचसा कायेण, ण करेमि णकारेमि कारतवि ण समणुमणामि तस्स भंते अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि गरहामि जाव अरहताणं भयवंताणं, पज्जुवास करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरिय वोस्सरामि जीवियमरणे लाहालाहे सजोगविप्पजोगेय। बंधुरिसुहदुक्खादो समदा सामायिय णाम। त्थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणन्तजिणे। णरपवरलोयमहिए, विहुयरयमले महप्पणे॥ १ ॥
लोयस्सुज्जोययरे, धम्मंतित्थकरे जिणे वंदे। अरहते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो

॥ २ ॥ उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥ सुविहिं च पुप्फयंतं; सीयल सेयं च वासुपुज्जं च। विमलमणंत भवयं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥ कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं। वंदाम्यरिट्ठणेमिं तह पांस वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥ एव मए अभित्थुया विहुयरयमला पहीणजरमरणा। चउवीसपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥ कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा। आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥ चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियपहा सत्ता। सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु ॥ ८ ॥

अथ श्रीसिद्ध भक्तिः

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदायान्साधितात्मस्वभावान्, वदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः। सिद्धिः स्वात्मोपलब्धि प्रगुणगुणगणोच्छादि-दोषापहारात्, योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धि ॥ १ ॥ नाभाव. सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्तेः, अस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी। ज्ञाता दृष्टा स्वदेहप्रमितिरुपसमाहारविस्तार धर्मा, ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥ २ ॥ स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या—, सपद्धेतिप्रघातक्षजदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः। कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्यसम्यक्त्वलब्धि—, ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतर्भासमानः ॥ ३ ॥ जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं सप्रतृप्यन्वितन्वन्, धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुपम प्रीणयन्नीश-भावम्। कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयभूः प्रवृत्त ॥ ४ ॥ छिन्दन्शेषानशेषान्निगलवलकलीस्तैरन-न्तस्वभावै, सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमान। अन्यैश्चा-न्यव्यपोहप्रवणविषयसप्राप्तिलब्धिप्रभावै—, रूर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि सतिष्ठतेऽग्र्ये ॥ ५ ॥ अन्याकाराप्तिहेतु र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीन, प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः। क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वर-मरणजरानिष्टयोगप्रमेह-व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥ ६ ॥ आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं, वृद्धिह्रास-व्यपेत विषयविरहित नि प्रतिद्वन्द्वभावम्। अन्यद्रव्यानपेक्ष निरुपममसमित शास्वत सर्वकाल, उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥ ७ ॥ नार्थ क्षुत्तृड्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्नहि मृदुशयनैर्ग्ला-निनिद्राद्यभावात्। आतङ्कार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्, दीपानर्थक्य-

बुद्धा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते ।। ८ ।। तादृक्सम्पत्समेता विविधनय-तप संयमज्ञानदृष्टि—चर्यासिद्धा समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवा. । भूता भव्या भवन्त. सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टै, तान्सर्वान्नौम्यनतान्नि-जिगमिषुरर तत्स्वरूप त्रिसन्ध्यम् ।। ९ ।। कृत्वा कायोत्सर्गं चतुरष्टदोषविर-हित सुपरिशुद्धम् । अतिभक्तिसंप्रयुक्तो योवदते स लघु लभते परमसुखम् ।। १ ।। इच्छामि भंते सिद्धि भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ सम्मणाणसम्मदसण-सम्मचारित्तजुत्ताण अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काण अट्ठगुणसंपण्णाण उढ्ढलोय-मच्छयम्मि पयट्ठियाण तवसिद्धाण णयसिद्धाण सजमसिद्धाणं अतीताणागदवट्ट-माणकालत्तयसिद्धाण सव्यसिद्धाण सया णिच्चकाल अचेमि वन्दामि पूजेमि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण जिण-गुणसम्पत्ति होउ मज्झ ।

इति सिद्धभक्ति.

श्रीश्रुतभक्तिः

स्तोष्ये संज्ञानानि परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि । लोकालोकविलोकनलोकित-सल्लोचनानि सदा ।। १ ।। अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेन्द्रियजम् । बव्हाद्यवग्रहादिककृतषट्त्रिशत् त्रिशतभेदम् ।। २ ।। विविधर्द्धि-बुद्धिकोष्ठस्फुटबीजपदानुसारिबुद्ध्यधिक । सभिन्नश्रोतृतया सार्धं श्रुतभाजन वन्दे ।। ३ ।। श्रुतमपि जिनवरविहित गणधररचितं द्व नेकभेदस्थम् । अङ्गागवाह्यभावितमनतविषयं नमस्यामि ।। ४ ।। पर्यायक्षरपदसघातप्रतिपत्ति-कानुयोगविधीन् । प्राभृतकप्राभृतक प्राभृतकं वस्तुपूर्व च ।। ५ ।। तेषां समा-सतोऽपि च विंशति भेदान्समश्नुवान तत् । वन्दे द्वादशधोक्त गंभीरवरशास्त्र-पद्धत्या ।। ६ ।। आचार सूत्रकृत स्थान समवायनामधेयं च । व्याख्याप्रज्ञप्ति च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने ।। ७ ।। वदेऽन्तकृद्दशमनुत्तरोपपादिकदश दशावस्थम् । प्रश्नव्याकरण हि विपाकसूत्र च विनमामि ।। ८ ।। परिकर्म च सूत्र च स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते । सार्द्ध चूलिकयापि च पचविध दृष्टिवाद च ।। ९ ।। पूर्वगत तु चतुर्दशधोदितमुत्पादपूर्वमाद्यमहम् आग्रायणीयमीडे पुरुष-वीर्यानुप्रवाद च ।। १० ।। सततमहमभिवदे तथास्तिनास्तिप्रवादपूर्वं च । ज्ञानप्रवादसत्यप्रवादमात्मप्रवाद च ।। ११ ।। कर्मप्रवादमीडेऽथ प्रत्याख्याननाम धेय च ' दशम विद्याधार पृथुविद्यानुप्रवादच ।। १२ ।। कल्याणनामधेयं प्राणावाय क्रियाविशाल च । अथ लोकबिंदुसार वदे लोकाग्रसारपद ।। १३ ।। दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयोद्विषट्क च । षोडश च विंशतिं च त्रिशतमपि

पचदश च तथा ॥ १४ ॥ वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम् । प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि ॥ १५ ॥ पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुवमध्रुव च्यवनलब्धिनामानि । अध्रुवसंप्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ॥ १६ ॥ सर्वार्थकल्पनीय ज्ञानमतीत त्वनागत कालम् । सिद्धिमुपाध्यं च तथा चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥ १७ ॥ पचमस्तुचतुर्थप्राभृतकस्यानुयोगनामानि । कृति. वेदने तथैव स्पर्शनकर्मप्रकृतिमेव ॥ १८ ॥ वंधननिवंधनप्रक्रममथाभ्युदयमोक्षै । संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ ॥ १९ ॥ सातमसातं दीर्घं ह्रस्व भवधारणीयसज्ञ च । पुरुपुद्गलात्मनाम च निधत्तमनिधत्तमभिनौमि ॥ २० ॥ सनिकाचितमनिकाचितमथ कर्मस्थितिकपश्चिमस्कंधौ । अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ॥ २१ ॥ कोटीनां द्वादशशतमष्टापंचाशतं सहस्राणाम् । लक्षत्र्यशीतिमेव च पंच च वदे श्रुतिपदानि ॥ २२ ॥ षोडशशतं चतुस्त्रिंशत्कोटीनात्र्यशीतिलक्षाणि । शतसंख्याष्टासप्ततिमष्टाविंशतिं च पदवर्णान् ॥ २३ ॥ सामायिक चतुर्विंशतिस्तव वदना प्रतिक्रमण । वैनयिकं कृतिकर्म च पृथुदशवैकालिकं च तथा ॥ २४ ॥ वरमुत्तराध्ययनमपि कल्पव्यवहारमेवमभिवंदे । कल्पाकल्पं स्तौमि महाकल्प पुंडरीक च ॥ २५ ॥ परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुंडरीकनामैव । निपुणान्यशीतिक च प्रकीर्णकान्यगवाह्यानि ॥ २६ ॥ पुद्गलमर्यादोक्तं प्रत्यक्ष सप्रभेदमवधिं च । देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदमभिवदे ॥ २७ ॥ परमनसि स्थितमर्थं मनसा परिविद्य मन्त्रिमहितगुणम् । ऋजुविपुलमतिविकल्पं स्तौमि मन पर्ययज्ञानम् ॥ २८ ॥ क्षायिकमनन्तमेक त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम् । सकलसुखधाम सततं वदेऽहं केवलज्ञानम् ॥ २९ ॥ एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि . लघु भवताज्ज्ञानर्द्धिज्ञानफल सौख्यमच्यवनं ॥ ३० ॥ इच्छामि भते । सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउ अगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्मसुत्तपढमाणिओगपुव्वगयचूलिया चेव सुत्तत्थयथुइधम्मकहाइय णिच्चकाल अंचेमि, पूजेमि, वदामि, णमसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ वोहिलाहो, सुगइगमण समाहिमरणं जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ ।

इति श्रुतभक्तिः

अथ श्रीचारित्रभक्ति

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूरहारागदान्, भास्वन्मौलिमणिप्रभाप्रविसरोत्तुगोत्त मांगान्नतान् । स्वेषा पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रु प्रकामं, सदा, वंदे पञ्चतयं

तमद्य निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ॥ १ ॥ अर्थव्यंजनतद्द्वयाविकलताकालोपधा–प्रश्रयाः, स्वाचार्याद्यनपन्ह्वो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम् । श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा, ज्ञानाचारमह त्रिधा प्रणिपताभ्युद्धृतये कर्मणाम् ॥ २ ॥ शंकादृष्टि–विमोहकाक्षणविधिव्यावृत्ति सन्नद्धता, वात्सल्य विचिकित्सनादुपरति, धर्मोपवृ-हक्रिया । शक्त्याशासनदीपन हितपथाद्भ्रष्टस्य संस्थापन, वदे दर्शनगोचर सुचरित मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥ ३ ॥ एकान्ते शयनोपवेशनकृतिः सतापन तानवम्, संख्यावृत्तिनिवधनामनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम् । त्याग चेन्द्रियदन्तिनो मदयनः स्वादो रसस्यानिशम्, षोढा बाह्यमह स्तुवे शिवगतिप्राप्त्यभ्युपाय तप ॥ ४ ॥ स्वाध्याय शुभकर्मणश्च्युतवत सप्रत्यवस्थापनम्, ध्यान व्यावृतिरामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ । कायोत्सर्जनसत्क्रिया विनय इत्येव तप षट्विध, वदेऽभ्यतरमन्तरगबलवद्विद्वे षिविध्वंसनम् ॥ ५ ॥ सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधत श्रद्धानमर्हन्मते, वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यते. ॥ या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा लघ्वी भवोदन्वतो, वीर्याचारमह तमूर्जितगुण वदे सतामर्चितम् ॥ ६ ॥ तिस्र. सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः, पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः पचव्रतानीत्यपि । चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्ट परैराचार परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीर नमामो वयम् ॥ ७ ॥ आचार सह पचभेदमुदितं तीर्थं पर मगल, निर्ग्रंथानपि सच्चरित्रमहतो वंदे समग्रान्यतीन् ॥ आत्माधीनसुखोदयामनुपमा लक्ष्मीमविध्वंसिनी, इच्छन्केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्वलाम् ॥ ८ ॥ अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यह चान्यथा, तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनवंचैनो निराकुर्वति ॥ वृत्ते सप्ततयी निधि सुतपसामृद्धि नयत्यद्भुतं, तन्मिथ्या गुरु दुष्कृत भवतु मे स्वं निंदितो निंदितम् ॥ ९ ॥ संसारव्यसनाहतिप्रचलिता नित्योदयप्रार्थिन', प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतय शातैनस प्राणिन । मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुल सोपानमुच्चैस्तराम्, आरोहन्तु चरित्तमुत्तममिद जैनेंद्रमोजस्विनः ॥ १० ॥ इच्छामि मते चारित्तभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउ सम्मण्णाणजोयस्स सम्मत्ताहिट्ठियस्स सव्वपहाणस्स णिव्वाणमग्गस्स कम्मणिज्जरफलस्स खमाहारस्स पचमहव्वयसपण्णस्स तिगुत्तिगुत्तस्स पचसमिदिजुत्तस्स णाणज्झाणणाहणस्स समया इव पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स सया अचेमि, पूजेमि वदामि णमसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमण, समाहिमरण, जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ ।

इति चारित्रभक्ति

अथ योगभक्तिः

जातिजरोरुरोगमरणातुरशोकसहस्रदीपिताः, दुःसहनरकपतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्धचेतसः। जीवितमबुबिंदुचपलं तडिदभ्रसमा विभूतयः, सकलमिदं विचिन्त्य मुनयः प्रशमाय वनान्तमाश्रिताः ॥ १ ॥ व्रतसमितिगुप्तिसंयुता शमसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः। ध्यानाध्ययनवशंगताः विशुद्धये कर्मणा तपश्चरन्ति ॥ २ ॥ दिनकरकिरणनिकरसतप्तशिलानिचयेषु निःस्पृहाः। मलपटलावलिप्ततनवः शिथिलीकृतकर्मबन्धनः ॥ व्यपगतमदनदर्परतिदोषकषायविरक्तमत्सराः गिरिशिखरेषु चडकिरणाभिमुखस्थितयो दिगबराः ॥ ३ ॥ सज्ज्ञानामृतपायिभिः क्षान्तिपयः सिच्यमानपुण्यकायैः। धृतसंतोषच्छत्रकैस्तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः, ॥ ४ ॥ शिखिगलकज्जलालिमलिनैर्विबुधाधिपचापचित्रितैः, भीमरवैर्विसृष्टचण्डाशनिशीतलवायुवृष्टिभिः। गगनतल विलोक्य जलदैः स्थगित सहसा तपोधनाः, पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशंकमासते ॥ ५ ॥ जलधाराशरताडिता न चलन्ति चरित्रत सदा नृसिंहाः। ससारदुःखभीरव परीषहारातिघातिन प्रवीराः ॥ ६ ॥ अविरतबहलतुहिनकणवारिभिरंघ्रिपपत्रपातनै-रनवरतमुक्तसीत्काररवैः परुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः। इह श्रमणा धृतिकबलावृताः शिशिरनिशाम्। तुषारविषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः ॥ ७ ॥ इति योगत्रयधारिणः सकलतपःशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः। परमानदसुखैषिणः समाधिमग्र्यं दिशतु नो भदन्ताः ॥ ८ ॥

गिम्हेगिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु। सिसिरे वाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्च ॥ १ ॥ गिरिकंदरदुर्गेषु ये वसति दिगंबराः। पाणिपात्रपुटाहारास्ते याति परमा गतिम् ॥ २ ॥ इच्छामि भंते योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सआ लोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु आदावणरुक्खमूलअब्भोवासठाणमोणविरासणेक्कपासकुक्कुडासणचउछपक्खखवणादियोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं वंदामि, णमसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, वोहिलाहो, सुगइगमण, समाहिमरण जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

इति योगभक्तिः

—o—

अथ आचार्यभक्तिः

सिद्धगुणस्तुतिनिरतानुद्धतरुषाग्निजालबहुलविशेषान्। गुप्तिभिरभिसंपूर्णान् मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥ मुनिमाहात्म्यविशेषात् जिन-

शासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन् ।। सिद्धि प्रपित्सुमनसो बद्धरजोविपुलमूलघातन-कुशलान् ।। २ ।। गुणमणिविरचितवपुष षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातृन्संततम् । रहितप्रमादचर्यान्दर्शनशुद्धान्—गणस्य सतुष्टिकरान् ।। ३ ।। मोहच्छिदुग्रतपसः प्रशस्तपरिशुद्ध हृदयशोभनव्यवहारान् । प्रासुकनिलयाननघानाशाविध्वंसिचेतसो हतकुपथान् ।। ४ ।। धारितविलसन्मुण्डान्वर्जितबहुदंडपिंडमंडलनिकारन् । सकल परीषहजयिन क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान् ।। ५ ।। अचलान्त्यपेत निद्रान्स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्याहीनान् । विधिनानाश्रितवासानलिप्तदेहान्विनि-र्जितेंद्रियकरिण ।। ६ ।। अतुलानुत्कुटिकासान्विविक्तचित्तानखंडितस्वाध्यायान् । दक्षिणभावसमग्रान्व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान् ।। ७ ।। भिन्नार्तरौद्रपक्षान्सं-भावितधर्मशुल्कनिर्मलहृदयान् ।। ८ ।। नित्यं पिनद्धकुगतीन्पुण्यान्गण्योदया—न्विलीनगारवचर्यान् । तरुमूलयोगयुक्तानवकाशातापयोगरागसनाथान् । बहुजन-हितकरचर्यानभवाननघान्महानुभावविधानान् ।। ९ ।। ईदृशगुणसपन्नान्युष्मान्भवत्या विशालया स्थिरयोगान् विधिनानारतमग्रयान्मुकुलीकृतहस्तकमलशोभितशिरसा ।। १० ।। अभिनौमि सकलकलुषप्रभवोदयजन्मजरामरणबधनमुक्तान् । शिवम-चलमनघमक्षयमव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम् ।। ११ ।। इच्छामि भते आइ-रियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ सम्मणाणसम्मदसणसम्मयचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणाण आयरियाण आयारादिसुदणाणोवदेसयाण उवज्झायाण, तिरयणगुणपालनरयाण सव्वसाहूण सयाअचेमि, पूजेमि, बदामि; णमसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, वोहिलाहो सुगइगमण, समाहिमरण जिनगुणसपत्ति होउ मज्झ ।

इति आचार्य भक्ति

अथ पंचगुरुभक्तिः

श्रीमदमरेन्द्रमुकुटप्र घटितमणिकिरणवारिधाराभि । प्रक्षालितपदयुगलान्प्रणमामि जिनेश्वरान्भक्त्या । १ । अष्टगुणैः समुपेतान्प्रणष्टदुष्टाष्टकर्मरिपुसमितीन् । सिद्धान्सततमनन्तान्तान्नमस्करोमीष्टतुष्टिससिद्ध्यै ।। २ ।। साचारश्रुतजलधीन्प्रतीर्य शुद्धोरुचरणनिरतानाम् । आचार्याणा पदयुगकमलानि दधे शिरसि मेऽहम् ।। ३ ।। मिथ्यावादिमदोग्रध्वान्तप्रध्व सिवचनसंदर्भान्। उपदेशकान्प्रपद्ये मम दुरितारिप्रणाशाय ।। ४ ।। सम्यग्दर्शनदीपप्रकाशका मेयबोधसंभूताः । भूरि-चरित्रपताकास्ते साधुगणास्तु मा पान्तु ।। ५ ।। जिन सिद्धसूरिदेशकसाधुवरानमलगुणगणोपेतान् । पचनमस्कारपदैस्त्रिसन्ध्यमभिनौमि मोक्षलाभाय ।। ६ ।। एष

पञ्चनमस्कारः सर्वपापप्रणाशनः । मङ्गलानां च सर्वेषां प्रथमं मगल भवेत् ॥ ६ ॥ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याया सर्वसाधव. । कुर्वन्तु मगलाः सर्वे निर्वाण-परमश्रियम् ॥ ८ ॥ सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान्सिद्धानाचार्यपाठकान् साधून् । रत्नत्रय च वंदे रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या ॥ ९ ॥ पान्तु श्रीपादपद्मानि पञ्चानां परमेष्ठिनाम् । लालितानि सुराधीशचूडामणिमरीचिभिः ॥ १० ॥ प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् स्वमातृभि. । पाठकान् विनयेः साधून् योगांगैरष्टभिः स्तुवे ॥ ११ ॥ इच्छामि भते पंचमहागुरुभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ अट्ठमहा-पाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाण, अट्ठपवयणमउसजुत्ताणं आयरियाण, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाण सव्वसाहूण णिच्चकालं अ चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ वोहिलाहो, सुगइगमण समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झ ।

इति पचगुरुभक्ति

अथ तीर्थंकरभक्तिः

अथ देवसियपडिक्कमणाए सव्वाइच्चारविसोहिणिमित्तं पुव्वाइरियकमेण चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्ग करेमि ॥ चउवीस तित्थयरे उसहाईवीर-पच्छिमे वदे । सव्वेसिं मुणिगणहरसिद्धे सिरसा णमसामि ॥ १ ॥ ये लोकेऽष्ट-सहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवांतर्गता–, ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चद्रार्कतेजोधिका येसाध्विद्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता, तान्देवान्वृषभादिवीरचरमान्भक्त्या नमस्याम्यहं ॥ २ ॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपम्, सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेवम् ॥ कर्मारि घ्नं सुबुद्धि वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगंधम्, क्षान्तं दांतं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चंद्रनामानमीडे ॥ ३ ॥ विख्यातं पुष्पदंतं भवभयमथनं शीतल लोकनाथम्, श्रेयास शीलकोष प्रवरनरगुरुं वासुपूज्य सुपूज्यं । मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्य मुनीन्द्रम्, धर्मं सद्धर्मकेतु शमदमनिलयं स्तौमि शान्ति शरण्यम् ॥ ४ ॥ कुंथुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरत्यक्तभोगेषु चक्रम् । मिल्ल विख्यातगोत्र खचरगणनुतं सुव्रत सौख्यराशिम् । देवेन्द्रार्च्यं नमीश हरिकुलतिलक नेमिचन्द्रं भवान्तम्, पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्द्धमान च भक्त्या ॥ ५ ॥ इच्छामि भंते चउवोसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सा लोचेउं, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं चउ-

तीसअतिसयविसेससंजुत्ताण, वत्तीसदेविंदमरिणमउडमत्थयमहियाणं, बलदेववासु-देवचक्कहररिसिमुणिजइअरगगारोवगूढाण, थुइसयसहस्सणिलयाण, उसहाइ—वीरपच्छिममगलमहापुरिसाण णिच्चकाल अचेमि, पुज्जेमि, वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण, जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ ।

इति तीर्थंकर भक्ति

अथ शान्तिभक्तिः

न स्नेहाच्छरण प्रयान्ति भगवन्पादद्वय ते प्रजा', हेतुस्तत्र विचित्रदु.ख-निचय ससारघोरार्णव । अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकरव्याकीर्णभूमडलो, ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिलच्छायानुराग रविः ॥ १ ॥ क्रुद्धाशीर्विषदष्टदुर्जयविष-ज्वालावलीविक्रमो, विद्याभेषजमत्रतोयहवनैर्याति प्रशांति यथा । तद्वत्ते चरणा-रुणाबुजयुगस्तोत्रोन्मुखाना नृणाम्, विघ्ना कायविनायकाश्च सहसा शाम्य-न्त्यहो विस्मयः ॥ २ ॥ सतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते, पुसा त्वच्चरणप्रमाणकरणात्पीडा प्रयान्ति क्षयं । उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघात-निष्कासिताः । नानादेहिविलोचनद्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ॥ ३ ॥ त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यंतरौद्रात्मकान्, नानाजन्मशतातरेषु पुरतो जीवस्य संसारिण । को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्रदावानलान्न स्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम् ॥ ४ ॥ लोकालोकनिरन्तरप्रविततस्थानैकमूर्ते विभो ! नानारत्नपिनद्धदन्डरुचिरश्वेतातपत्रत्रय । त्वत्पादद्वयपूतगीतरवत शीघ्रं द्रवन्त्यामया, दर्पाध्मातमृगेंद्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः ॥ ५ ॥ दिव्यस्त्री-नयनाभिरामविपुलश्रीमेरुचूडामणे, भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामण्डल अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं, सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगल-स्तुत्यैव संप्राप्यते ॥ ६ ॥ यावन्नोदयते प्रभापरिकर श्रीभास्करो भासयं स्तावद्धारयतीह पकजवनं निद्रातिभारश्रमम् । यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदयस्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ॥ ७ ॥ शांति शांतिजिनेन्द्रशातमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्, संप्राप्ता पृथिवीतलेषु बहव शान्त्य-र्थिन प्राणिन । कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो दृष्टिं प्रसन्नां कुरु, त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शात्यष्टकं भक्तितः ॥ ८ ॥ शातिजिनं शशिनिर्मल-वक्त्र शीलगुणव्रतसयमपात्रं । अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममम्बु-जनेत्रम् ॥ ९ ॥ पञ्चमभीप्सितचक्रधराणा पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च । शातिकरं

गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥ १० ॥ दिव्य तरु सुरपुष्प-सुवृष्टिदुन्दुभिरासनयोजनघोषौ ॥ आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः ॥ ११ ॥ तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शांतिकरं शिरसा प्रणमामि । सर्वगणाय तु यच्छतु शान्ति मह्यमरं पठते परमां च ॥ १२ ॥ येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुंडलहाररत्नै, शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्मा. । ते मे जिनाः प्रवरवंश-जगत्प्रदीपाः, तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवन्तु ॥ १३ ॥ सम्पूजकानां प्रति-पालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् । देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ. करोतु शांतिं भगवान् जिनेंद्रः ॥ १४ ॥ क्षेमं सर्वप्रजाना प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः । काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् । दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगता मास्मः भूज्जीवलोके । जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ १५ ॥ तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभ. स देशः, संतन्य ता प्रतपता सतत स कालः । भाव स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण, रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षुवर्गे ॥ १५ ॥ प्रध्वस्तघातिकर्माणि केवलज्ञानभास्करा । कुर्वन्तु जगता शान्ति वृषाभाद्या जिनेश्वरा ॥ १६ ॥ इच्छामि भंते शान्तिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पचमहाकल्लाणसंपण्णाण, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताण वत्तीसदेवेदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं, बलदेव-वासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणगारोवगूढाण, थुइसयसहस्सणिलयाण, उस-हाइवीरपच्छिममगलमहापुरिसाण णिच्चकाल अचेमि, पूजेमि वंदामि, णमं-सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरण, जिण-गुणसपत्ति, होउ मज्झ ।

इति शातिभक्ति·

अथ समाधिभक्तिः

स्वात्माभिमुखसवित्तलक्षण श्रुतिचक्षुषा । पश्यन्पश्यामि देव त्वां केवल-ज्ञानचक्षुषा । १ । शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यै, सद्वृत्तानां गुणगणकथा-दोषवादे च मौनम् । सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे, सपद्य ता मम भवभवे यावदेतेऽपवर्ग । २ । जैनमार्गरुचिरन्यमार्गनिर्वेगता जिनगुणस्तुतौ मतिः । निष्कलकविमलोक्तिभावना सभवन्तु मम जन्मजन्मनि । ३ । गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धातवार्धिसद्घोषे । ममभवतु जन्मजन्मनि सन्यसनसमन्वित मरणम् । ४ । जन्मजन्मकृत पापं जन्मकोटिसमार्जितम् जन्ममृत्युजरामूलं हन्यते जिनवदनात् । ५ । आबाल्याज्जिनदेवदेव भवतः

श्रीपादयोः सेवया, सेवासक्तविनेयकल्पलतया कालोद्ययावद्गत । त्वा तस्या. फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे, त्वन्नामप्रतिवद्धवर्णपठने कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम । ६ । तव पादौ मम हृदये ममहृदय तव पदद्वये लीनम् । तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्ति. । ७ । एकापि समर्थेय जिनभक्तिर्दुर्गति निवारयितुम् । पुण्यानि च पूरयितु दातु मुक्तिश्रिय कृतिनः । ८ । पच अरिंजयणामे पचय मदिसायरे जिणे वदे । पच जसोयर णामिये पचय सोमदरे वंदे । ९ । रयणत्तयं च वंदे, चव्वीसजिणे च सव्वदा वंदे पंचगुरूण वदे चारणचरण सदा वंदे । १० । अर्हमित्यक्षरब्रह्मवाचक परमेष्ठिन. । सिद्धचक्रस्य सद्वीज सर्वत प्रणिदध्महे । ११ । कर्माष्टकविनिर्मुक्त मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् । सम्यक्त्वादि-गुणोपेत सिद्धचक्रं नामाम्यहम् । १२ । आकृष्टि सुरसंपदा विदधते मुक्ति-श्रियो वश्यता । उच्चाट विपदा चतुर्गतिभुवा विद्वेषमात्मैनसाम् ॥ स्तभ दुर्गमन प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनम्-, पायात्पचनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता । १३ अनंतानन्तसंसारसततिच्छेदकारणम् । जिनराजपदाम्भोजस्मरण शरण मम । १४ । अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम । तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर । १५ । न हि त्राता नहि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये । वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति । १६ । जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने । सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे । १७ । याचेऽहं याचेऽहं जिन तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम् । याचेऽह याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव । १८ ।

विघ्नौघा प्रलय याति शाकिनीभूतपन्नगा ।
विषो निर्विषता याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ १९ ॥

इच्छामि भंते समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, रयणत्तयपरूवपरमप्पज्झाणलक्खण समाहिभत्तीये, णिच्चकाल अचेमि, पूजेमि, वदामि णम सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ वोहिलाहो, सुगइगमण, समाहिमरण, जिणगुणसपत्ति होउ मज्झं ।

इति समाधिभक्ति ।

अथ निर्वाण भक्ति

विबुधपतिखगपनरपतिधनदोरगभूतयक्षपतिमहितम् । अतुलसुखविमलनिरुपमशिवमचलमनामयं हि सप्राप्तम् । १ । कल्याणै. सस्तोष्ये पचभिरनघ त्रिलोकपरमगुरुम् । भव्यजनतुष्टिजननैर्दुरवापै. सन्मतिं भक्त्या । २ । आषाढ-

सुसितषष्ठयां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि । आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीश । ३ । सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुंडपुरे । देव्यां प्रियकारिण्या सुस्वप्नान्संप्रदर्श्य विभुः । ४ । चैत्यसितपक्षफाल्गुणि—शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम् जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने । ५ । हस्ताश्रिते शशाके चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे । पूर्वाण्हे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् । ६ । भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनतगुणराशिः । अमरोपनीतभोगान्सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः । ७ । नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रिता मणिविभूषाम् । चंन्द्रप्रभाख्यशिवकामारुह्य पुराद्विनिष्क्रान्त. । ८ । मार्गशिरकृष्णदशमीहस्तोत्तरमध्यमाश्रिते सोमे । षष्ठेन त्वपराण्हे भक्तेन जिन. प्रव, व्राज । ९ । ग्रामपुरखेटकर्वटमटबघोषाकरान्प्रविजहार । उग्रैस्तपोविधानैर्द्वाशवर्षाण्यमरपूज्य. । १० । ऋजुकूलायास्तीरे शालद्रुमसंश्रितेशिलापट्टे । अपराह्णेपष्ठेनास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ॥ ११ ॥ वैशाखसितदशम्या हस्तोत्तरमध्यमाश्रितेचन्द्रे । क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥ १२ ॥ अथ भगवान् संप्रपद्दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम् । चातुर्वर्ण्यसुसंस्तत्राभूद्गौतमप्रभृति ।१३। छत्राशोकौ घोषंसिंहासनदुंदुभीकुसुमवृष्टिम् । वरचामरभामण्डलदिव्यान्यन्यानि चावापत् ॥ १४ ॥ दशविधमनगाराणामेकादशधोत्तर तथा धर्मम् । देशयमानो व्यहरस्त्रिंशद्वर्षाण्यथजिनेन्द्रः ॥ १५ ॥ पद्मवनदीर्घिकाकुलविविधद्रुमखण्डमण्डिते रम्ये । पावानगरोद्यानेव्युत्सर्गेण स्थित. स मुनिः । १६ । कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातीवृक्षे निहत्य कर्मरज. । अवशेष सप्रापद्व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् । १७ । परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य । देवतरुरक्तचन्दन कालागुरुसुरभिगोशीर्षे. । १८ । अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभिधूपवरमाल्यैः । अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं ख च वनभवने । १९ । इत्येव भगवतिं वर्धमान चद्रे, यः स्तोत्रम् पठति सुसध्ययोर्द्वयोर्हि । सोऽनंतं परमसुख नृदेवलोके भुक्त्वाते शिवपदमक्षय प्रयाति । २० । यत्राहंतां गणभृतां श्रुतपारगाणा, निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम् । तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभि., सस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या । २१ । कैलासशैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ, शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा । चपापुरे च वसुपूज्यसुत. सुधीमान्, सिद्धि परामुपगतो गतरागबधः ।२२ । यत्प्रार्थ्यते शिवमय विबुधेश्वराद्यै, पाखडिभिश्च परमार्थगवेषशीलै. । नष्टाष्टकर्मसमये तदरिष्टनेमि., संप्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते । २३ । पावापुरस्बहिरुन्नतभूमिदेशे, पद्मोत्पलाकुलवता सरसा हि मध्ये । श्रीवर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो, निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा । २४ । शेषास्तु ते निजवरा जितमोहमल्ला, ज्ञानार्कभूरिकिरणैरवभास्यलोकान् । स्थानं परं निरवधारितिसौ-

ख्यनिष्ठ, सम्मेदपर्वततले समवापुरीशा । २५ । आद्यश्चतुर्दशदिनैर्विनिवृत्तयोग. षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्द्धमान । शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशा, मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगा । २६ । माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुहृब्धान्यादायमानसकरैरभित किरत । पर्यैम आदृतियुता भगवन्निशिद्या, सप्रार्थिता वयमिमे परमा गतिं ता । २७ । शत्रुंजये नगवरे दमितारिपक्षा, पडो सुता परमनिर्वृतिमभ्युपेता । तुंग्या तु सगरहितो बलभद्रनामा, नद्यास्तटे जितरि पुश्च-सुवर्णभद्रः । २८ । द्रोणीमति-प्रबलकुंडलमेढ्रके च, वैभारपर्वततले बरसिद्धकूटे । ऋष्याद्रिके च विपुलाद्रिवलाहके च, विंध्ये च पौदनपुरे वृषदीपके च । २९ । सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे, दडात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ । ये साधवो हतमला सुगतिं प्रयाताः, स्थानानि तानि जगति प्रथिनान्यभूवन् । ३० । इक्षोविकाररसयुक्तगुणेन लोक, पिष्टोऽधिका मधुरतामुपयाति यद्वत् तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्य, स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि । ३१ । इत्यर्हता शमवता च महामुनीना, प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृतिभूमिदेशाः । ते मे जिनाजितभया मुनयश्च शाताः, दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्य सौख्याम् । ३२ । कैलाशाद्रौ मुनीद्र पुरुरपदुरितो मुक्तिमाप प्रणूत चम्पाया वासुपूज्यस्त्रिदशपतिनुतो नेमिरप्यूर्जयन्ते । पावायां वर्धमानस्त्रिभुवनगुरवो विंशतिस्तीर्थनाथाः, सम्मेदाग्रे प्रजग्मुर्दयतु विनमता निर्वृतिं नो जिनेद्रा । ३३ । गौर्गजोश्व कपि कोक सरोज स्वास्तिक शशी । मकर श्रीयुतो वृक्षो गडो महिषशूकरौ । ३४ । सेधावज्रमृगाच्छगा पाठीन कलशस्तथा । कच्छपश्चोत्पल शंखो नागराजश्च केसरी । ३५ । शातिकुन्थ्वरकौरव्य यादवो नेमिसुव्रतौ । उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजा । ३६ । इच्छामि भते परिणिव्वाभत्ति काउस्सगो कओ तस्सालोचेउ इमम्मि अवसप्पिणीये, चउत्थसमस्स पच्छिमे भाए, आउट्ठामासहीणे, वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि । पावाये णयरीए, कत्तियमासस्स किण्हचउदसिए । रत्तीए सादीए णक्खत्ते, पच्चुसे भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो । तीसुवि लोएसु, भवणवासियवाणवितरजोइसियकप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेग धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकाल, अच्चति, पूजति, वदति, णमसति, परिणिव्वाण, महाकल्लाणपुज्ज करंति, अहमवि इहसतो तत्थ सताइय णिच्चकाल अचेमि, पूजेमि, वदामि, णमसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमण, समाहिमरण जिणगुणसपत्ति, होउ मज्झ ॥

इति निर्वाणभक्ति.

अथ नंदीश्वर भक्तिः

त्रिदशपतिमुकुटतटगतमणिगण- करनिकरसलिलधाराधौतक्रमकमलयुगलजिनपतिरुचिर–प्रतिबिबवियलविरहितनिलयान् ।। १ ।। निलयानहमिह महसां सहसा प्रणिपतनपूर्वमवनौम्यवनौ । त्रैय्या त्रय्या शुद्ध्या निसर्ग-शुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम् ।। २ ।। भावनसुरभवनेषु द्वासप्ततिशतसहस्रसंख्याभ्यधिकाः । कोट्यः सप्त प्रोक्ता भवनाना भूरितेजसां भुवनानाम् ।। ३ ।। त्रिभुवनभूतविभूनां संख्यातीतान्यसंख्यगुणयुक्तानि । त्रिभुवनजननयनमनः –प्रियाणि भवनानि भौमविबुधनुतानि, ।। ४ ।। यावन्ति सन्ति कान्तज्योतिर्लोकाधिदेवताभि–नुतानि, कल्पेऽनेकविकल्पे कल्पातीतेऽहमिन्द्रकल्पानल्पे ।। ५ ।। विंशतिरथ त्रिसहिता सहस्रगुणिता च सप्तनवति प्रोक्ता, चतुरधिकाशीतिरतः पंचकशून्येन विनिहतान्यनघानि ।। ६ ।। अष्टापंचाशदतश्चतु.शतानीह मानुषे च क्षेत्रे । लोकालोकविभागप्रलोकनालोकसयुजां जयभाजाम् ।। ७ ।। नवनव चतु शतानि च सप्त च नवति. सहस्रगुणिताः षट्च, पंचाशत्पंचवियत्प्रहताः पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्रोक्ता ।। ८ ।। एतावंत्येव सतामकृत्रिमाण्यथ जिनेशिनां भवनानि, भुवनत्रितये त्रिभुवनसुरसमितिसमर्च्यमानसत्प्रतिमानि ।। ९ ।। वक्षाररुचककुंडलरौप्यनगोत्तरकुलेषुकारनगेषु । कुरुषु च जिनभवनानि त्रिशता-न्यधिकानि तानि षड्विंशत्या ।। १० ।। नन्दीश्वरसद्द्वीपे नंदीश्वरजलधिपरि-वृते धृतशोभे । चद्रकरनिकरसन्निभरुन्द्रयशोविततदिङ महीमंडलके ।। ११ ।। तत्रत्याजनदधिमुखरतिकरपुरुनगवराख्यपर्वतमुख्या' प्रतिदिशमेषामुपरि त्रयोद-शेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ।। १२ ।। आषाढकार्तिकाख्ये फाल्गुणमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्या आरभ्याष्टदिनेषु च सौधर्मप्रमुखविबुधपतयो भक्त्या ।। १३ ।। तेषु महामहमुचितं प्रचुराक्षतगंधपुष्पधूपैर्दिव्यैः । सर्वज्ञप्रतिमाना प्रकुर्वंतेसर्वहितम् ।। १४ ।। भेदेन वर्णना का सौधर्मः स्नपनकर्तृतामापन्न परिचारकभावमिताः शेषेन्द्रा रुन्द्रचंद्रनिर्मलयशस ।। १५ ।। मगलपात्राणि पुनस्तद्देव्यो विभ्रति स्म शुभ्रगुणाढ्या । अप्सरसो नर्तक्य. शेषसुरास्तत्र लोक-नाव्यग्रधिय ।। १६ ।। वाचस्पतिवाचामपि गोचरता सव्यतीत्य यत्क्रममाणम् । विबुधपतिविहितविभवं मानुषमात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम् ।। १७ ।। निष्ठा-पितजिनपूजाश्चूर्णस्नपनेन दृष्टविकृतविशेषा । सुरपतयो नन्दीश्वरजिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुन ।। १८ ।। पचसु मंदरगिरिषु श्रीभद्रशालनन्दनसौमनसम् । पांडुकवनमिति तेषु प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव ।। १९ ।। तान्यथ परीत्य तानि च नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि । स्वास्पदमीयुः सर्वे स्वास्प-

दमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ॥ २० ॥ सहतोरणसद्वेदीपरीतवनयागवृक्षं मानस्तंभ । ध्वजपंक्तिदशकगोपुरचतुष्टयत्रितयशालमंडपवर्यैः ॥ २१ ॥ अभिषेकप्रेक्षणिकाक्रीडनसंगीतनाटकालोकगृहै । शिल्पिविकल्पितकल्पन-संकल्पातीतकल्पनैः समुपेतै ॥ २२ ॥ वापीसत्पुष्करिणीसुदीर्घिका-द्यम्बुसंसृतैः समुपेतैः । विकसितजलरुहकुसुमैर्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ॥ २३ ॥ भृंगाराब्दककलशाद्युपकरणैरष्टशतकपरिसंख्यानैः प्रत्येकं चित्रगुणैः कृतझणझणनिनदविततघटाजालैः ॥ २४ ॥ प्रविभ्राजंते नित्यं हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि । गंधकुटीगतमृगपति-विष्टररुचिराणि विविधविभवयुतानि ॥ २५ ॥ येषु जिनानां प्रतिमा पंचशतशरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमा । मणिकनकरजतविकृता दिनकर-कोटिप्रभाधिकप्रभदेहा ॥ २६ ॥ तानि सदा वंदेऽहं भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि । यशसां महसां प्रतिदिशमतिशयशोभाविभांजि पापविभंजि ॥ २७ ॥ सप्तत्यधिकशतप्रियधर्मक्षेत्रगततीर्थंकरवरवृष-भान् । भूतभविष्यत्संप्रतिकालभवान्भवविहानये विनतोऽस्मि ॥ २८ ॥ अस्यामवसर्पिण्यां वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ताभर्ता । अष्टापदगिरिमस्तकग-तस्थितो मुक्तिमाप पापोन्मुक्तः ॥ २९ ॥ श्रीवासुपूज्यभगवान् शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानां । चम्पायां दुरितहरः परमपदं प्रापदापदा-मन्तगतः ॥ ३० ॥ मुदितमतिबलमुरारिप्रपूजितो जितकषायरिपुरथ जातः । बृहदुजयन्तशिखरे शिखामणिस्त्रिभुवनस्य नेमिर्भगवान् ॥ ३१ ॥ पावापुरवरसरसां मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसां । वीरो नीरदनादो भूरिगुणश्चारुशोभमास्पदमगमत् ॥ ३२ ॥ सम्मद-करिवनपरिवृतसम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे । शेषा ये तीर्थंकराःकी-र्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ॥ ३३ ॥ शेषाणां केवलिनां अशेष-मतवेदिगणभृतां साधूनां । गिरितलविवरदरीसरिदुरु वनतरुविटपिजल-धिदहनशिखासु ॥ ३४ ॥ मोक्षगतिहेतुभूतस्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्रभक्ति-नुतानि । मंगलभूतान्येतान्यंगीकृतधर्मकर्मणामस्माकम् ॥ ३५ ॥ जिनपतयस्तत्प्रतिमास्तदालयास्तन्निषद्यकास्थानानि । ते ताश्च ते च तानि च भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम् ॥ ३६ ॥ संघासु तिसृषु

नित्यं, पठेद्यदि स्तोत्रमेतदुत्तमयशसाम् । सर्वज्ञानां सार्वं, लघु लभते श्रुतधरेडितं पदमनितम् ॥ ३७ ॥ दित्यं निःस्वेदत्वं निर्मलता क्षीरगौरुधिरत्वं च । स्वाद्याकृतिसंहनने सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ॥ ३८ ॥ अप्रमितवीर्यता च प्रियहितवादित्वमन्यदमितगुणस्य, प्रथिता दशविख्याताः स्वातिशयधर्माः स्वयंभुवो देहस्य ॥ ३९ ॥ गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षतागगनगमनमप्राणिवधः । भुक्त्युपसर्गाभावश्चतुरास्यत्वं च सर्वविद्येश्वरता ॥ ४० ॥ अच्छायत्वमपक्ष्मस्पंदश्च समप्रसिद्धनखकेशत्वं । स्वातिशयगुणा भगवतो घातिक्षयजा भवन्ति तेपि दशैव ॥ ४१ ॥ सार्वार्धमागधीया भाषा मैत्री च सर्वजनताविषया । सर्वर्तु फलस्तवकप्रवालकुसुमोपशोभिततरुपरिणामा ॥ ४२ ॥ आदर्शतलप्रतिमा रत्नमयीजायते मही च मनोज्ञा । विहरणमन्वेत्यनिल परमानंदश्च भवति सर्वजनस्य ॥ ४३ ॥ मरुतोऽपि सुरभीगंधव्यामिश्रा योजनांतर–भूभागं । व्युपशमितधूलिकंटकतृणकीटकशर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ॥ ४४ ॥ तदनु स्तनितकुमारा विद्युन्मालाविलासहासविभूषाः । प्रकिरन्ति सुरभिगंधिं गंधोदकवृष्टिमाज्ञया त्रिदशपतेः ॥ ४५ ॥ वरपद्मरागकेसरमतुलसुखस्पर्शहेममदलनिचयम् । पादन्यासे पद्मं सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्तभवंति ॥ ४६ ॥ फलभारनम्रशालिव्रीह्यादिसमस्तसस्यधृतरोमांचा । परिहृष्टितेव च भूमिस्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यंती ॥ ४७ ॥ शरदुदयविमलसलिलं सर इव गगनं विराजते विगतमलम् । जहति च दिशस्तिमिरिकां विगतरजः प्रभृतिजिह्मभावं सद्यः ॥४८ ॥ एतेतेति त्वरितं ज्योतिर्व्यंतरदिवौकसाममृतभुजः । कुलिशभृदाज्ञापनया कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ॥ ४९ ॥ स्फुरदरसहस्ररुचिरं विमलमहारत्नकिरणनिकरपरीतम् । प्रहसितकिरण–सहस्रद्युतिमडलमग्रगामि धर्मसुचक्रम् ॥ ५० ॥ इत्यष्टमगलं च स्वादर्शप्रभृति भक्तिरागपरीतैः । उपकल्प्यन्ते त्रिदशैरेतेऽपि निरुपमातिशेषाः ॥ ५१ ॥ वैडूर्यरुचिरविटपप्रवालमृदुपल्लवोपशोभितशाखः । श्रीमानशोकवृक्षो वरमरकतपत्रगहनबहलच्छायः ॥ ५२ ॥ मंदारकुंदकुवलयनीलोत्पलकमलमालतीबकुलाद्यैः । समदभ्रमरपरीतैर्व्यामिश्रा

पतति कुसुमवृष्टिर्नभसा ॥ ५३ ॥ कटकटिसूत्रकुंडलकेयूरप्रभृतिभूषितांगौ स्वंगौ । यक्षौ कमलदलाक्षौ परिनिक्षिपतः सलीलचामरयुगलम् ॥ ५४ ॥ आकस्मिकमिव युगपद्दिवसकरसहस्रमपगतव्यवधानम् । भामंडलमविभावितरात्रिदिवभेदमतितरामाभाति ॥ ५५ ॥ प्रबलपवनाभिघातप्रक्षुभितसमुद्रघोषमन्द्रध्वानम् । दंध्वन्वते सुवीणावंशादिसुवाद्यदुन्दुभिस्तालसमम् ॥ ५६ ॥ त्रिभुवनपतितलांछनमिंदुत्रय तुल्यमतुलमुक्ताजालम् । छत्रत्रयं च सुबृहद्वैडूर्यविक्लृप्तदंडमधिककमनोज्ञम् ॥ ५७ ॥ ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोत्रहृदयहारिगंभीरः । ससलिलजलधरपटलध्वनितमिव प्रवितान्तराशावलयम् ॥ ५८ ॥ स्फुरितांशुरत्नदीधितिपरिविच्छुरितामरेंद्रचापच्छायम् । ध्रियते मृगेंद्रवर्यैः स्फटिकशिलाघटितसिंहविष्टरमतुलम् ॥ ५९ ॥

यस्येह चतुस्त्रिंशत्प्रवरगुणा प्रातिहार्यलक्ष्म्यश्चाष्टौ ।
तस्मै नमो भगवते त्रिभुवनपरमेश्वरार्हते गुणमहते ॥ ६० ॥

इच्छामि भंते, णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओतस्सा लोचेउं णंदीसरदीवम्मि, चउदिसि विदिसासु अंजणदधिमुहरदिकरपुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासियवाणवितरजोइसिगकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहि गंधेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि दिव्वेहि,धुव्वेहि दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिवेहि ण्हाणेहि आसाढकत्तिफागुणमासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकाअच्चंति पूजंति, वंदति, णमंसंति णंदीसरमहाकल्लाणं करति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होऊ मज्झं ॥

इति नदीश्वरभक्ति

अथ चैत्यभक्तिः

श्रीगौतमादिपदमद्भुतपुण्यबंधमुद्योतिताखिलममोघमघप्रणाशम् ।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं निर्वाणकारणमशेषजगद्धितार्थम् ।

॥ १ ॥ जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृम्भितावमरमुकुटच्छा-योग्द्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणः विरतकलुषः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसु ॥ २ ॥ तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः, कुगतिविपथक्लेशादसौ विपाशयति प्रजाः । परिणतनयस्यांगीभावाद्विविक्तविकल्पितम् भएतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेंद्रवचोऽमृतम् ॥ ३ ॥ तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभगतरंगिणी, प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभाव विभाविनी । निरुपम-सुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलम्, विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्यय-मव्ययम् ॥ ३ ॥ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्य । सर्वजगद्वंद्येभ्योनमोस्तु सर्वत्र सर्वेभ्य ॥ ४ ॥ मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः ॥ विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमो-ऽर्हद्भ्यः ॥ ५ ॥ क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं । शुभधामानि धातारं वंदे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ॥ ६ ॥ मिथ्याज्ञानतमोवृ-तलोकैकज्योतिरमितगमयोगि । सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वंदे ॥ ७ ॥ भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविम्बचैत्यानि । त्रिजगदभिवं-दितानां त्रेधा बंदे जिनेन्द्राणाम् ॥ ८ ॥ भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधि-पाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणां । वंदे भवाग्निशांत्यै विभवानामालयालीस्ताः ॥ ६ ॥ इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि । चैत्या-लयाश्च विमलां दिशन्तु वोधिं बुधजनेष्टाम् ॥ १० ॥ अकृतानि कृतानि चाप्रमेयद्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मंदिरेषु । मनुजामरपूजितानि बंदे प्रति-विबानि जगत्त्रये जिनानाम् ॥ ११ ॥ द्युतिमण्डलभासुराङ्गयष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम् । भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि बंदमान. ॥ १२ ॥ विगतायुधविक्रियाविभूषा प्रकृस्थिाः कृतिनां जिनेश्वराणां प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्या प्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिबंदे ॥ १३ ॥ कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मी परया शांततया भवान्तकानाम् प्रणम्यभीरु मूर्तिमति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ॥१४॥ यदिद मम सिद्धभ-क्तिनीत सुकृतं दुष्कृतवर्त्यरोधि तेन । पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि ज॰मनि स्थिरा मे ॥ १५ ॥ अर्हतां सर्वभावाना दर्शनज्ञानसपदाम् । कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ॥ १६ ॥ श्रीमद्भुवनवासस्था स्वयंभासुरमूर्तय ।

बदिता नो विधेयासुः प्रतिमा परमा गतिम् ॥ १७ ॥ यावति सति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च । तानि सर्वाणि चैत्यानि वदे भूयासि भूतये ॥ १८ ॥ ये व्यतरविमानेषु स्थेयासः प्रतिमागृहाः । ते च सख्यामति-क्रान्ता सतु नो दोषविच्छिदे ॥ १९ ॥ ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसपद । गृहा स्वयभुव. संति विमानेषु नमानि तान् ॥ २० ॥ बदे सुरकिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम् । या क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चा सिद्धिलब्धये ॥ २१ ॥ इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम । चैत्यानामस्तु सकीर्ति सर्वास्रवनिरोधिनी ॥ २२ ॥ अर्हन्महानदस्य त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित प्रक्षालनैककारणमतिलौकिक कुहक तीर्थ मुत्तमतीर्थम् ॥ २३ ॥ लोकालोकसुतत्त्वप्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान—प्रत्यहवहत्प्रवाह व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम् ॥ २४ ॥ शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहसराजितमसकृत् । स्वाध्यायमद्रघोष नानागुणसमितिगुप्तिसिकतासुभगम् ॥ २५ ॥ क्षान्त्यावर्तसहस्रं सर्वदयाविकचकुसुमविलसल्लतिकम् । दु सहपरीषहाख्यद्रुततरङ्गत्तरंगभगुरनिकरम् ॥ २६ ॥ व्यपगतकषायफेन रागद्वेषादिदोषशैवलरहित । अत्यस्तमोहकर्दममतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ॥ २७ ॥ ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम् । विविधतपोनिधिपुलिन सास्रवसवरणनिर्जरानि.स्रवणम् ॥ २८ ॥ गणधरचक्रेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुडरीकैः पुरुषैः । बहुभि स्नातु भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ॥ २९ ॥ अवतीर्णवतः स्नातु ममापि दुस्तरसमस्तदुरित दूरम् । व्यपहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावगभीरम् ॥ ३० ॥ अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवन्हेर्जयात् । कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकत । बिषादमदहानित प्रहसितायमानं सदा । मुख कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ॥ ३१ ॥ निराभरणभासुर विगतरागवेगोदयात्, निरवरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषत ॥ निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात् । निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ॥ ३२ ॥ मितस्थितनखागज गतरजोमलस्पर्शनम् । नवांबुरुहचदनप्रतिमदिव्यगंधोदयम् ॥ रवीन्दुकुलिशादिदिव्यवहुलक्षणालंकृतम् । दिवाकरसहस्रभासुरमनीक्षणाना प्रियम् ॥ ३३ ॥ हितार्थपरिपंथिभि प्रबलरागमोहादिभि, कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते । सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यता सर्वत, शरद्विमलचन्द्रमण्डलमिवोत्थितं दृश्यते ॥ ३४ ॥ तदेनदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणिस्फुरत्किरण चुंबनीयचरणारबिन्दद्वयम् ॥ पुनातु भगवज्जिनेन्द्र तव रूपमन्धीकृतम्, जगत्सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयै ॥ ३५ ॥ मानस्तम्भा सरासि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी । प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकातर्ध्वजाद्या. ॥ शाल. कल्पद्रुमाणा सुपरिवृतवन स्तूपहर्म्यावली च । प्राकार. स्फा-

टिकोन्तर्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः ॥ ३६ ॥ वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मदरेषु । यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानाम् ॥ ३७ ॥ अवनितलगतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां, वनभवनगताना दिव्यवैमानिकाना । इह मनुजकृताना देवराजार्चितानां, जिनवरनिलयाना भावतोऽहं स्मरामि ॥ ३८ ॥ जम्बूधातकिपुष्कराद्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाश्चद्राभोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभा जिनाः सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना. । भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नम ॥ ३९ ॥ श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे, वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचके कुंडले मानुषाके । इष्वाकारेऽजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥ ४० ॥ देवासुरेंद्रनरनागसमर्चितेभ्य. पापप्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः । घटाध्वजादिपरिवार विभूषितेभ्यो नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः ॥ ४१ ॥ इच्छामि भते चेइयभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउढ्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणवितरजोइसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गधेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति । अहमवि इह संतो तत्थ सताइ णिच्चकाल अचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमसामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमण समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं ।

इति चैत्यभक्तिः

अथ चतुर्दिग्वन्दना

प्राग्दिग्विदिगन्तरे केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः । ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानह बन्दे ॥ १ ॥ दक्षिणदिग्विदिगन्तरे केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवा ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानहं बन्दे ॥ २ ॥ पश्चिमदिग्विदिगन्तरे केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः । ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानहं बन्दे ॥ ३ ॥ उत्तरदिग्विदिगन्तरे केवलिजिनसाधुगण देवा । ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानह बन्दे ॥ ४ ॥

इति चतुर्दिग्वन्दना

—o—

परमानन्द स्वरूप मुक्ति की प्राप्ति सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मध्यान के बिना नही होती, इस कारण ध्यान का विवरण देते हैं—

ध्यानं चतुर्विधम् ॥५३॥

अर्थ—मन का एक ही विषय पर रुके रहना **ध्यान** है। उत्तम सहनन धारक बलवान पुरुष को उत्तम ध्याता कहते हैं। वह एक ही विषय का ध्यान अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक कर सकता है तदनन्तर मन अन्य विषय के चिन्तन पर चला जाता है। आत्मा, अजीव आदि पदार्थ ध्येय [ध्यान के विषय] हैं। स्वर्ग मोक्ष आदि की प्राप्ति होना ध्यान का फल है।

ध्यान चार प्रकार का है [१] आर्त, [२] रौद्र, [३] धर्म, [४] शुक्ल।

आर्तं रौद्रं तथा धर्मं, शुक्लञ्चेतिचतुर्विधम्।
तत्राद्ये संसृतेःहेतू, द्वयंमोक्षस्य तत्परम् ॥१॥

अर्थ—ध्यान चार प्रकार का है—आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमे से आर्त रौद्र ध्यान ससार भ्रमण के कारण हैं, धर्म ध्यान औरशुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण है।

आर्तञ्च ॥५४॥

अर्थ—आर्तध्यान भी चार प्रकार का है—(१) इष्टवियोगज, (२) अनिष्ट सयोगज, (३) निदान (४) वेदना।

अमनोज्ञ असप्रयोग, अनुत्पत्ति सकल्पाध्यवसान—यानी अनिष्ट पदार्थ का सयोग न हो, अनिष्ट पदार्थ मेरे लिए उत्पन्न न हो, इस प्रकार सकल्प तथा चिन्तवन करना। उत्पन्न विनाश सकल्पाध्यवसान-यानी-उत्पन्न हुए अनिष्ट पदार्थ के नाश होने का सकल्प करना तथा चिन्तवन करना। मनोज्ञ-अविप्रयोग अनुत्पत्ति-सकल्पाध्यवसान-यानी-अपने इष्ट पदार्थ का वियोग न होने पावे, ऐसा संकल्प तथा चिन्तन करना। उत्पन्न-अविनाश सकल्पाध्यवसान-यानी-इष्ट पदार्थ के मिलजाने (उत्पन्न होने) पर उसके विनाश न होने का सकल्प का चिन्तन करना।

दुखदायक पशुओ तथा शत्रु मनुष्य एव ५६८९९५८४ प्रकार के शारीरिक रोगो मे से मुझे कोई भी रोग न हो इस प्रकार का चिन्तवन करना **अमनोज्ञ असप्रयोग अनुत्पति-संकल्पाध्यवसान** है।

अपने आपको अप्रिय—शत्रु, स्त्री, पुत्र, आदि के सम्बन्ध हो जाने पर

ऐसा विचार करना कि ये मर जावें, या इनका सम्बन्ध मुझसे छूट जावे ऐसा चिन्तन करना **उत्पन्न-विनाशसकल्पाध्यवसान** है।

प्रिय पदार्थ—धन धान्य, सुवर्ण, भवन, शयन आसन, स्त्री आदि, हमें नहीं मिले—इस प्रकार दुःखरूप चिन्तवन करना **मनोज्ञ अप्रयोग-अनुत्पत्ति संकल्पाध्यवसान** है।

जो प्रिय पदार्थ (धन मकान स्त्री आदि) मुझे मिल गये हैं वे कभी नष्ट न होने पावें, सदा मेरे पास बने रहें, इस प्रकार का चिन्तवन करना **उत्पन्न-अविनाश-संकल्पा ध्यवसान** आर्त ध्यान है।

अन्य प्रकार से आर्तध्यान—

आर्तध्यानं चतुर्भेदमिष्ट वस्तु वियोगजम् ।
अनिष्ट वस्तुयोगोत्थं, किंच दृष्ट्वा निदानजम् ॥
किंचपीड़ादिके जाते चिन्तां कुर्वन्ति येज्जडा ॥
तस्यात्य जन्तु पापस्य, मूलमार्त सुदूरतः ॥

अर्थ—आर्तध्यान चार प्रकार का है १-इष्ट प्रिय पदार्थ के वियोग हो जाने पर दुख रूप चिन्तवन **इष्टवियोगज आर्तध्यान** है। २—अनिष्ट अप्रिय पदार्थ का संयोग हो जाने पर उसके छूटने का चिन्तवन करना **अनिष्टसंयोगज** आर्तध्यान है। ३-शरीर में अधिक रोग पीड़ा होने पर दुख चिन्तवन करना **वेदना** आर्तध्यान है। ४—आगामीकाल में सांसारिक विषयभोगो के प्राप्त होने का चिन्तवन करना **निदान** आर्तध्यान है।

इस भव में जो अपने को स्त्री, पुत्र, धन, भवन आदि इष्ट प्रिय पदार्थ मिले हों उनके वियोग हो जाने पर मन व्याकुल दुखी हो जाता है, भगवान के दर्शन, पूजन, भक्ति, शास्त्र स्वाध्याय, सामायिक आदि में चित्त नहीं लगता, मन दुख में डुबा रहता है, इस का कारण यह **इष्टवियोगजन्य** आर्तध्यान है।

कुपुत्र, दुराचारिणी, कटुभाषिणी, असुन्दरी स्त्री, प्राणग्राहक भाई, दुष्ट पड़ोसी, दुष्ट सम्बंधी, शत्रु आदि अप्रिय अनिष्ट पदार्थ के मिल जाने पर चित्त में दुख बना रहता है, मन क्लेश में डूबा रहता है, सदा उनसे छुटकारा पाने की चिन्ता रहती है, धर्म कर्म में चित्त नहीं लगता इस कारण यह **अनिष्ट संयोगजन्य** आर्तध्यान है।

गेहू आदि धान्य, सोना चादी आदि पदार्थ सग्रह कर रक्खे हो। उनको महगा भाव हो जाने पर बेचने का, अकाल दुर्भिक्ष आदि होने का विचार करना, जिससे अधिक लाभ हो सके, वैद्य विचार करे कि रोग फैल जावे तो मुझे बहुत धन मिले, इत्यादि स्वार्थ साधन के बुरे विचार जब मन मे आते है उस समय दान, पूजा, व्रत, स्वाध्याय सामायिक आदि धर्म कार्य मे मन नही लगता इस कारण यह **निदान** आर्तध्यान है।

असाता वेदनीय कर्म के उदय से शिर, मुख, नाक, कान, गले, छाती, पेट, पेडू, अण्डकोश, पैर टाग आदि अग उपागो मे ५६८९९५८४ तरह के रोग हो जाते हैं, उन रोगो से शरीर मे बडी पीडा (वेदना) होती है उस समय मन किसी धर्म कार्य मे नही लगता, सदा दुखी बना रहता है, इस कारण यह **वेदना** नामक आर्तध्यान है।

रौद्रमपिचतुर्विधञ्च ॥५५॥

अर्थ—और रौद्रध्यान भी चार प्रकार का है।

प्राणिनां रोदनाद्रौद्रः क्रूर सत्वेषुनिर्घृण ।
पुमांस्तत्र भवं रौद्रं विद्धि ध्यानं चतुर्विधम् ॥
हिंसानन्दान्मृषानन्दात्स्तेयानन्दात्प्रजायते ।
परिग्रहाण मानन्दात्त्याज्यं रौद्रञ्च दूरतः ॥३२॥

अर्थ—अन्य जीवो को निर्दयता से रुलानेवाला, रुद्रता–क्रूरता रूप जो ध्यान होता है वह **रौद्रध्यान** है। वह चार तरह का है १–हिंसा मे आनन्द मानने से होनेवाला **हिंसानन्द**, २–असत्य बोलने मे आनन्द मानने से होनेवाला **मृषानन्द**, ३–चोरी करनेमे आनन्द मानने से होने वाला **स्तेयानन्द** ४—परिग्रह सचय करने मे आनन्द मानने से होनेवाला **परिग्रहानन्द** या '**विषयसंरक्षणानन्द** रौद्रध्यान होता है, ये ही उसके चार भेद हैं।

क्रूर परिणाम से किसी को क्रोधित होकर गाली देना, निग्रह करना, मारना या जान से मार डालकर आनन्द मानना **हिंसानन्द** कहलाता है। अपने ऊपर यदि कोई विश्वास करता हो तो भी उसके साथ विश्वासघात करके झूठ बोलकर आनन्द मानना **मृषानन्द** नामक रौद्रध्यान कहलाता है।

बलवान होने से किसी निर्बल निर्दोषी व्यक्ति को मिथ्या दोषी ठहराकर उससे दण्ड वसूल करना या दूसरे के द्रव्य को चुराकर आनन्द मनाना **स्तेयानन्द** रौद्रध्यान कहलाता है।

धन, धान्य, दासी, दास इत्यादि ग्रहण किये हुए अपने समस्त परिग्रहो के प्रति प्रगाढ प्रेम करते हुए ऐसी भावना करना कि यह सब हमारे हैं, इसे हमने संचय किया है, यदि मैं न रहूं तो ये सब नष्ट हो जायगे और इनके नष्ट हो जाने से मै भी नष्ट हो जाऊंगा, ऐसा सोचकर अत्यन्त मोह से सरक्षण करना **विषय संरक्षणानंद** चौथा रौद्रध्यान है।

इस प्रकार चारो रौद्रध्यानो मे मन वचन कायपूर्वक कृत, कारित तथा अनुमोदना द्वारा आनन्द मानने के ९ भेद होते हैं। और उनमे से प्रत्येक चारों के मिलाने से ३६ होते हैं ये ध्यान अत्यन्त कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्यावाले होकर मिथ्या दृष्ट्यादि पाच गुणस्थान वाले होते है। ये नरक गति बन्ध करनेवाले होते है। परन्तु बद्धायुष्य के विना तीव्र सक्लेश परिणामी होने पर भी सम्यग्दृष्टि को नरकायु का बंध नही होता।

धर्मध्यानं दशविधम् ।५६।।

अर्थ—१—अपायविचय, २—उपायविचय, ३—जीव विचय, ४—अजीव विचय, ५—विपाक विचय, ६—विरागविचय, ७—भवविचय, ८—संस्थान विचय, ९—आज्ञाविचय और १०—कारण विचय ये धर्म ध्यान के १० भेद होते हैं।

१—संसार मे मन, वचन काय से सम्पादन किए हुए अशुभ कर्मो के नाश होने का चिंतनमनन करना **अपायविचय** है। कहा भी है कि ससार मे अनन्त दुख हैं—

तावज्जन्मातिदुःखाय ततो दुर्गतता सदा।
तत्रापि सेवया वृत्तिरहो दुःखपरम्परा।।

प्रथम तो जन्म ही दुख के निमित्त होता है, फिर दरिद्रता और फिर उसमे भी सेवावृत्ति। अहो! कैसी दुख की परम्परा है।

२—प्रशस्त मन वचन काय के विना अशुभ कर्मों का नाश कदापि नही हो सकता, ऐसा विचार करना **उपायविचय** है।

३—यह जीव ज्ञान-दर्शन उपयोगवाला है द्रव्यार्थिकनय से इसका अन्त नही अर्थात् यह चिर स्थायी है, कभी नष्ट नही होता। अपने द्वारा सम्पादित शुभाशुभ कर्मो का फल स्वयमेव भोगता है। अपने द्वारा प्राप्त किये हुए स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर को स्वयमेव धारण करता है, संकोच विस्तार तथा ऊर्ध्वगमन करने वाला भी आप ही है, कर्मों के साथ सदा काल से सम्बन्ध करनेवाला

भी आप ही है, कर्मों का क्षय करके मोक्ष जानेवाला भी आप ही है, अशुद्ध-निश्चयनय से चौदह गुण स्थान, चौदह मार्गणास्थान तथा चौदह जीव समास वाला भी आप ही है और आप ही अमूर्त्त स्वभाववाला भी है, इत्यादि प्रकार से जीव का चिन्तन करना **जीवविचय** धर्म ध्यान है।

४—अचेतन—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाचो के स्वरूप को नि.शकित भाव से अजीव जानकर दृढ विश्वास रखकर चिन्तवन करन **अजीवविचय** धर्म ध्यान है।

योग और कषायो से जो कार्माण वर्गणाए आत्मा के प्रदेशो के साथ सम्बद्ध हो जाती है, उन्हे कर्म कहते है। कर्म ज्ञानावरण आदि ८ हैं। उन कर्मो का स्थापना, द्रव्य, भाव, मूल प्रकृति, उत्तर प्रकृति रूप से विचार करना अशुभ कर्मों का रस नीम, काजीर, विप, हालाहल के समान उत्तरोत्तर अधिक दुखदायी तथा शुभ कर्मो का रस गुड, खाड, और मिश्री अमृत के समान उत्तरोत्तर अधिक सुखदायी होता है, कर्म प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश रूप से जीव के साथ रहते हैं। कषायो की मन्दता तीव्रता लता (बेल), दारु (लकडी), अस्थि (हड्डी) और शैल पत्थर के समान होती है, जिस-जिस योनि मे यह जीव जाता है उस-उस योनि के उदय योग्य कर्म उदय मे आकर अपना फल देते है, इस प्रकार कर्मो के विपाक (फल देने) का विचार करना **विपाक विचय** है।

६—यह शरीर अनित्य है, अशरण (अरक्षित) है, वातपित्त कफ दोषमय हैं, रस, रक्त, मास, मेदा, हड्डी, मज्जा तथा वीर्य, इन सात धातुओ से भरा हुआ है, मूत्र, पुरीश (टट्टी) आदि दुर्गन्धित पदार्थो का घर है, इसके ६ छेदो से सदा मैल निकलता रहता है, इस शरीर का पोषण करने से आत्मा का अहित होता है, जिन विषय भोगो को यह शरीर भोगता हैं वे अत मे नीरस हो जाते है, विष, शत्रु, अग्नि, चोर आदि से भी बढकर शरीर के विषय भोग आत्मा को दुख देते हैं। इस तरह शरीर राग करने योग्य नही है, इससे विरक्त होकर इस शरीर से तप ध्यान सयम करना उचित है। इस प्रकार चिंतवन करना **विरागविचय** है।

७—सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त मिश्रयोनि, शीत उष्ण, शीत उष्ण मिश्र योनि, सवृत, विवृत, सवृत विवृत मिश्र योनि मे (उत्पन्न होने के स्थान में) गर्भज जीव (मनुष्य, तिर्यंच) जरा नाल [जेर] के साथ या जरा नाल के विना [पोतज] तथा अण्डे द्वारा उत्पन्न होते हैं, देव उपपाद शय्या पर उत्पन्न

होते है, नारकी मधु मक्खियो के छत्ते मे छेदो के समान नरकों मे उत्पन्न होते है, शरीर बनने योग्य पुद्गल वर्गणाओ का अनियत स्थान पर बन जानेवाले शरीर मे जन्म लेनेवाले **सम्मूर्छन** जीव है। एक शरीर छोडकर अन्य शरीर लेने के लिए एक समयवाली विग्रहगति छूटे हुए वाण के समान इषुगति होती है, एक मोडे वाली दो समयक **पाणिमुक्त** गति, दो मोड तथा तीन समय वालो हल गति और तीन मोड वाली चार समय की विग्रह गति **गोमूत्रिका** गति होती है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के विना यह जीव अनन्त ससार से भव धारण किया करता है, ऐसा चिन्तवन करना **भव निचय** धर्म ध्यान है।

८—अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, वोधि दुर्लभ और धर्म, इन वारह भावनाओ का चिन्तवन करना **संस्थानविचय** है।

अध्वुवमसरणमेकत्तमण्ण संसार लोकमसुचित्तं।
आसवसवरणिज्जर धम्मंबोहिच्च चिंतेज्जो ॥७॥

इस गाथा का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार है।

९—जीव आदि पदार्थ अतिसूक्ष्म है उन्हे क्षायोपशमिक ज्ञान द्वारा स्पष्ट नही जाना जा सकता। उन सूक्ष्म पदार्थो को केवली भगवान ही यथार्थ जानते हैं। अत केवलो भगवान की आज्ञा ही प्रमाण रूप है, ऐसा विचार करना **आज्ञाविचय** है। कहा भी है—

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिना. ॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया जीव अजीव आदि तात्विक वहुत सूक्ष्म है। उस कथन को हेतुओ [दलीलो] से खण्डित नही किया जा सकता। उस जिनवाणी को भगवान की आज्ञा रूप समझकर मान्य करना चाहिए क्योकि सर्वज्ञ वीतराग स्वरूप जिनेन्द्र भगवान अन्यथा [गलत] नहीं कहते हैं।

१०—सूक्ष्म परमागम मे यदि कही भेद प्रतीत हो तो उसे प्रमाण, नय निक्षेप, सुयुक्ति से दूर करना, स्वसमय भूषण [मण्डन]; पर-समय दूषण [खण्डन] रूप से चिन्तवन करना **कारणविचय** धर्म ध्यान है।

ये दश प्रकार के धर्म ध्यान पीत, पद्म तथा शुक्ल लेश्या वाले के होते हैं,

असयत सम्यग्दृष्टि, देश सयत, प्रमत्त तथा अप्रमत्तइन चार गुण स्थानों मे होते हैं।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान ने १–**आज्ञाविचय** [जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा या उनकी वाणी प्रामाणिक है, ऐसा चिन्तवन], २—कल्मष **अपाय विचय** [पाप कर्म तथा सभी कर्म किस प्रकार नष्ट हो ऐसा चिन्तवन करना] ३–**विपाकविचय** (कर्मों के उदय फल आदि का चिन्तवन करना) और ४—**संस्थानविचय** (लोकाकाश का स्वरूप चिन्तवन करना) धर्मध्यान के ये ४ भेद भी वतलाये है।

धर्मध्यान दो प्रकार का भी है १– वाह्य, २—अतरङ्ग । व्रत, तप, सयम, समिति आदि धारण करना, सामायिक, स्वाध्याय आदि करना **बाह्य-धर्मध्यान** है क्योकि इस प्रकार के आचरण रूप धर्म ध्यान को बाहर से अन्य व्यक्ति भी जान सकते है।

स्वय अन्तरङ्ग मे शुद्धि लाकर धर्म आचरण करना **अन्तरङ्ग धर्म-ध्यान** है। अन्तरङ्ग शुद्धि के लिए माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य नही होनी चाहिए।

परस्त्री वाछारूप रागविकार तथा पर-वध, बन्धादि रूप द्वेष विकार जब हृदय मे उत्पन्न हो जावें तब उन विकार भावो को दूर न करते हुए वाहरी आचरण को वनाये रखना, मन मे यो विचार कर 'कि मेरा मन विकार किसी अन्य व्यक्ति को मालूम नही' उस विकार को मन में बनाये रखना **माया शल्य** है।

शुद्ध आत्म-स्वरूप को न जानकर आत्मस्वरूप मे रुचि न करना तथा मिथ्यात्व भंवर मे पडकर सासारिक सुख मे रुचि करना **मिथ्याशल्य** है।

निज शुद्ध आत्मा से उत्पन्न हुए परम आनन्द अमृत का पान न करते हुए, दृष्ट (देखे) श्रुत (सुने) और अनुभूत (भोगे हुए) सासारिक सुख का स्मरण करना, भविष्य मे उसके मिलने की अभिलाषा करना **निदानशल्य** है।

इस प्रकार तीन शल्य रहित निर्विकार आत्म स्वरूप अमृत का अनुभव करना आत्मस्वरूप मे रत रहना **अन्तरङ्ग निश्चय धर्मध्यान** है।

प्रकारान्तर से धर्मध्यान का स्वरूप—

पिण्डस्थंच पदस्थंच रूपस्थं रूपवर्जितम् ।
चतुर्धाध्यानमाम्नातं भव्यराजीव भास्करैः ॥३५॥

अर्थ—भव्यात्मा रूप कमलो को विकसित करनेवाले सूर्य के समान जिनेन्द्र भगवान ने ध्यान के पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ये चार भेद भी बतलाये हैं।

पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं, पिण्डस्थं, स्वात्मचिन्तनम् ।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं, रूपातीतं निरञ्जनम् ॥३६॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं, स्फुरन्तं ज्ञानतेजसम् ।
गणैर्द्वादशभिर्युक्त ध्यायेदर्हन्त मक्षयम् ॥३७॥

अर्थ—मन्त्र वाक्य मे चित्तस्थिर करके ध्यान करना **पदस्थध्यान** है, अपने आत्मा का चिन्तन करना **पिण्डस्थध्यान** है, अर्हत भगवान रूप चिद्रूप **रूपस्थध्यान** है और शरीर रहित सिद्ध स्वरूप का चिन्तन **रूपातीत** ध्यान है। शुद्ध (निर्मल) स्फटिक मणि के समान निर्मल परमौदारिक शरीरधारी स्फुरायमान (पूर्णविकसित) ज्ञान तेज वाले, १२ गणो (समवशरण के १२ प्रकार के श्रोताओ) से सहित अविनाशी अर्हंत भगवान का ध्यान करना चाहिए।

तारेगेयं क्षीराब्धिय । वारियोळिरदोरासि कचिंदंते योळसेवा ॥
कारद पंचपदंगळ । नारैदात्ति शुद्धमनदोळिरिसे पदस्थं ॥२०१॥

अर्थ—निर्मल क्षीर सागर मे जिस तरह चन्द्रमा का निर्मल प्रतिविम्ब होता है उसी प्रकार अपने निर्मल मनमे पंच परमेष्ठी के मन्त्र को शुद्ध धारण करना **पदस्थ** ध्यान है।

पळुकिन कोडदोळु सहजं । बेळगुवशशिकान्तदेसेव विंबाकृतितं-॥
नोळगोळगे तोळगि बेळगुव । बेळगं निजमागि कंडोडदु पिंडस्थं ॥
॥२०२॥

अर्थ—जिस तरह निर्मल स्फटिक मणि के पात्र मे निर्मल चन्द्र की कान्ति दिखाई देती है उसी प्रकार अपने निर्मल हृदय मे शुद्ध आत्म-स्वरूप का प्रतिभासित होना **पिण्ड स्थध्यान** है।

द्वादशगणपरिवृतनं । द्वादशकोट्टियर्कतेज विभ्राजितनं ।
आदर्दिं मनदोळ निळिसु-। वंदमेरूपस्थमप्प परमध्यानं ॥

अर्थ—बारह कोठों मे बैठे हुए श्रोताओवाले समवशरण मे विराजमान, १२ करोड़ सूर्य चन्द्रो की प्रभा से भी अधिक प्रभाधारक अर्हंत भगवान का अपने हृदय मे चिन्तन करना **रूपस्थध्यान** है।

सहज सुख सहजवोधं । सहजात्मकवेनिप काण्के एंबीनलवि ।।
सहजमेने नेलसिनिदी । वहळतेयिददविनाश रूपातीतं ।।२०४।।

अर्थ—सहज (स्वाभाविक) सुख, सहजज्ञान, सहज आत्मदर्शन स्वभाव से ही मेरे पास है, इस प्रकार आत्मरत होकर पाप नाशक आत्मस्वरूप का चिन्तवन करना रूपातीतध्यान है ।

श्रीकरमभिष्ट सकल । सुखाकर मपवर्गकारणं भवहरणं ।।
लोकहितं मन्मनदो-। ळेकाग्रतेनिल्के निरूपमं पंचपदं ।।२०५।।

अर्थ—सम्पत्तिशाली, समस्त इष्ट पदार्थ प्रदान करनेवाला, मोक्ष का कारण, चतुर्गति भ्रमण ससार दुख को नाश करनेवाला, तथा लोक का हितकारी पच परमेष्ठी का मन्त्र सदा मेरे हृदय मे रहे ।

पंचपदं भवभवदोळ् । संचितपापमने केडिसलावकुमोधं ।।
पंचम गतिगिरदोय्गु । पंचपदाक्षरदमहिमे साधारणमे ।२०६।

अर्थ—पच परमेष्ठी का पद अनन्तानन्तकाल से सचित पापो को नष्ट करता है तथा पचमगति मोक्ष को शीघ्र बुलाकर देनेवाला है । इस पचपरमेष्ठी की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ?

मारिरिपुवन्हि जलनृप, । चोर रुजाघोर दुःखमं पिंगिसुवी-।।
सारायद पंचपदद-। नोरिदमवकेमगेमुक्ति यप्पंनेवर ।।२०७।।

अर्थ—भयानक रोग, चोर, शत्रु, अग्नि, जल, राजरोग आदि भयकर दुखो का नाश करनेवाला सार भूत पच नमस्कार मन्त्र कल्प वृक्ष के समान मेरे हृदय मे विराजमान रहे ।

भोंकने कळेगुं भवदुःख पंकमनुग्राहि शाकिनीग्रह भूता ।।
तंकमनसुरपिशाचा । शंकेयनखिळैक मंगळं पंचपद ।।२०८।।

अर्थ—यह पचणमोकार मन्त्र सागर रूपी कीचड को, नाश कर देता है, शाकिनी डाकिनी भूत पिशाच आदि को भगा देता है । समस्त मङ्गलो मे उत्तम है ।

आपोत्तु सद्भक्तियो-। ळीपंचपदाक्षरंगळं जपितियसुवं-।।
गापोत्तुं भवतापं । पापमु नेरे केट्टुमक्तियक्कु ममोघं ।।२०९।।

अर्थ—इसणमोकार मन्त्र को शुद्ध हृदय से जपनेवाले भक्त भव्य

पुरुषों की समस्त आपत्ति, संसार का सन्ताप, तथा समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्त मे मोक्ष पद प्राप्त हो जाता है।

मंगळ कारण पंचप-। दंगळनपवर्गविरचित सोपा-।।
नंगळनक्षय मत्र प-। दंगळ नोदुदुनेरैय्यनिश्चळमतियिं ।।२१०।।

अर्थ—समस्त सुख के कारण, मोक्ष की सीढ़ी के समान पंच नमस्कार मन्त्र को सदा निश्चल मन से जपना चाहिए।

बलवद्भूत पिशाच राक्षस विषं व्याळ्बाधेयं पिंगुकुं ।
दळियिक्कुं रिपुराज चोर भयमंदुःखाग्रशोकंगळं ।।
गळियिक्कुं घळियिक्कुमेल्लदेशेयिंदोळ् पंजगन्मुल्यमं-।
गळमीपंचगुरुस्तवं शुक्तिं प्रत्यूहविध्वंसनं ।।२११।।

अर्थ—पंच परमेष्ठी के स्मरण से बलवान भूत पिशाच, राक्षस, विष, सर्प की बाधा नष्ट होती है और शत्रुभय, राजभय, चोरभय तथा अनेक प्रकार के अन्य दुखों का नाश होता है तथा समस्त कर्मों का ध्वंस करनेवाला है एवं समस्त संसार मे उत्कृष्ट मङ्गलकारक है।

त्रैलोक्य क्षोभोमंत्र त्रिजगदधिपकृत्पंचकल्याणलक्ष्मी ।
साम्राज्याकर्षणमत्रं निरुपमं परम श्रीवधूवश्यमंत्र ।।
वाक्सोमाव्हनमंत्रं त्रिभुवनजनसंमोह मन्त्रं ।
जिन्हाग्रे संततं पंचगुरुनमस्कार मंत्रंममास्तु ।।२१२।।

अर्थ—यह पंच नमस्कार मन्त्र तीन लोको को कँपा देता है, तीन लोको मे सर्वोत्तम गर्भावतरण, जन्माभिषेक, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान तथा लक्ष्मी को आकर्षण करके देनेवाला है। अनुपम उत्कृष्ट मोक्ष लक्ष्मी को वश में करके देनेवाला यह मन्त्र है। ज्ञानरूपी चन्द्रमा का उदय करनेवाला है। त्रिलोकवर्ती समस्त प्राणियो को मोहित करनेवाला है। ऐसा अतिशय शालो अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु के नमस्कार रूप मन्त्र मेरी जीभ पर सदा निवास करे।

घनकर्म द्विघिमारणं प्रवल मिथ्यात्वोग्रहोच्चाटनं ।
कुनयाशीविषनिर्विषीकरणमापापास्रवस्तंभनं ।।
विनुताहिंद्र मिदल्ते सुरेंद्र मुक्तिळळना संमोहनं भारती-।
वनितावश्यमिदल्ते पंचपरमेष्ठि नाममंत्राक्षरं ।।२१३।।

अर्थ—पंच परमेष्ठी के नाम रूप मन्त्राक्षर अत्यन्त प्रबल कर्मशत्रु को नाश करनेवाले हैं, प्रबल मिथ्यात्व ग्रह को भगानेवाले हैं, दुष्ट कामदेव रूप सर्प के विष को निर्विष करनेवाले हैं, रागादि परपरिणति से होनेवाले कर्मास्रव को रोक देते हैं, इन्द्र धरणीन्द्र पदवी को प्रदान करनेवाले हैं, मोक्ष लक्ष्मी को मोहित करनेवाले है तथा सरस्वती को मुग्ध करनेवाले है।

आगे पदस्थ ध्यान का वर्णन करते हैं—

पणतीससोलछप्पण चदुदुगमेगंच जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णंचगुरूवएसेन ॥१०॥

पणतीस—णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

ऐसे पैंतीस अक्षरो का मन्त्र हैं।

सोल—अरहत-सिद्ध-आइरिया-उवज्झाया-साहू ऐसा सोलह अक्षर का मन्त्र हैं **छ** अरहंत सिसा तथा 'अरहत सिद्ध' यह छै अक्षरो के मन्त्र हैं। **पण** अ सि आ उ सा यह पांच अक्षरो का मन्त्र है। **चदु** अ सि साहु या अरहत यह चार अक्षरो के मन्त्र हैं। **दुरहं** असि तथा सिद्ध यह दो अक्षरो का मन्त्र है। **एगञ्च** अ अथवा हं या ओम् ऐसे एक अक्षरो के मन्त्र, **जवह** जप करना चाहिए। **झाएह** धवलरूप मे ललाटादि प्रदेश मे स्थापना करके ध्यान करना चाहिए और **गुरूवएसेण** परम गुरु के उपदेशो से **परमेट्ठिवाचयाण** परमेष्ठी वाचक को तथा **अण्णञ्च** लघु वृहत सिद्धिचक्र चिन्तामणि मत्र के क्रमानुसार द्वादश सहस्र सख्या सहित पच परमेष्ठी ग्रन्थ मे कहे हुए मत्र को निर्भर भक्ति से निर्वाण सुख की प्राप्ति के लिए सदा जपना तथा ध्यान करना चाहिए।

आगे अर्हं शब्द की व्याख्या करते है।

अकारः परमोबोधो रेफो विश्वावलोकदृक्।
हकारोऽनन्तवीर्यात्मा विन्दुस्स्यादुत्तमं सुखम् ॥३८॥

अर्थ—'अर्हं' शब्द मे 'अ' अक्षर परम ज्ञान का वाचक है, 'र' अक्षर समस्त लोक के दर्शक का वाचक है, ह अक्षर अनन्त बल का सूचक है बिन्दु (बिन्दी) उत्तम सुख का सूचक है।

ओ पंच परमेष्ठी वाचक कैसे होता है ?

अरहन्ता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो ।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी ॥

अर्थ—अर्हंत परमेष्ठी का प्रथम अक्षर 'अ', अशरीरी (पौद्गलिक शरीर रहित सिद्ध परमेष्ठी) परमेष्ठी का आदि अक्षर 'अ' आचार्य परमेष्ठी का आदि अक्षर 'आ'; इन तीनो अ+अ+आ को मिलाकर सवर्ण स्वर सन्धि के नियम अनुसार तीनो अक्षरो का एक अक्षर 'आ' हो गया। उपाध्याय परमेष्ठी का प्रथम उ' है। पहले तीन परमेष्ठियो के आदि अक्षरो को मिलाकर जो 'आ' बना था उसमे 'उ' जोड़ देने पर (आ+उ) स्वर सन्धि के नियम अनुसार दोनों अक्षरो के स्थान पर एक 'ओ' अक्षर हो गया। पांचवे परमेष्ठी **'मुनि'** का प्रथम अक्षर 'म्' है उसको चार परमेष्ठियो के आदि अक्षरों के सम्मिलित अक्षर 'ओ' के साथ मिला देने पर **'ओम्'** बन जाता है। इस प्रकार **'ओम्'** या ॐ शब्द पंच परमेष्ठियो का वाचक (कहने वाला) है।

इस प्रकार परमेष्ठी वाचक मन्त्रो का जाप करने से हृदय पवित्र होता है, जिह्वा (जीभ) पवित्र होती है। मन और वाणी के पवित्र हो जाने से पाप कर्म क्षय होते हैं, अशुभ कर्म पलटकर शुभ कर्म रूप हो जाते हैं, कर्मों की निर्जरा होती है, रागांश के साथ पंच जाप करने से पुण्य कर्मो का बन्ध होता है, शत्रु, अग्नि, चोर, राजा, व्यन्तर रोग आदि का भय नष्ट होता है, सुख सम्पत्ति और स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

'पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ ध्यान के विषयभूत (ध्येय) 'अर्हंत' भगवान का स्वरूप कैसा है तथा उनका ध्यान किस प्रकार करना चाहिए अब यही बतलाते है—

अर्हन्त भगवान चार घाति कर्मरहित, भूख प्यास जन्म मरण आदि १८ दोष रहित, गर्भ जन्म आदि पाच कल्याणक सहित, सिंहासन, है छत्र आदि ८ प्रातिहार्यो से शोभायमान, ३४ अतिशयो से युक्त, सौ इन्द्रो से पूजनीय, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त बल मडित, समवशरण से महत्वशाली, १२ गणों से युक्त, सर्व-भाषामयी दिव्यध्वनि द्वारा समस्त जनहितकारी, समस्त तत्व प्रदर्शक उपदेश देने वाले अपने सप्त धातु रहित परम औदारिक शरीर से करोड़ो सूर्य चन्द्र की प्रभा को भी फीकी करने वाले हैं। वे अर्हन्त भगवान सर्व पाप नाश करने वाले है। उनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये।

"घातिचतुष्टयरहितोऽहम्, अष्टादशदोषरहितोऽहम्, पचहमहाकल्याणक-सहितोऽहम्, अष्टमहाप्रातिहार्यविशिष्टोऽहम्, चतुस्त्रिशदतिशय-समेतोऽहम्, शतेन्द्रवृन्दवन्द्यपादारविन्द - द्वन्द्वोऽहम्, विशिष्टानन्त - चतुष्टय-समवशरणादि रूपान्तरगबहिरंगश्रीसमेतोऽहम्, परमकारुण्यरसोपेत-सर्वभाषात्मक-दिव्यध्वनि-स्वरूपोऽहम्, कोट्यादित्यप्रभासकाशपरमौदारिक-दिव्यशरीरोह, परमपवित्राऽह, परममगलोऽह, त्रिजगद्गुरु स्वरूपोऽह, स्वयम्भूरह, शाश्वतोह, जगत्त्रयकालत्रयव-र्तिसकल - पदार्थ - युगपदवलोकनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानस्वरूपोऽह, विश-दाखण्डैक - प्रत्यक्षप्रतिभासमयसकलविमलकेवल-दर्शनस्वरूपोऽह, अतीन्द्रिया-शयामूर्तानन्त सुख स्वरूपोह, अवार्यवीर्यानन्त बलस्वरूपोह, अचिन्त्यानन्त गुण स्वरूपोऽहं, निर्दोषपरमात्मस्वरूपोह, सोह ।"

इत्यादि पदो द्वारा सविकल्प निश्चय भक्ति समझ कर निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से स्वशुद्धात्मभाव अर्हन्त भगवान की आराधना भव्यजीवो को सदा करनी चाहिये, ऐसा श्री कुन्मुदेन्द आचार्य का अभिप्राय है ।

स्वावलम्बी रूपातीत ध्यान के विषय रूप सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप बतलाते हैं --

ज्ञानावरणादि मूलोत्तर रूप सकल कर्मों से मुक्त, सकल केवल-ज्ञानादि निर्मल गुणो से युक्त, निष्क्रिय टकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप किञ्चिदून अन्तिम चरम शरीर प्रमाण, अमूर्त, • अखड,शुद्ध चिन्मय स्वरूप, निर्ग्रन्थ सहजानन्द सुखमय शुद्ध जीव घनाकार स्वरूप, नित्य निरजन निर्मलनिष्कलक, ऊर्ध्वगति स्वभाववाले, उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य से सयुक्त तीनो लोको के स्वामी, लोकाग्र निवासी, तथा त्रैलोक्य वद्य श्री सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करने वालो को नित्य सुख की प्राप्ति होती है । इस प्रकार व्यवहार भक्ति करने के पश्चात् एकाग्रता पूर्वक भगवान का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये ।

"ज्ञानावरणादिमूलोत्तररूपसकलकर्मविनिर्मुक्तोऽह, सकलविमल-केवलज्ञानादिगुणसमेतोऽह, निष्क्रियटकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वरूपोऽह, किंचिन्यूनान्त्य-चरमशरीरप्रमाणोऽहं, अमूर्त्तोऽह, अखण्डशुद्धचिन्मूर्त्तोऽह, निर्व्यग्रसहजानन्द-सुखमयस्वरूपोऽह, शुद्धजीवघनाकारोऽह, नित्योऽह, निरजनोऽहम् जगत्त्रयपूज्योऽह निर्मलोऽह, निष्कलकोऽह, ऊर्ध्वगतिस्वाभावोऽह लोकाग्रनिवासोऽह, त्रिजगद्व दितोऽह, अनन्तज्ञानस्वरूपोऽह, अनन्तदर्शन-स्वरूपोऽह, अनन्तवीर्यस्वरूपोऽह, अनन्तसुखस्वरूपोऽह, अनन्तगुणस्वरूपोऽहं, अनन्तशक्तिस्वरूपोऽह अनन्तानन्तस्वरूपोऽहं, निर्वेगस्वरूपोऽह, निर्मोहि-

स्वरूपोऽह, निरामयस्वरूपोऽह, निरायुष्कस्वरूपोऽह, निरायुधस्वरूपोऽहं, निर्नाम स्वरूपोऽह, निर्गोत्रस्वरूपोऽह, निर्विघ्नस्वरूपोऽह निर्गति स्वरूपोऽह, निरिन्द्रिय-स्वरूपोऽह, निष्कायस्वरूपोऽहं, निर्योगस्वरूपोऽह, निजशुद्धस्मरणनिश्चय-शुद्धोऽह, परज्योतिःस्वरूपोऽह, निरजनस्वरूपोऽह, चिन्मयस्वरूपोऽह, ज्ञानानन्द-स्वरूपोऽह" इत्यादि निजशुद्धात्म गुणस्वरूप निश्चय सिद्धभक्ति है अर्थात् चित्स्वरूप मे जो अविचल निर्विकल्प स्थान है वह निश्चय सिद्ध भक्ति कहलाती है। इस प्रकार सविकल्प निर्विकल्पस्वरूप भेदाभेद सिद्ध भक्ति की भावना के वल से त्रिविध प्रकार के राज्य सुखादि ऐहिक सुख सपत्ति तथा अन्त मे निःश्रेयस सुख की प्राप्ति होती है।

चरम शरीर की अपेक्षा वीतराग निर्विकल्प निश्चय सिद्ध-भक्तिपूर्वक रूपातीत ध्यान उसी भव मे कर्म क्षय करने वाला है, ऐसा समझकर निज परमात्मा की आराधना निरन्तर करनी चाहिये, ऐसा श्री योगीन्द्रदेव का अभिप्राय है।

रूपातीत ध्यान के सिवाय शेष तीन ध्यानो के विषयभूत श्री आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप बतलाते हैं-

निश्चय तथा व्यवहार नय से दर्शनाचार ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार, इन पाच आचारो का आचरण करने वाले, परमदयारस-परिणति से द्रव्य क्षेत्र काल भव भावरूप ससार सागर को पार करने के कारण रूप तथा पवित्र पात्ररूप, निज निरजन चित्स्वभावप्रिय भव्यजीवो को पाच आचारो का आचरण कराने वाले, चातुर्वर्ण्य सघ के नायक ऐसे आचार्य परमेष्ठी को गुणानुराग से स्मरण करने वाले भव्यजीवो को भाव शुद्धि होती है, ऐसा समझ कर निम्नलिखित रूप से ध्यान करना चाहिये--

"व्यवहारनिश्चियपंचाचारपरमदयारसपरिणतिपचप्रकारसागरोत्तरणकारणभूत पोतपात्ररूपनिजनिरन्जन - चित्स्वरूप - भावना - प्रिय-चातुर्वर्ण्य-सघनायकाचार्य - परमेष्ठि - स्वरूपोऽहं, निजनित्यानन्दैकतत्वभावस्वरूपोहं, सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वरूपोह, दण्डभयखण्डिताखण्डत्रिपिण्ड-स्वरूपोह, चतुर्गतिससार-दू स्वरूपोह, निश्चय-पचाचार-स्वरूपोहं, भूतार्थषडावश्यकस्वरूपोह, सप्तभय - विप्रमुक्त - स्वरूपोह, विशिष्टाष्टगुणप्रष्टस्वरूपोह, नवकेवलब्धिस्वरूपोहं, अष्टविधकर्म मलकलङ्करहितस्वरूपोहं, सप्तनयव्यतिरिक्तस्वरूपोहं, इत्यादि रूप से आचार्य परमेष्ठी का ध्यान करना अहविकल्प निश्चय भावना है।

इस प्रकार निरजन परम पारिणामिक भाव मे अविचल होकर भावना करने वाले भव्यजीवो को कर्मक्षय होकर मोक्ष प्राप्त होती है, ऐसा श्री ब्रह्म-देव का अभिप्राय है।

अब पदस्थादि ध्यान-त्रयके विषयभूत उपाध्याय परमेष्ठीका स्वरूप बतलाते हैं—

निश्चय व्यवहार सम्बन्धी कालाचार विनयाचार उपाधानाचार बहुमानाचार निन्हवाचार, व्यञ्जनाचार, अर्थाचार, औरव्यञ्जनार्थाचार ये आठ ज्ञानाचार है नि.शंकित नि काक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये ८ प्रकार के दर्शनाचार है, १२ प्रकार के बाह्य आभ्यन्तर तपाचार है, पाच प्रकार का वीर्याचार है, १३ प्रकार का चारित्राचार है, इस प्रकार के पञ्चाचार का आचरण शुद्धजीवद्रव्यस्वरूप छह द्रव्य, सात तत्व, ९ पदार्थ मे सा-रभूत भेदाभेद रत्नत्रय के कारण भूत समयसार के बल से अनन्त चतुष्टयात्मक कार्य स्वरूप समयसार का उपदेश करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी का स्मरण करने से मोक्ष का कारण रूप पुण्यवृद्धि होती है ऐसा समझ कर निम्नलिखित रूपसे उपाध्याय परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिये।

'निश्चयव्यवहार—अष्टविधज्ञानाचार स्वरूपोह, अष्टविधदर्शनाचार-स्वरूपोह, द्वादशतपाचारस्वरूपोह, पचविधवीर्याचारस्वरूपोह, त्रयोदशचारित्रा-चारस्वरूपोह, क्षायिकज्ञानस्वरूपोह, क्षायिकदर्शनस्वरूपोह, क्षायिकचारित्रस्व-रूपोह, क्षायिकसम्यक्त्वस्वरूपोह, क्षायिकपंचलब्धिस्वरूपोह, परमशुद्धचिद्रूप-स्वरूपोह, विशुद्धचैतन्यस्वरूपोह, शुद्धचित्कायस्वरूपोह, निज जीवतत्वस्वरूपोह, शुद्धजीवपदार्थस्वरूपोह, शुद्ध जीव द्रव्यस्वरूपोह, शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपोह, इस प्रकार की भावना निश्चय सविकल्प आराधना है।

इस प्रकार निर्विकल्प आराधना प्राप्त होती है ऐसा समझ कर अनन्त सुख की प्राप्ति के लिये निरुपाधि सहज आत्मतत्व के अनुष्ठान को करना चाहिये, ऐसा बालचन्द्र देव का अभिप्राय है।

शुद्धचैतन्य विलास लक्षण निज आत्मतत्वरूचिरूप सम्यग्दर्शन मे विचरण करना निश्चय दर्शनाचार है। निर्विकार परमानन्दरूप आत्मस्वरूप से भिन्न रागादि परभाव को भेद विज्ञान द्वारा पृथक जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है, उसी मे लीन होना निश्चयज्ञानाचार है। शुद्ध आत्मभावना जनित स्वाभाविक सुख की अनुभूति मे निश्चल होने वाली परिणति निश्चय सम्यक् चारित्र है, उसमे निरन्तर विचरना निश्चय चारित्राचार है। समस्त द्रव्यो की इच्छा के निरोध

से निर्मल निज-आत्मभावना का अनुष्ठान करना उत्तम तप है, उसमे सदा विचरण करना निश्चय तपाचार है। इस प्रकार चार आराधनाओ को अपनी शक्ति न छिपाकर आचरण करना वीर्याचार है। इन पच आचारो मे अग्रेसर होकर व्यावहारिक पंच आचारो से युक्त शुद्ध रत्नत्रयात्मक कारण समय सार के बल से अनन्त निश्चय मोक्ष मार्ग के चतुष्टयात्मक कार्य समयसार को वीतराग निर्विकल्प समाधि मे लीन होकर साधन करने वाले सर्व साधु परमेष्ठी हैं उनका निर्मल भक्ति से स्मरण करने वाले भव्यजीवो को उनका स्मरण निज शुद्ध रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग का सहकारी कारण है, ऐसा समझकर निम्नलिखित रूप से ध्यान करना चाहिये।

अखण्डशुद्ध ज्ञानैकस्वरूपोह,स्वाभाविकज्ञानदर्शनस्वरूपोह अन्तरंग रत्नत्रयस्वरूपोह, नयनिक्षेपप्रमाणविदूरस्वरूपोह,सप्तभयविप्रमुक्तस्वरूपोहं अष्टविध कर्म निर्मुक्त स्वरूपोह, अविचलशुद्धचिदानन्दस्वरूपोह, अद्वैतपरमाल्हादस्वरूपोहं, इत्यादि सविकल्प गुणस्मरण से स्वशुद्ध आत्म स्वरूप मे निश्चल अवस्थान होता है ऐसा समझ कर सर्व साधु पद की प्राप्ति के लिये स्वशुद्ध आत्मभावना विवेकी पुरुषो को सदा करते रहना चाहिये, ऐसा श्री कुमुदचन्द्र आचार्य का अभिप्राय है।

अब पाच परमेष्ठियो का स्वरूप कहते है—

सिद्ध भगवान साक्षात् परमेष्ठी (परम पद मे स्थित) है। अर्हन्त भगवान एक देश परमेष्ठी हैं। आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु को भी उस पद के साधन मे तत्पर रहने के लिये तथा दुर्ध्यान दूर करने के लिये व्यवहार निश्चय, भेद अभेद ध्यान-सम्बन्धी पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि वहिरंग धर्मध्यान के बल से निश्चय धर्मध्यान की आराधना करते हैं। कहा भी है—

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्यं वश्यचित्तता।
जितपरिषहत्वं च पंचैते ध्यानहेतवः ॥
निमित्तं शरणं पंच गुरवो गौणमुख्यता।
शरण्यं शरणं स्वस्य स्वयं रत्नत्रयात्मकम् ॥ ३९-४० ॥

अर्थ—वैराग्य,तात्त्विक ज्ञान, निर्ग्रन्थता (बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह रहितपना, मनको वश मे करना तथा परिषहो का जीतना, ये पाच ध्यान के कारण हैं, व्यवहार से पाच परमेष्ठी निमित्तभूत शरण (रक्षक) हैं किन्तु निश्चय नय से स्वय रत्नत्रयमय अपना आत्मा ही शरण है।

व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग का कारण ज्ञान से ही प्राप्त होता है-

स चमुक्ति हेतू दिव्यध्याने यस्माद्व्याप्यते द्विविधोऽपि ।
तस्मादभ्यस्यन्तु ध्यानं सुधियो सदाप्यपालस्यम् ॥
वज्रसंहननोपेताः पूर्वश्रुतसमन्विताः ।
दध्युः शुक्लमिहातीताः श्रेण्युपारोहणक्षमाः ॥ ४१-४२ ॥
तादृक् सामग्र्यभावे तु ध्यातुं शुक्लमिहाक्षमान् ।
धरायुगेनानुद्दिश्य धर्मध्यानं प्रचक्ष्महे ॥ ३४ ॥

अर्थ—धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्ग के कारण है इसलिये बुद्धिमान पुरुष उन ध्यानो का अभ्यास करें। जो मुनि बज्र ऋषभनाराच सहनन-धारक हैं, पूर्ण श्रुतज्ञानी है वे ही उपशम तथा क्षपक श्रेणी पर चढने मे समर्थ हैं और वे ही शुक्ल ध्यान कर सकते हैं। इस समय भरत क्षेत्र मे उस प्रकार के सहनन आदि साधन सामग्री के न होने से मुनिगण शुक्ल ध्यान करने मे असमर्थ है उनके उद्देश्य से धर्मध्यान को कहेगे ।

गाथा— जइणिमिसत्थुविकाइकयिणियअप्पेअणुवाऊ ।
अग्गिकणज्जेवकट्ठगिरिदहइसेसुविहाऊ ॥ १२ ॥

अर्थ—तृण काष्ठ पुज को अग्नि की केवल एक छोटी सी चिनगारी भी जिस प्रकार क्षणभर मे भस्म कर देती है उसी प्रकार वीतराग निर्विकल्प स्वसवेदन ज्ञान भावना के बल से निज शुद्धात्मा को निमिषार्ध समय मे, (क्षण भर मे) ही एकाग्रता से ध्यान करने से अनन्त भवो के एकत्रित किये हुये सकल कर्म मल नष्ट हो जाते हैं। इस पचम काल के इस क्षेत्र मे मोक्ष न होने पर भी परम्परा से मोक्ष होती है, ऐसा विश्वास रखकर निजात्म भावना करनी चाहिये। प्राचीन काल मे भी भरत, सगर, राम तथा पाडवादिको ने जिस प्रकार परमात्मभावना से मसार की स्थिति का नाश करके स्वर्ग पद प्राप्त किया था और वहा के सुखो का अनुभव करके अन्त मे चयकर इस भरत क्षेत्र मे आर्यं-खण्डस्थ कर्म भूमि मे आकर जन्म लिया तथा पूर्व भव मे भेदाभेद रत्नत्रय भावना सस्कार बल से मुनिदीक्षा ग्रहण करके पुन शुद्धात्म भावना को भाकर आने वाले अनेक उपसर्गों को जीत कर मोक्ष सुख को प्राप्त किया। ऐसा समझकर भव्य जीवो को सदा अभ्युदयकारक शुद्धात्म--भावना को निरन्तर करते रहना चाहिये ।

विषय कपाय आदि अशुभ परिणामो को दूर करने के लिये पंच परमेष्ठी आदि को ध्येय बनाकर प्रशस्त परिणाम करने के लिये सविकल्प ध्यान किया

जाता है। उस सविकल्प ध्यान के समय यदि कोई परिषह आजावे तो उस समय यदि वह अन्तरात्मा शारीरिक मोह को त्याग कर परिषह जन्य कष्ट की ओर से मानसिक वृत्ति हटाकर मन को आत्मचिन्तन मे निमग्न करदे तो वही निश्चय ध्यान हो जाता है।

अरुहा सिद्धा आइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
तेवि हु चेत्तइ आदे तम्हा आदाहु मे सरणं ॥

अर्थ—अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु ये पांच परमेष्ठी का आत्मा मे चिन्तवन करना चाहिये क्योकि आत्मा ही मुझे शरण है।

अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु निश्चय नय से शुद्ध चिद्रूप मे प्रवर्तन करने वाले हैं अतः हीनसहनन, अल्पश्रुतज्ञानी, अल्प चारित्र वाले व्यक्तियो को भी अपने आत्मा को पच परमेष्ठी रूप चिन्तावन करके ध्यान करना चाहिये।

भरहे पंचमकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स ।
तं अप्पसहावठिदे णहु मण्णइ सोवि अण्णाणी ॥

अर्थ—भरतक्षेत्र मे इस पचम कलिकाल मे ज्ञानी के स्वात्म-स्थित हो जाने पर धर्म ध्यान होता है, ऐसा जो नही मानता है वह अज्ञानी है।

अंजलितियरणसुद्धा अप्पज्झाऊण ।
अहइ इछुत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति ॥
आर्तध्यानं निषेधन्ति शुक्लध्यान जिनोत्तमाः ।
धर्मध्यान पुनः प्राहुः श्रेणिभ्यां प्राग्वर्तिनाम् ॥
यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमेन च ।
श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्युक्तं तन्नावस्थां निषेधकम् ॥
यत्राहुर्नहि कालोऽयं ध्यानस्वाध्याययोरिति ।
अर्हन्मतानभिज्ञत्वं ज्ञापयन्त्यात्मनः स्वयम् ॥

अर्थ--रत्नत्रय से शुद्ध व्यक्ति आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपद प्राप्त करते है फिर वहा से आकर मनुष्य भव पाकर मुक्ति प्राप्त करते है। जिनेन्द्र भगवान ने उपशम या क्षपक श्रेणी से पूर्ववर्ती मनुष्यों के धर्मध्यान बतलाया है, उनके आर्तध्यान और शुक्लध्यान का निषेध किया है। आगम मे बतलाया गया है कि वज्र ऋषभनाराच संहनन वाले के उपशम श्रेणी, क्षपक श्रेणी शुक्लध्यान होता है। जो मनुष्य यह कहते है कि यह काल ध्यान और स्वाध्याय के योग्य नही है वह अपने आपको जैन सिद्धान्त की अनभिज्ञता प्रकट करते है।

एसा समझकर निम्नलिखित प्रकार ध्यान करना चाहिए।

"रागद्वेष,-क्रोध-मान - माया -लोभ,-पचेन्द्रिय-विषय-व्यापार,-मनोवचन काय कर्म,-भावकर्म-द्रव्यकर्म-नौकर्म, ख्याति,-पूजा, लाभ, दृष्ट-श्रुतानुरूप भोगकाक्षा-रूप-निदान,-माया-मिथ्यात्व - शल्यत्रय, - गार्वत्रय, - दडत्रय-विभाव परिणाम-शून्योऽहं, निजनिरजन-स्वशुद्धात्म-सम्यक्त्व - श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठान-रूपा-भेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्प समाधि-सजात-वीतराग सहजानन्द - सुखानुभूति रूप मात्र-लक्षणेन स्वसवेदन-ज्ञान-सम्यक्त्व-प्राप्त्याभरितावज्ञानेन गम्य - प्राप्त्या भरितावस्थोऽहं, निज - शुद्धात्मटंकोत्कीर्णज्ञानैक - स्वभावोऽहं, सहज-शुद्ध-पारिणामिक-भावस्वभावोऽह, सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं, मदच्छलनिर्भयानन्दरूपो ऽ हं, चित्कलास्वरूपोऽहं, चिन्मुद्राकित-निर्विभागस्वरूपो ऽ हं, चिन्मात्र - मूर्त्तिस्वरूपोऽह, चैतन्यरत्नाकर . स्वरूपोऽह, चैतन्य-रसरसायनस्वरूपो ऽ हं, चैतन्य-चिन्हस्वरूपो ऽ हं, चैतन्य-कल्याण-वृक्ष स्वरूपो ऽ हं, ज्ञानपुञ्जस्वरूपो ऽ हं, ज्ञानज्योति स्वरूपो ऽ हं, ज्ञानामृतप्रभाव-स्वरूपो ऽ हं, ज्ञानार्णवस्वरूपो ऽ हं निरुपमनिर्लेपस्वरूपो ऽ हं, निरवद्य-स्वरूपो ऽ हं, शुद्धचिन्मात्रस्वरूपो ऽ हं,, शुद्धाखण्डैकमूर्तिस्वरूपो ऽ हं, अनन्त-ज्ञानस्वरूपो ऽ हं, अनन्त-शक्ति-स्वरूपो ऽ हं सहजानन्दस्वरूपो ऽ हं, परमा-नन्दस्वरूपो ऽ हं , परमज्ञान - स्वरूपो ऽ हं, सदानन्द स्वरूपो ऽ हं चिदानन्द स्वरूपो ऽ हं, निजानन्दस्वरूपो ऽ नित्यानन्द स्वरूपो ऽ हं, निजनिरंजन स्वरूपो ऽ हं, सहज सुखानन्द स्वरूपो ऽ हं, नित्यानन्दमय स्वरूपो ऽ हं, शुद्धात्म स्वरूपो ऽ हं, परमज्योति स्वरूपो ऽ हं स्वात्मोपलब्धि-स्वरूपो ऽ हं, शुद्धात्मा-नुभूति स्वरूपो ऽ हं, शुद्धात्म सवित्ति स्वरूपो ऽ हं, भूतार्थ स्वरूपो ऽ हं, परमार्थस्वरूपो ऽ हं, निश्चयपचाचार स्वरूपो ऽ हं समयसार - समूह स्वरूपो ऽ हं, अध्यात्मसार स्वरूपो ऽ हं, परम मगल स्वरूपो ऽ हं, परमोत्तम स्वरूपो ऽ हं, परमशरणोऽ हं, परम केवल ज्ञानोत्पत्ति कारण स्वरूपो ऽ हं, सकलकर्म क्षय कारण स्वरूपो ऽ हं, परमाद्वैत स्वरूपो ऽ हं, शुद्धोपयोग स्वरूपो ऽ हं, निश्चय षडावश्यक स्वरूपो ऽ हं, परम स्वाध्याय स्वरूपो ऽ हं, परमसमाधि स्वरूपो ऽ हं, परमस्वास्थ्य स्वरूपो ऽ हं, परम भेदज्ञान स्वरूपो ऽ हं, परम स्वसवेदन स्वरूपो ऽ हं, परम समरसीभाव स्वरूपो ऽ हं, क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूपो ऽ हं, केवल ज्ञान स्वरूपो ऽ हं, केवल दर्शन स्वरूपो ऽ हं, अनन्त वीर्य स्वरूपो ऽ हं, परम सूक्ष्म स्वरूपो ऽ हं, अवगाहन स्वरूपो ऽ हं, अगुरुलघु स्वरूपो ऽ हं, अव्याबाध स्वरूपो ऽ हं, अष्टविधकर्म रहितो ऽ हं, निरंजन स्वरूपो ऽ हं, नित्यो ऽ हं, अष्टगुण सहितो ऽ हं, कृतकृत्यो ऽ हं,

लोकाग्रवास्य ऽ ह, अनुपमो ऽ हं, अचिन्त्यो ऽ हूं, अतर्क्यो ऽ हं, अप्रमेय-स्वरूपो-ऽ हु, अतिशय स्वरूपो ऽ हु, शाश्वतो ऽ हु, शुद्ध स्वरूपो ऽ हु," इस प्रकार जगत्रय कालत्रय मे इस मन्त्र का मनवचन काय कृत कारित अनुमोदन सहित शुद्ध मन से समस्त भव्य जीवो को ध्यान करना चाहिए "यही मेरा स्वरूप है" ऐसी भावना करना साक्षात् अभ्युदय निःश्रेयस सुख प्रदान करनेवाला निश्चय धर्म ध्यान होता है। इस ध्यान से अन्त मे नि.श्रेयस सुख की प्राप्ति होती है।

पुन शक्तिनिष्ठ निश्चयनय से अनन्तगुण चिन्तामणि की खानि के समान स्वात्मतत्त्वादि पदार्थ परिज्ञान के लिए तत्त्व वेद मे रत होकर आराधना करने की सद्भावना तथा उस परमात्म ज्योति रूपी तत्व का आदर के साथ सुनने की लालसा करना, उस परमात्मतत्व को भेद पूर्वक ग्रहण करने की शक्ति रखना, उस नित्यानन्द के स्वभाव को कालान्तर मे भी न भूलने की धारणा रखना, उस परम पारिणामिक भावना को सदा स्मरण करने की शक्ति, उस परमानन्दमय सहजानन्द परमात्मा को बारम्बार चिन्तन करने की स्मृति, उस परम भाव की भावना को निरन्तर ध्यान करने आदि की भावना रखना परमनिष्क्रिय टकोत्कीर्ण ज्ञानैक स्वभाव नामक ध्यान है।

स्मृतिस्तत्वे सकृच्चिन्ता मुहुर्मुहुरनुस्मृतिः ।
भावनास्तु प्रबन्धात्स्यादृयानमेकाग्रनिष्ठित ॥४७॥
असंयते स्मृति देशसंयतेऽनुस्मृतिः स्मृता ।
प्रमत्ते भावना प्राहुर्ध्यानं स्यादप्रमत्तके ॥४८॥

अर्थ—तत्त्वका एक वार चिन्तवन करना स्मृति है, वार वार चिन्तवन करना अनुस्मृति है। विचार करना भाना भावना है और चित्त एकाग्र करना ध्यान है।

अर्थ—इनमे से असयत मे स्मृति, देश सयम मे अनुस्मृति, प्रमत्तगुणस्थान मे भावना, अप्रमत्त मे ध्यान होता है। यह धर्मध्यान पीत, पद्म तथा तथा शुक्ल लेश्यावालो को होता है।

इति धर्मध्यानम्

शुक्लध्यानं चतुर्विधम् ॥५७॥

शुल्क ध्यान के चार भेद है जो कि क्रमश पृथक्त्व-वितर्क-वीचार, एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती तथा व्युपरत-क्रिया-निवृत्ति नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमे पृथक्त्व का अर्थ 'अनेक प्रकार का है, वितर्क पूर्वक यानी श्रुतज्ञान के साथ जो रहता है। वीचार का अर्थ—ध्यान किये जाने वाला ध्येय द्रव्य, गुण, पर्याय, आगम वचन, मन वचन कायादिक का परिवर्तन होना है। अर्थात् जिस शुक्ल ध्यान मे श्रुतज्ञान के किसी पद के अवलम्बन से योगो तथा

ध्येय पदार्थ एवं व्यञ्जन (पद) का परिवर्तन होता रहे वह पृथक्त्ववितर्क-वीचार है । विशेष विवरण इस प्रकार है —

इस अन्त रहित ससार रूपी समुद्र को पार करने की कामना करनेवाले परम यतीश्वर के द्रव्य परमाणु भाव परमाणु आदि के अवलम्बन से शेष समस्त वस्तुओ की चिन्तादिक व्यापारो को छोड कर कर्म प्रकृति की स्थिति अनुभाग को घटाते २ उपशम करते हुये अधिक कर्म निर्जरा से युक्त मन बचन काय रूप तीनो योगो मे से किसी एक योग मे या द्रव्य से गुण मे अथवा पर्याय मे कुछ नय के अवलम्बन से श्रुतज्ञान रूपी सूर्य की ज्योति के बल से अन्तर्मुहूर्त्त का ध्यान करना, तत्पश्चात् अर्थान्तर को प्राप्त होकर अर्थात् गुण या पर्याय को सक्रमण करना पूर्व योग से योगान्तर को व्यजन से व्यजनान्तर को संक्रमण होता है उस शुक्लध्यान (पृथक्त्ववितर्कवीचार) के ४२ विकल्प होते हैं । वे इस प्रकार हैं —

जीव के ज्ञानादि गुण, पुद्गल के वर्णादि गुण, धर्म द्रव्य के गत्यादि, अधर्मद्रव्य के स्थित्यादि, आकाश के अवगाहनत्व आदि गुण और कालद्रव्य के वर्तना इत्यादि गुण हैं । उन गुणो की प्रतिसमय परिवर्तनशील पर्यायें (अवस्थाएँ)होती हैं । इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य की अपेक्षा अन्य द्रव्य द्रव्यान्तर या पदार्थान्तर है । प्रत्येक गुण की अपेक्षा अन्य सभी गुण गुणान्तर है और प्रत्येक पर्याय की अपेक्षा अन्य पर्यायें पर्यायान्तर है ।

इस तरह अर्थ, अर्थान्तर, गुण, गुणान्तर, पर्याय, पर्यायान्तर इन छहो के योगत्रय सक्रमण से १८ भग होते हैं । द्रव्त तथा भाव तत्त्व के गुण-गुणान्तर तथा पर्याय-पर्यायन्तर इन चारो मे योगत्रय सक्रमण की अपेक्षा १२-१२भग होते हैं । ये सब मिल कर ४२ भग होते हैं ।

प्रश्न—एकाग्र चिन्ता निरोध रूप ध्यान मे ये विकल्प कैसे होते हैं ?

उत्तर—ध्यान करने वाला दिव्य ज्ञानी निज शुद्धात्म सवित्ति को छोड कर बाह्य चिन्तवन को तो नही करता, किन्तु फिर भी प्रारम्भ काल मे ध्यान के अश से स्थिर होता है । उसके अन्दर कुछ न कुछ विकल्प होता रहता है जिससे कि वह ध्यान पृथक्त्व वितर्क वीचार नामक प्रथम शुक्ल ध्यान होता है । उसमे पहले कहा हुआ द्रव्य भाव परमाणु का अर्थ इस प्रकार है कि —

द्रव्य शब्द से आत्म द्रव्य कहा जाता है । उस के गुण-गुणान्तर तथा पर्याय, पर्यायान्तर इन चार मे योगत्रय संक्रमण १२ भग होते हैं ।

परमाणु क्या है ?

रागादि उपाधि रहित सूक्ष्म निर्विकल्प समाधि का विषय होने के कारण

इस द्रव्य परमाणु शब्द को कहा गया है। भाव शब्द से आत्म द्रव्य का स्वसं-वेदन ज्ञान परिणाम से ग्रहण होता है। उसके लिये सूक्ष्म अवस्था इन्द्रिय मनो-विकल्प ही विषय होने के कारण भाव-परमाणु सम्यक्त्व का व्याख्यान जानना चाहिए। इस ध्यान को पहले संहनन से युक्त उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थान वाले करते हैं। उसका फल २१ चारित्र मोहनीय कर्मों का उपशम करना है तथा वज्र वृषभ नाराच संहनन वाले चरम-शरीरी अपूर्वकरणादि क्षीण कषाय के प्रथम भाग तक ही केवल क्षपक श्रेणी तक ध्यान करते है। अर्थात् वह ध्यान २१ चारित्र मोहनीय आदि कर्म क्षपण से होता है तथा वह शुक्लतर लेश्या वाला होता है। श्रेणीद्वय की अपेक्षा यह ध्यान स्वर्गापवर्ग गति का कारण होता है। और पूर्व श्रुत ज्ञानी के होता है। यथाख्यात शुद्ध संयम से सहित एवं शेष क्षीण-कषाय के भाग में एकत्व से निर्विकार सहज सुखमय निज शुद्ध एक चिदानन्द स्वरूप मे ही रत रहकर भावना करने वाले निरुपाधि स्वसंवेदन ज्ञान का अवलं-बन कर श्रुताश्रित अर्थ व्यञ्जन के तथा योग के परिवर्तन से रहित होना एकत्व वितर्क अवीचार नामक दूसरा शुक्ल ध्यान है। अतएव पहले से असंख्यात गुण-श्रेणी कर्म निर्जरा होती है। द्रव्य भाव स्वरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तराय इन तीनों घाति कर्मों के नाश होने से शीघ्र ही नव क्षायिक लब्धि-रूपी किरणो से प्रकाशित होने वाले सयोग केवली जिन भास्कर तीर्थंकर होते हैं। इसी तरह इतर कृत-कृत्य, सिद्ध-साध्य, बुद्ध-बोध्य, अत्यन्त अपुनर्भव, लक्ष्मी संगति से युक्त अचिन्त्य ज्ञान वैराग्य व ऐश्वर्य से युक्त अर्हन्त भगवान् तीन लोक के अधिपति होकर अभ्यर्चनीय व अभिवद्य होकर दिव्य धर्मामृत सार से भव्य जन रूपी शस्य की वृद्धि करते हुये उत्कृष्ट से उत्कृष्ट पूर्व कोडाकोडी काल विहार करते हैं। अर्हन्त की ६ लब्धियाँ इस प्रकार हैं

अनन्तज्ञानदृग्वीर्यविरतिः शुद्धदर्शनम्।
दानलाभौ च भोगोपभोगवानन्तमाश्रिता।४६।

अर्थ—अनन्तज्ञान, दर्शन, वीर्य, चारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग क्षायिक सम्यक्त्व ये ६ लब्धि होती हैं। इन ६ लब्धियों को प्राप्त कर लेने पर ही अर्हन्त परमेश्वर कहलाते हैं। तत्पश्चात् विहारादि क्रिया करते हैं। अन्तर्मुहूर्त्त की शेष आयु मे संसार की (शेष ३ अघाति कर्मों की) स्थिति समान होने पर बादर मनो, वचन श्वासोच्छ्वास से बादर काययोग में फिर उस से सूक्ष्म मनोवचन व उच्छ्वास मे आकर उसे भी नाश कर सूक्ष्म काय योग होता है। यही सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामक तीसरा शुक्ल ध्यान है। यदि किसी

की आयु की अपेक्षा वेदनीय, नाम, गोत्र कर्म की स्थिति अधिक होती है तो उसे आयु की स्थिति के समान करने के लिये समुद्घात (आत्म-प्रदेशो का कुछ अश शरीर से बाहर निकलना) करते है।

प्रथम ही चार समय मे क्रम से दण्ड, कपाट, प्रतर व लोक पूर्ण रूप आत्म-प्रदेशो को फैलाते है। यदि खडे हो तो प्रथम समय मे शरीर की मोटाई मे और यदि बैठे हो तो शरीर से तिगुणी मोटाई मे पृथ्वी के मूल भाग से लेकर ऊपर सात रज्जू तक आत्म प्रदेश दण्डाकार यानी दण्ड के रूप मे प्राप्त होना दण्ड समुद्घात कहलाता है।

द्वितीय समय मे यदि उनका मुख पूर्व दिशा मे हो तो दक्षिण उत्तर मे फैल जाता है, यदि उत्तराभिमुख हो तो पूर्व सूचित बाहुल्य सहित होकर विस्तार किये हुए प्रदेश से अत्यन्त सुन्दराकार को धारण करना कपाट समुद्घात कहलाता है।

तीसरे समय मे वातवलयत्रय के बाहर के शेष सम्पूर्ण लोकाकाश मे व्याप्त होने का नाम प्रतर है।

चौथे समय मे लोक मे परिपूर्ण व्याप्त होना लोक पूरण समुद्घात कहलाता है। इसमे एक एक समय मे शुभ प्रकृति का अनुभाग अनन्तगुण हीन होता हुआ एक एक मे स्थिति काडक घात होता है।

उससे आगे अन्तर्मुहूर्त्त मे एक ही स्थिति काडक घात होता है। लोक-पूर्ण समुद्घातमे आयु स्थिति तथा संसार स्थिति समान हो जाती है। शेप पाचवे समय मे वातावरण मे न रहकर जीव प्रदेशो को संकोच करके प्रतर मे आ जाता है। छठे समय मे प्रतर को कपाट समुद्घात करता है, सातवे समय मे कपाट को विसर्जन कर दण्ड समुद्घात रूप होता है, आठवे समय मे दण्ड समुद्घात को सकोच कर जीवप्रदेश निज शरीर प्रमाण मे आते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त समुद्घातो को करके सयोग केवली गुणस्थान मे चारो अघाती कर्मों की समान स्थिति होती है। तत्पश्चात् योग निरोध करने के पहले पूर्व के समान बादर मनवचन श्वासोच्छ्वासो को बादर कायिक योग से निरोध करने के पश्चात् बादरकाय योग सूक्ष्म मन वचन श्वासोच्छ्वास इत्यादि को सूक्ष्म काय योग से क्रमश निरोधकरने से **सूक्ष्मकाययोग से** सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामक तीसरा शुक्ल ध्यान होता है। इसे उपचार से ध्यान भी कहते हैं क्योकि ज्ञान लक्षण से रहित होने के कारण उस ध्यान के फल से सूक्ष्म काय योग होता है। उसको नाश करने के बाद अन्तर्मुहूर्त मे अयोगी केवली

गुणस्थान होता है। पंच ह्रस्वाक्षरो के उच्चारण समय अर्थात् अ इ उ ऋ ऌ इन पांच अक्षरो के उच्चारण में जितना समय लगता है उतने समय उस गुण स्थान मे नि शेष कर्म को निरास्रव करके सम्पूर्ण शील गुणों से समन्वित अपने द्विचरम समय मे १३ प्रकृतियो को निर्विशेष रूप से नाश करता है। इस प्रकार शेष ८५ प्रकृति अयोगी केवली गुणस्थान मे व्युपरत-क्रिया-निवृत्ति नामक चौथे शुक्ल ध्यान से नाश होती हैं। इसे भी उपचार से ध्यान कहते है। इस ध्यान से सासारिक समस्त दुःखो को नाश कर ध्यानरूपी अग्नि से निर्दग्ध सर्व कर्म मल रूपी ईधन निरस्त करने के बाद नव जन्म होने के समान शुद्धात्म स्वरूप को प्राप्त होकर उसी समय लोकाग्र मे स्थित होता है। यह अपने को स्वयमेव देखने और जानने योग्य आभ्यन्तर शुक्ल ध्यान का लक्षण है। गात्र, नेत्र परि-स्पन्द रहित, अनभिव्यक्त प्राणापान प्रचारित्व, नामक पर को देखने व जानने मे आने के कारण ये शुक्ल ध्यान के बाह्य लक्षण होते है।

इस प्रकार कहे हुए धर्म, शुक्ल ध्यान को मुख्यवृत्ति से स्वशुद्धात्म द्रव्य ही ध्येय रूप होता है और शेष विकल्प गौण होते हैं। सिद्धान्त के अभिप्राय से दोनों विषयो मे कोई विशेष भेद नही है। अत. धर्मध्यान सकषाय परिणाम होकर मार्ग मे लगे हुए दीपक के समान अधिक समय तक नही टिकता। किन्तु शुक्लध्यान असख्यात गुणे प्रकाश से मणि के समान सदा प्रकाशित रहता है। इन दोनो मे केवल इतना ही भेद है।

षड् गुणस्थान पर्यन्त आर्त्तध्यान और पचम गुणस्थान पर्यन्त रौद्र ध्यान है, ये दोनो आगम मे सर्वथा हेय माने गये है।

असंयत सम्यग्दृष्ट्यादि चतुर्थ गुणस्थान भूमि सम्बन्धी जो धर्म ध्यान है वह कारण रूप से उपादेय है। अपूर्वकरण आदि सयोगकेवली पर्यन्त वर्तने-वाला शुक्ल ध्यान साक्षात् उपादेय है।

इस प्रकार शुक्ल ध्यान का वर्णन समाप्त हुआ।

आगे बारह प्रकार के तपो से उत्पन्न आठ प्रकार की ऋद्धियो को कहते है—

अष्टौ ऋद्धय ॥५८॥

अर्थ—१-बुद्धि ऋद्धि, २-क्रियाऋद्धि, ३-विक्रियाऋद्धि, ४-तपऋद्धि, ५-बलऋद्धि, ६-ऐश्वर्यऋद्धि, ७-रसऋद्धि तथा ८-अक्षीणऋद्धि ये ऋद्धियो के आठ भेद हैं।

बुद्धिरष्टादश भेदा ॥५६॥

बुद्धि ऋद्धि के १८ भेद होते है। १-केवल ज्ञान, २-मन पर्यय ज्ञान, ३-अवधिज्ञान, ४-बीज बुद्धि, ५-कोष्ठ बुद्धि, ६-पदानुसारी, ७-सम्भिन्न श्रोत्र, ८-दूरास्वादन ९-दूरस्पर्शनत्व १०-दूरघ्राण, ११-दूरदर्शन, १२-दूरश्रवण, १३-दशपूर्व, १४-चतुर्दश पूर्व, १५-अष्टागमहानिमित्त ज्ञान, १६-प्रज्ञाश्रवण, १७-प्रत्येक बुद्धि, १८-वादित्व ऐसे बुद्धि ऋद्धि के १८ भेद है।

समस्त पदार्थों को युगपत् जानना केवल ज्ञान है। २-पुद्गल आदि अन्य वस्तुओ को मर्यादा पूर्वक जानना अवधि ज्ञान है। ३-दूसरे के मन की वातो को जानना मन पर्ययज्ञान है। ४-एक अर्थ से अनेक अर्थों को जानना बीज बुद्धि है। ५-जैसे कृषक अपने धान्यभडार यानी गल्ले की कोठरी मे से रक्खे हुए भाति भाति के बीजो को आवश्यकता पडने पर निकालता रहता है उसी प्रकार कोप्ठ बुद्धि धारक ऋद्धि धारी मुनि मुमुक्षु जीवो के अनेक प्रश्नो के उत्तर को अपनी बुद्धि द्वारा देकर सन्तुष्ट कर देते है। यह कोष्ठ बुद्धि है। ६- जिस प्रकार की शिक्षा मिली हो उसी के अनुसार कहना प्रतिसारी है। पढे हुए पदो के अर्थ को अपनी बुद्धि के अनुसार अनुमान से कहना अनुसारी है। पढे हुए पदो को आगे पीछे के अर्थ को अनुमान से कहना उभयानुसारी है। ये पदानुसारी के तीन भेद है।

७—वारह योजन लम्बे और ९ योजन चौडे वर्ग मे पडी हुई चक्रवर्ती की सेना की भाषा को पृथक् पृथक् सुनना या जानना सभिन्न श्रोत्र है। ८-पाच रसो मे से किसी दूरवर्ती पदार्थ के १ रस को अपनी बुद्धि से जान लेना दूरास्वादन है। ९-दूरवर्ती पदार्थ के आठ प्रकार के स्पर्शों को जान लेना दूर स्पर्श है। १०— वहुत दूरवर्ती पदार्थ को देख लेना दूर दर्शन है। ११—बहुत दूरवर्ती पदार्थ की गन्ध को जान लेना दूर गध घ्राण कहलाता है। १२—बहुत दूरवर्ती शव्द को सुन लेना दूर श्रवण है। १३-रोहिणी आदि ५०० विद्या देवता, अगुष्ठ प्रसेन आदि ७०० क्षुल्लक विद्याओ को अचलित रूप से जानना तथा अचलित चारित्र के साथ दशपूर्व आदि को जानना दशपूर्व है। १४-चौदह पूर्वों को जानना चतुर्दश पूर्व है। १५—अन्तरिक्ष निमित्त, भौमनिमित्त, अग निमित्त, स्वरनिमित्त व्यञ्जन निमित्त, लक्षण निमित्त, छिन्न निमित्त, स्वप्न निमित्त, ये अष्टाग निमित्त है। चन्द्र सूर्यादि ग्रह नक्षत्रो को देखकर नयनाङ्गादि को कहना अन्तरिक्ष निमित्त है। पृथ्वी के ऊपर बैठे हुये मनुष्य को देखकर नयनाग को कहना भौम निमित्त है। तिर्यञ्च मनुष्य आदि के रस और रुधिर आदि को देखकर

तथा उनके अगो का स्पर्श करके शुभाशुभ फलों को कहना अंग निमित्त है। स्वर को सुन कर तदनुसार फलों को कहना स्वर निमित्त है। शरीर के ऊपर पडे हुये काले तथा सफेद तिलो को देखकर उसके फल को कहना व्यञ्जन निमित्त है। शरीरस्थ सामुद्रिक रेखा मे हल, कुलिश, द्वीप, समुद्र, भवन, विमान, वाण, पुर गोपुर, इन्द्रकेतु, शख, पताका, मुशल, हय रवि, शशि, स्वस्तिक, दारु, कूर्म, अंकुश, सिंह गज, वृषभ, मत्स्य, छत्र शय्या, आसन, वर्द्धमान, श्रीवत्स, चक्र अनल कुम्भ ऐसे ३२ शुभलक्षणो को देखकर उसके शुभाशुभ फलों को कहना लक्षणनिमित्त है। शस्त्र कटक मूसक आदि से होने वाले छिद्र को देख कर नया नयग को कहना छिन्न निमित्त है। स्वप्न को देख सुनकर नयेयनयग को कहना स्वप्ननिमित्त है।

१६—द्वादशांग चतुर्दश पूर्वो को विना देखे केवल श्रवण मात्र से ही उसके अर्थ को कहना प्रज्ञा श्रवणत्व है। १७—परोपदेश के विना ही अपने सयमवल से सपूर्ण पदार्थो को जानना प्रत्येक बुद्धि है। १८—देवेन्द्रादि को वाद मे हत-प्रभ करने वाली प्रतिभाशाली बुद्धि को वादित्व कहते हैं। इस प्रकार ऋद्धि बुद्धि के १८ भेद है।

क्रियाऋद्धिर्द्विविधा ।६०।

चारणत्व, आकाशगामित्व, ऐसे क्रिया ऋद्धि के दो भेद हैं। यह इस प्रकार है.—जल चारणत्व, जंघा चारणत्व, तन्तु चारणत्व, पत्र चारणत्व' फल-चारणत्व, पुष्प चारणत्व, आदि अनेक भेद चारणत्व के है। वैठकर या खडे होकर पाव से चलते हुये अथवा पांव विन्यास से रहित गगनागमन करना आकाश-गामित्व है। —

विक्रियैकादशविधा ।६१।

विक्रिया ऋद्धि के १ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा ४ गरिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईशत्व; ८ वशित्व; ९ अप्रतिघात, १० अन्तर्धान, ११ काम-रूपित्व ये ग्यारह भेद हैं।

उनमे से छोटा शरीर बना लेना अणिमा, मोटा शरीर बना लेना महिमा लघु शरीर को बना लेना लघिमा, अपनी इच्छानुसार बड़ा शरीर बना लेना गरिमा जमीन मे रहते हुये भी अपनी उँगली से मेरु पर्वत को स्पर्श कर लेने की शक्ति प्राप्त कर लेना प्राप्ति, जिस प्रकार जमीन पर गमन किया जाता है उसी प्रकार पानी पर चलना प्राकाम्य, तीनों लोकों के नाथ वनने की शक्ति ईशत्व, सभी को वश कर लेना वशित्व, पर्वत की चोटी पर आकाश के समान चले जाना अप्रति-

घात, अदृश्य रूप हो जाना अन्तर्धान तथा एक ही बार मे अनेक रूप धारण करके दिखाना काम-रूपित्व, विक्रिया ऋद्धि कहलाती है।

तपः सप्तविधम् ॥६२॥

१ उग्रतप, २ दीप्त तप, ३ तप्त तप, ४ महातप, ५ घोर तप, ६ घोर वीर पराक्रम तप तथा ७ घोरगुणब्रह्मचर्य ये तप ऋद्धि के सात भेद होते हैं। उसमे उग्रोग्र तप, अनवस्थितोग्र तप ये तप के दो भेद होते हैं।

१ उपवास करके पारण करना और १ पारण करके २ उपवास करना, ३ उपवास करके पारण करना इसी प्रकार क्रमश ११ उपवास तक बढ़ा घटा कर जीवन, पर्यन्त उपवास करते जाना उग्रोग्र तप कहलाता है।

दीक्षा उपवास करने के पश्चात् पारण करके एकान्तर को करते हुये किसी भी निमित्त से उपवास करके ३ रात्रि तक उपवास करते हुये जीवन पर्यन्त बढाते जाना अवस्थितोग्र तप कहलाता है। अनेक उपवास करने पर भी सुगधितश्वास तथा शरीर की शोभा बढ़ते जाना दीप्त तप कहलाता है। तपे हुये लोहे के ऊपर पड़ी हुई जल की छोटी छोटी बूँदें जिस प्रकार जल जाती हैं उसी प्रकार ग्रहण किये हुये आहार तप के द्वारा मल व रुधिर न बन कर भस्म हो जाना या जल जाना तप्त तप है। अणिमादि अष्ट गुणो से शरीरादि की कान्ति, सर्वौषधि अनन्त बल तथा त्रिलोक व्यापकत्व आदि से समन्वित होने को महातप कहते हैं। वात, पित्त श्लेष्मादि अनेक प्रकार के ज्वर होने पर भी अन-शनादि करना घोर तप कहलाता है। ग्रहण किये हुये तप योग की वृद्धि करना तीनो लोक मे बराबर शरीर को फैलाना तथा समुद्र को सुखा देना, जल, अग्नि शिलादि के द्वारा पानी बरसाने आदि की शक्ति प्रकट करना घोर वीर पराक्रम तप कहलाता है। अखड ब्रह्मचर्य सहित तथा दु स्वप्न आदि गुणो से युक्त होन घोर गुण ब्रह्मचर्य तप कहलाता है।

बलस्त्रिधा ।६३।

मन, वचन तथा काय भेद से बल ऋद्धि तीन प्रकार की होती है। सो इस प्रकार है—महान अर्थागम को मन से चिन्तन करते रहने पर भी नही थकना मनोबल है, सपूर्ण शास्त्रो को रात दिन पढते-पढाते रहने पर भी न थकना वचन बल है तथा मासिक, चातुर्मासिक एव सावत्सरिक इत्यादि प्रतिमायोग मे रहने पर भी किंचित्मात्र कष्ट न होना कायबल है।

भेषजमष्टधा ॥६४॥

१ आमौषध ऋद्धि, २ क्षल्लौषध ऋद्धि, ३ खिल्लौषध ऋद्धि, ४ मलौ-

षध ऋद्धि, ५ विष्ठौषध ऋद्धि, ६ सर्वौषध ऋद्धि ७ आस्यमल ऋद्धि तथा ८वी दृष्टि विष ऋद्धि ये औषध ऋद्धिया आठ प्रकार की होती हैं।

जिन महा तपस्वी के हाथ पाव के स्पर्श करते मात्र से रोग उपशम होने की शक्ति प्राप्त होती है उसे आमौषध ऋद्धि कहते हैं। किसी तपस्वी के निमित्त या उसके थूकके स्पर्श मात्र से ही व्याधि उपशम हो जाना खिल्लौषध ऋद्धि है। कुछ तपस्वी के पसीने से निकले हुये मल के द्वारा व्याधि उपशम होना जल्लौषध है। किसी के कान, दांत, नाक आदि के मल से व्याधि नष्ट हो जाना मल्लौषध है। और किसी तपस्वी के मल-मूत्रादि के स्पर्श हो जाने से रोग नष्ट हो जाना विष्टौषध कहलाती है। किसी तपस्वी के शरीर का स्पर्श करके आई हुई हवा से व्याधि नष्ट होना सर्वौषध है। किसी तपस्वी के मुख से निकलने वाली लार के द्वारा अमृत के समान व्याधि नष्ट हो जाना आस्यमल औषध है। किसी तपस्वी के देखने मात्र से विष या रोग नष्ट हो जाना दृष्ट विष ऋद्धि है। इस प्रकार आठ औषध ऋद्धियों का वर्णन किया गया।

आस्यविषत्व, दृष्टिविषत्व, क्षीरस्रवित्व, मधुस्रवित्व, आज्यस्रवित्व, अमृतस्रवित्व, ऐसे रस ऋद्धि के छै भेद हैं।

१ कोई तपोधारी साधु किसी निमित्त से किसी गृहस्थ की तरफ क्रोध दृष्टि से देखकर यदि कहे कि तू मर जा और उसके कहने से तुरन्त ही मर जाय तो इसे आस्यविषत्व कहते हैं। २-गुस्से के साथ किसी की तरफ देखते ही यदि वह मनुष्य तत्काल मर जाय तो इसका नाम दृष्टि-विष है। ३ महातप धारी मुनि के पाणिपात्र मे नीर सा आहार रखने से वह आहार क्षीररूप मे परिणत होजाय तो इसका नाम क्षीर-स्रव ऋद्धि कहते है। ४ और किसी महा तपस्वी के हाथ मे नीरस आहार रख दे तो वह तुरन्त ही अन्न मधुर या मीठा हो जाय तो इसका नाम मधुस्रवित्व ऋद्धि है। ५ यदि तप धारी मुनियो के हाथ मे शुष्क भोजन रख दिया जाय वह आहार तुरंत ही घृत के समान अत्यन्त स्वादिष्ट या सुगंधित रूप मे परिणत हो जावे इसको आज्यस्रवित्व ऋद्धि कहते है। ६ किसी तपोधारी मुनि के हाथ मे कड़वा आहार भी रख दिया जाय तो वह आहार तुरन्त ही अमृत के समान हो जावे इसका नाम अमृतस्रवी ऋद्धि है।

अक्षीणऋद्धिर्द्विविधा ॥ ६६ ॥

१ अक्षीण महानसत्व, २ अक्षीणमहालयत्व ऐसे अक्षीण ऋद्धि के दो भेद हैं। तपधारी साधु के आहार होने के बाद शेष बचे हुये आहार मे यदि चक्रवर्ती का कटक भी जीम ले तो भी आहार कम न होकर बढते ही जावे इस का नाम अक्षीण महानसत्व है। मुनि जहां पर रहें उतने स्थान मे

चक्रवर्ती का विशाल कटक भी आराम से रह जावे, यह अक्षीणमहालयत्व ऋद्धि है।

गाथा—बुद्धितवादिय अत्थिदियं वरणलद्धितहेव ओसहिया।
रसबल अक्खियविपलद्धिओ सत्त पण्णत्ता ॥ १६ ॥

पंचविधानिर्ग्रन्थाः ॥ ६७ ॥

पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रंथ, और स्नातक ऐसे निर्ग्रंथ के पांच भेद हैं। उत्तर गुण की भावना से रहित मूल गुणो मे कुछ न्यूनता रखने वाले को पुलाक कहते है। अखडित ब्रह्मचर्य के धारी होते हुये भी शरीर तथा उपकरण सस्कार तथा यश विभूति मे आसक्त तथा शवल चारित्र से युक्त रहने वाले मुनि को वकुश कहते हैं। संपूर्ण मूल गुणो से युक्त तथा अपने उपकरणादि मे ममत्व बुद्धि रखकर उत्तर गुण से रहित मुनि को प्रतिसेवना कुशील कहते हैं। शेष कषायो को जीतकर संज्वलन कषाय मात्र से युक्त रहने वाले कषाय कुशील हैं। ये कुशील के दो भेद है। अन्तर्मुहूर्त्त के बाद केवल ज्ञानादि मे रहने वाले क्षीणकषाय को निर्ग्रन्थ कहते हैं। ज्ञानावरणादि घाति कर्म क्षय से उत्पन्न हुई नव केवल लब्धि से युक्त सयोग केवली स्नातक होते है। ये पाचो मुनि जघन्य, मध्यम, उत्तम, उत्कृष्ट चारित्र भेदवाले होकर नैगम नयापेक्षा से पाँच निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। जैसे अनेक वर्ण के सुवर्ण सोना ही कहलाते हैं। वैसे ही उपर्युक्त पाचो मुनि सम्यग्दर्शन भूषणदि से न्यूनाधिकता के कारण सर्व सामान्य होने से निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

पुलाक, वकुश, प्रतिसेवना कुशील इन तीनो को सामायिक और छेदोपस्थापना सयम होता है। कषाय कुशील को सामायिक, छेदोपस्थापना; परिहार विशुद्धि तथा सूक्ष्म–सापराय ये चार सयम होते हैं। निर्ग्रन्थ तथा स्नातक को यथाख्यात शुद्ध सयम एक ही होता है। श्रुतो मे पुलाक वकुश और प्रतिसेवना कुशील मुनि उत्कृष्ट से अभिन्नाक्षर दश पूर्व के धारी होते है। कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ चतुर्दश पूर्व के धारी होते है। जघन्य रूप से पुलाक का श्रुत और आचार वस्तु प्रमाण होता है। वकुश, कुशील और निर्ग्रन्थ का श्रुत कम से कम अष्ट प्रवचनमातृका मात्र होता है। स्नातक अपगतश्रुत यानी केवली होते हैं। चारित्र की विराधना करना विराधना है। पुलाक मुनि दूसरो की जबर्दस्ती से पाँच मूलगुण तथा रात्रिभोजन त्याग मे से किसी एक की प्रतिसेवना करता है। वकुश मुनि कोई तो अपने उपकरणोकी तथा शरीर स्वच्छता सुन्दरता मे रूचि रखते हैं और दूसरे वकुश मूलगुणो को सुरक्षित रखते हुए उत्तर गुणो की विराधना करते है।

प्रतिसेवना कुशील के उत्तर गुण में कुछ न्यूनता रहती है । पर शेष को प्रतिसेवना नही है । तीर्थको अपेक्षा सभी मुनि सभी तीर्थंकरो के समय होते है । द्रव्य भाव विकल्प से लिङ्ग में दो भेद हैं । जितने भावलिंगी हैं वे सभी निर्ग्रन्थ लिंगी कहलाते है और द्रव्यलिंग मे कुछ विकल्प होता है । लेश्या मे पुलाक को ऊपर की ३ लेश्याये होती हैं । प्रतिसेवना कुशील को ६ लेश्याये होती है । कषाय कुशील को परिहार विशुद्धि और सयत को ३ लेश्याये होती है । सूक्ष्मसापराय वाले तथा निर्ग्रन्थ स्नातक को शुक्ल लेश्या होती है । अयोग-केवली को लेश्या नही होती । उपपाद में पुलाक को उत्कृष्ट उपपाद अठारह सागरोपम स्थिति सहस्रार कल्प में होता है । आरणअच्युतकल्प मे वकुश व प्रति-सेवना कुशील को २२ सागरोपम स्थिति होती है ।

सर्वार्थ सिद्धि मे कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ की ३३ सागरोपम स्थिति होती है । सौधर्म कल्प मे जघन्य उपपादको को २ सागरोपम स्थिति होती है । स्नातक मुक्ति पाते हैं । संयम की अपेक्षा कषाय के निमित्त से सख्यात मे से सर्व जघन्य संयम लब्धि स्थान पुलाक और कषाय कुशील वाले को होती है । वे दोनो साथ साथ असंख्यात स्थान को प्राप्त होकर पुलाक रूप होते हे । कषाय कुशील मुनि ऊपर के असंख्यात संयम स्थानो को अकेले ही प्राप्त होते है उसके ऊपर कषाय कुशील, प्रतिसेवना कुशील तथा वकुश ये तीनो असख्यात गुणे स्थानो को प्राप्त होकर पुन वकुश को प्राप्त होता है ।

उसके ऊपर असख्यात सयम स्थान को पहुंच कर प्रतिसेवना कुशील होता है । वहां से ऊपर चलकर असख्यात संयम स्थान में जाकर कषाय कुशील होता है । उसके ऊपर अकषाय स्थान है निर्ग्रन्थ मुनि समस्त कषाय त्याग करके संयम के असंख्यात स्थान प्राप्त करते हैं । पुनः उसके ऊपर एक स्थान स्नातक प्राप्त करते हैं वे निर्वाण पद को प्राप्त कर संयम लब्धि अर्थात् ६ लब्धि को प्राप्त कर लेते है ।

आचारश्च ।६८।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार तथा चारित्राचार ये पाँच प्रकार के आचार हैं । पाँचो आचार काल शुद्धि विनय शुद्धि अवग्राहादि को कभी नही भूलते । शब्द और अर्थ ये दोनो आठ प्रकार के ज्ञानाचार तथा ८ प्रकार के निःशंकादि दर्शनाचार को बढाने वाले हैं ।

जिस प्रकार संतप्त लोहे के ऊपर यदि थोड़ा सा जल डाल दिया जाय तो वह उसे तत्क्षण भस्म कर देने के पश्चात् भी गर्म बना रहता है उसी प्रकार

आप्त आगम तथा परम तपस्वी गुरु जन अज्ञान का नाश करके भी अपने स्व स्वरूप मे स्थित रहते हैं। उनके विप मे शका न करना नि शका है।

नि काक्षा—अस्थिर तथा अत्यन्त बाधक कर्मास्रव मार्ग को बढाने वाले विषय सुखो की काक्षा न रखकर अपने स्वरूप मे स्थित रहना नि काक्षा है। सुकाल मे, सुक्षेत्र मे बीज बोकर जिस प्रकार किसान अन्य चीज की इच्छा न रखकर उसकी रक्षा करते हुये वृद्धि करता है और फसल को बढाता जाता है उसी प्रकार मुनिजन पापभीरु हो कर सदाचरण तथा आत्मोन्नति को बढाते हुये इन्द्रादि केभोगोपभोगो की आकाक्षा से रहित रहकर अपने आत्म स्वरूप मे लीन रहते हैं धन, धान्य, महल मकान, इन्द्र नरेन्द्र तथा चक्रवर्ती पद आदि ऐहिक सुख क्षणिक है तथा मोक्षश्री की कामना करते रहने से वे स्वयमेव आ जाते हैं, अत सम्यग्दृष्टी जीव उनकी लालसा न करके केवल शुद्धात्मा को ही आराधना करते हैं।

जिस प्रकार कुशल किसान केवल धान यानी फसल मात्र की कामना करके सुकाल, सुक्षेत्र मे उत्तम बीज बोकर धान के साथ २ भूसा, पुआल तथा डंठल आदि अनायास ही प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार भव्य जीव केवल मोक्ष की सिद्धि के लिए प्रयत्न करते है पर इन्द्र धरणीन्द्र तथा नरेन्द्रादिक पद वे अनायास ही प्राप्त कर लेते है। अत इन्द्रियजन्य सुख क्षणिक और मोक्ष सुख शाश्वत है, ऐसा समझकर सम्यग्दृष्टि सदा शाश्वत सुख की ही इच्छा करते हैं। और नि काक्ष भावना से सर्वदा आत्मस्वरूप मे लीन रहते है।

निर्विचिकित्सा—

नयदिदमोप्पे रत्न- । त्रयदि कयिगेय्सि शोभि सुतिर्त ।
शरीर दोळिंतुजुगु- । प्सेयनागि सदिर्प रुचिये निर्विचिकित्सं ॥

सगति से गुणहीन वस्तु भी गुणवान मानी जाती है जैसे गुणहीन मिट्टी के वर्तन मे घी या अमृत रहने से उसको भी गुणवान माना जाता है। उसी तरह यह शरीर अमगल होने पर भी पवित्र शुद्ध रत्नत्रयात्मक शुचिभूत आत्मा के ससर्ग मे रहने के कारण शुचि (पवित्र) माना गया है। अगर इस शरीर से घृणा की जाय तो शुद्धि की प्राप्ति नही हो सकती यदि शरीर के प्रति घृणा की जाय तो उसके साथ आत्मा की भी घृणा होती है। क्योकि शरीर आत्म-प्राप्तिके लिए मूल साधन है। ऐसा समझकर रोगग्रस्त किसी धर्मात्मा या चतु सघ के किसी महात्मा आदि को देखकर घृणा न करके शरीर से भिन्न केवल आत्मस्वरूप का विचार करना निर्विचिकित्सा अग कहलाता है।

चौथे अमूढदृष्टि अंग का लक्षण:—

सच्चे देव, गुरु व शास्त्र के विपरीत पाचों पापों को बढाने वाले एकान्त विपरीत, सशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय ये पाच प्रकार के मिथ्यात्व है। इन्ही पाचों मिथ्यात्वो मे से स्वर्ग या मोक्ष का कारण मानकर जो कुदेवों के समक्ष मूक पशुओ का बलिदान किया जाता है वह पाप पक मे फंसाकर संसार वर्द्धन का कारण होता है। अतः उन पांचो पापो की मूढ़ता से रहित होकर वीतराग भगवान के द्वारा कहा हुआ मार्ग ही आत्मा का स्वभाव है तथा वही संसार से मुक्त करने वाला है, ऐसा निश्चय करके उसी मे रत रहना अमूढ-दृष्टि है।

वात्सल्य—

चातुर्वर्णंगळोळं-। प्रीति योळिदिरेदु कंडु धर्म संहायं।
माता पितर् निमेमगेंवुदु। भूतलदोळ् नेगळ्द धर्मवात्सल्य गुणं ॥२२२॥

गरीब-श्रीमन्त आदि का भेद-भाव न रखकर जिस प्रकार गाय व बछड़े का परस्पर मे प्रेम रहता है उसी प्रकार चातुर्वर्ण्य धर्मात्माओ के साथ प्रेम करना वात्सल्य अंग है।

धर्म प्रभावना—

जिन शासन ताहात्म्यै-। मनन वरतं तन्न शक्तियिं वेळगिकरं।
मनद तमम कळ्चुवु-। दनुदिनमिदु शासनं प्रभावनेयक्कु॥२२३॥

भगवान जिनेश्वर की वाणी तथा आगम के द्वारा मिथ्या हिंसामयी अधर्म रूपी पर-समय के आवरण को दूर कर भगवान के शासन का प्रकाश करना, अपने तप के द्वारा देवेन्द्र के आसन को प्रकपित कर देने वाले महा-तपस्वी के स्वसमय तथा उनके तप के महत्व को प्रकट कर जैन धर्म के महत्व को प्रकट करना, या समय समय पर भगवान जिनेन्द्र की पूजा, रथ यात्रा, कल्प वृक्ष पूजा, अष्ट पूजा या भगवान जिनेन्द्र देव का जन्मोत्सव, वीर जयन्ती आदि उत्सव करके धर्म की प्रभावना से मिथ्या आवरण को दूर करना, प्रभावना अंग है।

पूर्नांग दृष्टि भवस-। तानाळरलुकदार देंतेने मन्त्रं।
तानक्षर मोंदिल्लदो-। डेनदु केडेसुगमें विषम विषवेदनेयं॥२२४॥

इन अगो मे से एक भी अग कम होने पर अनन्त दु.ख तथा पशुगति मे होने वाले छेदन, भेदन, ताडन, त्रासन, तापन, वियोग, संयोग, रोग, दुःख,

जन्म; मरण, जरा, मरण, शोक, भय, इत्यादिक दु खों को उत्पन्न करने वाला ससार नाश नही हो सकता ।

जैसे मत्रवादी के मत्र मे से यदि एक भी अक्षर कम हो जाय तो उस मंत्र से सर्प का काटा हुआ विष नही उतरता उसी तरह आठो अगो मे से यदि एक भी अग कम हो जाय तो इह परलोक की सिद्धि को प्राप्त कर देने वाले पूर्ण सम्यग्दर्शन की सिद्धि नही हो सकती ॥२२४॥

अष्टांग दर्शवम- । मर्व्हदिय नष्ट गुण मनधिक स्थाना- ।
दृष्टातिशय विशेषम- । नष्ट महासिद्धि गुणमणी गुम मोघं ।२२५।

इस कुल मे जन्म लेने के पश्चात् उत्तम गुण ही प्रधान है । ससार मे आत्मा को मनुष्य, तिर्यञ्च, नारक गति, जाति, शरीर, स्त्री, पु , नपु सक वेद तथा नीच आदि कहना व्यवहार नय से कर्म की अपेक्षा है । शक्ति-निष्ठ निश्चयनय से आत्मा शुद्ध तथा सिद्ध भगवान के समान है । अत वास्तव मे शुद्ध भावी नय की अपेक्षा से अनागत सिद्ध है । परन्तु सम्यक्त्व-पूर्वक ज्ञान चारित्रादि को प्राप्त करके यहाँ जीवात्मा सासारिक बन्धनो को नाश करके पुन. सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान चारित्रादि को प्राप्त करके सिद्ध हो जाता है अर्थात् सासारिक कीचड से मुक्त होकर ऊपर आ जाता है ॥२२५॥

दुरित दुपशम दिनायु- । सुर नक्कु धर्मदळिविर्निनायवकु ॥
सुरनुमेने धर्म दिद । दोरकोंळ्ळदुदेन धर्म दिदळियदुदें ॥२२६॥

इस लिए समस्त सासारिक जीवो को केवल एक धर्म ही नि.श्रेयस परम अभ्युदयकारक आत्मिक सुख को देने वाला है और उस आत्मा को कर्म-क्षय के निमित्त अर्थात् अपनी आत्मसिद्धि के लिये जब तक पूर्ण रूप से सामग्री प्राप्त न हो तब तक उन्हे उपर्युक्त गुणस्थानो पर चढने की शक्ति नही प्राप्त हो सकती अर्थात् सम्यक्त्व के बिना ऊपर के गुणस्थान नही प्राप्त कर सकता और जहा चौथा गुणस्थान भी नही वहा दर्शन मोहनीय का उपशम भी नही है । तो ऐसा गृहस्थ व्रती भी नही हो सकता और व्रत के अभाव से वह मोक्ष मार्ग से भी अधिक दूर रहता है । तथाच जो व्रत व सम्यक्त्व रहित बाह्य तप करने वाले साधु है उन्हे मोक्ष मार्ग की प्राप्ति नही हो सकती । सम्यग्दृष्टि उत्तम गृहस्थ श्रावक सम्यक्त्व-रहित मुनि की अपेक्षा अणुव्रती दृष्टिगोचर होने पर भी क्रमशः शुद्धात्मा की प्राप्ति कर सकता है, जबकि सम्यक्त्वरहित महाव्रत-धारी मुनिगण बाह्य तप के कारण आत्मसिद्धि की प्राप्ति न कर सकने के कारण दीर्घ ससारी होते हैं । अर्थात् विकलता सहित अणुव्रती व महाव्रती चाहे

कितना भी शास्त्र स्वाध्याय करके ज्ञानोपार्जन करे, या धर्माराधन करे, पर वे द्रव्यश्रुती अथवा मिथ्याज्ञानी ही कहलाते हैं। क्योकि अभव्य भी अनेक शास्त्रो मे पारगत होकर ११ अंगशास्त्र के पाठी होकर वहुश्रुत कहलाते हैं और दुर्द्धर कायक्लेशादि तप करके उपरिम नवग्रैवेयक विमान तक भी जाते है, किन्तु पुनः वे वहां से लौटकर ससार की चतुर्गति मे भ्रमरण किया करते हैं। अर्थात् सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण उन्हे आत्मसिद्धि नही हो सकती। सम्यक्त्व रहित ज्ञान चारित्र की उत्पत्ति उसी प्रकार नही हो सकती जैसे कि—जहां पर बीज नही है वहा पर वृक्ष तथा फल पुष्पादि की उत्पत्ति त्रिकाल व त्रिलोक मे कदापि नही हो सकती। अतः सम्यक्त्व को ही परम बन्धु तथा मिथ्यात्व को परम शत्रु समझकर प्रशम, संवेग, अनुकम्पा तथा आस्तिक्याभिव्यक्त लक्षरण सहित संसार-लता मूल से विच्छेद करने वाले, त्रिकाल ज्ञान को प्राप्त करने वाले सम्यग्दर्शन की आराधना सर्व प्रथम करनी चाहिए। तथा यह सम्यग्दर्शन मोक्ष प्रासाद मे आरोहरण करने के लिए प्रथम सोपान के समान है, ऐसा समझ-कर दर्शन सहित सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञान चारित्र तथा तपाराधना करने के कारण पूज्य हो जाता है और ससार मे रहकर भी वे भव्य जीव श्रुत भगवान के आठ गुणों के समान निजात्म शुद्धात्मा की आराधना करते हुए मोक्षरूपी द्वीपान्तर को जाने की इच्छा से चारित्ररूपी यान-पात्र पर चढकर मोक्ष स्थान को शीघ्राति-शीघ्र सिद्धि कर लेते हैं ॥२२६॥

नेगळ्दमल दर्शनये कठि कु निर्वाणरणायिक राजलक्ष्मिय मनलुन।
वुगये निमत्तं प्रभृति गळ गल्केयभ्युदय दोळि्पनेसुवेय्दु—॥
गगतलेयूरि तपंगेय्देयमलसाग रोक्त धर्म दोळ्ने गळ्देम—।
दृग्भलमिल्लं मुक्ति श्रीललनेयु' अमरेंद्लक्ष्मियु' कडुइरं॥

इस सम्यक्त्व की महिमा से चतुर्गति के कारण बद्धायु को असंयत सम्यग्दृष्टि अप्रत्याख्यान कषाय के उदय होने पर नियमानुष्ठान से रहित होने पर भी इन्द्रिय-जन्य विपयो से सदासीन रहता है। तथा अग्रिम भव में इन्द्र धरणीन्द्र, चक्रवर्ती आदि पद प्राप्त करके मुक्ति लक्ष्मी का पति होता है।२२६।

विकलेंद्रिय जाति भावनवन ज्योतिष्कतिर्यग्नपु'—
सकनारीनटविन द्ःकुलसरुग्मुखांधनिभग्यिना--॥
रक हीनायुषकिषादि पदमंकैको ळ्ळरेंदुमह-।
धिक सस्थानसल्लद व्रति गलु' सम्यक्त्व सामर्थ्यदिं ॥२२७॥

सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्दर्शन के प्रभाव से विकलेन्द्रिय, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवो मे, पशुओ मे, नपुंसको मे, स्त्रियो मे तथा नीच कुलो मे उत्पन्न नही होता, हीनाग, अधिकाग, हीनायुष्क नही होता।

वह अपर्याप्तक मनुष्य, कुभोगभूमिज, म्लेच्छ, बहिर्विरूपी, कुब्जक, वामन, पगु, इत्यादि कुत्सित पर्याय मे जन्म नही लेते तथा आयु समाप्त होने पर वहा से मरकर देवगति मे, या सम्यक्त्व से पूर्व बान्धी हुई आयु की अपेक्षा नरक गति में रहकर पुन: सम्यक्त्व को प्राप्त करके कर्म भूमि मे उत्कृष्ट मानव पर्याय धारण करते है तथा अपने कर्मों की निर्जरा करके उसी भव से मोक्ष को चले जाते हैं। यदि वे उस भव मे मोक्ष न जा सके तो पुन ८ भव तक मनुष्य तिर्यंग्गति आदि मे रहकर अन्त मे सम्यक्त्व ग्रहण करके महर्द्धिक देव होते है। तत्पश्चात् वहा से आकर उसी भव मे अपने समस्त कर्मों का क्षय करके शीघ्र ही मोक्ष पद प्राप्त कर लेते है। २२७।

हलधर कुलधर गणधर। कुलिशधर सुधर्म तीर्थंकर चक्रधरा--॥
तेलकुसुमास्त्रधरसमु-। द्वलविद्याधरर लक्ष्मिसम्यक्त्वफलं।२२८।
दोर कोळ्ळूद सम्यक्त्वं। दोर कोंडडेगुडियु वछवणदोकुळियं॥
स्फुरितोरसाह परंपरे। निरंतरं भव्यग्रह दोळोरवल्वेडा॥२२९॥

शका, काक्षा, विचिकित्सा, अन्य दृष्टि प्रशसा तथा अन्य दृष्टि स्तवन ये सम्यग्दृष्टि के पाच अतिचार हैं। इन पाचो को टालकर सम्यग्दृष्टि अपने शुद्ध सम्यग्दर्शन की रक्षा करता है। इसलिए भगवान जिनेश्वर के वचनो का पूर्ण रूप से विश्वास करके इन अतिचारो से रहित सम्यग्दर्शन का पालन करना चाहिए।२२८-२२९।

आगे समाचार शब्द की चार प्रकार से निरुक्ति कहते है—

राग द्वेष का अभाव रूप जो समताभाव है वह समाचार है, अथवा सम्यक् अर्थात् अतीचार रहित जो मूलगुणो का अनुष्ठान आचरण है, अथवा प्रमत्तादि समस्त मुनियो के समान अहिंसादि रूप जो आचार है वह समाचार है-अथवा सब क्षेत्रो मे हानि वृद्धि रहित कायोत्सर्गादि के सदृश परिणाम रूप आचरण समाचार है।

अब समाचार के भेद कहते हैं—

समाचार अर्थात् सम्यक् आचरण दो प्रकार का है—औघिक और पद-विभागिक। औघिक के दस भेद है और पदविभागिक समाचार अनेक तरह का है। औघिक समाचार के दस भेद निम्नलिखित है—

इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आसिका, निषेधिका, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, छदन, सनिमन्त्रणा और उपसंपत् इस तरह ये औधिक समाचार के दस भेद हैं।

आगे इनका विषय कहते है.—

सम्यग्दर्शनादि शुद्ध परिणाम वा व्रतादिक शुभ परिणामो मे हर्ष होना अपनी इच्छा से प्रवर्तना, इच्छाकार है। व्रतादि मे अतीचार होने रूप अशुभ परिणामो मे काय वचन मन की निवृत्ति करना मिथ्या शब्द कहना मिथ्याकार है। सूत्र के अर्थ ग्रहण करने मे 'जैसा आप्त ने कहा है वैसे ही है' इस प्रकार प्रतीति सहित 'तथेति' यानी—ऐसा ही है कहना तथाकार है। रहने की जगह से निकलते समय देवता गृहस्थ आदि से पूछकर गमन करना अथवा पापक्रियादिक से मन को रोकना आसिका है। नवीन स्थान मे प्रवेश करते समय वहा के रहनेवालो से पूछकर प्रवेश करना अथवा सम्यग्दर्शनादि मे स्थिरभाव रहना निषेधिका है। अपने पठनादि कार्य के आरम्भ करने मे गुरु आदिक को वन्दना-पूर्वक प्रश्न करना आपृच्छा है। समान धर्म वाले साधर्मी तथा दीक्षा गुरु आदि गुरु इन दोनो से पहले दिये हुए पुस्तकादि उपकरणो को फिर लेने के अभिप्राय से पूछना प्रतिपृच्छा है। ग्रहण किये पुस्तकादि उपकरणो को देनेवाले के अभिप्राय के अनुकूल रखना छंदन है तथा नही लिए हुए अन्य द्रव्य को प्रयोजन के लिए सत्कार पूर्वक याचना अथवा विनय से रखना निमन्त्रणा है। और गुरुकुल मे (आम्नाय मे) मै आपका हू, ऐसा कहकर उनके अनुकूल आचरण करना उपसपत् है। ऐसे दस प्रकार औधिक समाचार है।

ऊपर दस प्रकार के औधिक समाचार का सक्षेप से वर्णन किया गया, अब पद-विभागी समाचार का वर्णन करते है —

जिस समय सूर्य उदय होता है तब से लेकर समस्त दिन रात की परिपाटी मे मुनि महाराज नियमादिकों को निरंतर आचरण करे, यह प्रत्यक्ष रूप पद विभागी समाचार जिनेन्द्र देव ने कहा है—

आगे औधिक के दस भेदो का स्वरूप कहते हुए इच्छाकार को कहते हैं:—

संयम के उपकरण पीछी मे तथा श्रुतज्ञान के उपकरण पुस्तक मे और शौच के उपकरण, कमंडल मे, आहारादि मे, औषधादि मे, उष्णकालादि मे, आतापन आदि योगो में, इच्छाकार करना अर्थात् मन को प्रवर्ताना चाहिए।

अब मिथ्याकार का स्वरूप कहते हैं:—

जा व्रतादिक मे अती चार रूप पाप मैने किया हो वह मिथ्या होवे ऐसे मिथ्या किये हुए पाप को फिर करने की इच्छा नही करता और मनरूप अंतरग भाव से प्रतिक्रमण करता है उसी के दुष्कृत मे मिथ्याकार होता है।

आगे तथाकार का स्वरूप कहते हैं :—

जीवादिक के व्याख्यान का सुनना, सिद्धान्त का श्रवण, परम्परा से चले आये मन्त्रतन्त्रादि का उपदेश और सूत्रादि के अर्थ मे जो अर्हंत देव ने कहा है सो सत्य है, ऐसा समझना तथाकार है।

आगे निषेधिका व आसिका को कहते हैं :—

जलकर विदारे हुए प्रदेश रूप कन्दर, जल के मध्य मे जलरहित प्रदेश रूप पुलिन, पर्वत के पसवाडे छेदरूप गुफा इत्यादि निर्जन्तु स्थानो मे प्रवेश करने के समय निषेधिका करे। और निकलने के समय आसिका करे।

प्रश्न—कैसे स्थान पर करना चाहिए ? उसे कहते हैं—

व्रतपूर्वक उष्णता का सहनारूप आतापनादि ग्रहण मे, आहारादि की इच्छा मे तथा अन्य ग्रामादिक को जाने मे नमस्कार पूर्वक आचार्यादिको से पूछना तथा उनके कथनानुसार करना आपृच्छा है।

आगे प्रतिपृच्छा को कहते हैं —

किसी भी महान कार्य को अपने गुरु, प्रवंतक, स्थविरादिक से पूछकर करना चाहिए उस कार्य को करने के लिए दूसरी वार उनसे तथा अन्य साधर्मी साधुओ से पूछना प्रतिपृच्छा है।

आगे छन्दन को कहते हैं —

आचार्यादिको द्वारा दिये गये पुस्तकादिक उपकरणो में, वन्दना सूत्र के छन्दन का अभिप्राय, अस्पष्ट अर्थ को पूछना आचार्यआदि की इच्छा के अनुकूल आचरण करना छन्दन है।

आगे निमत्रणा सूत्र को कहते है —

गुरु अथवा साधर्मी से पुस्तक व कमडलु आदि द्रव्य को लेना चाहे तो उनसे नम्रीभूत होकर याचना करे। उसे निमत्रणा कहते हैं।

अब उपसम्पत् के भेद कहते है —

गुरुजनो के लिए मैं आपका हूँ, ऐसा आत्मसमर्पण करना उपसम्पत्, है। उसके पाच प्रकार है विनय मे, क्षेत्र मे, मार्ग मे, सुखदु ख मे और सूत्र मे करना चाहिए।

अब विनय में उपसम्पत को कहते है—

अन्यसघ के आये हुए मुनियों का अंगमर्दन प्रियवचन रूप विनय करना, आसनादि पर बैठाना इत्यादि उपचार करना, गुरु के विराजने का स्थान पूछना, आगमन का रास्ता पूछना, संस्तर पुस्तक आदि उपकरणों का देना और उनके अनुकूल आचरणादिक करना विनयोपसम्पन है।

आगे क्षेत्रोपसम्पत् कहते है.—

संयम तप उपशमादि गुण व व्रतरक्षारूप शील तथा जीवनपर्यन्त त्यागरूप यम, काल के नियम से त्याग करने रूप नियम इत्यादिक जिस स्थान मे रहने से बढे उत्कृष्ट हो उस क्षेत्र मे रहना क्षेत्रोपसपत् है।

आगे मार्गोपसंपत् कहते है—

अन्य संघ के आये हुये मुनि तथा अपने स्थान मे रहने वाले मुनियो से आपस मे आने जाने के विषय मे कुशल का पूछना कि 'आप आनन्द से आये व सुख से पहुंचे, इस तरह पूछना संयमतपज्ञान योग गुणो से सहित मुनिराजो के मार्गोपसपत् होता है।

आगे सुखदु.खोपसपत् को कहते हैः—

सुख दु ख युक्त पुरुषो को वसतिका आहार औषधि आदि से उपकार करना अर्थात् शिष्यादि का लाभ होने पर कमंडलु आदि देना व्याधि से पीड़ित हुये को सुखरूप सोने का स्थान बैठने का स्थान बताना, औषध अन्नपान मिलने का प्रकार बताना, अंग मलना तथा 'मै आपका हू आप आज्ञा करे, वह करूं, मेरे पुस्तक शिष्यादि आपके ही हैं,' ऐसा वचन कहना सुखदु खोपसपत् है।

आगे सूत्रोपसंपत् का स्वरूप कहते हैं—

सूत्रोपसपत् के तीन भेद हैं। सूत्र, अर्थ और उभय। सूत्र के लिये यत्न करना सूत्रोपसंपत्, अर्थ के लिए यत्न करना अर्थोपसपत् तथा दोनो के लिए यत्न करना सूत्रार्थोपसंपत् है। यह एक एक भी तीन तरह है—लौकिक, वैदिक और सामाजिक। इस प्रकार नौ भेद है। व्याकरण गणित आदि लौकिक शास्त्र हैं, सिद्धात शास्त्र वैदिक कहे जाते है, स्याद्वादन्यायशास्त्र व अध्यात्मशास्त्र सामाजिक शास्त्र जानना।

आगे पदविभागिक समाचार को कहते है—

वीर्य, धैर्य, विद्यावल उत्साह आदि से समर्थ कोई मुनिराज अपने गुरु से सीखे हुए सभी शास्त्रो को जानकर मन वचन काय से विनय सहित प्रणाम करके प्रमादरहित हुआ पूछे और आज्ञा मांगे तो वह पदविभागिक समाचार है।

गुरु से कैसे पूछे, यह बतलाते हैं?

हे गुरुदेव ! मै आपके चरण कमलो के प्रसाद से सभी शास्त्रो मे अन्य आचार्य की अपेक्षा पारगामी होना चाहता हूँ। इस प्रकार गुरु से ३-५ या ७ बार पूछना चाहिए। ऐसा करने से उत्साह और विनय मालूम पड़ता है। इस प्रकार अपने गुरुजनो से आज्ञा लेकर साथ मे तीन या दो मुनियो को लेकर जाना चाहिए। इस प्रकार दस प्रकार के समाचारो का प्रतिपादन किया गया। जो व्यक्ति इन दश प्रकार समाचारो का पालन करते हुये अपने गुरु के प्रति श्रद्धा रखते हैं उनके विनय ज्ञान व वैराग्य की वृद्धि होती है तथा ससार, शरीर और भोग से निर्वेग व विकार रहित हेयोपादेय तत्त्वो मे प्रवीणता प्राप्त हुआ करती है। अध्रुव आदि बारह प्रकार की अनुप्रेक्षाओ मे उनकी सदा भावना वनी रहती है और इसी के द्वारा उनके ऊपर आने वाले उपसर्गो को सहन करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार मुनियो के समाचार का सक्षिप्त वर्णन किया है

आर्यिकाओ का समाचार—

आर्यिकायें परस्पर मे अनुकूल रहती हैं। ईर्ष्याभाव नही करती, आपस मे प्रतिपालन मे तत्पर रहती है, क्रोध, वैर, मायाचारी इन तीनो से रहित होती है। लोकापवाद से, भयरूप लज्जा परिणाम व न्याय मार्ग मे प्रवर्तने रूप मर्यादा, दोनो कुल के योग्य आचरण इन गुणो से सहित होती हैं।

शास्त्र पढने मे, पढे शास्त्र के पाठ करने मे, शास्त्र सुनने से, श्रुत के चिंतवन मे अथवा अनित्यादि भावनाओ मे और तप विनय सयम इन सबमे आर्यिकाये तत्पर रहती हैं तथा ज्ञानाभ्यास शुभयोग मे सदा सलग्न रहती है। जिनके वस्त्र विकार रहित होते हैं, शरीर का आकार भी विकार रहित होता है, शरीर पसेव व मल से लिप्त है तथा संस्कार (सजावट) रहित है। क्षमादि धर्म, गुरु आदि की सतान रूप कुल, यश, व्रत के समान जिनका आचरण परम विशुद्ध हो, ऐसी आर्यिकाये होती है।

जहा असयमी न रहे, ऐसे स्थान मे, बाधा रहित स्थान मे, क्लेश रहित गमन योग्य स्थान मे दो तीन अथवा बहुत आर्यिकाऐ एक साथ रह सकती है।

आर्यिकाओ को बिना प्रयोजन पराये स्थान पर नही जाना चाहिये। यदि अवश्य जाना हो तो भिक्षा आदि काल मे बडी आर्यिका से पूछकर अन्य आर्यिकाओ को साथ मे लेकर ही जाना चाहिए।

आगे आर्यिकाओ को इतनी क्रियायें नही करनी चाहिये.—

आर्यिकाओ को अपनी वसतिका तथा अन्य घर मे रोना नही चाहिये,

वालकादि को स्नान और भोजन नही कराना चाहिये। रसोई करना, सूत कातना, सीना, असि, मषि आदि छह कर्म करना, संयमी जनो के पैर धोना, साफ करना तथा राग-पूर्वक गीत इत्यादि क्रियाये नही करनी चाहिये।

आर्यिकायें भिक्षा के लिए अथवा आचार्यादिकों की वंदना के लिए तीन, पांच व सात मिलकर जावे। आपस मे एक दूसरे की रक्षा करे तथा वृद्धा आर्यिका के साथ जावे।

आगे वंदना करने की रीति वतलाते है:—

आर्यिकायें आचार्यों को पाच हाथ दूर से, उपाध्याय को छह हाथ दूर से और साधुओ को सात हाथ दूर से गौ के आसन से बैठकर वंदना करती हैं तथा आलोचना अध्ययन स्तुति भी करती हैं।

जो साधु अथवा आर्यिका इस प्रकार आचरण करते हैं वे जगत मे पूजा, यश व सुख को पाकर सप्त परम स्थान को प्राप्त करते है—

अब आगे सप्त परमस्थान का वर्णन करते हैं।

सप्त परमस्थानानि ॥७०॥

१ सज्जातित्व, २ सद्‌गृहस्थत्व, ३ पारिव्राज्यत्व, ४ देवेन्द्रत्व, ५ चक्रवर्तित्व, ६ परमार्हन्त्य, ७ निर्वाणत्व ऐसे सात परम स्थान हैं।

देश, कुल, उत्तम जाति इत्यादि शुद्धि से युक्त उत्तम कुलमे जन्म लेकर सम्यग्दृष्टि होना सज्जातित्व है।

इसी तरह क्रम से वृद्धि को प्राप्त होकर सत्पद मे आचरण करते हुए भगवान जिनेश्वर के कहे हुए उपासकाचार मे निष्णात होकर श्रावको मे शिरोमणि होकर श्रावक धर्म के आचरण मे उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहना सद्‌-गृहस्थत्व है। उस गृहस्थ अवस्था से उदासीन होकर तथा ससार शरीर और भोग की निर्विग्नता मे परायण होकर अपनी संतान को समस्त गृहभार देकर के दिव्य तपस्वी के चरण कमलो मे जाकर जातरूप धारण करना, वाह्याभ्यन्तर उत्कृष्ट तपो का आचारण करते हुये ११ अग का पाठी होकर पोडश भावनाओं को भाता हुआ तीर्थंकर प्रकृति का वन्ध करके वुद्धि ऋद्धि, तपोऋद्धि, वैक्रियिक ऋद्धि, औपधि ऋद्धि, वल ऋद्धि, रस ऋद्धि तथा अक्षीण ऋद्धि इन सात ऋद्धियो को प्राप्त करके दीक्षा, शिक्षा, गण-पोषण आत्म संसार–संलेखना में काल को व्यतीत करते हुए उत्तमार्थ काल में चतुर्विध आराधना पुरस्कार पूर्वक समाधि विधि के साथ प्राणोत्सर्ग करना परिव्राजकत्व कहलाता है। इस फल से देव लोक मे इन्द्ररूप मे जन्म लेकर निजाम्वर भूषण माला आदि से सुशोभित

अत्यन्त दिव्य शरीर सहित, प्रमित जीवित मानसिक-आहारी, शुभ लक्षणो से समन्वित होकर विविध भाति के भोगोपभोगो को भोगना देवेन्द्रत्व कहलाता है। वहा से चयकर मृत्युलोक मे जन्म लेकर तीन ज्ञान के धारी होकर सुरेन्द्रवंद्य गर्भावतरण, जन्माभिषेक कल्याण को प्राप्त होकर स्वाभाविक अतिशय सहित कुमार काल व्यतीत होने के अनन्तर षट्खण्ड पृथ्वी का अधिपति होना चक्रवर्तित्व है। उस चक्रवर्ती पद से जब विरक्त होते है तब लौकान्तिक देव आकर उन्हे सम्बोधित करते हैं। तत्पश्चात् सम्बोधन करते ही देवो द्वारा निर्मित शिविका मे आरूढ होकर वन मे जाकर दीक्षा धारण करते है। मूल और उत्तर गुणो मे अपने छद्मस्थ काल को बिता कर शुक्ल ध्यान से चारो घातिया कर्मो को नष्ट करके अनन्त चतुष्टय को प्राप्त करके समवशरण लक्ष्मी से युक्त होना परमार्हन्त्य पद कहलाता है। पहले के चारो घातिया कर्मों को नष्ट करने से शेष चार अघाति कर्म दग्ध रज्जु के समान हो जाते है अघाति चतुष्टय अनायुष्य मे समान न होने के कारण उसे समान करने के लिए दड, कपाट, प्रतर तथा लोक पूर्ण समुद्घात करके, योग निरोध करके नि शेष कर्मो को नाश करके सम्यक्त्वादि आठ गुणो से युक्त होकर सिद्ध पद को प्राप्त करना, निर्वाणत्व परम स्थान कहलाता है। जो मनुष्य उपर्युक्त परम स्थानो की पूजा-आराधना करता है वह तीनो लोको मे वदनीय होकर अन्त मे शुद्ध रत्नत्रय का धारण करके शुद्धात्म यानी मोक्ष पद की प्राप्ति कर लेता है।

आगे चूलिका का वर्णन करते है —

प्रकीर्णिका वार्ता वाक्यानामुक्तिरुक्तं प्रकीर्णकम् ।
उक्ता उक्ता मृतास्यन्दिविन्दुसाधनकोविदैः ॥

आगे आचार्य का लक्षण कहते हैं —

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयःप्रव्यक्तलोकस्थितिः ।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ॥
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया ।
भूयाद्धर्मकथाग्रणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमृष्टाक्षरः ॥५२॥
श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः पर प्रतिबोधने ।
परपरिणतिरुरूद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ ॥
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मृदुता स्पृहा ।
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सस्तु गुरुः सताम् ॥५३॥

प्रणम्यतां गुरून्भक्त्या तस्यात्मानं समर्प्य सः ।
द्रव्यलिङ्गं प्रगृह्णीयाद् भावलिङ्गाभिवृद्धये ॥५४॥
दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाश्चातुर्वर्ण्यविधोचिताः ।
मनोवाक्कायचेष्टाभिर्मताः सर्वेऽपि जन्तवः ॥५५॥
सकलं विकलञ्चेति द्वयं व्रतमुदीरितम् ।
तद्द्वयं हि त्रिवर्णार्थैः शूद्राणां विकलं व्रतम् ॥५६॥
अणुव्रतं पुरा धृत्वा परात्रतमहोद्यताः ।
द्विजातयस्त्रिवर्णार्थाः शूद्रायेऽणुव्रतोचिताः ॥५७॥
सर्वज्ञदीक्षणे योग्या विप्रक्षत्रियवाणिजाः ।
कुलजातिविहीनानांन दीक्षा जिनशासने ॥५८॥
विप्रो वा क्षत्रियो विड् वा सम्पूर्णाक्षः शरीरकः ।
नातिबालो न वृद्धोऽयं निर्व्याधिश्च तपःक्षमः ॥५९॥
केवलज्ञानसंभूते अर्हत्सकलसंयमः ।
तस्योत्पत्तिस्त्रिवर्णोऽपि क्रियोच्चैर्गोत्रकर्मसु ॥६०॥
प्राज्ञो लोकव्यवहृतमतिना तेन मोहोज्झितेन ।
प्राग्विज्ञातसुदेशो द्विजनृपतिवणिग्वरणी वर्णाङ्गपूर्ण ।
भूमिर्लोकाविरुद्ध स्वजनपरिजनोन्मोचितो वीतमोतः ।
चित्रापस्माररोगाद्यपगत इति च ज्ञानसंकीर्तनाद्यैः ॥६१॥
देशकुलजाइसुद्धो विसुद्धमणवयनकायसंजुत्ता ।
लोगजुगुच्छारहिदो पुरिसो जिनरूपधारणे जोग्गो ॥६२॥
आचेलक्यव्रतं यच्च नीचानां मुनिपुङ्गव ।
जिनाज्ञाया क्षतिं कृत्वा पर्येति भवसागरम् ॥६३॥

द्रव्य लिङ्गी का लक्षण—

यस्य चोत्पादितश्मश्रुकेशो हिंसादिवर्जित. ।
सद्रूपं नि प्रतीकारं यथाजात. स भुञ्चयेत् ।

भाव लिगी—

नान्यादिनोप्याहं नान्नेनिशुर्मेदिनायति.
वृषा सन्मतिर्भावलिङ्गः स्यात् नाग्न्याक्षजयधारिणा ।

लिंगद्वयमिदं चैव ज्ञानदृक्साम्यसंयतम् ।
मोक्षहेतुर्भवेत् पुंसां मूर्च्छारम्भादिवर्जित ॥

स्त्री के सयम की अपूर्णता—

लोकद्वयापेक्षो हि धर्मः सर्वज्ञभाषितः ।
अतस्तस्मिन् कृतस्त्रीणां लिङ्गं सग्रन्थमिष्यते ॥
कर्मभूद्रव्यनारीणां नाद्यं संहननत्रयम् ।
वस्त्रादानचरित्रं च तासां मुक्तिकथा वृथा ।।
तेनैव जन्मना नास्ति मुक्तिः स्त्रीणां हि निश्चयात् ।
तासां योग्यतपश्चिन्हं पृथक् वस्त्रत्वोपलक्षितम् ॥
एकमप्येषु दोषेषु विना नारी न वर्तते ।
आत्रसंवरणं चास्ति तस्याः संवरणं ततः ॥
चित्तस्रवोऽल्पशक्तिश्च रजःप्रस्खलनं तथा ।
स्त्रीषूत्पत्तिश्च सूक्ष्माणामपर्याप्तिनृणां भवेत् ॥
कक्षस्तनान्तर्देशे नाभौ गुह्ये च संभवः ।
सूक्ष्माणां च तथा स्त्रीणां संयमो नास्ति तत्वत ॥
दर्शनं निर्मलं ज्ञानं सूत्रपाठेन बोधितम् ।
यद्यप्युग्राञ्चरेच्चर्या तथापि स्त्री न सिद्ध्यति ॥
यदि त्रिरत्नमात्रेण सा पुंसां नग्नता वृथा ।
तिरश्चामपि दुर्वारा निवार्णाप्तिर्रलिंगता ॥
मुक्तेश्चेदस्ति किं तासां प्रतिमास्तवनान्यपि ।
क्रियन्ते पूज्यते तासां मुक्तेरस्तु जलांजलिः॥
ततस्तद्योग्यमेवोक्तं लिंगं स्त्रीणाँ जिनोत्तमैं ।
तल्लिंगयोग्यचारित्रं सज्जातिप्रकटाप्तता ॥
देशव्रतानि तैस्तासां आरोप्यन्ते बुधैस्ततः ।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः ॥
पुव्वेयं वेयंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा ।
सेसोदयेन वि तहा झाणवजुत्ता हु सिज्झंति ॥

जे—जो अर्थात् कोई, पुरिसा—पुरुष पुव्वेयवेयता—भाव पुरुष वेद को

अनुभव करनेवाले, खवगसेढिमारूढा—क्षपक श्रेणी चढे हुए, झाणवजुत्ताहु—निज शुद्ध निश्चयात्म-ध्यानोपयोग युक्त होकर, तेहु—वे, सिज्झन्ति सिद्ध पद को प्राप्त होते हैं, तहा—उसी तरह द्रव्य से पुरुष, सेसोदयेण—विभाव से स्त्री वेद नपुंसक वेद के उदय से युक्त परमात्मध्यानोपयोग में रत रहनेवाले मोक्षसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। सकल विमल केवल ज्ञानी दर्शनानन्त-सुख वीर्यांदिक के अधिपति ऐसे भगवान जिनेश्वर घाति कर्म के निरवशेष क्षय से प्राप्त हुए शुभ और शुद्ध ऐसे कर्म और नोकर्म के विशिष्ट वर्गणाओ के द्वारा होनेवाला कर्म नोकर्म आहार करते हैं, इसके अलावा जो चार प्रकार के आहार हैं वे केवली भगवान के नही हैं। द्रव्य स्त्री के तद्भव मोक्ष की प्राप्ति का अभाव है। ऐसा समझकर कभी इसके प्रति विवाद नही करना चाहिए। ऐसा ससझकर सर्व संग परिग्रहसे रहित निर्ग्रंथ लिंग ही मोक्ष के लिए कारण है और स्वरूपोपलब्धि ही मुक्ति है और निज नित्यानन्दामृत सेवन ही मोक्ष फल है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

नाना जीवो नाना कम्मं नाना विहोह बेलद्दि।
तम्हामयर्नविबादं सगपरसमयेषु वज्जज्जो :।१६॥
जं अण्णाणी कम्मं खवेइ भवसहस्सकोडीहिं।
तण्णाणीतिय गुत्तो खवेइ उस्सासमेत्तेन ॥२०॥
कुशलस्सतसोणि उणसस्स संजमो समपरस्सविरग्गो।
सुदभावणस्स तिण्णि सुदभवाणं कुणहं ॥२१॥
समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुःखो पसंसणिदसमो।
समलेणुवकंच णाविय जीवियमरणे समो समणो २२।
एअग्गगदो समणा ए एण्णानित्तिदेसु अट्ठेसु।
णत्थित्ती आगमदो आगम चेत्तो तदो छट्ठो ॥२३॥

श्रमण उत्तम पात्र है। तथाहि श्रमणा. सर्वेभ्य· ज्येष्ठा. वरिष्ठाः, शुद्धातिसमाधिनिष्ठत्वात् नित्यानित्यवस्तुविवेकित्वात् समसमाधिसंपन्नत्वात् अत्रामुत्र भोगकांक्षारहितत्वात् तत्वयाथोत्त्ल्यैकवेदित्वात् युक्त्या विचारवत्त्वात् तत्त्वाध्यात्म-श्रवणाधिमत्वात् ,अनुक्त सावनं तदुक्ते साधनं यथा संप्रतिपन्ने योगी तदा चैते श्रमणा.। तस्मात्सर्वेभ्य श्रेष्ठा. भवन्ति तथा श्रमणाः सर्वेभ्य· उत्कृष्टा· विशिष्टाश्च तत्त्वाध्यात्म्यप्रतिपादकत्वात्।

आगमचक्खू साहू इन्दियचक्खूणि सव्वभूदानि ।
देवा य वोहिचक्खू सिद्धा पुण संवदो चक्खू ॥२४॥

शास्त्रहीनश्च यो भिक्षुर्न चान्यश्च भवेदसौ ।
तस्याज्ञानस्य न ध्यानं ध्यानाभावान्न निर्वृतिः ।७६॥

मृच्छालिनीमहिषहंससुखस्वभावाः
मार्जारकङ्कमलकाजलौकसाम्याः ॥
सच्छिद्रकुम्भपशुसर्पशिलोपमानाः- ।
ते श्रावका भुवि चतुर्दशधा भवंति ॥२३३॥

आलस्यो मंदबुद्दिश्चसुखिनो व्याधिपीडिताः ।
निद्रालुः कामुकश्चेति, षडेते शास्त्रवर्जिताः ।७७।

असूयकत्वं सतताविचारो दुराग्रह शक्तिविमाननंच ।
पुंसामिमे पंच भवन्ति दोषास्तत्त्वावबोधप्रतिबंधहेतुः ।७८।

अदुर्जनत्वं विनयो विवेकः, परीक्षणं तत्त्वविनिश्चयश्च ॥
एते गुणा पंच भवंति तस्य,
स्वात्मत्ववान्धर्मं यथा परःस्यात् ।७९।

आचार्यपुस्तकसहायनिवासवलभः,
वाह्यस्थिताः पठनपंचगुणा भवन्ति ॥
आरोग्यबुद्धिविनयोद्यमशास्त्ररागः,
तेऽभ्यंतरा पठनपंचगुणा भवंति ॥८०॥

आचार्योपासनं श्रद्धा शास्त्रार्थस्य विवेचनम् ।
तत्त्रयाणामनुष्ठान श्रेय प्राप्त्यै परे गुणाः ॥८१॥

पल्यङ्कासनगं सूरि-पादं नत्वा कृताञ्जलिः ।
सूत्रस्याध्ययनं कुर्यात् कक्षादिस्वांगमस्पृशन् ॥८२॥

क्रियाकलापमल्पाल्पसूत्रमाचार्यवर्णनम् ।
पठेदथ पुराणानि त्रैलोकस्थितिवर्णनम् ॥८३॥

सिद्धांततर्कमङ्गाङ्गवाह्यं देवार्थदेशनम् ।
स्वीयशक्त्यनुसारेण भक्त्या स्वर्मोक्षकांक्षया ॥८४॥

बारसविहंम्य अब्भंतर वाहिरे कुशलदिट्ठि ।
णवियथिए वियहोहृदि सज्जायसम्मत्तमोक्कम्मं ॥२५॥
दव्वादिवकलो पठेदि पुत्तंथ सिक्खलोयेण ।
लसमाहि असज्झायं कलहं वा-इंदियोगंचे ॥२६॥
अष्टम्यामध्ययनं गुरुशिष्यद्वयवियोगमाहेति ।
कलहस्तु पौर्णिमास्यां करोति विघ्नं चतुर्दश्यां ॥८५॥
कृष्णाचतुर्दश्यां यदि अधीयते साधवोप्यमावास्यां ।
विद्योपवासविधयो विनाशवृत्तिं प्रयांति सर्वेंप्यचिरात् ॥८६॥
मध्याह्ने जिनरूपंनाशयति सध्ययोश्च व्याधिदं ।
मध्यमरात्रौ पठिते तुष्य तोपप्रियत्वमुपयान्ति ॥८७॥
अष्टमी हंत्युपाध्यायं शिष्यं हंति चतुर्दशी ।
विद्यां पंचदशी हंति सर्वंहि प्रतिपद्धरेत् ॥८८॥

इन श्लोको का अर्थ सरल होने के कारण तथा ग्रन्थ बढ जाने के भय से छोड़ दिया गया है ।

इति श्री माघनद्याचार्य विरचित शास्त्र सारसमुच्चय अन्तर्गत चरणानुयोग का कथन समाप्त हुआ ।

द्रव्यानुयोग

सिद्धान्नत्वा प्रवक्ष्यामि द्रव्यानुयोगसंज्ञकम् ।
मङ्गलादिप्रसिद्ध्यर्थं स्वात्मोत्थसुखसिद्धये ॥

अब इसके पश्चात् मगलादि—प्रसिद्ध आत्म-सुख-सिद्धि के लिए सिद्धो को नमस्कार करके मै द्रव्यानुयोग को कहूँगा ।

गम्भीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितम् ।
कण्ठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गलम् ॥
स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकम् ।
दूरासन्नसमं निरुपमं जैनं वचः पातु वः ॥

श्री जिनेन्द्र भगवान की वाणी गम्भीर, मधुर अत्यन्त मनोहर दोषरहित, हितकारी, कण्ठ ओष्ठ तथा तालु आदि की क्रियासे रहित, वायु से न रुकनेवाणी स्पष्ट, अभीष्ट वस्तु को कहने वाली और ससार की समस्त भाषाओ से परिपूर्ण

है। तथा दूर और समीप से ठीक सुनाई देनी वाली होती है, अत. ऐसी अनुपम जिन वाणी हम सबकी रक्षा करे।

सिद्धि बुंद्धिर्जयो वृद्धिर्राज्ञ पुष्टिस्तथैव च।
ओंकारश्चाथ शब्दश्च नान्दी मंगलवाचक ॥

सिद्धि, बुद्धि, जय, वृद्धि, राजपुष्टि, ओकार, अथ शब्द तथा नान्दी ये आठ मंगल-वाचक कहलाते हैं।

हेतौ निदर्शने प्रश्ने स्तुतौ कण्ठसमीकृते।
अनन्तैर्योऽधिकारस्ते मांगल्येतयिष्यते ॥

इस शास्त्र मे कथित जो मगलार्थ शब्द है वह अन्तराधिकाकार्थ निमित्त कहने से तथा मगल निमित्त फल का परिणाम कर्त्ता है आदि अधिकारो को कहने के पश्चात् आचार्य को शास्त्र का व्याख्यान करना चाहिए। इस न्याय के अनुसार मगलाचरण करने के बाद न्याय और नय को न जाननेवाले अज्ञानी जीवो के हितार्थ हेयोपादेय तत्वो का परिज्ञान कराने के लिए द्रव्यानुयोग को कहते है।

अथ षड् द्रव्याणि ॥१॥

अर्थ—चरणानुयोग कथन के पश्चात् जीव, अजीव, धर्म; अधर्म द्रव्य, आकाश और काल ये छ द्रव्य है। यहा प्रश्न उठता है कि इन छहो का नाम 'द्रव्य' क्यो पडा ? उसका उत्तर यह है कि—

"द्रवतीति द्रव्यम्, द्रवति गच्छति परिणामं इति

यानी—अतीत अनन्तकाल मे इन्होने परिणमन किया है और वर्तमान तथा अनागत काल मे परिणाम करते हुए भी सत्ता लक्षण वाले हैं, तथा रहेगे उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त है, एव गुण-पर्याय सहित होने के कारण इन्हे द्रव्य कहते है। उपर्युक्त तीनो बातो से पृथक द्रव्य कभी नही रहता।

अब द्रव्यो का लक्षण कहते हैं—

१—ज्ञान दर्शन उपयोगी जीव द्रव्य है। २—वर्ण रस गध स्पर्श से गलन पूरण स्वरूप होने के कारण पुद्गल द्रव्य है। ३—धर्म द्रव्य अमूर्त्त, अनादिनिधन, अगुरुलघुमय तथा लोकाकार है। अन्तरग गमन शक्ति से युक्त जीव पुद्गलो के गमनागमन में बहिरग सहकारी है। जैसे पानी मछली आदि जलचर जीवो के गमनागमन के लिए सहकारी कारण होता है उसी प्रकार धर्म द्रव्य बहिरग सहकारी कारण होता है। वह अपना निज स्वरूप छोडकर कभी पर-रूप नही होता। यह अर्थपर्याय है, व्यञ्जन पर्याय नही। 'अर्थ-पर्याय

से एक ही समय में उत्पत्ति विनाश वाला है, द्रव्य स्वरूप से नित्य है। अब अर्थ-पर्याय के स्वरूप को कहते हैं :—

एक ही समय मे अगुरुलघु गुण के कारण परिणमनात्मक जो षडवृद्धि हानि वृद्धि होती है सो अर्थ-पर्याय है :—

१—अनन्त भाग वृद्धि, २-असंख्यात भाग वृद्धि ३—संख्यात भाग वृद्धि, ४-संख्यात गुण वृद्धि, ५—असंख्यात गुण वृद्धि तथा ६-अनन्त गुण वृद्धि ये ६ प्रकार की षड् वृद्धि कहलाती हैं।

१—अनन्तभाग हानि, २-असंख्यात भाग हानि, ३-संख्यात भाग हानि, ४—संख्यात गुण हानि, ५—असंख्यातगुण हानि तथा अनन्त गुण हानि, ये षडहानियां हैं

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ।
उन्मज्जन्तिनिमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥

इन्निदरसतत्वरूचियि-। दिनिंदिक्कु तत्व निर्नयं वळिकदरि—॥
दिनिदात्मोत्थिक सुखमि । तिनिंनिदे सेविसलुकि दरिनयसारतेपं ।२।

इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय से धर्मद्रव्य को कहा गया है। और इसी तरह अधर्म द्रव्य का भी कथन किया जाता है। गुणो से अन्तरंग स्थिति परिणत हुए जीव पुद्गल की स्थिति का अधर्म द्रव्य बहिरंग सहकारी कारण होता है जैसे अन्तरग स्थिति परिणत होकर मार्ग मे चलनेवाले मनुष्यो के लिए वृक्षादि अपनी छाया देकर उन्हे ठहराने मे बहिरग सहकारी होते है।

गतिग स्थितिगंकारण-। मतिशयदिं देरडुमल्ते धर्माधर्म ॥
मतिवंतररिदु भाविसे । श्रुतम दुसंवित्तियागदिक्कु मेवगेयं ॥

अब आगे आकाश द्रव्य का लक्षण कहते हैं— आकाश एक अखण्ड द्रव्य है, किन्तु यदि उसे परमाणुओ के द्वारा नापा जाय तो वह फैले हुए अनन्त परमाणुओ के बराबर होता है और सभी द्रव्यो को अवकाश देना आकाश द्रव्य का उपकार है। यहा पर शका होती है कि एक ही आकाश मे अनेक द्रव्य कैसे समा जाते हैं लोकाकाश के असख्यात प्रदेशो मे अनन्त परमाणुओ तथा सूक्ष्म स्कन्धो का आवास होता है। यह कैसे है, इसे दृष्टान्त देकर समाधान किया जाता है।

जिस प्रकार मिट्टी के तीन घडो मे से क्रमशः पृथक पृथक, एक को राख

से, दूसरे को पानी से और तीसरे को सुई से भर दिया जाय इसके बाद वे तोनो घडे केवल एक राख के घडे मे ही समा जाते हैं, ऊँटनी के दूध से भरे हुए घडे मे शहद से परिपूर्ण दूसरा घडा भी समाविष्ट हो सकता है, चावल से भरे घडे मे दही का भरा हुआ घट समा सकता है तथा **नागगद्यान** अर्थात् तराजू में हजारो तोले स्वर्ण समाजाता है उसी प्रकार आकाश द्रव्य मे अवगाहन शक्ति विद्यमान रहने के कारण वह अपने अन्दर असख्यात प्रदेशी धर्माधर्म द्रव्यो को, अनन्त परमाणु वाले पुद्गल द्रव्य को तथा लोकाकाश प्रमाण गणना वाले कालाणु को गूढ रूप से अवकाश देने मे समर्थ रहता है ।

प्रदेश का लक्षण—पुद्गल का परमाणु जितने आकाश मे रहता है वह प्रदेश है । वह प्रदेश न तो अग्नि से जलने वाला, न पानी से भीगनेवाला, न वायु से सूखनेवाला तथा न कीचड मे पडकर सडनेवाला है । न वज्र से टूटनेवाला है तथा प्रत्येक द्रव्य भी कभी नाश न होकर सदा स्थिर रहनेवाला है ।

अवगहन शक्तियुळ्ळुदु । भुवनदोळारय् दुनोळ्हडाकाशयेन ।
सविशेषदिदमत्ताम-।दवकाशगोट्टडैदु द्रव्यं गलिगं ।४।

तात्पर्य यह है कि आकाश की अर्थपर्याय होती है, व्यञ्जन पर्याय नही, और अर्थपर्याय से वह एक ही समय मे उत्पत्ति व विनाश सहित है । द्रव्यार्थिक नय से वह नित्य है । तथा धर्म अधर्म आकाश अपने मे समान होकर काल से प्रवर्तते हैं । धर्मअधर्म तो केवल बाह्य उपचार वर्तते है । अर्थात् सभी द्रव्य आकाश द्रव्य मे समाविष्ट हो जाते है आकाश अपने को स्वयमेव आधारभूत है । धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाश मे पूर्ण व्याप्त है । जैसे मकान के एक कोने मे घडा रक्खा जाता है उस तरह धर्मअधर्म द्रव्य नही रहते, पर जैसे तिल में तेल पाया जाता है उसी प्रकार दोनो द्रव्य समस्त लोकाकाश मे पाये जाते है ।

शका—यदि धर्मादि द्रव्यो का आकाश द्रव्य आधार है तो आकाश द्रव्य का आधार क्या है ?

समाधान—आकाश का आधार अन्य कोई नही, वह स्वय ही अपना आधार है । वह सब से बडा है ।

शका—यदि आकाश अपना ही आधार है तो धर्मादि द्रव्यो को भी अपने आधार होना चाहिए, पर यदि धर्मादि द्रव्यो का आधार कोई अन्य द्रव्य है तो आकाश का भी कोई अन्य आधार होना चाहिए ।

समाधान—आकाश द्रव्य का आधार अन्य कोई नहीं वह स्वयमेव अपना आधार है। आकाश के अन्दर अवगाहन देने की शक्ति है और वह सबसे बड़ा है। क्योकि उसमें कभी किसी प्रकार की न्यूनता नही आती।

शंका—लोक केवल १४ रज्जू प्रमाण है, परन्तु उसमें अनन्तानन्त अप्रमाणित जीव आ जाकर कैसे समाविष्ट हो जाते हैं। क्योकि इस लोकाकाश मे जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य तथा सिद्धादि अनत गर्भित है

समाधान—आकाश द्रव्य गमनागमन का कारण नहीं, बल्कि केवल अवगाहन का कारण है, अत. इसमे चाहे जितने द्रव्य आजायें पर इसमें कभी हानि वृद्धि नही होती (वैसे द्रव्य कम अधिक होते नही हैं।) इसका उदाहरण ऊपर दे चुके हैं।

अब कालद्रव्य के गुण पर्याय को कहते हैं—

काल के दो भेद हैं—एक व्यवहार और दूसरा निश्चय। मुख्यकाल द्रव्यस्वरूप से अमूर्त्त अक्षय, अनादिअनिधन है और अगुरुलघुत्व गुण से अनन्त है। अकृत्रिम, अविभागी, परमाणु रूप है, प्रदेश प्रमाण से एक प्रदेशी है। अपने अन्दर अन्य प्रतिपक्षी नही, किन्तु वह स्वयमेव प्रदेशी है।

भावार्थ—प्रति समय छ. द्रव्यो मे जो उत्पाद और व्यय होता रहता है उसका नाम वर्तना है। यद्यपि सभी द्रव्य अपने अपने पर्याय रूप से स्वयमेव परिणमन करते रहते हैं, किन्तु उनका बाह्य निमित्त काल है। अत. वर्तना को काल का उपकार कहते हैं। अपने निज स्वभाव को न छोड़कर द्रव्यों की पर्यायों को बदलने को परिणाम कहते हैं। जैसे जीव के परिणाम क्रोधादि हैं और पुद्गल के परिणाम रूप रसादि हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान मे गमन करने को क्रिया कहते हैं। यह क्रिया जीव और पुद्गल मे ही पाई जाती है। जो बहुत समय का होता है उसे 'पर' कहते हैं और जो थोडे दिनों का होता है उसे अपर कहते हैं। यद्यपि परिणाम आदि वर्तना के भेद है किंतु काल के दो भेद बतलाने के लिये उन सबका ग्रहण किया गया है। काल द्रव्य दो प्रकार का है—एक निश्चय और दूसरा व्यवहार काल। निश्चय काल का लक्षण वर्तना है और व्यवहार काल का लक्षण परिणाम आदि हैं। जीव पुद्गलों में होनेवाले परिणामो मे ही व्यवहार काल घडी घंटा आदि से जाना जाता है। उसके तीन भेद हैं—भूत वर्तमान और भविष्य। इस घड़ी मुहूर्त्त दिन रात आदि काल के व्यवहार से निश्चयकाल का अस्तित्व जाना जाता है। क्योकि मुख्य के होने से ही गौण का व्यवहार होता है। अतः लोकाकाश के प्रत्येक

प्रदेश मे जो एक एक कालाणु स्थित है वही निश्चयकाल है और उसी के निमित्त से वर्तना आदि होते है।

एकप्रदेशियप्पुद-। नेकरिवैमुख्य काल मंलोकदोळि -।।
दीकाशदप्रदेशदो। ळेकदुर्वातसदी रत्नराशियतेर्दि ।।५।।

जीव आदि सभी द्रव्यो की उत्पत्ति विनाश रूप अर्थ-पर्याय उत्पन्न करना अगुरुलघु गुण है। अन्य वादी कहता है कि यदि ऐसा कहोगे तो जीव आदि द्रव्य रूप न होकर सदा पर्याय ही समझने चाहिए। किन्तु ऐसा नही है। जैसे पानी के अन्दर लहर उत्पन्न करने के लिए हवा निमित्त कारण है उसी प्रकार द्रव्य मे पर्याय को उत्पन्न करने के लिए अन्य निमित्त कारण अपेक्षित है। इसीलिये वह अर्थ-पर्याय है, व्यञ्जन-पर्याय नही। अर्थ-पर्याय एक ही समय मे उत्पत्ति व विनाश वाला है। द्रव्य रूप से नित्य है और विशेष रूप से वह परमार्थकाल कहलाता है। पुद्गल का परमाणु अपने प्रदेश पर मन्दगति से जितने काल मे जाता है उतने काल को समय कहते हैं। परमाणु एक समय मे तीव्रगति से १४ राजु जाता है यह व्यवहार काल है।

जैसे कोई मनुष्य मन्दगति से दिन मे एक कोश जाता है कोई दूसरा व्यक्ति विद्या के प्रभाव से एक ही दिन में १०० (सौ) कोश जाता है यद्यपि पहले की अपेक्षा दूसरे की गति १०० दिन की है, किन्तु वह १०० दिन न कहकर १ ही दिन कहलाता है।

निश्चय काल—

जैसे वास्तविक सिंह के होने पर ही मिट्टी पत्थर आदि का व्यावहारिक (नकली) सिंह (मूर्ति चित्र) बनाया जाता है। असली इन्द्र (देवो का राजा) है तभी उसका व्यवहार मनुष्यो मे भी नाम आदि रखकर किया जाता है, इसी प्रकार सूर्य चन्द्र आदि के उदय अस्त आदि की अपेक्षा से जो व्यवहार काल प्रयोग मे लाया जाता है, उस व्यवहार काल का आश्रयभूत जो पृथक् पृथक् अणु रूप लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर स्थित कालाणु है वह निश्चय काल है। वह निश्चय काल ही प्रत्येक द्रव्य के प्रति-समय के पर्याय के परिवर्तन मे सहायक कारण है। वह यद्यपि लोकाकाश में है किन्तु अलोकाकाश के पर्याय परिवर्तन मे भी सहायक है जैसे कि कुम्हारके चक्र (चाक) के नीचे केवल मध्यभाग मे रहने वाली कीली समस्त चक्र को चलाने मे सहायक होती है।

निमित्तमंतरं तत्र योग्यता वस्तुनिश्चिता ।
बहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ।२।
किंप्पणवियेण बहुणा चे सिद्धागर वरागये कावे ।१।

प्रत्येक द्रव्य अपने परिणमन मे उपादान रूपसे आप ही अंतरंग उपादान कारण होता है । उस परिणमन मे बहिरग सहकारी कारण काल द्रव्य बतलाया है ।

पंचास्तिकायाः ॥२॥

१ जीव, २ पुद्गल, ३ धर्म, ४ अधर्म और ५ आकाश इन पाचो द्रव्यो को अस्तिकाय कहते है । ये द्रव्य सदा विद्यमान (मौजूद) रहने के कारण 'अस्ति' कहलाते है और शरीर के समान बहुप्रदेशी होने के कारण 'काय' कहलाते है । अत. इन्हे अस्तिकाय कहते है ।

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पंच अत्थिकाया दू ॥

प्रत्येक जीव के, धर्म द्रव्य के तथा अधर्म द्रव्य के और लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश होते है । अलोकाकाश के अनन्त प्रदेश हैं । पुद्गल द्रव्य के संख्यात, असख्यात, अनन्त प्रदेश है । काल द्रव्य पृथक् पृथक् अणु रूप होने से एक प्रदेशी है, अत उसको 'काय' नही कहा गया । एक प्रदेशी पुद्गल परमाणु के अस्तिकायत्व का अर्थ यह है कि स्निग्ध रूक्ष गुण के कारण बहु-प्रदेशी होने की शक्ति उसमे रहने से वह उपचार से अस्तिकाय कहलाता है ।

षड् द्रव्य पंचास्तिकाय की चूलिका को कहते है—

परिणामजीवमुत्तं सपदेसं एयखेत्तकिरियाय ।
णिच्चं कारणतक्कं तासव्वगदमिद रम्हियपदेण ॥७॥

अर्थ—परिणाम स्वभाव विभाव पर्यायापेक्षा से जीव पुद्गल द्रव्य परिणामी हैं, शेष चार द्रव्य विभाव व्यजन पर्याय भाव की मुखवृत्ति से अपरिणामी हैं ।

व्यजन पर्याय का लक्षण बताते है:—

जो स्थूल, कुछकाल के स्थायी, वचन के विषय भूत तथा इन्द्रियज्ञानगोचर है वह व्यजन पर्याय है जीव शुद्ध निश्चयनय से अनत ज्ञान दर्शन भाव. शुद्ध चैतन्य प्राण सहित है । अशुद्ध निश्चयनय से रागादि विभाव प्राणो से और अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से इन्द्रिय, बल, आयु उच्छ्वास इन चार प्राणो से आत्मा

जीता है, जी रहा है और जीवेगा। यह व्यवहारनयसे जीव का लक्षण कहा है पुद्गलादि अजीव द्रव्य हैं। स्पर्श, रस, गध, वर्ण वाला होने के कारण पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा जीव मूर्तिक है, शुद्ध निश्चय नय से अमूर्त है। धर्म अधर्म अकाश काल द्रव्य ये अमूर्तिक है। जीवादि पाच द्रव्य पंचास्तिकाय होने से सप्रदेशो हैं। बहुप्रदेशि लक्षण कायत्व स्वभाव से काल द्रव्य अप्रदेशी है। द्रव्यार्थिक नय से धर्म अधर्म आकाश ये एक एक है शेष जीव पुद्गल काल अनेक हैं।

खेत्त—समस्त द्रव्य एक दूसरे को अवगाह देती हैं अत समस्त द्रव्यों का क्षेत्र एक ही लोकाकाश है। किरियाय—क्षेत्र से क्षेत्रातर गमन वाले होने के कारण जीव और पुद्गल क्रियावान है, धर्म, अधर्म, आकाश काल द्रव्य परिस्पंद के अभाव से निष्क्रिय है। णिच्च—धर्म अधर्म आकाश निश्चय काल द्रव्य अर्थ-पर्याय की अपेक्षा से अनित्य तथा द्रव्यार्थिक नय से नित्य है। जीव और पुद्गल द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से नित्य हैं और अर्थपर्याय के अपेक्षा से अनित्य हैं।

उपकार की अपेक्षा पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये द्रव्य व्यव-हार नय से तथा जीव शरीर, वचन, मन और प्राणापनादि अस्तित्व अवगाहना वर्तना आदि से एक दूसरे को कारण है, तथा आपस मे स्व-पर सहायता करना जीवो का उपकार है। स्वामी धन आदि के द्वारा अपने सेवक का उपकार करता है, सेवक हित की बात कह कर और अहित से बचाकर स्वामी का उपकार करता है। इसी तरह गुरु उचित उपदेश देकर शिष्य का उपकार करता है और शिष्य गुरु की आज्ञा के अनुसार आचरण करके गुरु का उपकार करता है।

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से पाचो द्रव्यो को परस्पर उपकारी माना है। परन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से जीव पाप, पुण्य बंध मोक्ष और घट पटादिक का कर्त्ता नही है। अशुद्ध निश्चय नय से शुभाशुभ उपयोग मे परिणत होकर पुण्य पाप बंध का कर्ता होकर सका भोक्ता है।

इसके सिवाय विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला विशुद्ध आत्मद्रव्य सम्यक् 'श्रद्धान' ज्ञानानुष्ठान रूप अभेद रत्नत्रयात्मक शुद्ध उपयोग मे परिणत होकर निज परमात्म-अवलम्बन स्वरूप मोक्ष का कर्ता है तथा उस स्व शुद्ध परमानन्द का भोक्ता है।

शुभाशुभ और शुद्ध उपयोग मे परिणमन करने वाली वस्तु का कर्तृत्व और भोक्तृत्व इसी प्रकार समझना चाहिये।

पुद्गलादि पाँच द्रव्यो को अपने अपने परिणामो मे परिणमन होने ग
ही उन परिणमनो का कर्तृत्व माना गया है ।

सव्वगदं—लोक व्याप्ति की अपेक्षा से धर्म अधर्म द्रव्य सर्वगत हैं । एक जीव की अपेक्षा से लोक-पूर्ण अवस्था के अलावा सर्वगत नही है, नाना जीव अपेक्षासे सर्वगत है । पुद्गल द्रव्य लोक व्यापी महास्कन्ध के अपेक्षासे सर्वगत है । शेष पुद्गल की अपेक्षा से सर्वगत नही है । नाना कालाणु द्रव्य की अपेक्षा से लोक मे काल द्रव्य सर्वगत है । एक कालाणु द्रव्य की अपेक्षा से काल द्रव्य असर्वगत है ।

इय्यरय्यिपय पयसो:—व्यवहार नय से सभी द्रव्य एक क्षेत्रावगाह से अन्योन्य प्रदेश मे रहने वाले है । निश्चयनय से सब द्रव्य अपने अपने स्वरूप मे रहते है ।

अण्णोण्णं पविसंता दिंताउग्गासमण्णमण्णस्स ।
मेलंतावि य णिच्च सगसगभांव ण विजहंति ।।४।।

इन छह द्रव्यो मे शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध बुद्धैक स्वभाव गुण से समस्त जीव राशिया उपादेय है अर्थात् उसमे जितने भी भव्य जीवो का समूह है वे सभी उपादेय हैं और परम शुद्ध निश्चय नय से शुभ मन वचन काय तथा व्यापार रहित वीतराग चिदानन्दादि गुण सहित जिन सिद्ध सदृश निज परमात्म-तत्त्व वीतराग निर्विकल्प समाधि काल मे साक्षात् उपादेय है । शेष द्रव्य हेय हैं ।

खादिपंचकनिर्मुक्तं कर्माष्टकविवर्जितम् ।
चिदात्मकं परंज्योति र्वन्दे देवेन्द्रवंदितम् ।।

सप्ततत्त्वानि ।।३।।

१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बन्ध, ५ संवर, ६ निर्जरा तथा ७ मोक्ष इन सातो को तत्त्व कहते है । वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते है हैं । जीव-तत्त्व अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा से द्रव्य-प्राणो से, अशुद्ध निश्चय नय से रागादि अशुद्ध भाव प्राणों से और शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से शुद्ध भाव-प्राण से त्रिकाल मे जीने वाला जीव है । एकेन्द्रियादि मे कर्मफल का अनुभव करने वाली कर्म फल-चेतना; त्रसकाय मे अनुभव करने वाले जीवो के कर्म चेतना कहते हैं । और सिद्ध भगवान् के समान आत्मा को शुद्ध अनुभव करने वाली ज्ञान-चेतना है । इस तरह चेतना तीन प्रकार की हैं । अथवा भवादि समय रूपोपपाद योग, पर्याप्ति

तथा अपर्याप्ति ऐसे एकान्तानुवृद्धि योगरूप, भव का अन्त करने योग, परिणाम योग, ऐसे योग के तीन भेद हैं। विकल्प रूप मनो वचन काय रूप योगत्रय है, पुनः बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेद से आत्मा तीन प्रकार का है। जीव समास, मार्गणा और गुणस्थान की अपेक्षा से भी तीन प्रकार है।

जीव तत्व, २ पुद्गलादि पचद्रव्य अजीव तत्त्व, ३ शुभाशुभ कर्मागम द्वार रूप आस्रव तत्त्व, ४ जीव और कर्म इन दोनो के अन्योन्यानुप्रवेशात्मक बध तत्त्व, ५ व्रत समिति गुप्ति आदि द्वारा कर्मास्रव रोकने वाला सवर तत्त्व, ६ सविपाक रूप से कर्ममल को पिघलाने वाला निर्जरा तत्त्व, ७ स्व-शुद्धात्म-तत्त्व भावना से सकल कर्मो से निर्मुक्त होना मोक्षतत्त्व है।

इन सभी फलो का कारणभूत होने के कारण सर्व प्रथम जीव तत्त्व का ग्रहण किया गया है। उसका उपकारी होने के कारण तत्पश्चात् अजीव का विधान किया है। तद्भव विषय होने के कारण उसके बाद आस्रव का ग्रहण किया गया है। उसी के अनुसार कर्मों द्वारा बन्ध होने के कारण उसके बाद वन्ध का ग्रहण किया गया है। आस्रव का निरोध होने के कारण बध के बाद सवर कहा गया है और सवर के निकट ही निर्जरा का विधान किया गया है जोकि बन्ध की विरोधी है तथा अत मे सकल कर्म मलो का नाश होकर कर्मो से मुक्त हो जाने के कारण अत मे मोक्षतत्त्व को कहा गया है। इसी का नाम निज निरजन शुद्धात्म उपादेय मोक्ष है।

नव पदार्थाः ॥४॥

उपर्युक्त सात तत्त्वो मे यदि पाप और पुण्य इन दोनो को मिला दिया जाय तो नौ पदार्थ हो जाते हैं, सो इस प्रकार हैं—

१ जीव पदार्थ, २ अजीव पदार्थ, ३ आस्रव पदार्थ, ४ बध पदार्थ, ५ पुण्य पदार्थ, ६ पाप पदार्थ, ७ सवर पदार्थ, ८ निर्जरा पदार्थ और ९ वा मोक्ष पदार्थ है। इनका पदार्थ नाम इसलिए पडा कि ये ज्ञान के द्वारा परिच्छेद होने मे समर्थ है।

जीव, पुद्गल के सयोग से होने वाले आस्रव, बंध, पुण्य और पाप ये चार पदार्थ हेय होते है। उन दोनो के अलग होने से सवर, निर्जरा तथा मोक्ष ये तीन पदार्थ उपादेय होते हैं।

चतुर्विधो न्यास ।५॥

नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव ऐसे न्यास (निक्षेप) के चार भेद हैं। इनके निमित्त से जीवादि को जाना जाता है। जात्यादि निमित्तान्तर निरपेक्ष नाम

रखनेको नाम कहते है। काष्ठ, पाषाण, पुस्तक, चित्र कर्मादि मे यह अमुक वस्तु है, ऐसा निश्चय करना स्थापना है। गुण पर्याय से युक्त को द्रव्य कहते हैं। वर्तमान पर्यायोपलक्षित द्रव्य को भाव कहते हैं। इसका भेद इस प्रकार है।

१—नाम जीव, २–स्थापना जीव, ३–द्रव्य जीव, तथा ४–भाव जीव, ये चार प्रकार के हैं। संज्ञा रूप से जीव का व्यवहार नाम जीव है। सद्भाव तथा असद्भाव भेदो मे आकार सहित काष्ठ पाषाण प्रतिमा मे यह हाथी आदि है, इस प्रकार स्थापना करना सद्भाव स्थापना है तथा शतरंज के गोटे आदि मे यह हाथी आदि है, ऐसा कहकर स्थापना करना असद्भाव स्थापना जीव है। द्रव्य जीव दो प्रकार है, आगम द्रव्य जीव और नो आगम द्रव्य जीव। जीव पर्याय मे उपयोग रहित जीव आगम द्रव्य जीव है।

नो आगम द्रव्य जीव तीन प्रकार का है। जाननेवाले का (ज्ञायक) शरीर, न जाननेवाला शरीर, इन दोनो से रहित। उसमे जाननेवाला शरीर आगत, अनागत तथा वर्तमान से तीन प्रकार का है।

भाव जीव दो प्रकार का है नो-आगम भाव जीव और आगम भाव जीव इसमे नो आगमभाव जीव को समझकर उपयोग से युक्त आत्मा आगम-भाव जीव है, नो आगम भाव जीव के दो भेद है। उपयुक्त और तत्परिणत। उसमे जीव आगम के अर्थ मे उपयोग सहित जीव उपयुक्त कहलाता है। केवल ज्ञानी को तत्परिणत कहते है। इसी तरह अन्य पदार्थों मे भी नाम निक्षेप विधि से योजना की गई है।

द्विविधं प्रमाणम् ॥६॥

प्रमाण दो प्रकार है परोक्ष और प्रत्यक्ष। शरीर इन्द्रिय प्रकाश आदि के अवलम्बन से पदार्थों को अस्पष्ट जानना परोक्ष प्रमाण है। स्व-आत्मशक्ति से स्पष्ट जानना प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पंच सज्ज्ञानि ७॥

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय ज्ञान तथा केवल ये पांच सम्यग्ज्ञान है। इन्ही के द्वारा सामान्य विशेषात्मक वस्तु को सशय, विमोह, विभ्रम रहित होकर ठीक जानने के कारण तथा निरजन सिद्धात्म निज तत्व, सम्यक् श्रद्धान जनित होने के कारण इसे सम्यग्ज्ञान कहा गया है।

त्रीणिकुज्ञानानि ॥८॥

कुमति, कुश्रुत, विभंग ऐसे तीन कुज्ञान हैं। कड़वी तुम्बी के पात्र मे रक्खे हुए दूध को विगाडने के समान होने के कारण मिथ्या दृष्टि के उपर्युक्त ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाते हैं। पहले के कहे हुए ३ सम्यग्ज्ञानो कोमिथ्य त्व

अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, तथा लोभ कषाय के निमित्त होने से अज्ञान कहते हैं। इन आठ ज्ञानो मे मति, श्रुत, कुमति, तथा कुश्रुत, ये ४ परोक्ष प्रमाण हैं। अवधि, मन--पर्यय, विभग--अवधि ये तीन एक देश प्रत्यक्ष प्रमाण है। केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष प्रमाण है और आत्म-स्वभाव गुण है। शेष ज्ञान विभाव गुण है। उसमे तीनो अज्ञान हेय है। क्षायोपशमिक सम्यग्ज्ञान चतुष्टय परम्परा से उपादेय है, क्षायिक केवल ज्ञान ज्ञान साक्षात उपादेय है।

मतिज्ञानं त्रिशतषट्त्रिंशद्भेदम् ॥९॥

मति ज्ञान के तीन सौ छत्तीस (३३६) भेद है।

मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध, ये मतिज्ञान के ही नामान्तर हैं, क्योकि ये पाचो ही मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होते है।

विशेषार्थ—इन्द्रिय और मन की सहायता से जो अवग्रह आदि रूप ज्ञान होता है उसे मति कहते हैं। न्याय शास्त्र मे इस ज्ञान को साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है, क्योकि लोक व्यवहार मे इन्द्रिय से होनेवाला ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाता है। परन्तु वास्तव मे तो पराधीन होने से यह ज्ञान परोक्ष ही है। पहले जानी हुई वस्तु को कालान्तर में स्मरण करना स्मृति है। जैसे पहले देखे हुए देवदत्त का स्मरण करना 'यह देवदत्त' यह स्मृति है। सज्ञा का दूसरा नाम प्रत्यभि-ज्ञान है। वर्तमान मे किसी वस्तु को देखकर पहले देखी हुई वस्तु का और वर्तमान वस्तु का जोड रूप ज्ञान होना प्रत्यभिज्ञान है। न्याय शास्त्र मे प्रत्य-भिज्ञान के अनेक भेद वतलाये हैं, जिनमे चार मुख्य हैं—एकत्व प्रत्यभिज्ञान, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान, तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान और तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान। किसी पुरुष को देखकर 'यह वही पुरुष है जिसे पहले देखा था' ऐसा जोड रूप ज्ञान होना एकत्व प्रत्यभिज्ञान है। वन मे गवय (रोझ) नामक पशु को देखकर ऐसा ज्ञान होना कि यह गवय मेरीगौ के समान है, यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है। भैस को देखकर 'यह भैस मेरी गौ से विलक्षण है' ऐसा जोड रूप ज्ञान होना तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान है। निकट की वस्तु को देखकर पहले देखी हुई वस्तु के स्मरण-पूर्वक ऐसा जोड रूप ज्ञान होना कि इससे वह दूर है, ऊँची है या नीची है, इत्यादि ज्ञान को तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

चिन्ता का दूसरा नाम तर्क है। 'जहा अमुक चिन्ह होता है वहा उस उस चिन्हवाला भी होता है' ऐसे ज्ञान को चिन्ता या तर्क कहते हैं। न्याय-शास्त्र मे व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते है और साध्य के अभाव मे साधन के

अभाव को तथा साधन के सद्भाव में साध्य के सद्भाव को व्याप्ति कहते है। जैसे, 'अग्नि के न होने पर धुआं नही होता और धुआं के होने पर अग्नि अवश्य होती है' यह व्याप्ति है और इसको जाननेवाले ज्ञान को तर्क प्रमाण कहते हैं। और जिस बात को सिद्ध किया जाता है-उसे साध्य कहते है और जिसके द्वारा सिद्ध किया जाता है उसे साधन कहते है। साधन से साध्य के ज्ञान को अभिनिबोध कहते हैं। इसका दूसरा नाम अनुमान है। जैसे कही धुआ उठता देखकर यह जान लेना कि वहां आग है, क्योकि वहां धुआ उठ रहा है, यह अभिनिबोध है। ये सब ज्ञान परोक्ष प्रमाण है।

वह मतिज्ञान पांचो इन्द्रियो और अनिन्द्रिय (मन) की सहायता से होता है।

आगे मतिज्ञान के भेद बतलाते है -अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार मतिज्ञान के भेद हैं। इन्द्रिय और पदार्थ का सम्बन्ध होते ही जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते है। दर्शन के अनन्तर ही जो पदार्थ का ग्रहण होता है वह अवग्रह है। जैसे चक्षु से सफेद रूप को जानना अवग्रह है। अवग्रह से जाने हुए पदार्थ मे विशेष जानने की इच्छा होना ईहा है। जैसे यह सफेद रूप वाली वस्तु क्या है ? यह तो बगुलों की पंक्ति सी प्रतीत होती है, यह ईहा है। विशेप चिन्हो के द्वारा यथार्थ वस्तु का निर्णय कर लेना अवाय है। जैसे, पखो के हिलाने से तथा ऊपर नीचे होने से यह निर्णय करलेना कि यह बगुलो की पक्ति ही है, यह अवाय है। अवाय से जानी हुई वस्तु को कालान्तर मे भी नही भूलना धारणा है।

आगे इन अवग्रह आदि ज्ञानों के और भेद बतलाने के लिए उनके विषय बतलाते है:—

बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनि.सृत, अनुक्त, ध्रुव, और इनके प्रतिपक्षी अल्प, अल्पविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त, अध्रुव, इन १२ पदार्थो का मतिज्ञान होते है। अथवा अवग्रह आदिसे इन बारहोका ज्ञान होता है। बहुत वस्तुओ के ग्रहण करने को बहुज्ञान कहते है। जैसे सेना या वनको एक समूह रूप मे जानना बहुज्ञान है। और हाथी घोड़े आदि या आम महुआ आदि अनेक भेदो को जानना बहुबिध है। वस्तु के एक भाग को देखकर पूर्ण वस्तु को जान लेना अनि.सृत ज्ञान है। जैसे ताल मे डूबे हुए हाथी की सूड को देखकर हाथी को जान लेना। शीघ्रता से जाती हुई वस्तु को जानना क्षिप्र ज्ञान है। जैसे, तेजी से चलती हुई रेलगाडी को या उसमे बैठकर बाहर की वस्तुओ को जानना।

बिना कहे भी अभिप्राय को जान लेना अनुक्त ज्ञान है। बहुत काल तक जैसा का तैसा निश्चल ज्ञान होना या पर्वत इत्यादि स्थिर पदार्थ को जानना ध्रुव ज्ञान है। अल्पका अथवा एकका ज्ञान होना अल्प ज्ञान है। एक प्रकार की वस्तुओ का ज्ञान होना एकविधज्ञान है। धीरे धीरे चलते हुए घोडे वगैरह को जानना अक्षिप्र ज्ञान है। सामने विद्यमान पूरी वस्तु को जानना नि.सृत ज्ञान है। कहने पर जानना उक्त ज्ञान है। चचल बिजली इत्यादि को जानना अध्रुव ज्ञान है। इस तरह बारह प्रकार का अवग्रह, बारह प्रकार का ईहा, बारह प्रकार का अवाय और बारह प्रकार का धारणा ज्ञान होता है। ये सब मिलकर ज्ञान के ४८ भेद होते है। तथा इनमे से प्रत्येक ज्ञान पाच इन्द्रियो और मन के द्वारा होता है। अत ४८ को ६से गुणा करने पर मतिज्ञान के २८८ भेद होते हैं।

ये २८८ भेद अर्थविग्रह की अपेक्षा से हैं। पदार्थ को ऐसा स्पष्ट जानना, जिस के बाद ईहा, अवाय, धारणा ज्ञान हो सकें वह '**अर्थावग्रह**, है। जो अवग्रह अस्पष्ट रूप हो जिस पर ईहा अवाय धारणा ज्ञान न हो सके वह **व्यञ्जनाग्रह** है। व्यञ्जनावग्रह चक्षु इन्द्रिय तथा मनके द्वारा नही होता है, शेष चार इन्द्रियो (स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण) से १२ प्रकार के पदार्थों का होता है, अत व्यञ्जनावग्रह के १२×४ =४८ भेद है।

इस तरह अर्थविग्रह की अपेक्षा मतिज्ञान के २८८ और व्यञ्जनावग्रह की अपेक्षा ४८ भेद होते है, दोनो मिलकर (२८८+४८=३३६) ३३६ भेद मतिज्ञान के होते है।

व्यञ्जनावग्रह यदि बार बार होता रहे तो वह अर्थावग्रह हो जाता है फिर उसके ऊपर ईहा अवाय धारणा ज्ञान हो जाते है। जैसे मिट्टी के कोरे प्याले मे पहले १०-५ बूद जल डाला जावे तो वह तत्काल सूख जाता है किन्तु लगातार जल बूदें पडती रहे तो वह प्याला गीला हो जाता है।

द्विविधं श्रुतम् ॥१०॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञान-पूर्वक होता है, मतिज्ञान के बिना श्रुतज्ञान नहीं होता। श्रुतज्ञान के दो भेद हैं अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक।

सूक्ष्म लब्धि-अपर्याप्तक निगोदिया जीव के उत्पन्न होने के प्रथम समय मे स्पर्शन इन्द्रिय मतिज्ञान पूर्वक जो श्रुतज्ञान होता है वह 'पर्याय' नामक श्रुत ज्ञान है, उससे कम श्रुतज्ञान किसी जीव को नही होता, श्रुतज्ञान का क्षयोपशम भी इससे कम नही होता, अत यह 'पर्याय' श्रुतज्ञान नित्य-उद्घाटित

(सदा निरावरण रहने वाला) है। यदि इस ज्ञान पर भी कर्म का आवरण होता तो वह निगोदिया जीव ज्ञान-शून्य जड़ हो जाता।

विशेष इतना है कि सूक्ष्म लब्धिअपर्याप्तक निगोदिया जीव अन्तर्मुहूर्त मे सम्भव अपने ६०१२ भवों में भ्रमण करके अन्तिम अपर्याप्त शरीर को तीन मोडो द्वारा ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोडे के समय वह सर्व-जघन्य पर्याय नामक श्रुतज्ञान होता है। इसको **'लब्ध्यक्षर'** भी कहते है। लब्धिका अर्थ श्रुतज्ञान और अक्षर का अर्थ **'अविनश्वर'** है। यानी—यह जघन्य श्रुतज्ञान कभी नष्ट नही होता।

इस जघन्य श्रुतज्ञान (पर्याय ज्ञान) के ऊपर अनन्त भाग वृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, सख्यात भागवृद्धि, सख्यात गुणवृद्धि, असख्यात गुणवृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि रूप ६ प्रकार की वृद्धिया असख्यात वार (असंख्यात लोक प्रमाण) होने पर **'अक्षर'** श्रुतज्ञान होता है। पर्याय श्रुतज्ञान से अधिक और अक्षर श्रुत ज्ञान से कम जो श्रुतज्ञान के बीच के असाख्यात भेद हैं वे सब **'पर्यायसमास'** कहलाते हैं। इस तरह पर्याय और पर्याय समास ये दो श्रुतज्ञान अनक्षरात्मक हैं। शेष ऊपर के सब ज्ञान अक्षरात्मक हैं। पर्यायज्ञान अक्षर ज्ञान के अनन्तवें भाग प्रमाण है।

अक्षर श्रुतज्ञान सम्पूर्ण अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का मूल है। अक्षर ज्ञान के ऊपर एक एक अक्षर ज्ञान की वृद्धि होते होते जब संख्यात अक्षर रूप वृद्धि हो जाती है तब **'पद'** नामक श्रुतज्ञान होता है। अक्षर ज्ञान से ऊपर और पद ज्ञान से कम बीच के सख्यात भेद **'अक्षर समास'** नामक श्रुतज्ञान है।

पद शब्द के तीन अर्थ हैं—१ अर्थपद, २-प्रमाण पद, ३-मध्यम पद। 'पुस्तक पढो, भोजन करो' आदि अनियत अक्षरो के समूह रूप किसी अभिप्राय विशेष को बतलाने वाला **'अर्थ पद'** होता है। क्रिया रूप (तिन्ङत) और अक्षर-समूह तथा सज्ञारूप (सुबन्त) अक्षर समूह पद भी इसी अर्थपद मे गर्भित हैं। विभिन्न छन्दो के ८ आदि नियत अक्षर समूह रूप प्रमाण पद होता है जैसे 'नमः श्री वर्द्धमानाय'।

तथा १६३४८३०७८८८ सोलह अरब चौतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी अक्षरो का एक मध्यम पद होता है। श्रुतज्ञान मे इसी मध्यम पद को लिया गया है।

एक पद के ऊपर एक एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब सख्यात हजार पदो की वृद्धि हो जावे तब **'संघात'** नामक श्रुतज्ञान होता है। सघात श्रुतज्ञान से कम और पद से अधिक जितने श्रुतज्ञान हैं वे **'पद समास'** कहलाते है। सघात श्रुत ज्ञान चारो गति मे से किसी एक गतिका निरूपण करने वाले अपुनरुक्त मध्यम पदो का समूह रूप होता है।

सघात श्रुतज्ञान के ऊपर एक एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब सख्यात हजार संघात की वृद्धि हो जावे तब चारो गतियो का विस्तार से वर्णन करने वाला **'प्रतिपत्ति'** नामक श्रुतज्ञान होता है। सघात और प्रतिपत्ति ज्ञान के बीच के भेद **'संघातसमास'** कहलाते हैं।

प्रतिपत्ति श्रुत ज्ञान के ऊपर अक्षर अक्षर की वृद्धि होते होते जब सख्यात हजार प्रतिपत्ति की वृद्धि हो जाती है तब चौदह मार्गणाओ का विस्तृत विवेचन करने वाला **'अनुयोग'** नामक श्रुतज्ञान होता है। प्रतिपत्ति और अनुयोग के वीच के जितने भेद हैं वे **'प्रतिपत्ति समास'** कहलाते है।

अनुयोग ज्ञान के ऊपर पूर्वोक्त रूप से वृद्धि होते होते जब संख्यात हजार अनुयोगो की वृद्धि हो जाती है तब **'प्राभृत प्राभृतक'** नामक श्रुतज्ञान होता है। अनुयोग और प्राभृत प्राभृतक ज्ञान के बीच के भेद **अनुयोग समास** कहलाते हैं।

इसी प्रकार अक्षर अक्षर की वृद्धि होते होते जब चौबीस प्राभृत प्राभृतक की वृद्धि हो जाय तव **'प्राभृत'** ज्ञान होता है। दोनो के बीच के भेद **प्राभृत प्राभृतक समास** हैं।

बीस प्राभृतप्रमाण **'वस्तु'** नामक श्रुतज्ञान होता है। प्राभृत और वस्तु के वीच के भेद **प्राभृत समास** हैं।

वस्तु ज्ञान मे पूर्वोक्त रूप से वृद्धि होते होते दश आदि १९५ एक सौ पिचानवै वस्तु रूप वृद्धि होती है तब **पूर्व** नामक श्रुतज्ञाम होता है। वस्तु और पूर्व के मध्यवर्ती श्रुतज्ञान वस्तु समास कहलाते है।

पूर्व ज्ञान से वृद्धि होते होते पूर्ण श्रुतज्ञान के मध्यवर्ती भेद **पूर्वसमास** कहलाते हैं। इस तरह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के १८ भेद है। इसको ही भावश्रुत भी कहते है।

अक्षरात्मक श्रुतज्ञान द्वादश (बारह) अग रूप है उसमे समस्त एक

अरब बारह करोड़ तिरासी लाख अट्ठावन हजार पांच ११२८३५८००५ मध्यम पद हैं। जिसका विवरण निम्नलिखित है –

१—आचारंग में १८००० अठारह हजार पद है, इसमे मुनिचर्या का वर्णन है।

२—सूत्रकृतांग मे ३६००० छत्तीस हजार पद हैं, इसमे सूत्र रूप व्यवहार क्रिया, स्वसमय आदि का विवेचन है।

३—स्थानाग मे ४२००० पद हैं, इसमें समस्त द्रव्यो के एक से लेकर समस्त संभव विकल्पो का वर्णन है।

४—समवायाङ्ग मे १६४००० पद है, इसमे समस्त द्रव्यो के पारस्परिक साहृश्य का विवरण है।

५—व्याख्या प्रज्ञप्ति मे २२८००० पद हैं, इसमे ६० हजार प्रश्नो के उत्तर हैं।

६—ज्ञातृ कथा मे ५५६०० पद हैं इसमे गणधर आदि की कथाऐं तथा तीर्थकरों का महत्व आदि वतलाया गया है।

७—उपासकाध्ययन मे ११७०००० पद है, इसमे श्रावकाचार का वर्णन है।

८—अन्तःकृतदशांग मे २३२८००० पद है, इसमे प्रत्येक तीर्थंकर के समय के १०-१० मुनियो के तीव्र उपसर्ग सहन करके मुक्त होने का कथन है।

९—अनुत्तरौपपादिक दशांग मे ९२४४००० पद हैं इसमें प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे १०-१० मुनियों के घोर उपसर्ग सहन कर विजय आदि अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होने का कथन है।

१०—प्रश्न व्याकरण मे ९३१६००० पद हैं, इसमे नष्ट मुष्टि चिन्ता आदि प्रश्नो के अनुसार हानि लाभ आदि वतलाने का विवरण है।

११—विपाक सूत्र मे १८४००००० पद है इसमे कर्मो के फल देने का विशद विवेचन है।

१२—दृष्टिवाद मे १०८६८५६००५ पद हैं इसमे ३६३ मिथ्यामतों का वर्णन तथा उनका निराकरण का वर्णन है। इसके पाच भेद है, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

परिकर्म मे गणित के करण सूत्र है, इसके पांच भेद हैं–१ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २—सूर्यप्रज्ञप्ति, ३–जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ४—चन्द्रसागर प्रज्ञप्ति, ५—व्याख्या प्रज्ञप्ति। चन्द्रसम्बन्धी समस्त विवरण चन्द्रप्रज्ञप्ति मे है, उसके ३६०५००० छत्तीस लाख पाच हजार पद है। सूर्य प्रज्ञप्ति मे सूर्य विमान सम्बन्धी समस्त

विवरण है उसमे ५०३००० पाच लाख तीन हजार पद हैं। जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति मे जम्बू द्वीप- सम्बन्धी समस्त वर्णन है इसमे ३२५००० तीन लाख पच्चीस हजार पद हैं। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति मे अन्य द्वीपो तथा सागरो का विवेचन है इसमे ५२३६००० पद है। व्याख्याप्रज्ञप्ति मे भव्य अभव्य, अनन्तर सिद्ध, परम्परा सिद्ध आदि का कथन है उसमे ८४३६००० पद है।

दृष्टिवाद के दूसरे भेद सूत्र मे ३६३ मिथ्या मतो का पक्ष प्रतिपक्ष रूप से वर्णन है, इसमे ८८००००० पद है। प्रथमानुयोग मे त्रेसठ शलाका पुरुषो का वर्णन है। इसमे ५००० पद हैं। पूर्व के १४ भेद है, उसमे समस्त ९५५००००००५ पचानवे करोड पचास लाख पाच पद है। जिनका विवरण नीचे लिखे अनुसार है।

१—उत्पाद पूर्व मे एक करोड पद है, इसमे प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य का वर्णन है।

२—अग्रायणी पूर्व मे ७०० नय तथा दुर्नय, पचास्तिकाय आदि का वर्णन है, इसमे ९६ लाख पद हैं।

३—वीर्य प्रवाद मे ७० सत्तर लाख पद है, इसमे आत्म वीर्य, पर वीर्य गुणवीर्य आदि का विवेचन है।

४—अस्तिनास्ति प्रवाद मे सप्त भगी का कथन है इसमे ६० लाख पद हैं।

५—ज्ञान प्रवाद मे एक कम एक करोड पद हैं, इसमे समस्त ज्ञानो का समस्त विवरण है।

६—सत्य प्रवाद पूर्व मे शब्द उच्चारण, दस प्रकार का सत्य वचन, असत्यवचन, भाषा आदि का वर्णन है, इसमे एक करोड छ पद हैं।

७—आत्मप्रवाद मे २६ करोड़ पद है, इसमे आत्मा का समस्त विवरण है।

८—कर्म प्रवाद मे एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं, इसमे कर्मों से सम्बन्धित समस्त कथन है।

९—प्रत्याख्यान पूर्व मे द्रव्य क्षेत्र काल सहनन आदि की अपेक्षा त्याग समिति गुप्ति आदि का विवेचन है। इसमे ८४ लाख पद हैं।

१०—विद्यानुवाद पूर्व मे एक करोड दसलाख पद हैं। इसमे अगुष्ठ सेना आदि ७०० अल्प विद्याओ तथा रोहिणी आदि ५०० महाविद्याओ, मन्त्र-तन्त्र आदि का विवरण है।

११—कल्याणवाद पूर्व मे तीर्थंकरो के ५ कल्याणकों, षोडश भावना आदि का वर्णन है, इसमें २६ करोड़ पद है।

१२—प्राणवाद मे १३ करोड पद हैं, इसमें आठ प्रकार के आयुर्वेद आदि वैद्यक आदि का विवरण है।

१३—क्रिया विशाल पूर्व मे संगीत छन्द आदि पुरुषो की ७२ कला, स्त्रियों के ६४ गुण आदि का वर्णन है। इसमे ९ करोड़ पद है।

१४—त्रिलोक बिन्दु सार मे १२ करोड ५७ लाख पद हैं। इसमे लोक का, मोक्ष का स्वरूप, ३६ परिकर्म आदि का वर्णन है।

दसचोद्दस अट्ठट्ठारस बारस सयं दोस पुव्वेसु।
सोलसवीसंतीसं पण्णरस वत्थु ॥५
एएमिं पुव्वाणं एवदिओ वत्थुसंग हो भणिओ।
णाणं तुव्वासेणं दसदस वत्थू पणिवदाणि ॥६॥
एक्केक्कम्मिय वत्थू वीसं कीसं पाहुडा भणिया।
विसमसमाहिय वत्थू पुव्वे पुण पाहुडेहि समा ॥७
पुव्वाणं वत्थुसयं पंचाणउदि हवति वत्थूणि।
पाहुड तिण्णि सहस्सा नवयसया चोद्दसाणं तु ॥८॥

अर्थ—चौदह पूर्वों की कमश १०-१४-८-१८-१२-१६-२०-३०-१५-१०-१०-१०-१०-१२ वस्तु (अधिकायेंर) यानी समस्त १९५ वस्तु होती हैं एक एक वस्तु के २०-२० प्राभृत (प्रकरण) होते हैं, अत. १४ पूर्वों के समस्त प्राभृत ३९०० होते हैं।

दृष्टिवाद का पांचवा भेद चूलिका है उसके ५ भेद हैं—जलगता, २—स्थलगता, ३ मायागता, ४ आकाशगता और ५ रूपगता।

जलगता मे जल मे गमन, जल स्तम्भन के मंत्र तन्त्र आदि का वर्णन है। स्थलगता मे मेरु कुलाचल, भूमि आदि मे प्रवेश करने, शीघ्र गमन, आदिक सम्बन्धी मन्त्र तन्त्र आदि का वर्णन है। आकाशगता मे आकाश गमन आदि के मन्त्र तन्त्र आदि का कथन है। मायागता मे इन्द्रजाल सम्बन्धी मन्त्र तन्त्र आदि का कथन है। रूपगता मे सिंह आदि के अनेक प्रकार के रूप बनाने का वर्णन है। इन पांचो चूलिकाओं के १०४९४६००० पद हैं।

चतुर्दश प्रकीर्णकानि ॥१२॥

अर्थ—अङ्गबाह्य श्रुतज्ञान के १४ भेद हैं। १—सामायिक, २—

चतुर्विंशतिस्तव, ३—वन्दना, ४—प्रतिक्रमण, ५—वैनयिक, ६—कृतिकर्म ७—दशवैकालिक, ८—उत्तराध्ययन, ९—कल्पव्यवहार, १०—कल्पाकल्प, ११—महाकल्प, १२,—पुण्डरीक, १३—महापुण्डरीक और १४—निषिद्धिका।

१ साधुओ के समताभाव रूप सामायिक का कथन करनेवाला **सामायिक** प्रकीर्णक है।

२ चौबीस तीर्थंकरो के स्तवन की विधि विधान बतलाने वाला प्रकीर्णक **चतुर्विंशतिस्तव** है।

३ पचपरमेष्ठी की वन्दना करनेवाला शास्त्र '**वन्दना**' प्रकीर्णक है।

४ दैवसिक, पाक्षिक, मासिक आदि प्रतिक्रमण का विधान करनेवाला **प्रतिक्रमण** प्रकीर्णक है।

५ दर्शन, ज्ञान, चारित्र, और उपचार विनय का विस्तार से विवेचन करनेवाला **वैनयिक** प्रकीर्णक है।

६ दीक्षा आदि देने का विवरण जिस शास्त्र मे हो वह **कृतिकर्म** है।

७ द्रव, पुष्पित आदि १० अधिकारो द्वारा मुनि के भोज्य पदार्थों का विवरण जिसमें पाया जाता है वह **दशवैकालिक** है।

८ उपसर्ग तथा परिषह सहन करने आदि का विधान **उत्तराध्ययन** प्रकीर्णक में है।

९ जिसमे दोषो के प्रायश्चित्त आदि का समस्त विवरण है वह **कल्पव्यवहार** है।

१० सागार अनागार के योग्य, अयोग्य आचार का जिसमें विवेचन पाया जाता है वह **कल्पाकल्प** प्रकीर्णक है।

११ दीक्षा, शिक्षा, गणपोषण, सलेखना आदि ६ काल का जिसमे कथन पाया जाता है वह **महाकल्प** है।

१२ भवनवासी आदि देवो मे उत्पन्न होने योग्य तपश्चरण आदि का विवरण जिसमे है वह **पुण्डरीक** है।

१३ भवनवासी आदि देवो की देवियो की उत्पत्ति के योग्य तपश्चर्या आदि का विधिविधान **महापुण्डरीक** में है।

१४ स्थूल सूक्ष्म दोषो का संहनन शरीर बल आदि के अनुसार प्रायश्चित्त आदि का विधान जिसमे है वह निषिद्धिका है।

त्रिविधमवधिज्ञानम् ॥१३॥

देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि ये अवधि ज्ञान के तीन भेद हैं। रूपो द्रव्यके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से जानना अवधिज्ञान है। यह अवधि ज्ञानावरण, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। इसमे देशावधि के भवप्रत्यय तथा गुण प्रत्यय ये दो भेद होते हैं। उसमे देव और नारकी के उत्पन्न होने वाला अवधि ज्ञान भव-प्रत्यय है तथा तीर्थंकर परम देव के सर्वाङ्ग से प्रगट होने वाला गुण-प्रत्यय ज्ञान है। विशुद्धि के कारण गुणवान मनुष्य और तिर्यञ्च की नाभि के ऊपर रहने वाले शंखादि चिन्हो मे उत्पन्न होता है। उसके छै भेद हैं—अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थित।

सूर्य के प्रकाश के समान अवधिज्ञानी के साथ जाने वाला अनुगामी है, जो ज्ञान जिस क्षेत्र मे उत्पन्न हुआ हो, वहा से चले जाने पर छूट जावे, साथ न जावे, इसे अननुगामी कहते हैं। शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा के समान सम्यक्-दर्शनादि विशुद्ध परिणामो से उत्पन्न होकर वहा से आगे असंख्यात लोक तक निरन्तर बढने वाला वर्द्धमान है। कृष्ण पक्ष की चन्द्रमा के समान सम्यग्दर्शन-आदि मे संक्लेश परिणामो की वृद्धि के योग से असंख्यात भाग कम होते जाना हीयमान कहलाता है। जैसे सूर्य समयानुसार घटता-बढता रहता है उसी प्रकार ज्ञानमे घटती बढती होना अनवस्थित कहलाता है। परमावधि तथा सर्वावधि ये दो अवधि ज्ञान चरम शरीर देहधारी उत्कृष्ट सयमीके होते हैं वह जघन्य मध्यम उत्कृष्ट से युक्त होता है और एकदेक्ष प्रत्यक्ष से जानता है।

द्विविधो मनःपर्ययश्च ॥१४॥

ऋजुमति और विपुलमति ये मन पर्याय ज्ञान के दो भेद हैं। मन पर्यय ज्ञान ज्ञानावरणके क्षयोपशम से और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम से उत्पन्न होने के कारण अपने मन के अवलम्बन से होने वाले ईहामति-ज्ञानपूर्वक अन्य के मन मे रहने वाले मूर्त्त वस्तु को ही एक देश प्रत्यक्ष से विकल्प रूप से जानता है। जो ऋजुमति है वह ऋजु अर्थात् मन, वचन काय के अर्थ को सरलता से जानने वाला है, वह कालान्तर मे छूट जाता है। वक्रावक्र अन्य मनुष्य के मन, वचन, काय के प्रति अर्थ को जानना विपुलमति ज्ञान है जो कि सदा स्थिर रहता है। यह ज्ञान परम सयमी मुनि के होता है।

क्षायिकमेकमनन्तं त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम् ।
सकल सुखधाम सततं वंदेऽहं केवलज्ञानम् ॥४॥
सुदकेवल च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोधादो ।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्ख केवलं णाणं ॥६॥

कुज्ञान-अनुपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय से मिथ्याश्रद्धान वाले जीव के कुमति, कुश्रुत विभग ज्ञान ये तीनो कुज्ञान होते हैं। जगत्रय व कालत्रयवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् अवलोकन समर्थ केवल ज्ञान उपादेय हैं, अन्य ज्ञान हेय हैं।

नव नयाः ॥१५॥

अर्थ—नय नौ होती है। १ द्रव्यार्थिक, २ पर्यायार्थिक, ३ नैगम, ४ संग्रह, ५ व्यवहार, ६ ऋजुसूत्र, ७ शब्द, ८ समभिरूढ और ९ एवभूत।

प्रमाण द्वारा जाने गये पदार्थ के एक अश को जानने वाला ज्ञान 'नय' है। जिस तरह समुद्र मे से भरे हुए घडे के जल को न तो समुद्र कह सकते हैं क्योंकि समुद्र का समस्त जल घडे के जलसे बहुत अधिक है और न उस घडे के जल को 'असमुद्र' कह सकते हैं क्योकि वह जल है तो समुद्र का ही। इसी प्रकार नय को न तो प्रमाण कह सकते हैं क्यो कि वह प्रमाण के विषयभूत पदार्थ के एक अश को जानता है और न उसे अप्रमाण ही कह सकते है क्योकि वह है तो प्रमाण का ही एक अश।

द्रव्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय है और पर्याय को जानने वाला पर्यायार्थिक नय है।

द्रव्यार्थिक नय के १० भेद हैं—१ पर-उपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय। जैसे-ससारी जीव सिद्ध के समान शुद्ध हैं। २ सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे जीव नित्य है। ३ भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे द्रव्य अपने गुणपर्याय स्वरूप होने से अभिन्न है। ४ पर उपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे–आत्मा कर्मोदय से क्रोध मान आदि भावरूप है। ५ उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे- एक ही समय मे द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप है। ६ भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे आत्मा के ज्ञान दर्शन आदि गुण है। ७ अन्वय द्रव्यार्थिक नय–जैसे द्रव्य गुणपर्याय-स्वभाव है। ८ स्वचतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक —जैसे स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा द्रव्य है। ९ पर चतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक—जैसे पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा द्रव्य नही है। १० परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक – जैसें आत्मा ज्ञान-स्वरूप है।

पर्याय मात्र को ग्रहण करने वाले पर्यायार्थिक नय के ६ भेद हैं—

१ अनादि नित्य पर्यायार्थिक—जैसे सुमेरु पर्वत आदि पुद्गल पर्याय नित्य हैं। २ सादिनित्य पर्यायार्थिक नय—जैसे सिद्ध पर्याय नित्य है। ३ उत्पाद व्यय ग्राहक पर्यायार्थिक नय —जैसे पर्याय क्षण क्षण मे नष्ट होती है। ४ सत्तासापेक्ष पर्यायार्थिक नय—जैसे पर्याय एक ही समय में उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप है। ५ पर उपाधि निरपेक्ष शुद्ध पर्यायार्थिक नय—जैसे ससारी जीवों की पर्याय सिद्ध भगवान के समान शुद्ध है। ६ पर उपाधि सापेक्ष अशुद्ध पर्यायार्थिक नय—जैसे संसारी जीवो के जन्म, मरण होते हैं।

संकल्प मात्र से पदार्थ को जानने वाला **नैगम** नय है। उसके तीन भेद हैं १ भूत, २ भावी और ३ वर्तमान।

भूत काल में वर्तमान का आरोपण करना भूत नैगम नय है जैसे दीपावली के दिन कहना कि 'आज भगवान महावीर मुक्त हुए हैं। भविष्य का वर्तमान मे आरोपण करना भावी नैगम है जैसे अर्हन्त भगवान को सिद्ध कहना। प्रारम्भ किये हुए कार्य को सम्पन्न हुआ कहना वर्तमान नैगम है जैसे—चूल्हे में अग्नि जलाते समय यो कहना कि मैं चावल वना रहा हूं।

पदार्थो को संगृहीत (इकट्ठे) रूप से जानने वाला **संग्रह** नय है। इस के दो भेद हैं—१ सामान्य सग्रह-जैसे समस्त पदार्थ द्रव्यत्व की अपेक्षा समान हैं परस्पर अविरोधी हैं। २ विशेष सगह जैसे-समस्त जीव जीवत्व की अपेक्षा समान हैं—परस्पर अविरोधी हैं।

संग्रह नय के द्वारा जाने गये विषय को विधि-पूर्वक भेद करके जानना **व्यवहार** नय है। इसके दो भेद हैं १ सामान्य व्यवहार-जैसे पदार्थ दो प्रकार के हैं १ जीव, २ अजीव। २ विशेष व्यवहार नय—जैसे जीव दो प्रकार के हैं १ संसारी, २ मुक्त।

वर्तमान काल को ग्रहण करने वाला **ऋजुसूत्र** नय है। इसके भी दो भेद हैं—१ सूक्ष्म ऋजुसूत्र, जैसे पर्याय एक समयवर्ती है। २-स्थूल ऋजुसूत्र जैसे मनुष्य पशु आदि पर्याय को जन्म से मरण तक आयु भर जानना।

संख्या, लिंग आदि का व्यभिचार दूर करके शब्द के द्वारा पदार्थ को ग्रहण करना, जैसे विभिन्न लिंगवाची दार, (पु०), भार्या (स्त्री), कलत्र (न०) शब्दो के द्वारा स्त्री का ग्रहण होना।

एक शब्द के अनेक अर्थ होने पर भी किसी प्रसिद्ध एक रूढ अर्थ को ही शब्द द्वारा ग्रहण करना। जैसे गो शब्द के (संस्कृत भाषा मे) पृथ्वी, वाणी

कटाक्ष, किरण, गाय आदि अनेक अर्थ हैं फिर भी गो शब्द से गाय को ही जानना।

शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार उसी क्रिया मे परिणत पदार्थ को उस शब्द द्वारा ग्रहण करना एवंभूत नय है। जैसे गच्छति इति गौ. (जो चलती हो सो गाय है) इस व्युत्पत्ति के अनुसार चलते समय ही गाय को गो शब्द द्वारा जानना एवंभूत नय है।

नय की शाखा को उपनय कहते हैं। उपनय के ३ भेद है—१ सद्भूत व्यवहार नय, २ असद्भूत व्यवहार नय, ३ उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।

सद्भूत व्यवहार नय के दो भेद हैं—१ शुद्ध सद्भूत व्यवहार—जो शुद्ध गुण गुणी, शुद्ध पर्याय पर्यायी का भेद कथन करे, जैसे सिद्धो के केवल ज्ञान दर्शन आदि गुण है। २ अशुद्ध सद्भूत व्यवहार—जो अशुद्ध गुण गुणी तथा अशुद्ध पर्याय पर्यायी का भेद वर्णन करे, जैसे—ससारी आत्मा की मनुष्य आदि पर्याय हैं।

असद्भूत व्यवहार नय के ३ भेद है—१ स्वजाति असद्भूत व्यवहार-जैसे परमाणु बहु प्रदेशी है। २ विजाति असद्भूत व्यवहार-जैसे मूर्ति मतिज्ञान मूर्तिक पदार्थ से उत्पन्न होता है, ऐसा कहना। ३ स्वजाति विजाति असद्भूत व्यवहार—जैसे ज्ञेय (ज्ञान के विषय भूत) जीव अजीव (शरीर) में ज्ञान है, क्यो कि वह ज्ञान का विषय है, ऐसा कहना।

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय के भी ३ भेद हैं—१ स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार—जैसे पुत्र स्त्री आदि मेरे हैं। २ विजाति उपचरित असद्-भूत व्यवहार नय-जैसे मकान वस्त्र आदि पदार्थ मेरे हैं। ३ स्वजाति विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय-जैसे नगर, देश मेरा है। नगर मे रहने वाले मनुष्य स्वजाति (चेतन) हैं, मकान वस्त्र आदि विजाति (अचेतन) हैं।

नय के दो भेद और भी किये हैं-१ निश्चय, २ व्यवहार।

जो अभेदोपचार से पदार्थ को जानता है वह निश्चय नय है। जैसे आत्मा शुद्ध बुद्ध निरञ्जन है।

जो भेदोपचार से पदार्थ को जानता है वह व्यवहार नय है। जैसे जीव के ज्ञान आदि गुण हैं।

प्रकारारान्तर से इन दोनो नयो का स्वरूप यो भी वताया गया है—

जो पदार्थ के शुद्ध अश का प्रतिपादन करता है वह निश्चय नय है, जैसे जो अपने चेतना प्राणसे सदा जीवित रहता है वह जीव है।

जो पदार्थ के मिश्रित रूप का प्रतिपादन करता है वह व्यवहार नय है। जैसे जिसमे इन्द्रिय (५) बल (३) आयु और श्वास उच्छ्वास ये यथायोग्य १० प्राण पाये जाते हैं या जो इन प्राणो से जीता है वह जीव है।

नय आँशिक ज्ञानरूप हैं, अत वे तभी सत्य होती हैं जबकि वे अन्य नयों की अपेक्षा रखती है। यदि वे अन्य नय की अपेक्षा न रक्खें तो वे मिथ्या नय हो जाती हैं।

कहा भी है—

निरपेक्षा नया मिथ्याः सापेक्षा वस्तुतोर्थकृत्।

यानी—अन्य नयों की अपेक्षा न रखने वाली नय मिथ्या होती हैं, जो नय अन्य नयो की अपेक्षा रखती है वे सत्य नय होती हैं, उनसे ही पदार्थ की सत्य सिद्धि होती है।

नयानां लक्षणं भेदं वक्ष्ये नत्वा जिनेश्वरम्।
दुर्नयारितमोनाशं मार्तण्डं जगदीश्वरम् ॥५॥
नयो वक्तुर्विवक्षा स्याद् वस्त्वशेषं प्रवर्तते।
द्विधासौ भिद्यते मूलाद् द्रव्यपर्यायभेदतः ॥६॥
नैगमः संग्रहश्चेति व्यवहारर्जुसूत्रकौ।
शब्दसमभिरूढैवंभूता नव नयाः स्मृताः ॥७॥
सद्भूतासद्भूतौ स्यातामुपचारतोऽप्यसद्भूताः।
इत्युपनयास्त्रिभेदाः प्रोक्तास्तथैव तत्त्वज्ञैः ॥८॥
द्रव्यार्थि दशविधं स्यात्पर्यायार्थो च षड्विधः।
नैगमस्त्रिविधस्तत्र संग्रहश्च द्विधा मतः ॥९॥
व्यवहारर्जुसूत्रौ च प्रत्येको द्विविधात्मकः।
शब्दसमभिरूढैवंभूतानां नास्ति कल्पना ॥१०॥
सद्भतश्च नयो द्वेधाऽसद्भूतस्त्रिविधो मतः।
उपचारात् सद्भूतः प्रोक्तः सोपित्रैविध्यमाभजेत् ॥११॥
सर्वपारनयभेदानां भेदाः षड्त्रिंशदीरिताः।
एतन्निगद्यते तेषां स्वरूपव्याप्तिलक्षणम् ॥१२॥

पुनरध्यात्मभाषयानयावभ्यस्त्य तत्र तावस्मालनयोद्योनिश्चयो व्यवहारश्च आभेदसोपचारतया वस्तुनिश्चेता इति निश्चयः। भेदोपचारतया वस्तुव्यवह-

तमिति । यः सोपाधिविषयोऽशुद्ध-निश्चय, यथा मतिज्ञानादयो जीवयिते । व्यवहारो द्विविध—सद्भूतव्यवहार असद्भूतव्यवहारस्तत्रैव वस्तुविषय सद्भूतव्यवहारोऽभिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचारितानुपरितभेदात् तत्र सोधाधिकगुणिविषय उपचरित सद्भूत व्यवहारः। यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणा. । निरुपाधिगुणगुणिभेदविषयानुपचरित सद्भूतव्यवहार । यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः । असद्भूतो व्यवहारोद्विविधः: उपचरितानुपचरितभेदास्तत्र सक्लेशरहितवस्तु सम्बन्ध - विषय-उपचरितासद्भूतव्यवहारः । यथा जीवस्य धनधान्यमित्यादि । सक्लेशरहित वस्तु-सम्बन्ध-विषयः अनुपचरितसद्भूतव्यवहार । यथा जीवस्य शरीरमिति । एवमध्यात्मभाषया षण्णया ।

समस्त जीव शुद्ध बुद्धैकस्वभाव वाले है ऐसा कहना शुद्ध निश्चय नय है । केवलज्ञानादि शुद्ध गुण जीव सम्बन्धी कहना अनुपचरित सद्भूतव्यवहार नय है । मतिज्ञानादि विभावगुण जीवसम्बन्धी हैं, उपचरित सद्भूत व्यवहार नयसे शरीरादि जीवसम्बन्धी कहे जाते हैं, अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नयसे । ग्राम-आदि उपचरित सद्भूत नयसे जीव-सम्बन्धी कहे जाते है ।

गाथा

जावदिया वयणविहा तावदिया चेव होंति णयवादा
जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया ॥१२॥
प्रमाणनयनिक्षेपैर्योऽर्थानभिसमीक्ष्यते ।
युक्त्यम्भायुक्तिवदाति तस्यायुक्तं च युक्तिवत् ॥१३॥
ज्ञानं प्रमाणमित्याहु रूपयो न्यासमुच्यते ।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थःपरिग्रहः ॥१४॥

स्वात्मोपलब्धि के विरुद्ध अनात्मोपलब्धि है । इसको यहा संक्षेप से दिग्दर्शन कराते हैं ।

स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव यह अन्तरङ्ग स्वचतुष्टय है । पर (अन्य) द्रव्य. परक्षेत्र, परकाल और परभाव ये बहिरग हेतु है । इसको यहां दृष्टान्त से बतलाते हैं ।

हेमपाषाण (खान से निकला हुआ पत्थर से मिला हुआ सोना) स्वद्रव्य है । उस हेमपाषाण के अपने प्रदेश उसका स्वक्षेत्र है । उसकी अतीत अनागत पर्याय उसका स्वकाल है । उसके क्रिया-परिणत वर्तमान निजी परिणमन स्वभाव है । रससूलिका (जिसके द्वारा उसको शुद्ध किया जाता है) वनस्पति

उसका परद्रव्य है। मूस (कुठाली—जिसमें डालकर उसे शुद्ध सुवर्ण बनाया जाता है, उस हेमपाषाण का पर-क्षेत्र है। रात दिन आदि परकाल है। रसवादी (नियारिया—सोना शुद्ध करने वाला सुनार आदि) की परिणति हेमपाषाण का पर-भाव है।

इसी प्रकार अनाद्यनिधन चैतन्य-स्वभाव जीव स्वद्रव्य है। लोकप्रमाण उसके प्रदेश आत्मा के स्वक्षेत्र हैं। आत्मा के अतीत अनागत पर्याय स्वकाल हैं। विशुद्ध अतिशय से युक्त वर्तमान पर्याय आत्मा का स्वभाव है। उत्तम संहनन, (शरीर) आत्मा का पर-द्रव्य है। १५ कर्मभूमियाँ इस आत्मा (कर्मभूमिज-मनुष्य) का परक्षेत्र हैं। यह दुःषमा पंचमकाल आत्मा का पर.काल है। और तत्वोपदेश से परिणत आचार्य आदि पर-भाव हैं।

इस प्रकार स्वचतुष्टय, परचतुष्टय का यह संक्षेप विवरण है।

सप्तभङ्गी ॥१६॥

अर्थ—वस्तु कथन करने की सात भंग (तरह) होते हैं उसीको सप्त भंगी कहते हैं। उनके नाम ये हैं—१-स्यात्अस्ति, २—स्यान्नास्ति, ३—स्यादस्तिनास्ति ४—स्यादवक्तव्य, ५—स्यादस्ति अवक्तव्य, ६-स्यान्नास्ति अवक्तव्य, ७—स्यादस्ति-नास्ति अवक्तव्य।

कहा भी है

> **एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः।**
> **सदादिलकपना या च सप्तभंगीति सा मता ॥१५॥**

यानी—एक पदार्थ मे परस्पर अविरोध (विरोध न करके) रूप से प्रमाण अथवा नय के वाक्य से सत् (है) आदि की जो कल्पना की जाती है वह सप्तभंगी है।

स्यात् अव्यय पद है इसका अर्थ कथंचित् यानी 'किसी अपेक्षा से' है।

प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा है, यह स्यादस्ति (स्यात् अस्ति) है। जैसे-दिल्ली नगर अपने स्वरूप से है।

प्रत्येक पदार्थ अन्य पदार्थ की अपेक्षा नही है, यह स्यान्नास्ति (स्यात् नास्ति) भंग है। जैसे—दिल्ली नगर बम्बई की अपेक्षा नही है।

प्रत्येक पदार्थ एक ही समय मे क्रम से अपनी अपेक्षा है और अन्य की अपेक्षा नही है। यह स्यादस्तिनास्ति भंग है। जैसे—दिल्ली नगर अपनी अपेक्षा से है और बम्बई की अपेक्षा नही है।

पदार्थ का स्वरूप अपनी तथा अन्य की अपेक्षा से एक साथ कहना चाहें तो किसी भी शब्द द्वारा नही कह सकते, इस कारण पदार्थ युगपत् (एक (साथ) अस्तिनास्ति रूप न कहे जाने के कारण स्यात् अवक्तव्य (न कहे जा सकने योग्य) है। जैसे दिल्ली युगपत् अपनी तथा बम्बई की अपेक्षा किसी भी शब्द से नही कही जा सकती।

पदार्थ अपने रूप से है और अपने तथा अन्य की अपेक्षा युगपत् कहा भी नहीं जा सकता यह स्यादस्ति-अवक्तव्य है। जैसे दिल्ली अपने रूप से तो है परन्तु इसके साथ युगपत् स्व-पररूप से अवक्तव्य भी है।

पदार्थ अन्य पदार्थ की अपेक्षा नही है इसके साथ ही युगपत् स्व-पर की अपेक्षा अवक्तव्य है, यह स्यात् नास्ति अवक्तव्य भग है। जैसे दिल्ली नगर बम्बई की अपेक्षा नही है और युगपत् अपनी तथा बम्बई की अपेक्षा न कहे जा सकने के कारण अवक्तव्य भी है।

पदार्थ क्रम से अपनी अपेक्षा से है तथा अन्य की अपेक्षा से नहीं है एव युगपत् स्व-पर की अपेक्षा से अवक्तव्य है। जैसे दिल्ली अपनी अपेक्षा से है, बम्बई की अपेक्षा से नही है तथा युगपत् स्व-पर की अपेक्षा अवक्तव्य है।

सप्तभङ्गी की ये सातो भगें कथचित् (किसी एक दृष्टिकोण से) की अपेक्षा तो सत्य प्रमाणित होती हैं इसी कारण इनके साथ स्यात् पद लगाया जाता है, यदि इनको स्यात् न लगाकर सर्वथा (पूर्ण रूप से) माना जावे तो ये भगें मिथ्या होती हैं। कहा भी है।

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥

इसका अर्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है।

इस प्रकार स्यात् पद लगाकर सात भंगो के कहने के सिद्धान्त को ही 'स्याद्वाद' कहते हैं।

पंच भावाः ॥१७॥

अर्थ—जीव के असाधारण (जीव के सिवाय अन्य किसी द्रव्य मे न पाये जाने वाले) भाव पाच हैं। १—औपशमिक, २—क्षायिक, ३—क्षायोपशमिक ४—औदयिक और ५—पारिणामिक।

औपशमिको द्विविध ॥१८॥

अर्थ—जो भाव कर्मों के उपशम होने से (सत्ता में बठ जाने से) जो कुछ

समय के लिए निर्मल होते हैं सो औपशमिक भाव हैं। उनके दो भेद हैं १ सम्यक्त्व, २ चारित्र।

अनादि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधीक्रोध, मान माया लोभ इन पाच प्रकृतियों तथा सादि मिथ्या-दृष्टि के मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति और अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात कर्मो के उपशम होने से उपशम सम्यक्त्व होता है।

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ के सिवाय चारित्र मोहनीय कर्म की २१ प्रकृतियों के उपशम होने से उपशम चारित्र (ग्यारहवें गुणस्थान में) होता है।

क्षायिको नवविधः ॥१६॥

कर्मों के सर्वथा क्षय हो जाने पर जो आत्मा के पूर्ण शुद्ध भाव होते हैं वे क्षायिक भाव हैं। क्षायिक भाव के ६ भेद हैं। १ ज्ञान (केवल ज्ञान), २ दर्शन (केवल दर्शन), ३ क्षायिक दान, ४ क्षायिक लाभ, ५ क्षायिक भोग, ६ क्षायिक उपभोग, ७ क्षायिक वीर्य (अनन्त बल), ८ क्षायिक सम्यक्त्व और ९ क्षायिक चारित्र।

ये क्रम से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय (५ तरह का) तथा दर्शन, चारित्र मोहनोय के क्षय हो जाने से प्रगट हो जाते हैं।

अष्टादशविध क्षायोपशमिक ॥२०॥

अर्थ—कर्म के सर्वघाती स्पर्द्धको के उदयाभाव रूप क्षय (उदय होते हुए भी फल न देना), अन्य बद्ध सर्वघाती स्पर्द्धकों का सत्ता में उपशम तथा देशघातीस्पर्द्धकों के उदय होने पर जो भाव होते हैं उन्हे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। उनके १८ भेद हैं—

१—मतिज्ञान, २—श्रुतज्ञान, ३—अवधिज्ञान, ४—मनपर्यय ज्ञान, ५—कुमति ६—कुश्रुत, ७—कुअवधि, ८—चक्षुदर्शन, ९—अचक्षु दर्शन, १०—अवधिदर्शन, ११—दान, १२—लाभ, १३—भोग, १४—उपभोग, १५—वीर्य, १६—सम्यक्त्व, १७—चारित्र और १८—संयमासंयम।

पहले के ७ भेद ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से, उसके बाद के ३ भेद दर्शनावरण के क्षयोपशम से, फिर आगे के ५ भाव अन्तराय के क्षयोपशम से और अन्तिम तोन भेद क्रम से दर्शन मोहनोय तथा चारित्र मोहनीय (प्रत्याख्यानावरण, अप्रत्याख्यानावरण) के क्षयोपशम से होते हैं।

औदयिकमेकविंशतिर्भेदः ॥२१॥

जो भाव कर्मों के उदय से होते हैं वे औदयिक भाव हैं, सक्षेप से उनके २१ भेद है।

१—मनुष्यगति, २—देवगति, ३—तिर्यञ्चगति, ४—नरकगति, ५—क्रोध, ६—मान, ७—माया, ८—लोभ, ९—पुरुषवेद, १०—स्त्री वेद, ११—नपुसकवेद, १२—मिथ्यात्व, १३, अज्ञान, १४—असयम, १५—असिद्ध, १६—कृष्ण, १७—नील, १८—कापोत, १९—पीत २०—पद्म, २१—शुक्ल (लेश्या)। ये नाम कर्म, मोहनीय, कर्म ज्ञानावरण, तथा सर्व सामान्य कर्मों (असिद्ध) के उदय होने से होते हैं।

पारिणामिकस्त्रिविध : ॥२२॥

आत्मा के जो स्वाधीन स्वाभाविक (कर्म-निरपेक्ष) भाव होते हैं वे पारिणामिक भाव है। उसके ३ भेद है। १—जीवत्व, २—भव्यत्व, ३—अभव्यत्व। चेतनामयत्व जीवत्व है। मुक्त हो सकने की योग्यता भव्यत्व है और मुक्ति प्राप्त न हो सकने योग्य की योग्यता अभव्यत्व है।

गुणजीवसार्गणस्थानानि प्रत्येकं चतुर्दशः ॥२३॥

अर्थ—गुणस्थान, जीवस्थान और मार्गणा ये तीनो प्रत्येक १४-१४ प्रकार के हैं।

मिच्छोसासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरता पमत्त इदरो अपुव्व आणियट्ठ सुहुमो य।
उवसतखीणमोहो सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।
चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा॥

अर्थ—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोग केवली, ये १४ गुणस्थान है।

मोहनीय कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम से तथा योगो के कारण जो जीव के भाव होते हैं उनको गुणस्थान कहते है।

शुद्ध बुद्ध अखण्ड अमूर्तिक, अनन्तगुण-सम्पन्न आत्मा का तथा वीतराग सर्वज्ञ अर्हंत भगवान प्ररूपित तत्व, द्रव्य, पदार्थ, अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु तथा जिनवाणी की श्रद्धा न होना, मिथ्यात्व गुणस्थान है। यह मिथ्यात्व कर्म के उदय से होता है। एकान्त, विपरीत, विनय, सशय, अज्ञान रूप भाव इस गुणस्थानवर्ती के होते है।

अनन्तानुबन्धी - सम्बन्धी क्रोध पत्थर पर पड़ी हुई लकीर के समान दीर्घकाल तक रहनेवाला, मान पत्थर के स्तम्भ के समान न झुकनेवाला, एक दूसरे मे गुथी हुई बांस की जड़ो के समान कुटिल माया और मजीठ के रंग के समान अमिट लोभ होता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व - वाले व्यक्ति के जब इनमें से किसी भी कषाय का उदय हो जावे तब उसका सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है किन्तु (कम से कम) एक समय और अधिक से अधिक ६ आवली काल प्रमाण जबतक मिथ्यात्व का उदय नही हो पाता उस बीच की दशा मे जो आत्मा के परिणाम होते हैं वह सासादन गुणस्थान है। जैसे कोई मनुष्य पर्वत से गिर पड़ा हो किन्तु जब तक पृथ्वी पर न पहुच पाया हो।

सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से जो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के मिले हुए मिश्रित परिणाम होते है जैसे दही और खाड मिला देने पर एक विलक्षण स्वाद होता हैं जिसमे न दही का स्वाद आता है, न केवल खांड का ऐसे ही मिश्रगुणस्थान वाले के न तो मिथ्यात्व रूप ही परिणाम होते हैं, न केवल सम्यक्त्व रूप परिणाम होते है किन्तु दोनों भावो के मिले हुए विलक्षण परिणाम हुआ करते हैं। इस गुणस्थान मे न तो कोई आयु बन्धती है और न मरण होता है, जो आयु पहले बाध ली हो उसी के अनुसार सम्यक्त्व या मिथ्यात्व भाव प्राप्त करके मरण होता है।

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन सात प्रकृतियो के उपशम होने से, क्षय होने से, या क्षयोपशम होने से जो उपशम, क्षायिक या, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है किन्तु अप्रत्याख्यानावरण के उदय से जिसको अणुव्रत भी नही होता वह अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान है। यानी—व्रत रहित सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान वाला होता है। इस गुणस्थान-वाला सांसारिक भोगो को विरक्ति के साथ भोगता है।

सम्यग्दृष्टि जीव को जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय, जिसका क्रोध पृथ्वी की रेखा के समान होता है, के क्षयोपशम से अणुव्रत धारण करने के परिणाम होते हैं तब उसके देशविरत नामक पांचवां गुणस्थान होता है। यह पांच पापो का एक देश त्याग करके ११ प्रतिमाओ मे से किसी एक प्रतिमा का चारित्र पालन करता है।

दंणवय सामाइय पोसह सचित्तराइभत्ते य।
बम्भारम्भपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य॥

यानी—दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तविरक्त, रात्रि-भोजन-त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग ये पांचवें गुणस्थान वाले की ११ प्रतिमाएं (श्रेणिया) है, इनका स्वरूप पीछे चरणानुयोग मे लिख चुके हैं।

धूलिकी रेखा के समान प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि का क्षयोपशम हो जाने पर जब महाव्रत का आचरण होता है किन्तु जल रेखाके समान क्रोधादि वाली सज्वलन कषाय तथा नोकषायो के उदय से चारित्र में मैल रूप प्रमाद भी होता रहता है, तब छठा प्रमत्त गुणस्थान होता है। ४ विकथा (स्त्रीकथा भोजन कथा, राष्ट्र कथा, अवनिपाल कथा), चार कषाय [क्रोध मान माया लोभ], ५ इन्द्रिय तथा नीद और स्नेह ये १५ प्रमाद हैं।

महाव्रती मुनि जब संज्वलन कषाय तथा नोकषाय के मद उदय से प्रमाद रहित होकर आत्मनिमग्न ध्यानस्थ होता है तब अप्रमत्त नामक सातवा गुणस्थान होता है। इसके दो भेद हैं। १—स्वस्थान अप्रमत्त [जो सातवें गुणस्थान मे ही रहता है, ऊपर के गुणस्थानो मे नही जाता, २—सातिशय-जो ऊपर के गुणस्थानो से चढता है।

अनन्तानुवन्धी क्रोध मान माया लोभ के सिवाय चारित्र मोहनीय कर्म की २१ प्रकृतियो के उपशम करने के लिए अथवा क्षय करने के लिए श्रेणी चढते समय जो प्रथम शुक्लध्यान के कारण प्रतिसमय अपूर्व परिणाम होते हैं वह अपूर्वकरण नामक आठवा गुणस्थान है।

अपूर्वकरण गुणस्थान मे कुछ देर [अन्तर्मुहूर्त] ठहरकर अधिक विशुद्ध परिणामोवाला नौवा अनिवृत्ति गुणस्थान होता है। इसमे समान समयवर्ती मुनियो के एक समान ही परिणाम होते हैं। इस गुणस्थान मे ९ नोकषायो का तथा अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान-आवरण कषाय सम्बन्धी क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया, इन २० चारित्र मोहनीय कर्म प्रकृतियो का उपशम या क्षय होकर केवल स्थूल सज्वलन लोभ रह जाता है। इस गुणस्थान का समय भी अन्तर्मुहूर्त है।

तदनन्तर उससे अधिक विशुद्ध परिणामोवाला सूक्ष्मसाम्पराय नामक १० वा गुणस्थान होता है, इसमे स्थूल सज्वलन लोभ सूक्ष्म हो जाता है।

उपशम श्रेणी चढने वाले मुनि १०वे गुणस्थान मे अन्तर्मुहूर्त रहकर तदनन्तर सज्वलन सूक्ष्म लोभ को भी उपशम करके ११वे गुणस्थान उपशान्त मोह में पहुंच जाते है। यहा पर उनके विशुद्ध यथाख्यात चारित्र हो जाता है,

राग द्वेष क्रोध आदि विकार नहीं रहते, वीतराग हो जाते हैं। परन्तु अन्तमुहूर्त पीछे ही उपशम हुआ सूक्ष्म लोभ फिर उदय हो जाता है तब उपशांत मोहवाले मुनि उस ११वे गुणस्थान से भ्रष्ट होकर क्रम से १०वें, ९वें, ८वे आदि गुणस्थानो मे आजाते है।

जो मुनि क्षपक श्रेणी पर चढते है वे १०वें गुणस्थान से सूक्ष्म लोभ का भी क्षय करके क्षीणमोह नामक १२वे गुणस्थान मे पहुँच जाते हैं। वहां उन्हें वीतराग पद, विशुद्ध यथाख्यात चारित्र सदा के लिए प्राप्त हो जाता है। उन्हें उस गुणस्थान से भ्रष्ट नही होना पड़ता।

८वे से ११वे गुणस्थान तक वाली उपशम-श्रेणी तथा ८वे गुणस्थान से १२वे गुणस्थान तक [११वें गुणस्थान के सिवाय] क्षपकश्रेणी का काल अन्तर्मुहूर्त है और उन प्रत्येक गुणस्थान का काल भी अन्तर्मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्त के छोटे वडे अनेक भेद होते हैं।

दूसरे शुक्लध्यान एकत्ववितर्क अवीचार के वल से १२वे गुणस्थान वाला वीतराग मुनि जब ज्ञानावरण और दर्शनावरण अन्तराय कर्म का भी समूल क्षय कर देता है तब अनन्तज्ञान [केवल ज्ञान], अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य प्रगट होता है, यह सयोग केवली नामक तेरहवां गुणस्थान हैं। मोहनीय कर्म के नष्ट होने से अनन्तसुख होता है। इस तरह केवली अर्हन्त भगवान अनन्त चतुष्टय-धारक सर्वज्ञ वीतराग होते हैं। उनके भाव मन योग नही रहता। काययोग के कारण उनका विहार होता है और वचन-योग के कारण उनका दिव्य उपदेश होता हैं। दोनो कार्य इच्छा विना स्वयं होते हैं।

आयु कर्म समाप्त होने से कुछ समय पहले जब योग का निरोध भी हो जाता है तब १४ वां अयोग केवली गुणस्थान होता है। अ इ उ ऋ लृ इन पांच ह्रस्व अक्षरो के उच्चारण मे जितना समय लगता हैं उतना समय इस गुणस्थान का काल है। इस गुणस्थान मे शेष समस्त अघाति कर्मो का नाश करके मुक्त हो जाते हैं।

मुक्त हो जाने पर द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित होकर सिद्ध अन्तिम शरीर से कुछ कम आकार [अमूर्तिक] मे हो जाते हैं। और आत्मा के समस्त गुण विकसित हो जाते हैं। तदनन्तर एक ही समय में ऊर्ध्व गमन करके लोक के अग्रभाग मे पहुंचकर ठहर जाते हैं। फिर उनको जन्म मरण आदि नही होता। अनन्तकाल तक अपने परम विशुद्ध स्वाधीन सुखानुभव मे निमग्न रहते हैं।

समस्त ससारी जीवो को जो सक्षेप से बतलाने की विधि हे उसको **'जीवसमास'** कहते हैं। (समस्यन्ते सक्षिप्यन्ते जीवा येषु यैर्वा ते जीवसमासा) जीवसमास के १४ भेद है–

१ एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त, २ एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त, ३ एकेन्द्रिय वादर पर्याप्त, ४ एकेन्द्रिय वादर अपर्याप्त, ५ दोइन्द्रिय पर्याप्त, ६ दोइन्द्रिय अपर्याप्त, ७ तीनइन्द्रिय पर्याप्त, ८ तीन इन्द्रिय अपर्याप्त, ९ चार इन्द्रिय पर्याप्त, १० चार इन्द्रिय अपर्याप्त, ११ पचेन्द्रिय सज्ञी पर्याप्त, १२ पचेन्द्रिय सज्ञी अपर्याप्त, १३ पचेन्द्रिय असज्ञी पर्याप्त, १४ पचेन्द्रिय असज्ञी अपर्याप्त।

पर्याप्त अपर्याप्त जीवो का स्वरूप आदि आगे कहा जायगा, अतः यहा पर नही देते।

जिनके द्वारा समस्त जीवो को ढूढा जावे, उनकी खोज की जावे [मृग्यन्ते जीवा. यासु याभिर्वा ता मार्गणा] उनको मार्गणा कहते है, वे १४ हैं —

गइ इंदियं च काये जोए वेए कषायणाणे य।
संजमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥

यानी—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कपाय, ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, सज्ञी और आहार ये १४ मार्गणाऐ है।

द्विविधमेकेन्द्रियम् ॥२४॥

अर्थ—एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के है—१ वादर, २ सूक्ष्म।

वादरसुहुमुदयेण य बादरसुहुमा हवंति तद्देहा।
घादसरीरं थूलं अघाददेहं हवे सुहुमं ॥१३॥
तद्देहमंगुलस्स य असंखभागस्स विंदमाणं तु।
आधारे थूलाओ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ॥१४॥

यानी—बादर नाम कर्म के उदय से बादर और सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से सूक्ष्म शरीर होता है। जो शरीर दूसरे को रोके तथा दूसरे द्वारा रुके वह बादर शरीर है। जो शरीर दूसरे से न रुके तथा स्वय दूसरे को न रोके वह सूक्ष्म शरीर है। अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण उन बादर सूक्ष्म जीवो का शरीर होता है। बादर एकेन्द्रिय जीव किसी के आधार से रहते है किन्तु सूक्ष्म जीव सब जगह है, बिना आधार के रहते हैं।

विकलत्रयम् ॥१५॥

अर्थ—विकलेन्द्रिय जीवों के ३ भेद हैं—

१—दोइन्द्रिय, २—तीन इन्द्रिय, ३—चार इन्द्रिय। जिनके स्पर्शन रसना इन्द्रिय होती हैं वे दो इन्द्रिय जीव हैं जैसे जोंक शंख सीपी। जिनके स्पर्शन रसना, घ्राण होती है वे तीन इन्द्रिय जीव हैं जैसे खटमल जूं आदि। जिनके स्पर्शन रसना घ्राण और चक्षु होती है वे चार इन्द्रिय जीव हैं जैसे—मक्खी मच्छर आदि।

एकेन्द्रिय जीव स्पर्शनइन्द्रिय से अधिकसे अधिक चार सौ धनुष (४ हाथ का एक धनुष) दूरवर्ती पदार्थ को जान सकता है। दो इन्द्रिय ८०० धनुष, तीन इन्द्रिय १६०० धनुष और चार इन्द्रिय जीव ३२०० धनुष दूर के पदार्थ को स्पर्शन इन्द्रिय से जान सकते हैं। दो इन्द्रिय जीव रसना इन्द्रिय द्वारा ६४ धनुष दूरवर्ती पदार्थ को जान सकता है, तीन इन्द्रिय जीव १२८ धनुष और चार इन्द्रिय जीव २५६ धनुष दूर तक रसना इन्द्रिय से जान सकता है। तीन इन्द्रिय जीव सौ धनुष दूरवर्ती पदार्थ को घ्राण से जान सकता है, चारइन्द्रिय जीव २०० दो सौ धनुष दूर के पदार्थ को घ्राण से जान सकता है। चार इन्द्रिय जीव चक्षु इन्द्रिय से अधिक से अधिक २९५४ योजन दूरवर्ती पदार्थ को देख सकता है।

पंचेन्द्रिया द्विविधाः ॥२६॥

अर्थ–पंचेन्द्रिय जीवो के दो भेद हैं–१ संज्ञी, २ असंज्ञी। जो मन द्वारा शिक्षा, क्रिया, आलाप (शब्द का सकेत) ग्रहण कर सकें वे संज्ञी हैं। जैसे देव मनुष्य नारकी, हाथी घोड़ा, सिंह, कुत्ता बिल्ली आदि। जो शिक्षा क्रिया आलाप ग्रहण करने योग्य मन से रहित होते हैं वे असंज्ञी हैं। चार इन्द्रिय तक सब असंज्ञी होते है पंचेन्द्रियो मे जलका सर्प और कोई कोई तोता असंज्ञी होता है।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपनी स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु इन्द्रिय द्वारा चार इन्द्रिय जीव से दुगुनो दूरके पदार्थ को जान सकता है। उसकी कर्णइन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय ८००० धनुष दूर का है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय की स्पर्शन, रसना घ्राण इन्द्रियों का उत्कृष्ट विषय ९-९ योजन दूरवर्ती है, कर्ण इन्द्रिय का १२ योजन का है और नेत्र इन्द्रिय का ४७२६३ ७/२० योजन है।

षट् पर्याप्तयः ॥२७॥

अर्थ—पर्याप्ति (शक्ति) ६ हैं।

आहारसरीरिंदिय पज्जत्ती आणपाणभासमणो।
चत्तारि पंच छप्पिय एइंदियवियलसण्णीणं ॥

यानी—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्‌वास, भाषा और मन ये ६ पर्याप्तिया हैं। एकेन्द्रिय जीव के पहली ४ और दो इन्द्रिय से असैनी पंचेन्द्रिय तक के जीवो के मन के सिवाय शेष ५ तथा संज्ञी पचेन्द्रिय के ६ पर्याप्ति होती हैं। एक शरीर छोडकर दूसरा शरीर जिन नोकर्म वर्गणाओ से बनता है (जैसे गर्भाशय मे रजवीर्य) उन वर्गणाओ को खल (गाढा कठोर) तथा रस रूप कर देने की शक्ति को आहार पर्याप्ति कहते है। खल भाग को हड्डी रूप करने तथा रस भाग को खून वनानेरूप शक्ति को शरीर पर्याप्ति कहा गया है। इन्द्रिय रूप रचना की शक्ति को इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वास लेने निकालने की शक्ति को श्वास-उश्वास पर्याप्ति, वचन रूप शक्ति को भाषा पर्याप्ति, तथा द्रव्यमनरूप बनाने की शक्ति को मन पर्याप्ति कहते हैं।

ये पर्याप्तिया अन्तर्मुहूर्त मे पूर्ण हो जाती हैं, जिन जीवो की पर्याप्तियां पूर्ण हो जाती हैं वे **पर्याप्तक** कहे जाते हैं। जिनकी पर्याप्तियां पूर्ण नही होती, अधूरी होती हैं वे अपर्याप्तक होते हैं। अपर्याप्तक जीव दो प्रकार के हैं—१ निर्वृत्यपर्याप्तक—जिनकी पर्याप्तिया अधूरी हो किन्तु अन्तर्मुहूर्त मे अवश्य पूर्ण होने वाली हो। २ लब्ध्यपर्याप्तक— जिनकी सभी पर्याप्तिया अधूरी रहती हैं, पूर्ण होने से पहले ही जिनका मरण हो जाता है। शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाने पर जीव पर्याप्तक माना जाता है। सभी पर्याप्तियो का प्रारम्भ एक साथ होता है किन्तु पूर्णता क्रम से होती जाती है।

दश प्राणाः ॥२८॥

अर्थ—प्राण १० होते हैं।

पंचिवि इंदियपाणामणवचिकाएसु तिण्णि बलपाणा
आणापाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दसपाणा ॥२३॥
इंदियकायाऊणिय पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा।
वीइंदियादिपुण्णे बचोमणो सण्णिपुण्णेव ॥२४॥
दस सण्णीणं पाणा सेसागूणंतिमस्स वेऊणा।
पज्जत्तेसिदरेसु य सत्त दुगे सेसगेगूणा ॥२५॥

यानी—स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कर्ण ये पाच इन्द्रिया, मनबल, वचन वल, काय बल, श्वासोश्वास और आयु ये १० प्राण होते है। इद्रिय, काय और आयु ये तीन प्राण सभी पर्याप्त, अपर्याप्त जीवो के होते है, श्वासोश्वास पर्याप्त जीव के ही होता है। संज्ञी पचेन्द्रिय जीव के १०प्राण होते हैं, असज्ञी पचेन्द्रिय

के मन के विना ९ प्राण होते हैं। चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और दो इन्द्रिय जीवों के क्रम से एक-एक इन्द्रिय कम होते जाने से ८, ७, ६ प्राण होते हैं। एकेन्द्रिय जीवके रसना इन्द्रिय और वचन वल न होनेसे चार प्राण ही होते है। अपर्याप्तक सज्ञी असज्ञी पचेन्द्रिय के मन वल, वचन वल और श्वासोश्वास के विना शेष ७ प्राण होते है। शेप चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, एकेन्द्रिय जोवो के एक-एक इन्द्रिय कम होते जाने से क्रम से ६-५-४-३ प्राण होते हैं।

चतुरस्त्रः सञ्ज्ञाः ॥२९॥

अर्थ—जिनसे व्याकुल होकर जीव दोनो भवों मे दुख पाते है उन्हे संज्ञा कहते है। सज्ञा ४ है—१आहार (भोजन करने की इच्छा) २ भय, ३ मैथुन (काम वासना) ४ सासारिक पदार्थों से ममता रूप परिग्रह।

णट्ठपमाए पढमा सण्णा णहि तत्थ कारणभावा।
सेसा कम्मत्थित्ते णुवयारेणत्थि णहि कज्जे ॥२६॥

यानी—असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा से होने वाली आहार संज्ञा छठे गुणस्थान तक होती है, उसके आगे अप्रमत्त आदि गुणस्थानो मे आहार संज्ञा नही होती। शेप तीन संज्ञाऐ वहा उनके कारण-भूत कर्मों की सत्ता होने से उपचार से मानी गई है, कार्यरूप नही होती है, अन्यथा उन अप्रमत्तादि गुण-स्थानो मे शुक्लध्यान नही हो सकता।

गतिश्चतुर्विधा ॥३०॥

अर्थ—गति चार प्रकार की है—१ नरकगति, २ तिर्यञ्च गति, ३ मनुष्य गति और ४ देव गति।

गति नाम कर्म के उदय से होने वाली पर्याय को तथा चारों गतियो मे गमन करने के कारण को गति कहते है। जीव एक शरीर छोड कर दूसरे शरीर में गति नाम कर्मके उदय से जाता है, वहां पहुचने पर गति नाम कर्म आत्मा को उस पर्याय रूपमें रखता है।

पंचेन्द्रियाणि ॥३१॥

अर्थ—इन्द्रिय पाच है—१ स्पर्शन (चमडा त्वचा), २ रसना (जीभ), ३ घ्राण (नाक), ४ नेत्र (आख) और ५ कर्ण (कान)।

आत्मा जिसके द्वारा मतिज्ञान से जानता है या जो आत्मा के चिन्ह है (इन्द्र आत्मा, तस्य लिग-चिन्ह-इन्द्रियम्)उसे इन्द्रिय कहते है। शरीरमे जो आख नाक कान, जीभ आदि है वह द्रव्येन्द्रिय है, उन स्थानों पर जो जानने की शक्ति है वह भाव-इन्द्रिय है।

स्पर्शन इन्द्रिय अपने-अपने शरीर के आकार होती है उससे हलका, भारी, रूखा, चिकना, कडा, नर्म, ठंडा गर्म ये ८ तरह के स्पर्श जाने जाते हैं।

रसना इन्द्रिय से खट्टा, मीठा, कडवा, कषायला चर्परा ये पाच रस जाने जाते हैं उसका आकार खुरपा के समान है।

घ्राण इन्द्रिय से सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान होता है इसका आकार तिल के फूलके समान है।

चक्षु इन्द्रिय से काला पीला नीला लाल सफेद तथा मिश्रित रंगो का ज्ञान होता है इसका आकार मसूर की दाल के समान है।

कर्ण इन्द्रिय से अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक शब्द सुने जाते हैं इसका आकार गेहूँ की नाली के समान है।

षड् जीवनिकायाः ॥३२॥

अर्थ—ससारी जीव छह निकाय (समुदाय) रूप हैं–१पृथ्वी कायिक, २ जलकायिक, ३ अग्निकायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक और ६ त्रस काय।

पृथ्वी रूप शरीर वाले पृथ्वीकायिक जीव हैं जैसे पर्वत आदि, खनिज पदार्थ (सोना चादी आदि) पृथ्वीकायिक हैं। इनका आकार मसूर की दाल के समान है।

जलरूप शरीर वाले जलकायिक जीव है जैसे जल, ओला, वर्फ आदि। इनका आकार जल की बूद के समान है।

अग्नि रूप शरीर वाले जीव अग्निकायिक होते है। जैसे आग, बिजली आदि इनका आकार खडी हुई सुइयो के समान है।

वायु रूप जीव वायुकायिक हैं जैसे हवा। इसका आकार ध्वजा के समान है।

वनस्पति रूप शरीर जिनका होता है वे वनस्पतिकायिक हैं जैसे पेड-पौधे, बेल आदि। इनके आकार अनेक प्रकार के हैं।

दो इन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक जीव त्रस होते है।

एकेन्द्रिय जीवो मे सबसे बडी अवगाहना कमल की है जो कि एक हजार योजन का है। दो इन्द्रिय जीवो मे बारह योजन का शख, तीन इन्द्रियो मे तीन कोश की ग्रैष्मी (चीटी), चार इन्द्रियो मे एक योजन का भोरा और पचेन्द्रियो एक हजार योजन का स्वयम्भूरमण समुद्रवर्ती राघव मत्स्य सबसे बडी

अवगाहनावाला है। ये उत्कृष्ट अवगाहना वाले पहले चार जीव स्वयम्भूरमण [अंतिम] द्वीप मे होते है।

किन्ही आचार्य के मतसे पृथ्वीकायिक वनस्पतिकायिक तथा विकलत्रय जीवो के सासादन गुण-स्थान भी होता है। सासादन गुणस्थान मे भी मरण होता है।

त्रिविधो योगः ॥३३॥

अर्थ—मन वचन तथा शरीर की क्रिया से जो आत्मा मे हलन-चलन होती है जिससे कि कार्माण वर्गणाओ का आकर्षण [आस्रव] होता है वह योग है, उसके तीन भेद हे—१ मन, २ वचन, ३ काय।

मनयोग के ४ भेद हैं—१ सत्य, २ असत्य, ३ उभय [सत्य असत्य मिश्रित रूप] ४ अनुभय [जिसे न सत्य कह सकें, न असत्य]।

वचन योग भी चार प्रकार का है—१ सत्य, २ असत्य, ३ उभय, ४ अनुभय।

काय योग [शारीरिक योग] ७ प्रकार हैं—१ औदारिक [मनुष्य पशुओ का शरीर], २ औदारिक मिश्र [अधूरा-अपर्याप्त औदारिक शरीर] ३ वैक्रियिक [देव नारकी शरीर] ४ वैक्रियिक मिश्र [अधूरा वैक्रियिक शरीर], ५ आहारक [आहारक ऋद्धिधारक मुनि के मस्तक से प्रगट होने वाला शरीर] ६ आहारक मिश्र [अपर्याप्त आहारक शरीर] ७ कार्माण काययोग [विग्रह गति मे]। इस तरह योग के १५ भेद है।

पंचदशविधाः ॥३४॥

अर्थ—योग १५ तरह के है। सत्य मन, असत्य मन, उभयमन, अनुभय मन, ऐसे मनोयोग के चार भेद हैं। सत्य वचन, असत्य वचन, सत्यासत्य वचन, और अनुभय ये वचन के चार भेद है। औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, और कार्माण काययोग ये काय योग के सात भेद है। ये सब मिलकर १५ योग होते हैं। इनमें असत्य उभय वचन सैनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक के मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर क्षीण-कषाय पर्यन्त होते हैं। सत्य मन, सत्य वचन, अनुभय मन अनुभव वचन संज्ञो पर्याप्तक से लेकर सयोग केवली तक होता है। औदारिक काय योग स्थावर काय से लेकर सयोग केवलो तक होता है। औदारिक मिश्र योग मिथ्यादृष्टि, सासादन पुंवेद, असयत, कपाट सयोगी इन चार गुणस्थानों मे होता है। वैक्रियिक मे पहले चार गुणस्थान, वैक्रियिक मिश्र मे तीन (मिश्र

के सिवाय पहल चार) गुणस्थान होते हैं। आहारक तथा आहारक मिश्र के अन्तर्मुहूर्त्त काल प्रमत्त गुणस्थान होता है। कार्माणयोग के औदारिक मिश्र के समान चार गुणस्थान होते है।

वेदस्त्रिविधः ॥३५॥

पु वेद, स्त्री वेद तथा नपु सक वेद ये तीन प्रकार के वेद होते हैं।

नवविधो वा ॥३६॥

१—द्रव्य पुरुष-भाव पुरुष, २—द्रव्य पुरुष-भाव स्त्री, ३—द्रव्य पुरुष-भाव नपु सक, ४–द्रव्य स्त्री-भाव स्त्री, ५—द्रव्य स्त्री-भाव पुरुष, ६–द्रव्य स्त्री-भाव नपुंसक, ७—द्रव्य नपु सकभाव-नपुंसक, ८–द्रव्य नपुंसक भाव-पुरुष तथा ९ वा द्रव्य नपु सक भाव स्त्री ये ९ भेद होते हैं। इनमे से प्रथम के तीन भेद वाले को कर्म क्षय की अपेक्षा से घटित करना चाहिए।

पुरिसिच्छिसण्ढवेदोदयेन पुरिसिच्छिसंण्ढओ भावे।
णामोदयेन सव्वे पायेण समा कहिं विसमा॥
वेद्यतेइति वेद, अथवा आत्मप्रवृत्तेः संमोहात्पादो वेद।
आत्मप्रवृर्त्तेणिधुदुवन सम्मोहोत्पादो वेदः॥

घास की अग्नि के समान पु वेद है, उपले (क डे) की अग्नि के समान स्त्री वेद है तथा तपी हुई ईंटो के भट्टे की आग के समान नपुंसक वेद है। नारकी तथा सम्मूर्छन जीवो के नपु सक वेद होता है। देवो मे नपु सक नही होते। शेष सब जीवो मे तीनो वेद होते है और मिथ्यात्व गुणस्थान से अनिवृत्ति करण गुणस्थान तक वेद रहता है।

चतुःकषाया ॥३७॥

क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये चार प्रकार के कषाय होते हैं। और विशेष के भेद से अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभ तथा सज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ ये १६ कषाय होते हैं।

सम्मत्तदेससयलचरित्त जहखादचरणपरिणामे।
घादंति वा कसाया चउसोल असंखलोगमिदा ॥२८॥
सिलभूमिक उदरेखा सिल अत्थिदारुलता दवस्सेमे।
सस्सलेयणि मुत्तिलक्ख कुसुंभ हरिद्दसमा ॥२९॥

यानी—अनन्तानुबन्धी कषाय स्वरूपाचरण चारित्र तथा सम्यक्त्व का,

रखनेको नाम कहते हैं। काष्ठ, पाषाण, पुस्तक, चित्र कर्मादि में यह अमुक वस्तु है, ऐसा निश्चय करना स्थापना है। गुण पर्याय से युक्त को द्रव्य कहते हैं। वर्तमान पर्यायोपलक्षित द्रव्य को भाव कहते हैं। इसका भेद इस प्रकार है।

१—नाम जीव, २-स्थापना जीव, ३-द्रव्य जीव, तथा ४-भाव जीव, ये चार प्रकार के हैं। संज्ञा रूप से जीव का व्यवहार नाम जीव है। सद्भाव तथा असद्भाव भेदों में आकार सहित काष्ठ पाषाण प्रतिमा में यह हाथी आदि है, इस प्रकार स्थापना करना सद्भाव स्थापना है तथा शतरंज के गोटे आदि में यह हाथी आदि है, ऐसा कहकर स्थापना करना असद्भाव स्थापना जीव है। द्रव्य जीव दो प्रकार है, आगम द्रव्य जीव और नो आगम द्रव्य जीव। जीव पर्याय में उपयोग रहित जीव आगम द्रव्य जीव है।

नो आगम द्रव्य जीव तीन प्रकार का है। जाननेवाले का (ज्ञायक) शरीर, न जाननेवाला शरीर, इन दोनों से रहित। उसमें जाननेवाला शरीर आगत, अनागत तथा वर्तमान से तीन प्रकार का है।

भाव जीव दो प्रकार का है नो-आगम भाव जीव और आगम भाव जीव इसमें नो आगमभाव जीव को समझकर उपयोग से युक्त आत्मा आगम-भाव जीव है, नो आगम भाव जीव के दो भेद हैं। उपयुक्त और तत्परिणत। उसमें जीव आगम के अर्थ में उपयोग सहित जीव उपयुक्त कहलाता है। केवल ज्ञानी को तत्परिणत कहते हैं। इसी तरह अन्य पदार्थों में भी नाम निक्षेप विधि से योजना की गई है।

द्विविधं प्रमाणम् ॥६॥

प्रमाण दो प्रकार है परोक्ष और प्रत्यक्ष। शरीर इन्द्रिय प्रकाश आदि के अवलम्बन से पदार्थों को अस्पष्ट जानना परोक्ष प्रमाण है। स्व-आत्मशक्ति से स्पष्ट जानना प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पंच सज्ज्ञानि ७॥

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय ज्ञान तथा केवल ये पांच सम्यग्ज्ञान हैं। इन्हीं के द्वारा सामान्य विशेषात्मक वस्तु को संशय, विमोह, विभ्रम रहित होकर ठीक जानने के कारण तथा निरंजन सिद्धात्म निज तत्व, सम्यक् श्रद्धान जनित होने के कारण इसे सम्यग्ज्ञान कहा गया है।

त्रीणिकुज्ञानानि ॥८॥

कुमति, कुश्रुत, विभंग ऐसे तीन कुज्ञान हैं। कड़वी तुम्बी के पात्र में रक्खे हुए दूध को विगाड़ने के समान होने के कारण मिथ्या दृष्टि के उपर्युक्त ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाते हैं। पहले के कहे हुए ३ सम्यग्ज्ञानो कोमिथ्य त्व

है । अर्थात् मैंने समस्त पाप कार्यों का त्याग किया यह सामायिक चारित्र रूप है और मैंने हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह का त्याग किया वह छेदोपस्थानाचारित्र का रूप है । जिस चारित्र मे प्राणी हिंसा की पूर्ण निवृत्ति होने से विशिष्ट विशुद्धि पायी जाती है उसे परिहार विशुद्धि कहते है । जिसने अपने जन्म से तीस वर्ष की अवस्था तक सुख पूर्वक जीवन बिताया हो और फिर जिन दीक्षा लेकर आठ वर्ष तक तीर्थंकर के निकट प्रत्याख्यान नाम के नौवें पूर्व को पढा हो । उस महामुनि को परिहार विशुद्धि चारित्र होता है । उसके शरीर से किसी जीव को वाधा नही होती, अत॰ वह वर्षा काल मे भी गमन कर सकता है रात को गमन नही करता । सध्या काल को छोडकर दो कोस गमन करता है ।

इस चारित्र वाले के शरीर से जीवो का घात नही होता इसीं से इसका नाम परिहारविशुद्धि है । अत्यन्त सूक्ष्म कषाय के होने से सापराय नाम के दशवे गुणस्थान मे जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्म साम्पराय चारित्र कहते हैं । समस्त मोहनीय कर्म के उपशम से अथवा क्षय से जैसा आत्मा का निर्विकार स्वभाव है वैसा ही स्वभाव हो जाना यथाख्यात चारित्र है । इस चारित्र को अथाख्यात भी कहते हैं 'अथ' शब्द का अर्थ अनन्तर है । यह समस्त मोहनीय के क्षय अथवा उपशम होने के अनन्तर होता है अत इसका नाम अथाख्यात है तथा इसे तथाख्यात भी कहते है क्योकि जैसा आत्मा का स्वभाव है वैसा ही इस चारित्र का स्वरूप है ।

चत्वारि दर्शनानि ॥४०॥

सामान्य विशेषात्मक वस्तु के सामान्य रूप को विकल्प-रहित होकर ज्ञान से पहले प्रतिभास करने को दर्शन कहते है । इसके चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन केवल दर्शन ऐसे चार भेद हैं ।

१ चक्षुरिंद्रिय मतिज्ञान के पहले होनेवाला चक्षुदर्शन, २ शेष इन्द्रिय मतिज्ञान से पहले होनेवाला अचक्षुदर्शन है, ६ अवधिज्ञान से पहले उत्पन्न होनेवाला अधिक दर्शन कहते हैं । जैसे सूर्य निकलते ही सम्पूर्ण वस्तु एक साथ दीखने लगती है उसी तरह केवल दर्शनावरण कर्म का सम्पूर्ण क्षय होने के कारण सम्पूर्ण पदार्थ एक साथ प्रतिभासित होना केवल दर्शन है । दर्शनोपयोग का काल अन्तर्मुहूर्त होता है । यह क्रम से छद्मस्थो मे और युगपत् अर्हंत भगवान और सिद्ध भगवान मे होता है ।

चक्षुदर्शन के स्वामी चौन्द्रिय पचेन्द्रिय हैं, अचक्षु इन्द्रिय के स्वामी

एकेन्द्रिय, से पंचेन्द्रियतक अवधि दर्शन के स्वामी असंयत सम्यग्दृष्टि से क्षीण-कषाय तक होते हैं। और केवल दर्शन जिन तथा सिद्ध के होता है।

षड्लेश्याः ॥४१॥

लेश्या—कषाय के उदय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। वह अपनी आत्मा को पुण्य, पाप, प्रकृति, प्रदेश स्थिति तथा अनुभाग बन्ध का कारण है। इस प्रकार की यह लेश्या छः तरह की होती हैं उसके क्रमशः कृष्ण नील, कापोत, पीत पद्म तथा शुक्ल भेद होते है। इसमे की पहली तीन लेश्यायें अशुभ तथा नरक गति की कारण भूत है, किन्तु शेष तीन देव गति की कारण हैं। उनका लक्षण इस प्रकार है—

भौंरे के समान काला, नील के समान, कबूतर के समान, स्वर्ण के समान लाल कमल के समान और शंख के समान क्रम से कृष्ण, नील, कापोत, पति पद्म शुक्ल लेश्या के शारीरिक रंग होते हैं इस प्रकार लेश्या छः हैं। इनके प्रत्येक मे असंख्यात व संख्यात विकल्प होते है। इस प्रकार की द्रव्य लेश्या व भाव लेश्याओं से जो रहित हैं वे मुक्त कहलाते है।

लेश्याओ के २६ अंश होते हैं। उनमे से मध्य के ८ अंश आयु बन्ध के कारण हैं, शेष १८ अंश चारो गतियो मे गमन के कारण हैं।

कृष्ण, नील कापोत ये तीन अशुभ लेश्याएँ हैं इनमे से प्रत्येक के उत्तम मध्यम जघन्य तीन तीन भेद होते हैं। पीत पद्म शुक्ल लेश्या शुभ है इनमे से भी प्रत्येक के उत्तम मध्यम जघन्य तीन तीन भेद हैं, सब मिलकर १८ भेद है।

इनमे से शुक्ल लेश्या के उत्तम अंश के साथ मरकर जीव सर्वार्थसिद्धि विमान मे उत्पन्न होता है, जघन्य अश सहित रहनेवाला शतार सहस्रार विमान मे उत्पन्न होता है। मध्यम अंशो से मरने वाला सर्वार्थसिद्धि और शतार सहस्रार के बीच के विमानों मे जन्म लेता है।

पद्म लेश्या के उत्कृष्ट अंश से सहस्रार स्वर्ग मे और जघन्य अश के साथ मरकर सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग मे तथा मध्यम अंश के साथ मरा जीव सहस्रार सानत्कुमार माहेन्द्र के बीच के स्वर्गो मे जाता है।

पीत लेश्या के अंश के साथ मरकर सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के अंतिम हलेके श्रेणीबद्ध विमानों मे, या इन्द्रक विमान मे, जघन्य अश के साथ मरा हुआ जीव सौधर्म ऐशान स्वर्ग के ऋतु नामक इन्द्रक विमान या तत्सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमान मे जन्म लेता है। मध्यम अंश से मरकर दोनो के बीच मे उत्पन्न होता है।

कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अश से सातवे नरक के अवधि स्थान नामके इन्द्रक विल मे, जघन्य अश से पाचवें नरक के तिमिश्र विलमें, मध्यमें अंश से मरा हुआ बीच के नरको मे उत्पन्न होता है।

नील लेश्या के उत्कृष्ट अंश से पाचवे नरक के अन्ध्र नामक इन्द्रके विल मे, जघन्य अश से मरकर तीसरे नरक के अन्तिम पटल के संप्रज्वलित इन्द्रक विले मे और मध्यम अ श से बीच के नरको मे उत्पन्न होतो है।

कापोत लेश्या के उत्कृष्ट अ श से मरा हुआ जीव तीसरे नरक के द्विचरम पटल सज्वलित इन्द्रक विल मे, जघन्य अ श से मरकर पहले नरक के सीमन्त इन्द्रक विल मे और मध्यम अ शो से मरा हुआ जीव इनके बीच के नरक स्थानो मे उत्पन्न होता है।

इसके सिवाय अशुभ लेश्याओ के मध्यम अ श के साथ मरे हुए जीव पूर्वबद्ध आयु अनुसार कर्मभूमिज मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यञ्च होते है। पीत लेश्या के मध्यम अ श पूर्वबद्ध आयु अनुसार भोग-भूमिज मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यञ्च तथा भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देव होते हैं। कृष्ण नील कापोत पीत लेश्या के मध्यम अ शो से मरे हुए जीव मनुष्य तिर्यञ्च, भवनत्रिक, सौ-धर्म ऐशान के मिथ्यादृष्टि देव होते है। कृष्ण नील कापोत के मध्यम अंशों से मरने वाले तिर्यंच, मनुष्य, अग्निकायिक, वायुकायिक, साधारण वनस्पति विकलत्रय मे से किसी में उत्पन्न होते है।

अयदोत्ति छलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देशविरदत्ति।
एतत्तो सुक्कलेस्सा अजोगिणं अलेस्सं तु।३०।

द्विविधं भव्यत्वं ॥४२॥

भव्य और अभव्य ये भव्य मार्गणा के दो भेद हैं। उसमें सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र प्राप्त करके अनन्त चतुष्टय स्वरूप मे परिणमन करने योग्य भव्य जीव होते हैं। सम्यक्त्वादि सामग्री को न प्राप्त करके मोक्ष न जाने योग्य अभव्य जीव होते है। स्थावर काय से लेकर अयोगी केवली तक १४ गुण-स्थानो मे भव्य होते है। अभव्य मिथ्या-दृष्टि गुण-स्थानी होते हैं। सिद्ध भगवान में भव्य और अभव्य की कल्पना नही है।

षड्विधा सम्यक्त्वमार्गणा ॥४३॥

उपशम, वेदक और क्षायिक ऐसे तीन तथा मिथ्यात्व, सासादन एवं मिश्र ये तीन प्रतिपक्षी मिलकर सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद होते हैं। औप-शमिक सम्यक्त्व के उत्पत्ति निमित्त से प्रथम उपशम व द्वितीय उपशम ये दो भेद

होते हैं। उसमें मिथ्यादृष्टि को उत्पन्न होने वाला प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन है तथा वेदक सम्यग्दृष्टि को होनेवाला सम्यग्दर्शन द्वितीयोपशमिक है, किसी आचार्य के मत से उपशम श्रेणी चढनेवाले का उपशम सम्यक्त्व द्वितीय उपशम होता है, शेष प्रथम उपशम।

वह सम्यक्त्व कहां-कहा होता है, सो वतलाते हैं :—

मिथ्यादृष्टि भव्य सज्ञी पर्याप्तक गर्भज जीव लब्धि चतुष्टय इत्यादि सामग्री को प्राप्त करने के बाद त्रिकरण लब्धि को प्राप्त करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व को धारण करता है। और उसी समय अणुव्रत से युक्त होकर महाव्रत को धारण कर सकता है। भोगभूमिज, देव और नारकी को एक ही सम्यक्त्व होता है। तिर्यञ्च भी सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है। कर्मभूमि के मनुष्य को दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय होने के कारण क्षायिक सम्यग्दर्शन भी होता हैं। क्षायिक सम्यक्त्वी जन्म-मरण के अधीन नही होते, अधिक से अधिक तीन भव धारण कर मुक्त हो जाते हैं। उपशम सम्यक्त्व की स्थिति अन्तर्मुहूर्त होती है। और उपशम भाववाला जीव उपशम सम्यक्त्व के काल मे अनन्तानुबन्धी चारों कषायों मे से किसी एक के उदय मे आते ही सम्यक्त्व रूपी शिखर से पतित होकर मिथ्यात्वरूपी भूमि को जबतक प्राप्त नही होता है। उस अन्तरालवर्ती समय मे उसको सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसका जघन्य काल एक समय होता है और उत्कृष्ट काल छह आवली प्रमाण होता है। तत्पश्चात् यंत्र मे डाले हुए तार के समान दर्शन मोहनीय कर्म मे से मिथ्यात्व का उदय होता है तब वह मिथ्यात्व को प्राप्त होता है उसमे वह जघन्य से अन्र्मुहूर्त तक रहकर गुणान्तर को प्राप्त होता है। और उत्कृष्ट से अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल तक संसार सागर मे परिभ्रमण किया करता है। दुर्गति को लेजाने का मूल कारण केवल मिथ्यात्व होता है। पुन. सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होते हुए उसमे रहने के पश्चात् मिथ्या दृष्टि अथवा असयत सम्यग्दृष्टि होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्व मिश्रित श्रद्धान भाव होता है। इस गुणस्थान मे मरण नही होता।

सम्यक् प्रकृति के उदय होने केबाद गदे पानी मे फिटकरी मिलनेसे जैसे कुछ मैल नीचे बैठ जाता है उसी प्रकार सम्यक् प्रकृति के उदय के कारण चल, मलिन तथा अगाढ परिणाम रूप वेदक सम्यग्दृष्टि होता है। यह क्षयोपशम सम्यक्त्व जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से ६६ सागरोपम है। तदनुसार इस सम्यक्त्व वाला देवगति और मनुष्य गति मे जन्म लेकर अभ्युदय सुख का अनुभव करके ६६ सागरोपम काल प्रमित आयु व्यतीत करता है।

किस-किस कल्प मे कितनी-कितनी आयु होती है सो कहते हैः—लान्तव कल्प मे १४, अच्युतकल्प मे २२, उपरिमग्रैवेयक मे ३१ सागरोपम आयु है। पर फिर भी वेदक सम्यग्दृष्टि अपनी अपनी आयु मे हीन होते हैं। इसके पश्चात् वेदक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी चढने के योग्य होने के कारण पहले अनन्तानुबन्धी का विसयोजन करते है। पुनः अध करण अपूर्वकरण अनिवृत्ति-करण द्वारा दर्शन मोहनीय की तीनो प्रकृतियो को उपशम करते हुए द्वितीयो-पशम सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते है, तब उपशम श्रेण्यारूढ होकर ग्यारहवे गुण-स्थान में पहुच जाते हैं परन्तु उनके कषाय फिर उदय हो जाते है अत वे ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे के १० वे ६ वे आठवें गुणस्थानो मे क्रमश आ जाते हैं। कोई कोई श्रेणीवाला आयु न होने के कारण लेश्या के वश मरण को भी प्राप्त होता है।

परिहार विशुद्धि, मन पर्ययज्ञान, प्रथमोपशमक को नही होते, बल्कि द्वितीयोपशम में होता है। और दर्शन मोहनीय क्षपण का प्रारम्भ कर्म भूमि के मनुष्यो को चौथे असयत गुणस्थान मे होता है। वे तीर्थंकर के पादमूल मे अथवा श्रत केवली के पादमूल मे रहकर अनन्तानुबन्धी तथा दर्शन-मोहनीय-त्रिक का क्षय करते हैं। सो इस प्रकार है :—

योग्य निर्वाण क्षेत्र, काल, भव, आयु इन सबके साथ-साथ शुभलेश्या की वृद्धि, कषाय की हानि इत्यादि युक्त होने के निमित्त से अनतानुबन्धी को अप्रत्याख्यान प्रकृति रूप करते है फिर सम्यग्मिथ्यात्व पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृति को नि शेष क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते है। क्षायिक सम्यक्त्व असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर सिद्ध भगवान तक रहता है। उपशम-सम्यक्त्व उपशात कषाय गुणस्थान तक होता ह। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-मिश्र, सासादन सम्यक्त्व अपने अपने गुणस्थान मे ही होते है। क्षायिक सम्यद्दृष्टि जन उसी भव तक अथवा तीन भव तक अथवा ज्यादा से ज्यादा चार भव तक ही ससार मे रह सकते है। उनकी ससार की अपेक्षा से स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त तथा आठ वर्ष कम दो कोटि पूर्व सहित ३३ सागरोपम होती है। सिद्ध भगवान के क्षायिक सम्यक्त्व का अन्त नही होता हैं। वेदक उपशम सम्यक्त्वी ज्यादा से ज्यादा अर्ध पुद्गल तक ससार निवास करता है।

देवसु देव मणुवे सु रणर तिरिये चदुग्गदि।
'पिकद करणिज्जुप्पत्ति कमसो अंत मुहुत्तेण ॥३१॥

दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृति का क्षय करने के बाद सम्यक्त्व

प्रकृति को पूर्ण रूप से क्षय करके यदि आयु एक अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहे तो देव गति मे जाकर जन्म लेता है। दो अन्तर्मुहूर्त्त शेष हो तो देव और मनुष्य गति में उत्पन्न होता है। तीन अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर देव, मनुष्य तथा तिर्यंगति मे उत्पन्न होता है। चार अन्त मुहूर्त शेष रहने पर क्रमशः चतुर्गतियो में उत्पन्न होता है। यदि उसे वेदक सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय तो अधिक से अधिक अर्द्ध पुद्गल परावर्तन पर्यन्त संसार मे रहता है।

द्विविधं संज्ञित्वम् ॥४४॥

अर्थ—संज्ञी और असज्ञी, ये दो प्रकार के जीव होते हैं। इनमे मन सहित जीवो को संज्ञी और मन रहित जीवो को असज्ञी कहते हैं। एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय जीव-असंज्ञी होते हैं। पंचेन्द्रियो मे देव नारकी और मनुष्य संज्ञी होते हैं।

शका—मन का काम हिताहित की परीक्षा करके हित को ग्रहण करके अहित को छोड देना है, इसको सज्ञा कहते हैं। अतः जब संज्ञा और मन दोनों का एक ही अभिप्राय है तो सज्ञी और समनस्क का मतलव एक ही है तो फिर सूत्र मे "सज्ञि" क्यों कहा ?

समाधान—संज्ञा शब्द के अनेक अर्थ है। संज्ञा नाम को भी कहते हैं। अत जितने नामवाले पदार्थ हैं वे सभी सज्ञी कहलायेगे। संज्ञा ज्ञान को भी कहते हैं और ज्ञान सभी जीवो मे पाया जाता है, अतः सभी सज्ञी कहे जायँगे। भोजन इत्यादि की इच्छा का नाम भी संज्ञा है, जोकि सभी जीवो मे पाई जाती है, अतः सभी सज्ञी हो जायँगे। इसलिए जिसके मन है उसी को सज्ञी कहना उचित है। दूसरे गर्भअवस्था मे, मूर्च्छित अवस्था मे, हित-अहित का विचार नही होता। अतः उस अवस्था मे संज्ञी जीव भी असंज्ञी कहे जायँगे। किन्तु मन के होने से उस समय भी वे सज्ञी हैं, अतः संज्ञी समनस्क दोनों पदों को रखना ही उचित है।

एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक सभी जीव असज्ञी हैं। संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त सभी जीव संज्ञी हैं और केवली भगवान समनस्क हैं, द्रव्य मन की अपेक्षा अमनस्क नही हैं।

आहारोपपोगश्चेति ॥४५॥

आहार के दो भेद हैं। १—आहारक, २—अनाहारक।

औदारिक वैक्रियिक आहारक इन तीन शरीरो तथा ६ पर्याप्तियो के योग्य पुद्गल वर्गणाओ को ग्रहण करना आहार है। गर्म लोहे का गोला जैसे

पानी में रख देने से अपने चारो ओर के पानी को खीच लेता है, उसी प्रकार आत्मा अपने चारों ओर की नोकर्म पुद्‌गल वर्गणाओ को खीच लेता है। यही आहार कहलाता है। उस नोकर्म वर्गणा का आहार मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली भगवान तक होता है। कुछ लोग इसका अर्थ विपरीत समझकर सर्वज्ञ भगवान "कवलाहार करते हैं" ऐसा कहते हैं, सो गलत है। आहार के भेद बतलाते है:—

नोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो।
ओजमणोवि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो ॥३२॥
नोकम्मकम्महारो जीवाणं होदि चउगइगयाणं।
कवलाहारो नरपसु रुक्खेसु य लेप्पमाहारो ॥३३॥
पक्खीण ओजहारो अंडयमज्झेसु वड्ढमानाणं।
देवेसु मनोहारो चउविसाणट्ठिदी केवलिणो ॥३४॥
नोकम्मकम्महारो उदियारेण तस्स आयामे।
भणियानहु णिच्चयेन सो विहुलियए वापारो जम्हा ॥३५॥

अर्थ—आहार छह प्रकार का होता है—१–नोकर्म आहार, २–कर्माहार, ३–कवलाहार, ४–लेप्याहार, ५–ओजाहार, ६—मानसिक आहार। इनमे से नोकर्मआहार (शरीर के लिये नोकर्म वर्गणाओ का ग्रहण) तथा कर्माहार (कर्म का आस्रव) तो चारो गतियो के जीवो के होता है। कवलाहार (भूख मिटाने के लिए अन्न फल आदि का भोजन) मनुष्य और पशुओ के होता है। वृक्षो के लेप्याहार (जल मिट्टी का लेप रूप खाद) होता है। अण्डे मे रहनेवाले पक्षी आदि का ओजाहार (अपनी माता के शरीर की गर्मी-सेना) होता है। देवो के मानसिक आहार (भूख लगने पर मन मे भोजन करने का विचार करते ही गले में से अमृत झरता है और भूख शान्त हा जाती है) होता है।

अनाहारक (शरीर और पर्याप्तियो के लिए आहार वर्गणा ग्रहण न करने वाले जीव) कौन से होते है सो बतलाते हैं –

विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा।

यानी—एक शरीर छोडकर दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिए जाने वाले विग्रहगति वाले चारो गति के जीव, प्रतर और लोकपूर्ण समुद्‌घात वाले केवली तथा सिद्ध परमेष्ठी अनाहारक होते है, शेष सब जीव आहारक होते हैं।

उपयोगश्चेति ॥४७॥

अर्थ—उपयोग के भी १२ भेद हैं।

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खुअचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥३७॥
णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुद ओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्ख परोक्ख भेयंच ॥३८॥

यानी—उपयोग के मूल दो भेद हैं—दर्शन और ज्ञान। इनमें से दर्शन उपयोग के ४ भेद हैं—१-चक्षु दर्शन (नेत्रद्वारा होनेवाले ज्ञान से पहले पदार्थ की सत्तामात्र का प्रतिभास होना), २—अचक्षु दर्शन (नेत्र इन्द्रिय के सिवाय शेष चार इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान के पहले पदार्थों की सत्तामात्र का प्रतिभास होना), अवधिदर्शन (अवधिज्ञान के पहले पदार्थों की सत्तामात्र का प्रतिभास होना), ४-केवल दर्शन (केवल ज्ञान के साथ-साथ त्रिलोक त्रिकालवर्ती पदार्थों की सत्तामात्र का प्रतिभास होना)।

ज्ञान उपयोग आठ प्रकार का है। १-मतिज्ञान, २—श्रुतज्ञान, ३—अवधिज्ञान, ४-कुमति, ५-कुश्रुत, ६-कुअवधि, ७—मनपर्यय, ८—केवल ज्ञान। इनमें से मति, श्रुत, कुमति, कुश्रुत ये ४ ज्ञान परोक्ष हैं क्योंकि इन्द्रिय मन आदि के सहारे से होते हैं—अस्पष्ट होते हैं। अवधि, कुअवधि और मनपर्यय ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष हैं और केवल ज्ञान पूर्ण प्रत्यक्ष है।

पहले गुणस्थान में कुमति, कुश्रुत, कुअवधि (विभंग अवधि) ज्ञान, चक्षु, अचक्षु दर्शन ये पांच उपयोग होते हैं। मिश्र गुणस्थान में मिश्रित पहले तीनो ज्ञान उपयोग होते हैं। चौथे पांचवें गुणस्थान में मति, श्रुत, अवधिज्ञान, चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन ये ६ उपयोग होते हैं। छठे गुणस्थान से १२वें गुणस्थान तक केवल ज्ञान के सिवाय ४ ज्ञान और केवल दर्शन के सिवाय ३ दर्शन ये ७ उपयोग होते हैं। १३वे, १४वे गुणस्थान मे केवल ज्ञान, केवल दर्शन ये २ उपयोग होते हैं।

इनमे से केवल ज्ञान केवल दर्शन साक्षात् उपादेय है।

गुणजीवापज्जत्ती पाणा सण्णागइंदिया काया ।
जोगावेदकसाया णाणजमा दंसणालेस्सा ॥३९
भव्वा सम्मत्ताविय सण्णी आहारगाय उवजोगा
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु समुदायं ॥४०॥

यानी—गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, सज्ञा, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, सज्ञी, आहार, उपयोग इनको यथायोग्य गुणस्थानो तथा मार्गणाओ मे प्ररूपण करना चाहिए ।

पुद्गलाकाशकालद्रव्यास्रवाश्च प्रत्येकं द्विविधाः ॥४८॥

अर्थ—पुद्गल, आकाश, कालद्रव्य, और आस्रव प्रत्येक दो दो प्रकार क हैं । पूरण और गलन स्वभाव वाला पुद्गल द्रव्य है इसके परमाणु और स्कन्ध ये दो भेद है । पुद्गल का सबसे छोटा टुकडा (जिसका और टुकडा न हो सके) परमाणु है । परमाणु में कोई एक रस, कोई एक गन्ध, कोई एक रग और रूखा, चिकना में से एक तथा ठडा, गर्म मे से एक, इस तरह दो स्पर्श ये पाच गुण होते है । अनेक परमाणुओ का मिला हुआ पिण्ड 'स्कन्ध' कहलाता है ।

कहा भी है

एयरसवण्णगंधा दो फासा खंध कारणमखंधं ।
खंधतरिदं दव्वे परमाणुं त वियाणाहि ।

यानी—एक रस, एक वर्ण, एक गध, दो स्पर्श वाला परमाणु होता है, वह स्वय स्कन्ध नही है किन्तु स्कन्ध का मूल कारण है ।

दो परमाणुओ का स्कन्ध द्वि-अणुक कहलाता है । अनन्त परमाणुओ का पिण्ड **अवसन्नासन्न** होता है । ८ अवसन्नासन्न का एक **सन्नासन,** ८ सन्नासन्न का एक **त्रसरेणु,** ८ त्रसरेणु का एक **रथरेणु,** ८ रथरेणु का एक उत्तमभोगभूमिज के वालका अग्रभाग, उन आठ बालाग्र भागो का एक मध्यम भोगभूमिजका एक बालाग्र भाग, उन ८ बालाग्र भागो का जघन्य भोगभूमिज का बालाग्र भाग, उन ८ बालाग्र भागो का एक कर्मभूमिज का बालाग्र भाग होता है । उन आठ बालाग्र भागो की एक लीख होती है, आठ लीखो की एक सरसो, ८ सरसो का एक जौ, ८ जो का एक उत्सेधागुल होता है । जीवो के शरीर की ऊचाई, देवो के नगर, मन्दिर आदि का परिमाण इसी अ गुल के अनुसार होता है । ५०० उत्सेधागुल का एक प्रमाणागुल (भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती का अ गुल) होता है । प्रमाणागुल के अनुसार महापर्वत, नदी, द्वीप, समुद्र आदि का परिमाण बतलाया गया है । अपने अपने काल के अनुसार भरत ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यो का जो अंगुल होता है, उसे आत्मागुल कहते हैं । इस अंगुल से झारी, कलश, धनुष, ढोल, छत्र आदि का परिमाण बतलाया जाता है । ६ अगुल का एक पाद, २ पाद की एक वालिस्त, २ बालिस्त का एक हाथ, ४ हाथ

का एक धनुष, २००० धनुष का एक कोश, और ४ कोश का एक योजन होता है। २००० कोश का एक महायोजन होता है।

स्कन्ध के भेद—

स्कन्ध ६ प्रकार का है—बादर बादर, २—बादर, ३—बादर सूक्ष्म, ४—सूक्ष्मबादर, ५—सूक्ष्म, ६—सूक्ष्म सूक्ष्म।

जिन वस्तुओ के अलग अलग टुकड़े हो सके जैसे लकडी पत्थर आदि पार्थिव (पृथ्वी जन्य) पदार्थ बादर बादर है। जल दूध आदि पदार्थ अलग करने पर भी जो फिर मिल जाते हैं वे बादर हैं। जो नेत्रो से दिखाई दे किन्तु जिसे पकड़ न सकें, जिसके टुकड़े न किये जा सके, वे बादर सूक्ष्म हैं जैसे छाया। नेत्र के सिवाय चार इन्द्रियो के विषय, (रस, गन्ध, शब्द, वायु आदि का स्पर्श) जो दिखाई नही न दे सकें वे सूक्ष्म बादर हैं, जैसे शब्द, वायु, सुगन्ध दुर्गन्ध। जो स्कन्ध किसी भी इन्द्रिय से न जाने जा सके वे सूक्ष्म हैं जैसे कार्माण स्कन्ध। परमाणु को सूक्ष्म सूक्ष्म कहते हैं।

परमाणु को सर्वावधिज्ञान तथा केवल ज्ञान जान सकता है। स्निग्ध (चिकना) तथा रूक्ष गुण के कारण परमाणुओ का परस्पर मे बन्ध होकर स्कन्ध बनता है। बन्ध होनेवाले दो परमाणुओ मे से एक में स्निग्ध या रूक्ष गुण के दो अविभाग प्रतिच्छेद अधिक होने चाहिए।

पुद्गल द्रव्य की १० पर्यायें होती हैं—१—शब्द, २—बन्ध, ३—सूक्ष्मता, ४—स्थूलता, ५—संस्थान (आकार), ६—भेद (टूटना टुकड़े होना), ७—अन्धकार, ८—छाया, ९—उद्योत (शीत प्रकाश) १०—आतप (उष्ण प्रकाश)।

आकाश के दो भेद हैं—१—लोकाकाश, २—अलोकाकाश।

आकाश के बीच मे लोक ३४३ घनराजु प्रमाण, १४ राजु ऊंचा है, उत्तर से दक्षिण को सब जगह ७ राजु मोटा है, पूर्व से पश्चिम को नीचे ७ राजु चौड़ा, फिर घटते घटते ७ राजु की ऊंचाई पर एक राजु चौड़ा, उससे ऊपर क्रम से बढ़ते हुए साढ़े तीन राजु की ऊंचाई पर पांच राजु चौड़ा, फिर वहां से घटते हुए ३॥ राजु की ऊंचाई पर एक राजु चौड़ा रह गया है। नीचे के सात राजु में अधोलोक है। उसके ऊपर सुमेरु पर्वत की ऊंचाई (९९ हजार योजन) तक मध्य लोक है उसके ऊपर ऊर्ध्व लोक है। लोकाकाश मे १४ राजु ऊंची, एक राजु लम्बी चौडी त्रस नाली या त्रस नाड़ी है, इसमे त्रस स्थावर जीव रहते हैं उससे बाहर केवल स्थावर जीव रहते हैं, त्रस जीव नही रहते। पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, जीव द्रव्य लोकाकाश मे ही रहते हैं

(लोक्यन्ते जोवादयो यत्र स लोक)। लोकाकाश के बाहर सब ओर अनन्त अलोकाकाश है। वहा आकाश के सिवाय अन्य कोई द्रव्य नही होता।

काल द्रव्य

निश्चयकाल और व्यवहार काल से काल के दो भेद हैं।

निश्चय काल-आदि मध्य अन्त से रहित यानी अनादि-अनन्त है। और अमूर्त, अवस्थित है, अगुरुलघु गुणवाला है। जीवादि पदार्थो की वर्तना का निमित्त कारण है। लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर एक एक कालाणु रत्न की राशि के समान रहता है। जो प्रदेश है वह परमाणु का क्षेत्र है। कालद्रव्य लोकाकाश के प्रदेश जितना है, उतना ही रहता है। उस परमार्थकाल के आश्रय से समय आवली उश्वास, स्तोक, लव, घडी, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सरादि भेद से व्यवहार काल वर्तता है।

परमाणु लोकाकाश मे अपने साथ वाले दूसरे प्रदेश पर मन्द गति से जितने काल मे जाता है वह समय है। समय घटा, घडी दिन इत्यादि व्यवहार काल है। असख्यात समय की एक आवली, असख्यात आवली का एक उछ्वास, सात उच्छवास से एक स्तोक होता है। सात स्तोक का एक लव, ३८॥ साडे अडतीस लव की एक घडी, दो घडी का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्त का एक दिन, पन्द्रह दिन का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतुओ का एक अयन, दो अयन का एक सवत्सर, पाच सवत्सर का एक युग, दो युग के दश वर्ष, इस प्रकार आगे आगे दश गुणे करते जायें तो १००, १०००, अयुत, लक्ष, प्रयुत, करोड़, अर्व, पद्म, खर्व, निखर्व, तथा महापद्म, शख, समुद्र, मद्य, अत्य, परमान्त्य, परम करोड ऐसी सख्या आती हैं। उससे आगे बढते बढते सख्यात, असंख्यात, और अनन्त होते हैं। वहा श्रुत केवली का विषय उत्कृष्ट सख्यात है, उससे ऊपर बढ़ते २ जो असख्यात हैं वह अवधि ज्ञान विषय है। सर्वावधि ज्ञान के विषय से आगे अनन्त है। वह अनन्त प्रमाण केवल ज्ञान का विषय है। णकादाग, कुमुदाग, कुमुद, चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वाङ्ग और चौरासी लाख पूर्वाङ्ग का एक पूर्व होता है।

पद्माग, पद्म, नलिनाग, नलिन, कमलांग, कमल, त्रुट्याग त्रुट्य, अटटांग, अटट, अममांग, अमम, हाहाग, हाहा, हू हू अग, हू हू, लताग, महात्मता इस प्रकार सख्यायें हैं। उपर्युक्त कही हुई सख्या को चौरासी लाख, के साथ अनुक्रम से गुणाकार करते जाने से लुत्पल लुत्पल राशियो को शीर्ष, प्रकपित,

हुस्तप्रहेलित, अचलात्मकत्व संज्ञा से कहा गया काल वर्ष गणना से संख्यात होता है। यह गणना प्रमाण संख्या है।

जो गणनातीत है वह पल्योपम आदि असख्यात है। पल्योपम सागरोपम सूच्यंगुल, प्रतरागुल, घनागुल, जगतश्रेणी, लोकप्रतर, लोकपूरण ये आठ प्रमाण होते हैं। यह समस्त केवल प्रत्यक्ष ज्ञान गोचर हैं इनको कोई उपमा देने योग्य वस्तु न होने से उपमातीत कहा है। अथवा उपमा प्रमाण भी कहा है।

पल्यों का प्रमाण—

पल्य के तीन भेद हैं— १–व्यवहार पल्य, २—उद्धार पल्य, ३—अद्धापल्य।

प्रमाणागुल के अनुसार एक योजन गहरा तथा एक योजन लम्बा चौड़ा गोल एक खड्डा खोदा जावे, फिर उत्तम भोगभूमि की मेड़ के ७ दिन के बच्चे के कोमल बाल काट कर, उनके इतने बारीक टुकड़े किये जावे कि उन का दूसरा टुकड़ा न हो सके, उन रोम खंडो (बालो के बारीक टुकड़ो) से उस खाड़े को अच्छी तरह ठूंस कर भर दिया जावे। फिर प्रत्येक रोम खंड को १००-१०० वर्ष पीछे उस गड्ढे मे से निकाला जावे, जितने समय मे वह गड्ढा खाली हो जावे उतने समय को **व्यवहार पल्य** कहते हैं।

यदि उन रोम खंडो को उस गड्ढे मे फिर भर दे और प्रत्येक रोमखंड को असख्यात कोटि वर्ष पीछे निकालते जावे तो वह खड्डा जितने समय मे खाली हो जावे उतने समय को **उद्धार पल्य** कहते हैं। उद्धार पल्य के समयों को २५ कोड़ा कोड़ी (करोड़ × करोड़ = कोड़ा कोड़ी) से गुणा करने पर जितने समय आवें उतने द्वीप सागर मध्य लोक में हैं।

उद्धार पल्य के समयो को असख्यात वर्ष के समयो से गुणा करने पर जितने समय आवे उतना एक **अद्धा पल्य** होता है। कर्मों की स्थिति इसी अद्धा पल्य के अनुसार होती है।

दश कोड़ा कोड़ी व्यवहार पल्यो का एक व्यवहार सागर होता है। दश कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्यों का एक उद्धार सागर होता है। दश कोड़ा कोड़ी अद्धा पल्यों का एक अद्धा सागर होता है।

अद्धापल्य की अर्द्धच्छेद रशिका विरलन करके प्रत्येक पर अद्धापल्य रख कर सब का परस्पर गुणा करने से जो राशि होती है उसे **सूच्यंगुल** कहते हैं। सूच्यंगुल के वर्ग को **प्रतरांगुल** कहते हैं। सूच्यंगुल को तीन वार गुणा करने से जो राशि आवे वह **घनांगुल** है। पल्यकी अर्द्धच्छेद राशि के असंख्यातवे

भाग का विरलन करके प्रत्येक के ऊपर घनांगुल रखकर परस्पर गुणा करने से जो राशि आवे वह **जगत्श्रेणी** है। जगत्श्रेणी का सातवाँ भाग **राजू** है। जगत्श्रेणी का जगत्श्रेणी से गुणा करने पर जगत्प्रतर होता है। जगत्श्रेणी के घन को **लोक** कहते हैं। दश कोडा कोडी सागरो का एक उत्सर्पिणी काल होता है। अवसर्पिणी काल का भी उतना ही प्रमाण होता है। उन दोनो को मिलाने से कल्प नामक काल होता है।

बेदळखिळ भोगदायुव। कळेवरोछ्रोति वृद्धियुत्सर्पिणियोळ।
वलमुं भोगमुमायुं। कळेवरोछ्रोतियुमिळिगुमवर्सपिणीयोळ् ।१३।

आस्रव के दो भेद हैं—१ भावास्रव, २ द्रव्यास्रव।

जो शुभाशुभ परिणाम हैं वह भावास्रव हैं। उस भावास्रव के निमित्त से प्रति समय कार्माण स्कन्ध रूप समय-प्रबद्ध का आना द्रव्यास्रव है। इस द्रव्यास्रव को परिहार करने के लिये परम अत्यन्त सुखमूर्ति रूप निरास्रव सहजात्म-भावना को भाना चाहिए।

बंधहेतवः पंचविधाः ॥४८॥

अर्थ—पांच मिथ्यात्व, पाच अविरत, पद्रह प्रमाद, चार कषाय, और ३ योग ये पाच भावास्रव के कारण हैं। स्त्री कथा, भोजन कथा, राष्ट्र कथा, अवनिपाल कथा ये चार विकथा, क्रोध आदि चार कषाय, स्पर्शनादि इन्द्रिय पांच, स्नेह, निद्रा ये पन्द्रह प्रमाद हैं।

विकथाश्च कषायाख्यस्नेहनिद्राश्चतुश्चतु ।
पंचकैकाक्षसंचारे प्रमादाशीतिबंधका ।१७।

यानी—स्त्री कथा, भोजन कथा, अर्थ कथा, राज कथा, चोर कथा, वैर कथा, पर-पाखडि कथा, देश कथा, भाषा कथा, गुण वध कथा, विकथा, निष्ठुर कथा, पैशून्य कथा, कदर्प कथा, देश कालानुचित कथा, भड कथा, मूर्ख कथा, आत्म-प्रशसा कथा, पर-परिवाद कथा, पर जुगुप्सा कथा, पर पीडा कथा, भड कथा कलह कथा, परिग्रह कथा, कृष्यादि व्यापार--कथा, सगीत कथा, वाद कथा, इस प्रकार पच्चीस विकथायें हैं। सोलह कषाय,हास्यादि नव नोकषाय इस प्रकार ये पच्चीस कषाये हैं। स्पर्शनादि छह इन्द्रिय, स्त्यानगृद्ध्यादि पाच निद्रा स्नेह मोह, प्रणय दो इस प्रकार ये सब मिलकर त्रेषट प्रमाद होते है। उसके अक्ष-सचार से ३७५०० भेद होते हैं। अथवा पन्द्रह प्रमाद के अन्तर्भाव होकर चार भेद वाले होते हैं।

मिच्छत्तं अविरमणं कषायजोगा य आसवा होंति।
पणबारस पणवीसा पण्णरसा होंति तब्भेदो ।४१।

मिथ्यात्व के भेद—एकात मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व ये पाँच मिथ्यात्व के भेद होते हैं। उसमे उत्पाद व्यय, ध्रौव्यात्मक जीव अजीवआदि,द्रव्य,शरीर इन्द्रिय आदि ये एक समय के बाद अनेक प्रकार से भिन्न भिन्न रूप मे उत्पन्न होते है, इन सभी को नित्य ही कहना या इनको क्षणिक ही कहना, या किसी पात्र मे या किसी भोजनादि मे पड़े तो उसे पवित्र मानना इत्यादि एकात पक्ष को लेकर मानने वाले बौद्धादिक के दुर्नया-भास एकांत मिथ्यात्व है।

सदोष देव को सत्य देव कहना, बाल, उन्मत्त तथा पिशाच-गृहीत के समान आचरण करने वाले योगी के आचरण को ही योगीका लक्षण मानना तथा 'हिंसादिक से होने वाले पशु के मास खाने मे दोष नही है' कहना या इसको हिंसा नही मानना ये सभी विपरीत मिथ्यात्व है।

देव, राजा, माता, पिता, तपस्वी, शास्त्रज्ञ, वृद्ध बालक इत्यादि सभीको गुरुत्व भाव का भेद न करके सुवर्ण दान देकर इन सभी को समान भाव से अर्थात् गुरु की दृष्टि रखकर मन,वचन, और काय से विनय करना विनय मिथ्यात्व है।

बंध,मोक्ष, बध कारण, मोक्ष कारण, ये संसार के कारण हैं या मोक्ष के कारण हैं इत्यादि शंका करना इसको सशय मिथ्यात्व कहते है।

अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर निर्जरा बंध मोक्ष ये नव पदार्थ इन सबको किसने देखा है, इस तरह अपने मन में मिथ्याविश्वास करके अपने माने हुए अज्ञान दर्शन को ही प्रमाण मानना इसका नाम अज्ञान मिथ्यात्व है।

एयंत बुद्धदरसी विवरीयो बम्हतावसो विणओ।
इंदोवि य संसइयोम क्कडियो चेव अण्णाणी।४२।

अर्थ—बुद्ध दर्शन एकान्त, ब्राह्म बिपरीत, तापारी विनय, इन्द्र संशय और मस्करी अज्ञान मिथ्यात्वी है।

षड् जीव निकाय-संयम, षड् इद्रिय-संयम, ये संयम के १२ भेद होते और सोलह कषाय नौ नोकषाय, ये सभी मिलकर पच्चीस कषाय होते हैं। पन्द्रह प्रकार के योग होते है। ये सभी मिलकर ५७ भावास्रव होते हैं। अब ये किस २ गुणस्थान मे होते हैं सो बतलाते है—

पणवण्णं पण्णासं तिदाल छादाल सत्ततिसाया।
चवुवीसदुबावीसा सोलस रागूणजावणव सत्ता।४३।

पणवण्णं—५७ मे आहारक के २ घटाने से मिथ्यादृष्टी मे ५५ शेष रहते है। पराणास—५ मिथ्यात्व के घटाने से सासादन मे ५० शेष रहते हैं। तिदाल अनन्तानुबन्धी के ४ तथा औदारिकमिश्र,वैक्रियिक मिश्र, कार्माण योगत्रय इन सातो को घटाने से सम्यग्यिथ्यादृष्टि के ४३ शेष रहते हैं। पहले में घटाये हुए औदारिक मिश्र, वैक्रियिक सिश्र, कार्मांण काय, ये योगत्रय, ऊपर के ४३ तेतालीस मे मिलाने से असयतके ४६ भेद होते हैं। सत्ततिसाय—उनमे, प्रत्याख्यान, चतुष्क, वैक्रियक मिश्र, कार्माण का ययोगत्रय, तीन असयम इन नौ को घटाने से देश सयत में ३७ बच जाते है। चवुवीस—बचे हुए शेष ग्यारह सयम तथा प्रत्याख्यान चतुष्क, इन पद्रह को घटाकर तथा आहारक दो को मिला देने से प्रमत्त सयम मे २४ चौवीस शेष रहते हैं। दुवावीसं—आहारक तथा आहारक मिश्र दो को घटाने से अप्रमत्त, अपूर्व गुणस्थान मे २२ बावीस शेष रहते हैं।

सोलस—हास्यादि छह नोकषायो को २२ बावीस मे घटा देने से अनिवृत्ति करण के पूर्व भाग मे १६ सोलह शेष रहते हैं।

जावनब—नौवें मे जो पहले कहे हुए १६ सोलहमे नपु सक वेद, स्त्री वेद, पुरुष वेद, क्रोध, मान, माया के अनिवृत्ति करण के शेष भाग मे सूक्ष्म लोभ नाम के नवम मे क्रम से घटाने से शेष १५ पद्रह रहते हैं। १५, १३, १२, ११, १०, ६, ऊपर के गुणस्थान मे मन के चार वचन के चार औदारिक योग के नौ, सत्यानुभय मनोयोग, सत्यानुभय, वाक्योग, औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्मण काययोग ऐसे सात सयोग केवली मे होते है।

बंधश्चतुर्विधः ।४६।

प्रत्येक आत्म-प्रदेश मे सिद्ध राशिके अनन्तवे भाग प्रमाण तथा अभव्य राशि के अनन्तगुणे प्रमित अनन्त कार्माण परमाणु प्रतिक्षण बध मे आने वाला प्रदेश बध है, वह योगसे होता है। स्थिति और अनुभाग-बध कषायो से होते हैं।

अष्ट कर्माणि ।५०।

कर्म तीन प्रकार का है—द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नो कर्म। पौद्गलिक कार्माण वर्गणाऐं जो आत्मा से सबद्ध हो जाती हैं वह द्रव्य-कर्म है। उस द्रव्य कर्म के निमित्त-कारणभूत आत्मा के शुभ अशुभ परिणाम भाव कर्म है। औदारिक आदि तीन शरीर और ६ पर्याप्तियो को बनाने वाला नोकर्म है।

द्रव्य कर्म के मूल-प्रकृति, उत्तर-प्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृति इस तरह तीन प्रकार के भेद हैं।

मूल प्रकृति—

ज्ञानावरण; दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय इस तरह प्रकृति वधद प्रकार का है। उसमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाति कर्म हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघाति कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म ज्ञान को ढकने वाला है जिस तरह दीपक को घड़े से ढक दिया जावे उसके समान है। दर्शनावरण कर्म आत्मदर्शन नहीं होने देता। जैसे सूर्य के ऊपर मेघ आच्छादित होने से सूरज दिखाई नही देता। वेदनीय कर्म सुख दुःख दोनों को कराता है। जैसे खड्ग धारा में लगी हुई शहदकी बूंद को चाटते हुए जीभ कटकर सुख दुःख दोनों ही होते हैं। मोहनीय कर्म संसार में मोहित कर देता है। जैसे शराब पीने वाला मनुष्य। आयु कर्म जीव को शरीरमें रोक देता है लोह की जंजीर से दोनों पांव फंसे हुए बैठे मनुष्य के समान। नाम कर्म अनेक तरह शरीर बना देता है। जैसे चित्रकार अनेक तरह के चित्र तैयार करता है। गोत्र कर्म उच्च और नीच कुल से उत्पन्न करा देता है। जैसे कुम्भकार वर्तनों का। अन्तराय कर्म अनेक विघ्नो को करता है। जैसे भंडारी दानमे विघ्न करता है।

ज्ञानावरणीयं पंचविधम् ।५१।

मति ज्ञानावरण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मन. पर्यय ज्ञानावरण तथा केवल ज्ञानावरण ये ज्ञानावरण के पांच भेद हैं।

इसमें इन्द्रियों तथा मन से अपने २ विषयों को जानना मतिज्ञान है। उसको विस्मृत करने वाला मतिज्ञानावरण है। मतिज्ञान से जाने हुए अर्थ के आधार से अन्यार्थ को जानना श्रुत ज्ञान है। इसको विस्मृत करने वाला श्रुत ज्ञानावरण है। रूपी द्रव्य को प्रत्यक्ष रूप से जानना अवधि ज्ञान है और उसको विस्मरण करने वाला अवधि ज्ञानावरण है। किसी अन्य के मन मे रहने वाले विषय को जानना मन: पर्यय ज्ञान है और उसको विस्मरण करने वाला मनः पर्यय ज्ञानावरण है। त्रिकाल गोचर अनन्त पदार्थों को युगपत जान लेना केवल ज्ञान है। इसको विस्मृत करने वाला केवल ज्ञानावरण है। इस प्रकार ज्ञानावरण के पांच भेद हैं।

दर्शनावरणीयं नवविधम ।५२।

दर्शनावरण के ९ भेद हैं—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि।

जो चक्षुदर्शन को ढके वह चक्षुदर्शनावरण है, जो अचक्षुदर्शन को न होने दे वह अचक्षुदर्शनावरण है। जो अवधि दर्शन को ढक देता है वह अवधि दर्शनावरण है। केवल दर्शन को जो प्रगट नही होने देता वह केवल दर्शनावरण है।

जिसके उदय से नीद आती है वह **निद्रा** कर्म है। जिसके उदय से जागकर तत्काल फिर सो जावे वह **निद्रानिद्रा** कर्म है। जिसके कारण बैठे-बैठे नीद आ जावे, कुछ सोता रहे, कुछ जागता-सा रहे वह **प्रचला** है। जिसके उदय से सोते हुए मुख से लार बहती रहे, हाथ पैर भी चलते रहे व **प्रचलाप्रचला** है। जिसके उदय से ऐसी भारी बुरी नीद आती है कि सोते सोते अनेक कार्य कर लेता है, सोते हुए दौड भाग भी लेता है, किन्तु जागने पर उसको कुछ स्मरण नही रहता।

वेदनीयं द्विविधम् ।५३।

वेदनीय कर्म के दो भेद है—साता, असाता। साता वेदनीय कर्म के उदय से इन्द्रिय-जन्य सुख के साधन प्राप्त होते हैं और असाता वेदनीय कर्म के उदय से दु खजनक सामग्री मिलती है।

मोहनीयमष्ट विशंति विधम् ।।५४।।

मोहनीय कर्म के मूल दो भेद है—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं–मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति।

चारित्र मोहनोय के दो भेद हैं कषाय, नोकषाय। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये—१६ कषाय हैं।

नो कषाय मोहनीय के ६ भेद हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय तथा जुगुप्सा स्त्री वेद, पुंवेद, नपुंसक वेद।

मिथ्यात्व के उदय से अदेवो मे देवत्व भाव, अधर्म मे, धर्म भावना, तत्व मे अतत्व भाव होता है, यह सभी मिथ्यात्व भावना है। सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से तत्वो मे तथा अतत्व मे समान भाव होता है, मिले हुए भाव होते हैं। यह सम्यग्मिथ्यात्व है। सम्यक् प्रकृति के उदय से आगम, पदार्थ का श्रद्धान होता है किन्तु सम्यक्त्व मे चल मल दोष होते है।

अनतानुवंधी क्रोध पत्थर की रेखा के समान, मान पत्थर के स्तम्भ के समान, माया बांस की जड के समान, लोभ तिमि रग के कवल के समान होकर

ये सभी सम्यक्त्व को नाश करने वाले हैं। अप्रत्यानख्यान क्रोध, काली पृथ्वी की रेखाके समान, मान हड्डी के खंभके समान, माया मेढे के सीग के समान, लोभ नील कपडेके समान, ये सभी अणुव्रत का घात करते हैं। प्रत्याख्यान क्रोध धूलि रेखाके समान हैं। मान बास समान है। माया गोमूत्रके समान है। लोभ मलीन अर्थात् कीचड़ में रंगी हुए साड़ी के समान है। ये महाव्रतों को नही होने देते हैं। संज्वलन क्रोध जल रेखा के समान है। मान बेत की लकड़ी के समान है। माया चमरी बाल के समान है। लोभ हलके रंग की साड़ी के समान है, ये यथाख्यात चारित्र को उत्पन्न नही होने देते हैं। इस प्रकार ये सोलह भेद कषाय कर्म के हैं।

स्त्री वेद—पुरुष के साथ रमने की इच्छा को उत्पन्न करता है।

पुंवेद—स्त्री के साथ रमने की इच्छा की उत्पन्न करता है।

नपुंसक वेद—स्त्री और पुरुष दोनो से रमने की इच्छा को उत्पन्न करता है।

हास्य—हास्य (हसी) को उत्पन्न करता है।

रति—प्रेम को उत्पन्न करता है।

अरति—अप्रीति को उत्पन्न करता है।

शोक—दु.ख को उत्पन्न करता है।

भय—अनेक प्रकार के भय को उत्पन्न करता है।

जुगुप्सा—ग्लानि को उत्पन्न कर देता है। इस तरह ये नोकषाय हैं।

दर्शन मोहनीय मे से मिथ्यात्व का उदय पहले गुणस्थान मे होता है, सम्यक् मिथ्यात्व का उदय तीसरे गुणस्थान मे और सम्यक् प्रकृति का उदय (वेदक सम्यक्त्व की अपेक्षा) चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है।

अनन्तानुबन्धी आदि सभी कषाय पहले गुणस्थान मे, दूसरे गुणस्थान मे अनन्तानुबंधी अव्यक्त होती है। चौथे गुणस्थान मे अनन्तानुबन्धी का उदय नही होता, अप्रत्याख्यानावरण का उदय पांचवे गुणस्थान मे नही होता, प्रत्याख्याना-वरण का उदय छठे गुणस्थान मे नही होता, नोकषाय नौवे गुणस्थान तक रहती हैं। सज्वलन कषाय दशवे गुणस्थान तक रहती है।

आयुष्यं चतुर्विधं ।५५।

आयु कर्म के ४ भेद हैं नरक आयु, तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु और देवायु। जो जीव को नारकी भव मे रोके रखता है वह नरकायु है। तिर्यञ्चों के शरीर मे रोके रखने वाला तिर्यञ्च आयु है, मनुष्य के शरीर मे आत्मा को

रोके रखने वाला मनुष्य आयु है और देव पर्याय मे रोक रखने वाला देवायु कर्म है।

द्विचत्वारिंशद्विधं नाम ।५६।

नाम कर्म के ४२ भेद है। जैसे—गति, जाति, शरीर, बंधन, सघात, सस्थान, अगोपाग, सहनन, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास निःश्वास, विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक अपर्याप्तक प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दु स्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण तथा तीर्थंकर नाम से पिंडापिंड प्रकृति भेद रूप नाम कर्म के ४२ भेद हैं।

विशेषार्थ—जिसके उदय से जीव दूसरे भव मे जाता है उसे गति कहते है। उसके चार भेद हैं—नरक गति, तिर्यंगति, मनुष्य गति और देव गति। जिसके उदय से जीव के नारक भाव हो वह नरक गति है। ऐसा ही अन्य गतियो का भी स्वरूप जानना। उन नरकादि गतियो मे अव्यभिचारी समानता के आधार पर जीवो का एकीकरण जिसके उदय से हो वह जाति नाम कर्म है। उसके पाच भेद हैं—एकेन्द्रिय जाति नाम, दो इन्द्रिय जाति नाम, तेइन्द्रिय जाति नाम, चौ इन्द्रिय जाति नाम और पचेन्द्रिय जाति नाम। जिसके उदय से जीव एकेन्द्रिय कहा जाता है वह एकेन्द्रिय जाति नाम है। इसी तरह शेष मे भी लगा लेना। जिसके उदय से जीव के शरीर की रचना होती है वह शरीर नाम है। उसके पाच भेद हैं— औदारिक शरीर नाम, वैक्रियिक शरीर नाम, आहारक शरीर नाम नाम, तैजस शरीर नाम और कार्मण शरीर नाम। जिसके उदय से औदारिक शरीर की रचना होती है वह आदारिक शारीर नाम है, इस तरह शेष को भी समझ लेना। जिसके उदय से अग तथा उपाग का भेद प्रकट हो वह अंगोपाग नाम कर्म है। उसके तीन भेद हैं—औदारिक शरीर अंगापाग नाम, वैक्रियिक शरीर अंगोपाग नाम, आहारक शरीर अगोपाग नाम। जिसके उदय से अग उपाग की रचना हो वह निर्माण है। इसके दो भेद हैं—स्थान निर्माण और प्रमाण निर्माण। निर्माण नाम कर्म जाति के उदय के अनुसार चक्षु आदि की रचना नाम कर्म के उदय से ग्रहण किये हुये पुद्गलो का परस्पर मे मिलना जिस कर्म के उदय से होता है वह बन्धन नाम है। जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरो की आकृति बनती है वह सस्थान नाम है। उसके छ भेद हैं—जिसके उदय से ऊपर, नीचे तथा मध्य मे शरीर के अवयवो की समान विभाग

रूप से रचना होती है उसे समचतुरस्र संस्थान नाम कहते हैं। जिसके उदय से नाभि के ऊपर का भाग भारी और नीचे का पतला होता है जैसे वट का वृक्ष, उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नाम कहते हैं। स्वाति यानी वाम्बी की तरह नाभि से नीचे का भाग भारी और ऊपर दुबला जिस कर्म के उदय से हो वह स्वाति संस्थान नाम है। जिसके उदय से कुबड़ा शरीर हो वह कुब्जक संस्थान नाम है। जिसके उदय से बौना शरीर हो वह वामन संस्थान नाम है। जिसके उदय से विरूप अंगोपांग हो वह हुंडक संस्थान नाम है। जिसके उदय से हड्डियों के बन्धन मे विशेषता हो वह सहंनन नाम है। उसके भी छै भेद हैं—वज्र ऋषभ नाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्ध नाराच संहनन, कीलित संहनन और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नाम। जिसके उदय से ऋषभ यानी वेष्टन, नाराच यानी कीलें और संहनन यानी हड्डियां वज्र की तरह अभेद्य हों वह वज्र ऋषभ नाराच संहनन नाम है। जिसके उदय से कील और हड्डियाँ वज्र की तरह हो और वेष्टन सामान्य हो वह वज्र नाराच संहनन नाम है। जिसके उदय से हाड़ो मे कीलें हो वह नाराच संहनन नाम है। जिसके उदय से हाड़ो की सन्धियां अर्ध कीलित हों वह अर्ध नाराच संहनन नाम है। जिसके उदय से हाड़ परस्पर मे ही कीलित हो अलग से कील न हो, वह कीलित संहनन नाम है। जिसके उदय से हाड़ केवल नस, स्नायु वगैरह से बंधे हों वह असंप्राप्तासृपाटिका संहनन है। जिसके उदय से शरीर मे स्पर्श प्रकट हो वह स्पर्श नाम है। उसके आठ भेद हैं—कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, स्निग्ध नाम, रूक्षनाम, शीतनाम, उष्णनाम। जिसके उदय से शरीर में रस प्रगट हो वह रस नाम है। उसके पांच भेद हैं--तिक्तनाम, कटुकनाम, कषाय नाम, आम्लनाम, मधुरनाम। जिसके उदय से शरीर मे गन्ध प्रकट हो वह गन्धनाम है। उसके दो भेद हैं—सुगन्धनाम और दुर्गन्ध नाम। जिसके उदय से शरीर में वर्ण यानी रंग प्रकट हो वह वर्ण नाम है। उसके पांच भेद हैं—कृष्ण वर्ण नाम, शुक्ल वर्णनाम नील वर्णनाम, रक्तवर्ण नाम और पीत वर्णनाम। जिसके उदय से पूर्व शरीर का आकार बना रहे वह आनुपूर्व्य नाम कर्म है। उसके चार भेद हैं—नरक गति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम और देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। जिस तरह मनुष्य या तिर्यंच मर करके नरक गति की ओर जाता है तो मार्ग में उसकी आत्मा के प्रदेशो का आकार वैसा ही बना रहता है जैसा उसके पूर्व शरीर का आकार था जिसे वह छोड़कर आया है, यह नरकगति प्रायोग्यापूर्व्यनाम कर्म का कार्य है। इसी तरह अन्य आनुपूर्वियों का कार्य जानना।

आनुपूर्वी कर्म का उदय विग्रह-गति मे होता है। जिसके उदय से शरीर न तो लोहे के गोले की तरह भारी हो और न आक की रुई की तरह हल्का हो वह अगुरुलघु नाम है। जिसके उदय से जीव के अगोपाग अपना घात करने वाले बने वह उपघात नाम है। जिसके उदय से दूसरे के घात करने वाले सीग आदि अंगोपाग बनें वह परघात नाम है। जिसके उदय से आतपकारी शरीर हो वह आतप नाम है। इसका--उदय सूर्य के बिम्ब मे जो बादर पर्याप्त पृथिवी कायिक जीव होते हैं उन्ही के होता है। जिसके उदय से उद्योतरूप शरीर हो वह उद्योत नाम है। इसका उदय चन्द्रमा के बिम्ब मे रहने वाले जीवो के तथा जुगुनु वगैरह के होता है। जिसके उदय से उच्छ्वास हो वह उच्छ्वास नाम है। विहाय यानी आकाश मे गमन जिस कर्म के उदय से होता है वह विहायोगति नाम है। हाथी बैल वगैरह की सुन्दर गति के कारण भूत कर्म को प्रशस्त विहायोगति नाम कहते हैं और ऊंट, गधे वगैरह की खराब गति के कारण भूत कर्म को अप्रशस्त विहायोगति नाम कहते हैं। यहाँ ऐसा नही समझ लेना चाहिए कि पक्षियो की ही गति आकाश में होती है। आकाश द्रव्य सर्वत्र है अतः सभी जीव आकाश मे ही गमन करते रहते हैं। सिद्ध जीव और पुद्गलो की गति स्वाभाविक है कर्म के उदय से नही है।

जिसके उदय से शरीर एक जीव के ही भोगने योग्य होता है वह प्रत्येक शरीर नाम है। जिसके उदय से बहुत-से जीवोंके भोगने योग्य एक साधारण शरीर होता है वह साधारण शरीर नाम है। अर्थात् साधारण शरीर नाम कर्म के उदय से एक शरीर मे अनन्त जीव एक अवगाहना-रूप होकर रहते हैं। वे सब एक साथ ही जन्म लेते हैं, एक साथ ही मरते हैं और एक साथ ही श्वास वगैरह लेते है उन्हे साधारण वनस्पति कहते हैं। जिसके उदय से दोइन्द्रिय आदि में जन्म हो वह त्रसनाम है। जिसके उदय से एकेन्द्रियो मे जन्म हो वह स्थावर नाम है। जिसके उदय से दूसरे जीव अपने से प्रीति करें वह सुभगनाम है। जिसके उदय से सुन्दर सुरूप होने पर भी दूसरे अपने से प्रीति न करें अथवा घृणा करें वह दुभगनाम है। जिसके उदय से स्वर मनोज्ञ हो जो दूसरों को प्रिय लगे वह सुस्वर नाम है। जिसके उदय से अप्रिय स्वर हो वह दु.स्वर नाम है। जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हो वह शुभ नाम है। जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हो वह अशुभ नाम है। जिसके उदय से सूक्ष्म शरीर हो जो किसी से न रुके वह सूक्ष्म नाम है। जिसके उदय से स्थूल शरीर हो वह बादर नाम है। जिसके उदय से आहार आदि पर्याप्तियो की पूर्णता हो

वह पर्याप्ति नाम कर्म है। जिसके उदय से पर्याप्तियों की पूर्णता नही होती वह अपर्याप्ति नाम है। जिसके उदय से शरीर के धातु उपधातु स्थिर होते हैं जिससे कठिन श्रम करने पर भी शरीर शिथिल नहीं होता वह स्थिर नाम है। जिसके उदय से धातु उपधातु स्थिर नहो होते, जिससे थोड़ा सा श्रम करने से ही या जरा-सी गर्मी सर्दी लगने से ही शरोर म्लान हो जाता है वह अस्थिर नाम है। जिसके उदय से शरीर प्रभासहित हो वह आदेय नाम है। जिसके उदय से प्रभा रहित शरीर हो वह अनादेय नाम कर्म है। जिसके उदय से संसार में अपयश फैले वह अयशस्कीर्ति नाम है। जिसके उदय से अपूर्व प्रभावशाली अर्हन्त पद के साथ धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन होता है वह तीर्थंकर नाम है। इस तरह नाम कर्म की बयालोस प्रकृतियों के ही तिरानवे भेद हो जाते हैं।

द्विविधं गोत्रम् ॥५७॥

उच्च गोत्र तथा नीच गोत्र ये गोत्र के दो भेद हैं। उसमे उत्तम कुल मे पैदा करने वाला उच्च गोत्र तथा नीच कुल मे पैदा करने वाला नीच गोत्र कहलाता है।

पंचविधमन्तरायम् ॥५८॥

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं।

जिसके उदय से मनुष्य दान न कर सके या जो दान मे विघ्न करदे वह दानान्तराय कर्म है। लाभ की इच्छा होते हुये भी तथा प्रयत्न करने पर भी जिस के उदय से लाभ नही होता वह लाभान्तराय कर्म है। भोग और उपभोग की इच्छा होने पर भी जिसके उदय से भोग उपभोग नही कर सकता वह भोगान्तराय तथा उपभोगान्तराय कर्म है। शक्ति प्राप्त होने में विघ्न करने वाला कर्म वीर्यान्तराय कर्म है। ये पाच अतराय कर्म तथा अन्य उपरिउक्त कर्म मिलकर कर्मों के कुल १४८ एक सौ अड़तालीस भेद होते हैं। इन कर्म प्रकृति के उत्तरोत्तर भेद असंख्यात होते हैं।

उनमें ज्ञानावरण कर्मकी, दर्शनावरण की, वेदनीयकी, अंतराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम है। मोहनीय कर्मकी सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर, नाम और गोत्र की २० बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३३ तेतीस सागर की है। वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति १२ बारह मुहूर्त है, नाम और गोत्र के ८ आठ मुहूर्त है। शेष की अंतर मुहूर्त स्थिति होती है। घाति कर्मोमे लता, काठ, अस्थि, शैलरूप चार प्रकार की

अनुभाग शक्ति होती हैं। अघाति कर्मों की अशुभ प्रकृतियोंमे नीम, कांजी, विष, हलाहल समान अनुभाग शक्ति होती है। शुभ अघाति कर्मों में गुड, खांड, मिश्री और अमृत के समान अनुभाग शक्ति होती है। ये कर्म आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाह रूपमे दोनो एक रूप मालूम होने पर भी आत्म-अनुभवी जीव अपनी विवेक शक्ति द्वारा इस आत्मा को उन कर्मो से अलग निकाल कर आत्म-स्वरूप को भिन्न कर सकते हैं।

अब कर्मों की वन्ध-सत्व-उदय त्रिभंगी का निरूपण करते हैं—

णमिऊण नेमिचन्द असहायपरक्कमं महावीरं।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे सयं बोच्छं ।४५।

अर्थ—मैं असहाय पराक्रम वाले महावीर, चन्द्र समान शीतल प्रकाशमान भगवान नेमिनाथ को नमस्कार करके कर्मो के बध, उदय, सत्ता को गुणस्थानों, तथा मार्गणाओ को बतलाता हूँ।

देहोवयेन सहिओ जीवो आहरदि कम्मनोकम्मं।
पडिसमयं सव्वग्गं तत्तासयपिडओव्व जलं ।४६।

अर्थ—जिस तरह लोहे का गर्म गोला पानी में रख दिया जावे तो वह चारो ओर से पानी को अपनी ओर खीचता रहता है इसी प्रकार देह-धारी आत्मा प्रति समय सब ओर से कार्माण नोकार्माण वर्गणाओ को ग्रहण करता रहता है।

सिद्धाणंतिमभागो अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव।
समयपवद्धं बंधदि जोगवसावो दु विसरित्थं ।४७।

अर्थ—ससारी जीव प्रति समय एक समय-प्रबद्ध (एक समय मे बंधने वाले कर्म वर्गणाओं) को बांधता है, उस समय प्रबद्ध मे सिद्ध राशि के अनन्त वें भाग तथा अभव्य राशि से अनन्तगुणे प्रमाण परमाणु होते हैं। समय-प्रबद्ध केउन परमाणुओ की सख्या में कमीवेशी तीव्र, मंद योगो के अनुसार होती रहती है।

एक्कं समयपवद्धं बंधदि एक्कं उदेदि कम्माणि।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपवद्धं हवे सत्तं ।४८।

धानी—संसारी जीव प्रति समय एक समय-प्रबद्ध प्रमाण कर्म बन्ध करता है और एक समय-प्रबद्ध प्रमाण ही कर्म प्रति समय उदय आता है (झरता है) फिर भी डेढ गुणहानि प्रमाण कर्म सत्तामे रह जाता है।

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया ।
वण्ण चउक्के भिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ।४९।

अर्थ—नाम कर्म की प्रकृतियों मे ५ बधन और ५ संघात शरीर नाम कर्म के अविनाभावी (शरीर के विना न होने वाले) होने के कारण बंध और उदय के प्रकरण मे पृथक् नही लिये जाते शरीर में ही सम्मिलित कर लिये गये हैं तथा वर्ण, रस, गध स्पर्श के उत्तर भेदों (२०) को इन चार मूल भेदों में सम्मिलित किया गया है ।

इस कारण बन्धरूप तथा उदयरूप कर्म प्रकृतियां भेद एवं अभेद विवक्षा से निम्न प्रकार हैं—

भेदे छादालसय इदरे बंधे हवंति वीससयं ।
भेदे सव्वे उदये वावीससयं अभेदम्हि ।।५०

यानी—भेद रूप से १४६ प्रकृतियों का बन्ध होता है (सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति पृथक् नही गिनी जाती) । अभेद रूप से १२० प्रकृतियो का बन्ध माना गया है–१० बन्धन सघात, १६ वर्ण रस आदि=२६ प्रकृति नहीं गिनी जाती । उदय में भेद रूप से १४८ प्रकृति और अभेदरूप से १२२ प्रकृतियां कही जाती हैं । उक्त २६ अलग नही गिनी जातीं ।

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णिय पंचय भणिया एदाओ बंध पयडीओ ।।५१।।

अर्थ—अत॰ बन्ध के योग्य ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २६, आयु की ४, नामकर्म की ६७, गोत्र कर्म की २ और अन्तराय की ५ प्रकृतियां हैं ।

पंचणवदोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णिय पंचय भणिया एदाओ उदयपयडीओ ।।५२।।

अर्थ—उदय योग्य प्रकृतियां ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु की ४, नाम की ६७, गोत्र की २ और अन्तराय की ५ है ।

सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु ।
मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेस बधोदु ।।५३।।

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि के ही (चौथे गुणस्थान से सातवें

गुणस्थान तक) होता है। आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का सातवें तथा आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक होता है। मिश्र गुणस्थान के सिवाय पहले गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक आयु कर्म का बन्ध होता है। शेष प्रकृतिओ का बन्ध पहले आदि गुणस्थानो मे हुआ करता है।

बन्ध व्युच्छित्ति—

सोलस पणवीसणभ दस चउ छक्केक्क बन्धवोच्छिण्णा।
दुगतिगचदुर पुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को ॥५४॥

यानी—कर्म प्रकृतियो की बन्ध व्युच्छित्ति (वहा तक बन्ध होना, आगे न होना) मिथ्यात्व आदि १४ गुणस्थानो मे क्रम से यो है—१६-२५-०-१०-४-६-१ अपूर्व करण के विभिन्न भागो मे २-३-४ प्रकृतियो की फिर नौवें आदि गुणस्थानो मे क्रम से ५-१६-०-०-१-० प्रकृतियो की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

मिच्छत्तहुंडसंढाऽसंपत्तेयक्खथावरादाव।
सुहुमतिय वियलिंदी णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥५५॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व, हुण्डक सस्थान, नपुसक वेद असंप्राप्तासृपाटिका सहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी और नरक आयु ये १६ प्रकृतिया बन्ध व्युच्छिन्न होती हैं यानी—इन १६ प्रकृतियो का इससे आगे के गुणस्थानो मे बन्ध नही होता।

विदियगुणे अणथीणति दुभगतिसठाणसंहदि चउक्कं।
दुग्गमणित्थीणीच तिरियदुगुज्जोव तिरियाऊ ॥५६॥

यानी—दूसरे सासादन गुणस्थान मे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, वामन कुब्जक सस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्री वेद, नीच गोत्र, तिर्यंच गति, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, तिर्यंचआयु और उद्योगत इन २५ प्रकृतियो की बन्ध—व्युच्छित्ति होती है।

अयदे बिदियकसाया बज्ज ओराल मणुदुमणु आऊ।
देसे तदियकसाया नियमेणिह बन्धवोच्छिण्णा ५७॥

अर्थ—असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया लोभ, वज्रऋषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्य गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्य आयु ये १० प्रकृतियां बन्धव्युच्छिन्न होती हैं। पांचवें देशसंयत गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन ४ चार कषायों की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च।
अपमत्ते देवाऊणिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥५८॥

यानी—छठे गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयशकीर्ति, अरति और शोक इन ६ प्रकृतियों की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्त गुणस्थान में देवायुकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

मरणूणम्मिणियट्टी पढमे णिद्दा तहेव पयला य।
छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिदी ॥५९॥
तेजदुहारदुसमचउ सुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवयं।
चरमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छाय बन्धवोच्छिण्णा ॥६०॥

अर्थ—अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान के मरणरहित प्रथम भाग मे निद्रा, प्रचला, छठे भाग के अंत में तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्माण, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग समचतुरस्र संस्थान, देवगति देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग वर्ण रस गंध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात,-परघात उच्छ्वास, त्रस आदि ९, इन ३० प्रकृतियों की और अन्त में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन ४ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति-होती है।

पुरिसं चदुसंजलणं कमेण अणियट्टिपंचभागेसु।
पढमं विग्घं दंसण चउजसउच्चं च सुहुमंते ॥६१॥

अर्थ—नौवें गुणस्थान के पांच भागों में क्रम से पुरुष वेद. संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ इन ५ प्रकृतियो मे से एक एक की व्युच्छित्ति होती रहती है। सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के अन्त मे ज्ञानावरण की ५, अन्तराय की ५, दर्शनावरण की ४ (चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल), यशकीर्ति और उच्चगोत्र इन १६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति हो जाती है।

उवसंत खीणमोहे जोगिम्हि य समयियट्ठिदी सादं ।
णायव्वो पयडीणं बंधस्स तो अणंतो य ।।६२।।

अर्थ—ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान मे केवल साता वेदनीय कर्म का एक समय स्थिति वाला बन्ध होता है, अतः सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थान मे केवल साता वेदनीय की व्युच्छित्ति होती है। चौदहवें गुणस्थान मे न किसी प्रकृति का बन्ध होता है, न किसी की व्युच्छित्ति होती है।

अब बन्ध होने योग्य प्रकृतियो की संख्या बतलाते हैं—

सत्तरसेक्कग्गसयं चउ सत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी ।
बन्धाणवट्ठवण्णा दुवीस सत्तारसेकोघे ।।६३।।

अर्थ—मिथ्यात्व आदि १३ गुणस्थानो मे बन्ध होने योग्य प्रकृतियो की संख्या क्रम से ११७, १०१, ७४, ७७, ६७, ६३, ५९, ५८, २२, १७, १, १ १ है। बन्ध योग्य प्रकृति पहले १२० बतलाई थीं उनमे से तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग का बन्ध चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है अतः १२० में से इन ३ प्रकृतियो को कम कर देने पर शेष ११७ प्रकृति पहले गुणस्थान में बन्धती हैं, फिर आगे आगे के गुणस्थानो मे व्युच्छित्ति वाली प्रकृतियां घटा देने से गुणस्थानो मे बन्ध योग्य प्रकृतियो की संख्या निकल आती है।

अब बन्ध न होनेवाली प्रकृतियो की संख्या बतलाते हैं—

तियउणवीसं छत्तिय तालं तेवण्ण सत्तवण्णंच ।
इगिदुगसट्ठीविरहिय सयतियउणवीससहिय बीससयं ।।६४।।

यानो—मिथ्यात्व आदि १४ गुणस्थानो मे बन्ध न होने योग्य प्रकृतियो की संख्या क्रम से ३, १९, ४६, ४३, ५३, ५७, ६१, ६२, ९८, १०३, ११९, ११९ और १२० हैं।

आहारयं पमत्ते तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से ।
सम्मं वेदगसम्मे मिच्छदुगयदेव आणुदओ ।।६५।।

अर्थ—आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग का उदय छठे गुणस्थान मे तीर्थंकर प्रकृति का उदय सयोग केवली गुणस्थान में, सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) का उदय मिश्रगुणस्थान में और सम्यक् प्रकृति का उदय क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के चौथे से सातवें गुणस्थान तक ही होता है। आनुपूर्वी का उदय पहले दूसरे तथा चौथे गुणस्थान में होता है।

णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू ।
मिच्छादिसु सेसुदओ सगसगचरमोत्ति णायव्वो ॥६६॥

अर्थ—सासादन गुणस्थान वाला नरक को नही जाता है इस कारण उसके नरक गत्यानुपूर्वी का उदय नही होता । शेष समस्त प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों मे अपने अन्त समय तक होता है ।

अब उदय व्युच्छित्ति बतलाते है —

पणणव इगिसत्तरसं अड पंच च चउर छक्क छच्चेव ।
इगि दुग सोलस तीसं वारस उदये अजोगंता ॥६७॥

अर्थ—मिथ्यात्व आदि १४ गुणस्थानों में उदय व्युच्छित्ति यानी—आगे के गुणस्थानो मे उदय न होनेवाली प्रकृतियों की संख्या क्रम से ५, ९, १, १७, ८, ५, ४, ६,६, १, २, १६, ३० और १२ है ।

मिच्छे मिच्छादावं सुहुमतियं सासणे अणेइंदी ।
थावरवियलं मिस्से मिस्सं च य उदयवोछिण्णा ॥६८॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, अस्थिर इन ५ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है। सासादन मे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, एकेन्द्रिय, स्थावर, दोइन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार इन्द्रिय (विकलत्रय) ये ९ प्रकृतियां तथा मिश्र गुणस्थान मे सम्यक्-मिथ्यात्व की उदय-व्युच्छित्ति होती है ।

अयदे विदियकसाया वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ ।
मणुयतिरियाणुपुव्वी दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥६९॥

अर्थ—चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया व लोभ, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशकीर्ति इन १७ प्रकृतियो की उदय व्युच्छित्ति होती है ।

देसे तदियकसाया तिरियाउज्जोव णिचतिरियगदी
छट्ठे आहारदुगं थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ॥७०॥

यानी—पांचवे गुणस्थान मे प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ तिर्यंचआयु, उद्योत, नीच गोत्र, तिर्यंचगति इन ८ प्रकृतियों की तथा छठे गुणस्थान में आहारक शरीर आहारक अंगोपाग निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला स्त्यानगृद्धि इन ५ प्रकृतियो की उदय-व्युच्छित्ति होती है ।

अपमत्ते सम्मत्तं अंतिमतिय सहदीऽपुव्वम्हि ।
छच्चेवणोकसाया अणियट्टी भागभागेसु ॥७१॥

अर्थ–सातवें गुणस्थान मे सम्यक् प्रकृति तथा अर्द्धनाराच कीलक असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन ये ४ प्रकृतिया उदय व्युच्छिन्न होती हैं। अपूर्व करण मे तीन वेदो के सिवाय हास्य आदि ६ नोकषायो की व्युच्छित्ति होती है।

वेदतिय कोहमाणंमाया संजलणमेव सुहुमंते ।
सुहुमोलोहोसंते वज्जंनारायणारामं ॥७१॥

यानी—नौवें गुणस्थान के सवेद भागो मे स्त्री पुरुष नपुंसक वेद तथा अवेद भाग मे सञ्ज्वलन क्रोध मान माया की व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्म साम्पराय के अंत मे सञ्ज्वलन लोभ की तथा ग्यारहवे गुणस्थान मे बज्रनाराच और नाराच संहनन की उदय व्युच्छित्ति होती है।

क्षीणकसायदुचरिमेणिद्दापयलाम उदयवोच्छिण्णा ।
णाणंतरायदसय दसणचत्तारि चरिमम्हि ॥७२॥

अर्थ–क्षीणकषाय के अंतिम समय से एक समय पहले निद्रा और प्रचला तथा अंतिम समय मे ज्ञानावरण की ५ दर्शनावरण की ४ एवं अन्तराय की ५ कुल १४+२=१६ प्रकृतियो की व्युच्छित्ति होती है।

तदियेवक वज्जणिमिणं थिरसुहसदगदिउरालतेजदुग ।
संठाणवण्णगागुरुचउक्क पत्तेय जोगिम्मि ॥७३॥

अर्थ—सयोग केवली गुणस्थान मे साता या असाता, वज्र ऋषभ नाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ अशुभ सुस्वर, दुस्वर, प्रशस्त, अप्रशस्त, विहायोगति, औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग तैजस कार्माण छहो संस्थान, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु आदि चार और प्रत्येक शरीर ये ३० प्रकृतिया व्युच्छिन्न होती है।

तदियेक्कं मणुवगदी पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्ज ।
जसतित्थं मणुवाऊ उच्च च अजोगचरिमम्हि ॥७४॥

अर्थ—अयोग केवली गुणस्थान के अन्त मे साता या असाता मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस आदि ३ आदेय, यशकीर्ति, तीर्थंकर प्रकृति मनुष्य आयु, ऊंच गोत्र इन १२ प्रकृतियो को उदय व्युच्छित्ति होती है।

णट्ठायरायदोसा इंदिणाणपांच केवलिम्हि जदो ।
तेणदु सादासादजणहदुक्खं णत्थि इ दियजं ॥७५॥

अर्थ—केवली भगवान के मोहनीय कर्म न रहने से रागद्वेष नहीं है, ज्ञानावरण का क्षय हो जाने से उनके इन्द्रियजन्य ज्ञान नही है इस कारण उनके साता असाता के उदय से होनेवाला इन्द्रिय जन्य सुख दुख भी नही है ।

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदाण्णिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ सादस रूवेणपरिणमदि ॥७६॥

अर्थ—केवली भगवान के एक समय की स्थिति वाला साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है अतः वह उदय रूप ही होता है । इस कारण असाता वेदनीय कर्म का भी उदय साता के रूप मे परिणत हो जाया करता है ।

एदेण कारणेण दुसादस्सेव दु'णिरतरो उदओ ।
तेणासादणिकित्ता परीसहा जिणबरे णत्थि ॥७७॥

अर्थ—इस कारण केवली भगवान के निरन्तर साता वेदनीय कर्म का उदय रहता है । अतएव असाता वेदनीय के उदय से परिपह केवली को होने वाली नही होती ।

उदय रूप प्रकृति-संख्या—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरो ।
छावट्ठिसट्ठिणवसग वण्णास दुदालवारुदण ॥७८

अर्थ—मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे क्रम से ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९ ५७ ४२ और १२ प्रकृतिया उदय होती हैं।

अनुदय प्रकृतियां—

पंचक्कारसवावीसट्ठारसपंतीस इगिछादालं ।
पण्ण छप्पण्णं विति पणसट्ठि असीदि दुगुण पणवण्णं ॥७९॥

अर्थ—मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे क्रम से ५ ११ २२ १८ ३५ ४१ ४६ ५० ५६ ६२ ६३ ६५ ८० और ११० प्रकृतियों का उदय नही होता ।

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो णविज्जदि विसेसो ।
मेत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ॥८०॥

तीसं बारस उदयुच्छेदं केवलि मेकदं किच्चा।
सानमसतं च तहिं मणुवाउगमवणिद किच्चा ॥८१॥
अवणिदतिप्पयडीण पमत्त विरदे उदीरणा होदि।
णत्थित्ति अजोगिजिण उदीरणा उदय पयडीण ॥८२॥

अर्थ—कर्म प्रकृतियो की उदीरणा प्रमत्त सयोग केवली अयोग केवली इन तीन गुणस्थानो के सिवाय शेष समस्त गुणस्थानो मे उदय के ही समान है। सयोग के ३० और अयोग केवली के १२ प्रकृतियो की [कुल ४२ की] उदय-व्युच्छित्ति होती है। परन्तु इनमे से साता असाता वेदनीय और मनुष्य आयु की उदीरणावहा नही होती है इसकारण सयोग केवली के ३९ प्रकृतियो की उदीरणा होनी है। साता, असाता, मनुष्य आयु की उदीरणा (समय से पहले उदय आना) छठे गुणस्थान मे होती है। अयोग केवली के उदीरणा नही होती।

उदीरणा व्युच्छित्ति—

पण णवइगि सत्तरस' अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव।
इगिदुगु सोलुगदाल उनीरणा होंति जोगता ॥८३॥

अर्थ—मिथ्यात्व आदि १३ गुणस्थानो मे क्रम से ५ ९ १ १७ ८ ८ ४ ६ ६ २ २ १६ ३९ प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है।

उदीरणा अनुदीरणा—

सत्तार सेक्कारख चदुसहियसय सगिगिसीदि तियसदरी।
णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदाल ॥८४॥
पचेक्कारसवावीसट्ठारस पचतीस इगिणवदालं।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी पणछक्कडसट्ठि तेसीदी ॥८५॥

यानी—पहले से १३वे गुणस्थान तक मे क्रम से ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७३ ६९ ६३ ५७ ५६ ५४ ३९ प्रकृतियो की उदीरणा होती है। तथा इन ही गुणस्थानो मे क्रम से ५, ११, २२, १८' ३५, ४१, ४९, ५३, ५९, ७५, ६५, ६६, ६८, ८३ प्रकृतियो की उदीरणा नही, अनुदीरणा है।

सत्व विवरण—

तित्थाहारा जुगव तित्थ णमिच्छगादितिये।
तस्सत्तकम्मियाण तग्गुणठाण ण सभवदि ॥८६॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान मे नाना जीवो की अपेक्षा से १४८ प्रकृतियो की सत्ता है परन्तु तीर्थंकर तथा आहारक द्विक (आहारक शरीर आहारक

अंगोपांग) एक साथ (एकं काल में) नहीं होते । सासादन में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नही ।

चत्तारि वि खेत्ताई अगुगबंधेण होय सम्मत्तं ।
अणवरमहव्वदाइं लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥

अर्थ—चारो आयुओं मे से किसी भी आयु का बंध हो जाने के पश्चात् सम्यक्त्व हो सकता है, परन्तु अणुव्रत महाव्रत का धारण देवायु का बन्ध करने वाले के ही होता है । अन्य किसी आयुका वन्ध कर लेने वाले के नही होता ।

णिरयतिरक्खसुराउग सत्ते णहि दसमयलवदखवगा ।
अयदचक्कंतु अणं अणियट्टी करणवहुभागं ।
जुगवं संजोगित्ता पुणोवि अणियट्टिकरणवहुभागं ।
वोलिय कमसो मिच्छं मिस्सं सम्मं खेवेरि कमे ॥

अर्थ--नरक आयु को सत्तामे देशव्रत, तिर्यंच आयु की सत्ता मे महाव्रत और देवायु की सत्ता में क्षपकश्रेणी नहो होती । अनतानुबन्धी क्रोधमान माया लोभ का विसंयोजन (अप्रत्याख्याननावरण आदि रूप करना) चौथे से सातवें गुणस्थानो मे से कहीं भी अनिवृत्ति करण परिणाम के अन्त में कर देता है । फिर मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक् प्रकृतिका क्षय करता है ।

सेलट्ठ किदछक्कं चदुसेक्कं बादरे अदोएक्कं ।
खोणे सोलसड जोगे वावत्तरि तेरुवत्तंते ।
णिरयं तिरिक्खदु वियलं थीणतिगुज्जोवतावएइंद्री ।
साहमरणसुहुमथम्बर सोल मज्झिम कसायट्ठं ॥
संढित्थिछक्कसाया पुरिसो कोहोय माण मायं च ।
थूले सुहमे लोहो उदयं वाहोदि खीणिहि ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पहले भाग में नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, ३ विकलेन्द्रिय, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृद्धि, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर इन १६ प्रकृतियो को सत्वव्युच्छित्ति होती है । दूसरे भाग मे अप्रत्याख्यान की ४, प्रत्याख्यान को ४ ये ८ प्रकृतियां, तीसरे भाग मे नपुंसक वेद, चौथे भाग में स्त्री वेद, पाँचवे भाग में हास्य आदि ६ नो कषाय, छठे मे पुरुष वेद, सातवे में संज्वलन क्रोध, आंठवें मे मान, नौवें मे माया की (कुल ३६ प्रकृतियों की) सत्वव्युच्छित्ति होती है । दशवे गुणस्थान मे सज्वलन लोभ की व्युच्छित्ति

होती है। क्षीण कषाय गुणस्थान में ५ ज्ञानावरण, दर्शनावरण की ४ (चक्षु अचक्षु आदि), निद्रा, प्रचला, अन्तराय की ५ इस तरह कुल १६ प्रकृतियो की सत्वव्युच्छित्ति होती है।

देहादीफस्संता थिरसुहसरसुरविहायदुगदुभग।
णिमिणाजसऽणादेज्ज पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ॥
अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा।
उदयगवा णराणू तेरम चरिमम्हि वोच्छिण्णा॥

अर्थ—(तेरहवें गुणस्थान मे किसी भी प्रकृति की सत्वव्युच्छित्ति नही है) अयोग केवली गुणस्थान मे औदारिक शरीर आदि स्पर्श तक की ५० प्रकृतियां, स्थिर अस्थिर, शुभ अशुभ, सुस्वर, दु स्वर, देव गति देवगत्यानुपूर्वी प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भाग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्ति, अगुरुलघु आदि ४, साता या असाता वेदनीय, नीचगोत्र ये ७२ प्रकृतियां अत के प्रथम समय में सत्वव्युच्छित्ति होती हैं। अन्तिम समय मे इसी गुण स्थान की उदयरूप १२ प्रकृतिया और मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये १३ प्रकृतिया सत्ता से व्युच्छिन्न होती हैं।

सत्व असत्व प्रकृतियां—

णभतिगिणभइगि दोद्दो दसदस सोलट्ठगादिहीणेसु।
सत्ता हवंति एव असहाय परक्कमुद्दिट्ठे॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान से अपूर्वकरण तक के आठ गुणस्थानो मे क्रम से ०, ३, १, ०, १, २, २, १०, प्रकृतियो का असत्व है। नौवें गुण स्थान के पहले भाग मे १०, दूसरे मे १६, तीसरे आदि भाग ८ प्रकृतियो का असत्व है। असत्व प्रकृतियो को १४८ प्रकृतियो मे से घटा देने पर शेष प्रकृतियाँ अपने अपने गुणस्थान में सत्वरूप हैं।

यानी—

सव्वं तिगेग सव्वं चेग छसु दोण्णि चउसु छद्दसय दुगे।
छस्सेगदाल दोसु तिसट्ठी परिहीण पडिसत जाणे॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान मे १४८ प्रकृतियो की सत्ता है, दूसरे में ३ कम, तीसरे में १ कम, चौथे मे सब, पाचवे मे १ कम, प्रमत्त, अप्रमत्त में २ कम, उपश्रेणी की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि गुणस्थानो मे ६ कम, क्षपक श्रेणी की अपेक्षा अपूर्व करण आदि दो गुणस्थानो मे १० कम, सूक्ष्म साम्पराय में ४६ कम, सयोग केवली अयोग केवली मे ६३ प्रकृतिया कम का सत्व है।

बंध-त्रिभंगी

गुणस्थान	मि०	सा०	मिश्र	अवि०	देश	प्रमत्त	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म	उप०	क्षीण०	योग	अयोग
व्युच्छित्ति	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
बंध	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
अबंध	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	१०३	११९	११९	११९	१२०

उदय त्रिभंगी

गुणस्थान	मि०	सा०	मिश्र	अवि०	देश	प्रमत्त	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म	उप०	क्षीण	योग०	अयोग
व्युच्छित्ति	१०	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उदय	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अनुदय	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

उदीरणा त्रिभंगी

गुणस्थान	मि०	सा०	मिश्र	अवि०	देश	प्रमत्त	अप्र०	अपूर्व	अनि०	सूक्ष्म	उप०	क्षीण	योग०	अयोग
व्युच्छित्ति	५	९	१	१७	८	८	४	६	६	१	२	१६	३९	०
उदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६	५४	३९	०
अनुदीरणा	५	११	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६	६८	८३	०

सत्व त्रिभंगी

गुणस्थान	मि०	सा०	मिश्र०	अवि०	देश	प्रमत्त	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म	उप०	क्षीण	योग०	अयोग
व्युच्छित्ति	०	०	०	१	१	०	४	०	०	०	०	१६	०	८५
सत्व	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१४२	१४२	१४२	१४२	१०१	८५	८५
असत्व	०	३	१	०	१	२	२	६	६	६	६	४७	६३	६३

कर्म की १० दशायें

कर्म की १० दशायें (करण) होती हैं—१ बन्ध (आत्म प्रदेशों के साथ कार्माण वर्गणो का सयोग), २ उत्कर्षण (बन्ध हो जाने पर कर्मों की स्थिति अनुभाग मे वृद्धि होना), ३ अपकर्षण (कर्मों की स्थिति अनुभाग में कमी होना), ४ सक्रमण (कर्म प्रकृतिक अन्य प्रकृति रूप परिणत हो जाना) ५ उदीरणा (समय से पहले कर्म का उदय मे आना), ६ सत्व (कर्मोंका आत्मा के साथ सत्तामे रहना), ७ उदय (कर्मका अपने समय पर फल देना), ८ उपशान्त (जो कर्म उदीरणा मे न आ सके), ९ निधत्ति (जिस कर्म की उदीरणा सक्रमण म हो सके), १० निकाचित (जिस कर्म की उदीरणा, सक्रमण, उत्कर्षण न हो सके ।)

पुण्यं द्विविधम् ।५९।

अर्थ-पुण्य के दो भेद हैं—१ द्रव्य पुण्य, २ भाव पुण्य । शुभ कर्म के आस्रव के कारणभूत जो सम्यक्त्व सहित, अणुव्रत, महाव्रत, समिति, दान, पूजन आदि के शुभ परिणाम हैं वह भाव पुण्य है ।

शुभ परिणामो के कारण जो शुभ कर्मों का बन्ध होता है वह द्रव्य पुण्य है । द्रव्य पुण्य के ४२ भेद हैं । उन पुण्य प्रकृतियो के नाम ये हैं—साता वेदनीय, तियञ्च आयु, मनुष्यायु,देवायु, उच्च गोत्र,देवगति, मनुष्यगति पचेन्द्रिय जाति, ५शरीर, ३अगोपाग, समचतुरस्रसंस्थान,वज्रऋषभ नाराच सहनन,प्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कोर्ति, निर्माण, तीर्थंकर । ५ बधन, ५सघात को शरोरोमे और स्पर्श, रस, गध, वर्णके उत्तर भेदो को मूल भेदो मे सम्मिलित किया गया है । उत्तर भेद सहित ६८ प्रकृतिया हैं ।

पापं च द्विविधम् ।६०।

अर्थ-पाप भी दो प्रकार है १ द्रव्य पाप, २ भाव पाप ।

मिथ्यात्व सहित तीव्र कषाय भाव, हिंसा, असत्य, चोरी व्यभिचार, परिग्रह आदि के अशुभ परिणाम भाव पाप हैं । पाप परिणामो के कारण जो दुखदायक अशुभ कर्मों का बन्ध होता है वह द्रव्यपाप है । द्रव्यपाप प्रकृतिया ८४ हैं ।

ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, मोहनीय की २८, अन्तराय की ५, नरकगति, तिर्यञ्च गति, एकेन्द्रिय आदि ४ जाति, ५ सस्थान, ५ संहनन

अप्रशस्त वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति, नरकायु, असाता वेदनीय, नीचगोत्र, ये पाप प्रकृतिया है।

कहा भी है—

सुह असुहभाव जुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउणामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥

इसका अभिप्राय ऊपर लिखा है।

संवरश्च ।६१॥

अर्थ—संवर के भी दो भेद है–१ द्रव्य संवर, २ भाव संवर।

निज शुद्ध परमात्म रुचि, स्वशुद्ध आत्म अनुभूति रूप, निश्चय रत्नत्रय-रूप परिणामो से कर्म आस्रव नही होता है, अत: कर्म आस्रव निरोध रूप के परिणाम भाव सवर है। उन भावसवर रूप परिणामो के कारण द्रव्य कर्मों का आस्रव नही होता वह द्रव्य सवर है।

निश्चय नय से अपने आप ही आत्मा सिद्ध होता है, अत वह निरपेक्ष है, सहज परम पारिणामिक भाव की अपेक्षा से नित्य है।

परम उद्योत स्वभाव से स्वपर प्रकाश को समर्थन करने वाला है। आदि अन्त तथा मध्य से रहित है। दृष्ट श्रुतानुभूत भोग-काक्षा रूप निदान बन्धादि समस्त रागादि मल से रहित अत्यन्त निर्मल है। परम चैतन्य विलास लक्षणो से परम सुख मूर्ति है। निरास्रव सहज भाव की अपेक्षा समस्त कर्म संवर के लिए कारण है, ऐसा शुद्ध चैतन्य भाव भाव सवर है। भाव सवर के कारण जो कार्य रूप नवीन द्रव्य कर्म का आस्रव न होना द्रव्य संवर है। कहा भी है।

वदसमिदी गुत्तीओ धम्माणुपिहा परीसह जयोय।
चारित्तं बहुभेया णादव्वा भाव संवरविसेसा ३०९।

यानी—व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह जय ये भाव संवर के विशेष भेद है।

एकादश निर्जरा: ।६२।

अर्थ—कर्म निर्जरा के ११ स्थान हैं।

१ शुद्धात्म रुचिरूप सम्यक्त्व उत्पत्ति में, २ श्रावक व्रत ग्रहण मे, ३ महाव्रत धारण करने मे, ४ अनन्तानुबन्धी को विसयोजन करने में, ५ दर्शन

मोहनीयको क्षपण करने मे, ३उपशमश्रेणी आरोहण करने मे, ७उपशान्त कषाय मे, ८ क्षपक श्रेणी मे, ९ क्षीण कषाय मे, १० स्वस्थान जिन में तथा ११ समुद्‌घात जिन मे, कहे हुये, निर्जरा के ११ स्थान हैं। इनमे पूर्व पूर्व की अपेक्षा असख्यात गुण क्रम से कर्मो की निर्जरा होती है। रत्न त्रयात्मक परिणाम रूप से अविपाक निर्जरा, निर्विकार परम चैतन्य लक्षण निज परमात्म रूप भावना के परिणाम मे परिणति करने वाले आत्म का परिणाम संवर पूर्वक उत्कृष्ट तप है। इसी तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है।

त्रिविधो मोक्ष हेतुः ।६३।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ये तीन मोक्ष के कारण हैं। वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष परमेश्वर परम भट्टारक तथा उनके मुख कमल से निकले हुये पूर्वापर विरोध रहित निर्दोष परमागम को और उस परमागम मे कहे हुये षड् द्रव्य पाच अस्तिकाय तथा ९ पदार्थ को एव उस सर्वज्ञ प्रणीत क्रम से चलने वाले तपस्वी का मूढत्रयादि २५ मल दोषो से रहित होकर विश्वास (श्रद्धान) करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

इन कहे आगम, पदार्थ तथा तपस्वी आदिको को सशय तथा दोष रहित होकर जानना व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहलाता है। भगवान जिनेश्वर प्रणीत परमागम मे उक्त गुण, शिक्षा, व्रतादि देशव्रतो मे, २८ मूल गुण और ८४ गुणात्मक महाव्रतो मे निरतिचार पूर्वक आचरण करना व्यवहार सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार यह व्यवहार रत्नत्रय साधक है। ज्ञानावरणादि समस्त कर्मो से निर्मुक्त केवलज्ञानादि समस्त गुण समेत आत्मा ही मेरे लिये साक्षात् मोक्ष का कारण है और "आत्मोत्थ सुख ही मोक्ष रूप नित्य है" ऐसा विश्वास करके उसी मे रुचिपूर्वक रत रहना निश्चय सम्यग्दर्शन है।

निष्कर्म, नित्य, निरंजन, निरुपम, निर्लेप निज शुद्धात्मा ही मेरा साक्षात् मोक्ष का कारण है, आत्मोत्थ सुख ही वास्तविक सुख है, मोक्ष ही नित्य है और सदा यही आत्मा को सुख शाति देने वाला है इस प्रकार समझकर निश्चय से अपनी आत्मा मे रत होना निश्चय सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

कर्मोपाधि-निरपेक्ष परम सुख मूर्ति, सदानन्द, चिदानन्द, नित्यानन्द, ज्ञानानन्द, परमानन्द, निज शुद्धात्मा का सविकल्प-निर्विकल्प रूप से ध्यान करना निश्चय चारित्र है। इस प्रकार निश्चय रत्नत्रय साध्य है और उभय रत्न-त्रय से उत्पन्न हुआ मोक्ष साध्य है।

द्विविधो मोक्षः ॥६४॥

अर्थ—मोक्ष दो प्रकार की है १ द्रव्य मोक्ष, २ भाव मोक्ष।

घाति कर्मों के क्षय की अपेक्षा अर्हन्त अवस्था प्राप्त होना द्रव्य मोक्ष है और अनन्त चतुष्टय प्राप्त होकर अर्हन्त पद प्राप्त करना भाव मोक्ष है। ये एकार्थ-वाची हैं। कर्म से रहित होना, कर्म क्षय करना, कर्मो से आत्मा का पृथक् होना अथवा आत्म-स्वरूप की उपलब्धि होना या कृत्स्न (समस्त) कर्मों से मुक्त होना मोक्ष है, यह सव कथन भी एकार्थ वाचक है। इस तरह समस्त पर विजय प्राप्त करना द्रव्य मोक्ष है। वही उपादेय है।

मूलुत्तर पयडीमं बंधोदयसत्तकम्म उम्मुक्क ।
मंगल भूदा सिद्धा अट्ठगुणाती तसंसारा॥११०॥

अर्थ—कर्म की समस्त मूल तथा उत्तर प्रकृतियो के वन्ध, उदय, सत्व से छूटे हुए मंगलमय सिद्ध भगवान है जोकि आठ कर्मों के क्षय से प्रगट हुए आठ गुणों से सहित हैं और संसार से पार हो चुके हैं।

प्रकृति, प्रदेश आदि कर्मों से युक्त जीवों के तीन भेद है—१ वहिरात्मा, २ अन्तरात्मा, ३ परमात्मा। कहा भी है—

नहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु ।
उपेयस्तत्र परमं मध्ये पायात् महिस्त्यजेत् ॥

अर्थ—आत्मा तीन तरह का वहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा। इनमे से परमात्मा उपादेय है, अन्तरात्मा को पाना चाहिये और वहिरात्मता को त्याग देना चाहिए।

शुद्ध आत्म-अनुभव से विपरीत इन्द्रिय सुख मे लीन रहने वाला बहिरात्मा है। अथवा अमूर्त शुद्ध आत्मतत्व भावना से रहित देह आदि पर-द्रव्य को आत्मा मानने वाला बहिरात्मा है। उससे प्रतिपक्ष भावना वाला अन्तरात्मा है। आत्मा से भिन्न पुद्गल कर्मों के निमित्त से उत्पन्न हुए राग द्वेप आदि विकार भावों के कारण शुद्ध चैतन्य आत्म स्वरूप मे, सर्वज्ञ प्ररूपित नव पदार्थों मे से किसी मे भी, परस्पर अपेक्षा रहित श्रद्धान ज्ञान से रहित बहिरात्मा है। इससे भिन्न शुद्ध आत्म स्वरूप का अनुभवी, आत्मा और देह मे विवेक रखने वाला, वीतराग उपदिष्ट तत्वो मे रुचि रखने वाला सम्यग्दृष्टि सम्यग्ज्ञानी अन्तरात्मा है।

परमात्मा

आत्मा की परम—उत्कृष्ट स्वच्छ निर्मल दशा का प्रगट होना ही परमात्मा पद है। घाति कर्म नष्ट हो जाने पर वीत राग अर्हन्त भगवान **परमात्मा** कहलाते हैं। अपने केवल ज्ञान द्वारा वे लोक अलोक मे व्याप्त होने के कारण उनको **'विष्णु'** कहते हैं। दिव्य वाणी रूप सरस्वती तथा मुक्ति लक्ष्मी के पति होने से उनका नाम **'माधव'** (माया धव—माधव) भी है। पूर्णशुद्ध निज ब्रह्म मे निरन्तर तन्मय रहने के कारण तथा परम सुन्दरी उर्वसी रम्भा तिलोत्तमा आदि देवाङ्गनाओ द्वारा भी ब्रह्मचर्य से परिभ्रष्ट न होने कारण उनकी सज्ञा **'ब्रह्म'** है। अपने दिव्य उपदेश द्वारा त्रिलोक में शान्त सुख स्थापित करते हैं अत वे **'शंकर'** (शकरोति इति शकर) हैं।

सर्वज्ञ वीतराग रूप वे स्वय हुए हैं, उनका यह रूप किसी के द्वारा उत्पन्न नही हुआ अत वे **'अज'** [न जायते केनापि स अज] हैं। समवशरण छत्र, चमर, सिंहासन आदि बाह्य सब ऐश्वर्य एव अनन्त ज्ञान आदि अन्तरंग ऐश्वर्य से शोभायमान होने के कारण वे यथार्थ में **'ईश्वर'** भी हैं।

मुक्ति प्राप्त होने से तथा शुद्ध ज्ञान मय होने से वे **'सुगत'** हैं। कर्म शत्रुओ को जीत लेने के कारण उनका **'जिन'** [जयति इति जिनः] नाम भी विख्यात है। इन्द्र धरणीन्द्र चक्रवर्ती सम्राट आदि द्वारा पूज्य होने से उनका **'अर्हं'** या **'अर्हंत्'** नाम भी विश्वविख्यात है। मोहनीय कर्म को **'अरि'** शत्रु कहते हैं मोहनीय कर्म के नाशक होने से उन्हें **'अरिहन्'** [अरिंहन्ति इति अरिहन्] कहते है। 'रज' ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मों का नाम हैं अर्हन्त भगवान दोनो कर्मों को नाश कर चुके हैं अत उन्हे **रजोहरण** भी कहते हैं। 'रहस्' नाम अन्तराय का है, अन्तराय कर्म के विजेता होने के कारण उनका नाम **'रहस्यगुर'** भी है।

मुक्ति पथ के निर्माता होने के कारण उन्हे **'विधाता'** कहा जाता है। इस प्रकार परमात्मा अर्हन्त भगवान की १००८ नामों से इन्द्र ने स्तुति की।

इस प्रकार आत्मा के तीन रूप हैं।

इनमे से जो जीव भव्य हैं किन्तु वर्तमान मिथ्यादृष्टि हैं, उनमे बहिरात्म-स्वरूप व्यक्त रूप मे पाया जाता है। तथा अन्तरात्मा और परमात्मा उनमे शक्ति रूप से हैं, भावी नैगम नयकी अपेक्षा उनमे अन्तरात्मा तथा परमात्मा रूप व्यक्तरूप से है।

अभव्य जीव मे बहिरात्म-तत्व व्यक्त रूप से है, अन्तरात्मा, परमात्मा दोनो रूप शक्ति रूप से रहते हैं। भावी नैगम नय की अपेक्षा से व्यक्त नही है। अभव्य जीव मे परमात्मारूप यदि व्यक्त होता है तो फिर वह अभव्य किस प्रकार माना जावेगा ?

किन्तु शुद्ध नयकी अपेक्षा से भव्य और अभव्य दोनो का परमात्मा स्वरूप समान है। कहा भी है —

"सव्वे सुद्धा सुद्धनया"

अभव्य मे परमात्म पर प्रकट न हो सकने रूप स्वाभाविक अयोग्यता है जैसे कि बन्ध्या स्त्री मे सन्तान उत्पन्न न कर सकने रूप स्वाभाविक अयोग्यता होती है। भव्यो मे कुछ भव्य दूरातिदूर भव्य होते हैं जिनमे परमात्मा होने की स्वाभाविक योग्यता होते हुए भी परमात्मत्व के कारणभूत सम्यग्दर्शन गुण प्राप्त होने का नितित्त कभी नही मिल पाता अत. वे सव अनन्त काल संसारी ही रहते हैं। जैसे कुलीन वाल विधवा स्त्री मे सन्तान पैदा करने की योग्यता है फिर भी पुरुष का समागम न मिलने मे वह गर्भ धारण नहीं कर पाती।

तीनो आत्माओ के गुणस्थान—

पहले तीन गुणस्थान के जीव तरतमभाव से बहिरात्मा हैं। असंयत गुणस्थान वर्ती जघन्य अन्तरात्मा हैं। देशविरत से लेकर उपशात कषाय गुणस्थान तक (५; ६, ७, ८, ९, १०, ११ गुणस्थान वाले) तरतम भाव से मध्यम अन्तरात्मा हैं। क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीव उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं। सयोग केवली भगवान अयोग केवली भगवान शुद्धनिश्चयनय से सिद्ध सदृश परमात्मा हैं। सिद्ध परमेष्ठी साक्षात् परमात्मा हैं। आत्मा के इन तीन रूपो मे संसार कारण को अपेक्षा से बहिरात्मापन हेय है अर्थात् त्यागने योग्य है।

मोक्षसुख का कारणभूत अन्तरात्म रूप उपादेय है यानी ग्रहण करने योग्य है। शुद्ध ज्ञानानन्दमय होने के कारण परमात्मस्वरूप साक्षात् उपादेय है। ऐसा समझकर भव्य जीव को परमात्म स्वरूप प्राप्त करने योग्य है। इन ही परमात्मा का ध्यान करना योग्य है। विषय कषायादि दुष्परिणाम के परिहार करने के लिए सविकल्प अवस्था मे अर्हंत सिद्धआचार्य उपाध्याय सर्व साधु के गुणमरण स्तथा भक्ति पूर्वक जाप और ध्यान करनेवाले के भाव शुद्ध होती है और अंत में उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

पणतीस सोलछप्पण चदुदुगमेगचं जवहझायेह।
परमेष्ठि वाजयाण अणकचगुरुव देसेण ॥१११॥

अरहंता असरीरा आइरियातह उवज्झायामुणिणो ।
पडमक्खरर्रि पण्णा ओंकारो पञ्चपरमेष्ठी ॥११२॥

इस प्रकार पराश्रित ध्यान का स्वरूप है स्वआश्रित ध्यान का स्वरूप यो है भोगोपभोगादि चेतन अचेतन समस्त परद्रव्यो से निरालब परिणाम रूप जो स्वसंवेदन ज्ञान है वह ज्ञान बाहरी लाभ ख्याति, पूजा, दृष्ट श्रुतानुभूत काक्षा, निदान बन्धादि समस्त रागादि विभाव परिणिति से रहित होता है, त्रिकरण शुद्धि पूर्वक स्वशुद्धात्म-भावनोत्थ वीतराग परमानन्द सुख मे रत होते हुए परमार्थ सहज शुद्ध चित्तस्वमवित्ति लक्षणरूप निज परमात्मत्तव ही सम्यक्त्व ज्ञानाचरण से युक्त है निश्चय रत्नत्रयात्मक भावना से उत्पन्न सर्वात्म प्रदेशाल्हादक कारण रूप परम समरसी भाव सुखामृत मे तन्मय होकर शान्त रस से तृप्त होकर परम निर्विकार नि सग अपने निजात्म सन्मुख होकर उसी मे तन्मय होते हुए उसी मे परिणामन होकर ध्यान करना इसको निश्चय ध्यान कहते हैं ।

वीतराग परमानन्द सुखामृत से अपने भीतर स्फुराय मान होना इसका नाम दिव्य आत्मकला है । वही शुद्धात्मानुभूति है शुद्धात्मा संवित्ति है, और वही परमानन्द है,सहजानन्द है, सदानन्द है, चिदानन्द है, नित्यानन्द है, ज्ञानानन्द है, भूतार्थ है, परमार्थ है, निश्चय पंचाचार है, समयसार है, अध्यात्म है, और वही परममगल है । परमोत्तम है, परम शरण है, परम केवल ज्ञानोत्पत्ति कारण है और कर्म क्षय कारण है, परम देव है । वही शुद्धोपयोग है, शुक्ल ध्यान है, रूपातीत ध्यान है और वही चतुर्विध आराधना है । वही निश्चय षडावश्यक कर्म है, परम स्थान है, वही परम समाधि है । परम स्थान है, परम भेद विज्ञान है और परम स्वस वेदन है तथा वही परम समरसी भाव है ।

इस स्वरूपाश्रित ध्यान से मोहनीय कर्म का नाश होता है । तत्पश्चात् ज्ञान वरण दर्शनावरण अन्तराय से तीन घाति कर्म नाश होने से केवल ज्ञान होता है । बन्ध के कारण रहित होने तथा सकल निर्जरा होने के कारण प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश बन्ध तथा उदय उदीरण सत्व कर्मो का निरविशेष होना इसी का नाम मोक्ष है । मोक्ष मे क्षायिक सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन अनन्त सुख, सिद्धत्व, होता है । इसके सिवाय शेष औपशमिकादि भाव नाश हो जाते हैं । इस तरह सम्पूर्ण कर्म नाश होने से यह आत्मा सीधा लोकशिखर तक ऊर्ध्व गमन करता है । इसके लिए दृष्टात—

जैसे कुम्हार हाथ मे डण्डा लेकर उससे चाक को घुमाता है, तो चाक

घूमने लगता है। उसके बाद कुम्हार डण्डे को हटा लेता है फिर भी चाक जब तक उसमे पुराना संस्कार रहता है तब तक घूमता रहता है।

इसी तरह संसारी जीव मुक्ति की प्राप्ति के लिए बार-बार प्रयत्न करता था, कि कब मुक्ति गमन हो। जीव मुक्त हो जान पर वह भावना और प्रयत्न नही कर रहा फिर भी पुराने संस्कार वश जीव मुक्ति-स्थान की ओर गमन करता है।

जैसे मिट्टी के भार से लदी हुई तूबी जल मे डूबी रहती है। किन्तु मिट्टी का भार दूर होते ही जल के ऊपर आ जाती है। वैसे ही कर्म के भार से लदा हुआ जीव कर्म के वश होकर ससार मे डूबा रहता है। किंतु ज्यो ही उस भार से मुक्त होता है तो ऊपर को चला जाता है।

जैसे एरण्ड के बीज एरण्ड के डोडे मे बन्द रहते हैं। ज्यो ही डोडा सूखकर फटता है तो उछलकर ऊपर को ही जाते हैं। वैसे ही मनुष्य आदि भवो मे ले जाने वाले गति नाम, आदि समस्त कर्म बन्ध के कट जाने पर आत्मा ऊपर को ही जाता है। जैसे वायु के न होने पर दीपक की लौ ऊपर को ही जाती है। वैसे ही मुक्त जीव भी अनेक गतियों मे ले जाने वाले कर्मों के अभाव से ऊपर को ही जाता है। जैसे आग का स्वभाव ऊपर को जाने का है वैसा ही जीव का स्वभाव भी ऊर्ध्व गमन ही है। गति में सहायता करनेवाले धर्मास्तिकाय लोक के शिखर तक ही है आगे नही है अत मुक्त जीव लोक के अन्त तक ही जाकर ठहरता है आगे नहीं जाता।

द्वादश सिद्धस्यानुयोगद्वाराणि। ६५।।

अर्थ—सिद्ध परमेष्ठी का १२ विकल्पो से विशेष विवरण जाना जाता है। वे १२ विकल्प (अनुयोग) ये है—१—क्षेत्र, २—काल,--३गति, लिङ्ग, ५-तीर्थ, ६—चारित्र, ७--प्रत्येक बुद्ध बोधित, ८--ज्ञान, ९—अवगाहना, १०—अन्तर, ११--संख्या, १२--अल्प वहुत्व।

यद्यपि समस्त सिद्ध शुद्ध, निरञ्जन निर्विकार आत्मदृष्टि से एक समान हैं परन्तु भूतग्राहक नय की अपेक्षा उक्त विकल्पो से परस्पर भेद है।

क्षेत्र की अपेक्षा प्रत्युत्पन्न ग्राहक नय विवक्षा से सिद्ध क्षेत्र, स्वआत्म-प्रदेशो मे, आकाश प्रदेशों मे सिद्ध होते हैं। भूत ग्राहक नय की अपेक्षा से सिद्धो का क्षेत्र १५ कर्म भूमि हैं। अपहरण की दृष्टि से ढाईद्वीप, दो समुद्रवर्ती क्षेत्र से सिद्धि प्राप्त होती है।

किस काल मे सिद्ध होते हैं? इस अनुयोग के अनुसार उत्तर है कि

वर्तमान ग्राही नयकी अपेक्षा एक समय मे सिद्ध हुआ करते हैं। भूतप्रज्ञापन नग की अपेक्षा उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के सुपमादु पमा काल के अन्त मे तथा दु षमासुषमा काल मे उत्पन्न हुआ मनुष्य सिद्ध होता है। दुखमा काल मे उत्पन्न हुआ मनुष्य सिद्ध नही होता। सहरण की अपेक्षा (विदेह क्षेत्र आदि से किसी मुनि को उठाकर अपहरण करके कोई देव आदि किसी अन्य क्षेत्र मे छोड दे) उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के सभी कालो मे सिद्ध हो सकते है।

किस गति से सिद्ध होते हैं ? इस अनुयोग का उत्तर है कि सिद्धगति मे सिद्ध होते है। भूतपूर्व नयकी अपेक्षा भिन्न भिन्न चारो गति के जीव मनुष्य भव पाकर सिद्ध हुआ करते है।

लिंग की अपेक्षा किससे सिद्धि होती है ८ इसके समाधान मे उत्तर है लिंग शब्द के दो अर्थ है—१ वेश, २--वेद। वेश की अपेक्षा वर्तमान ग्राही नयानुसार निर्ग्रंथ लिंग से सिद्ध होते हैं, भूतग्राही नयानुसार सग्रन्थ लिंग से (निर्ग्रन्थ दीक्षा लेने से पहले) सिद्धि होनी है। वेदार्थवाची लिंग शब्दानुसार वर्तमानग्राही नयका अपेक्षा अलिंग से सिद्ध होते हैं, भूत काल की अपेक्षा द्रव्य पुरुष एव भाव पुरुष, भाव स्त्री, भाव नपुंसक लिंग से सिद्धि होती है।

लिंग शब्द का अर्थ चिन्ह भी है तदनुसार सिद्ध होनेवाले सभी मुनियो का भावलिंग तो निर्ग्रन्थ ही होता है। द्रव्यलिंग की अपेक्षा कुछ विकल्प होते है सर्व साधारण मुनि यथाजात रूप मे सर्व परिग्रहत्यागी नग्न होते हैं किंतु शौच के लिए जलका कमण्डलु, सयम (जीव रक्षा) के लिए मोर के पखो की पीछी तथा ज्ञान का उपकरण शास्त्र अपने साथ रखते हैं इस तरह उनका द्रव्यलिंग पीछीकमण्डलु, शास्त्र होता है परन्तु तीर्थंकरो के जन्म से ही मल मूत्र नही होता अतः उनको शौच के लिए जलका कमण्डलु रखने की आवश्यकता नहीं होती, वे अवधिज्ञानी भी जन्म से होते हैं, अत वे अपने साथ शास्त्र भी नही रखते। इस तरह नग्न रहते हुए भी उनका द्रव्य लिंग शास्त्र, पीछी कमडलु के विना होता है।

चारित्र को अपेक्षा वर्तमान-ग्राहक नयके अनुसार यथाख्यात चारित्र से या नाम-रहित चारित्र से सिद्धि होती है, अतीत की अपेक्षा किसी मुनि को परिहार विशुद्ध चारित्र होता है किसी को नही होता। तदनुसार किसी को तीन चारित्र से तथा किसी को ४ चारित्रो से सिद्धि होती है।

तीर्थ की अपेक्षा किन्ही को सिद्धि तीर्थंकर के सद्भाव मे होती है, कोई तीर्थंकर के न रहते हुए सिद्ध होते है।

प्रत्येक बुद्ध बोधित—कोई मनुष्य अन्य किसी मुनि आचार्य गणधर तीर्थङ्कर आदि के उपदेश द्वारा प्रतिबुद्ध होकर मुनि बनकर सिद्ध होते हैं, तीर्थंकर आदि कोई व्यक्ति स्वय विरक्त एव प्रतिबद्ध होकर मुक्त होते है।

ज्ञान—कोई मुनि मति, श्रुत ज्ञान से केवल-ज्ञान प्राप्त करके सिद्ध होते हैं, कोई मति, श्रुत, अवधिज्ञानी होकर केवल ज्ञानी होते हैं, कोई मति श्रुत मन पर्याय ज्ञानी होते हुए केवल ज्ञान प्राप्त करके सिद्ध होते हैं और कोई मुनि मति, श्रुत, अवधि मनपर्ययज्ञान पूर्वक केवल ज्ञानी बनकर सिद्ध होते हैं। इस तरह ज्ञान की अपेक्षा भूत-प्रज्ञापन नय से अनेक भेद हैं, वर्तमान नयानुसार केवलज्ञान से ही सिद्ध होते है।

अवगाहना—सिद्ध होने वाले मुनि की उत्कृष्ट अवगाहना (शरीर का कद) ५२५ धनुष है जैसा कि बाहुबली का शरीर था। जघन्य प्रवगाहना३॥साढ़े तीन हाथ की है। इन दोनो अवगाहनाओ के बीच के बहुत से भेद हैं। इस तरह अवगाहना की अपेक्षा अनेक विकल्प हैं। सिद्ध अवस्था मे अपने अंतिम शरीर से कुछ कम अवगाहना होती है।

अन्तर—यदि निरन्तर सिद्ध होते रहें तो कम से कम दो समय तक और अधिक से अधिक आठ समय तक निरन्तर सिद्ध होते रहे। यदि अन्तर पड़े (कोई भी व्यक्ति सिद्ध न हो) तो कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक ६ महीने का अन्तर पड जाता है, तदनुसार किसी विवक्षित सिद्ध के विषय मे विचार किया जा सकता है।

सख्या—कम से कम एक समय मे एक ही जीव सिद्ध होता है, अधिक से अधिक एक समय मे १०८ जीव सिद्ध होते हैं। मध्यवर्ती सख्या के अनेक विकल्प हैं।

अल्प बहुत्व—क्षेत्र आदि की अपेक्षा सिद्धो की थोड़ी बहुत सख्या का विचार करना अल्प-बहुत्व अनुयोग है। वर्तमान ग्राही नयानुसार सभी सिद्ध सिद्ध क्षेत्र में हैं उनमे अल्प बहुत्व का अनुयोग नही होता। भूत नय की अपेक्षा से अनेक विकल्प होते हैं। कोई मुनि अपने जन्म क्षेत्र (कर्म भूमि) से सिद्ध होते है इनकी संख्या सबसे अधिक होती है। किन ही मुनियो को उनके पूर्व का शत्रु कोई देव आदि उस क्षेत्र से उठाकर आकाश से पटक देता है, उनमे से कोई-कोई पृथ्वी या जल मे गिरने से पहले आकाश मे ही कर्म काट कर सिद्ध हो जाते हैं ऐसे मुनि या सिद्ध सबसे थोडे होते हैं, कोई मुनि किसी पाताल (गहरे गड्ढे) मे गिर कर सिद्ध हो जाते है वे आकाश सिद्ध की अपेक्षा अधिक

होते हैं, कोई मुनि देवादि द्वारा अपहरण हो जाने पर नदी समुद्र तालाब आदि में गिरा दिये जाते हैं उस उपसर्ग की अवस्था मे भी आत्मनिमग्न रह कर जो सिद्ध हो जाते हैं, वे पूर्वोक्त सिद्धो की अपेक्षा अधिक होते हैं। कोई मुनि दूसरे क्षेत्र मे छोड दिये जाते हैं वहा से वे मुक्ति प्राप्त करते हैं, उनकी संख्या और अधिक होती है। इत्यादि विकल्पो द्वारा सिद्धो का अल्प-बहुत्व-अनुयोग से विभाग किया जाता है।

अष्टौ सिद्धगुणा. ॥६६॥

अर्थ—सिद्ध भगवान के आठ गुण होते हैं।

सम्मत्तणाणदसणवीरिय सुहुम तहेव अवगहण।
अगुरुलहुमव्ववाह अट्ठगुणा हुंति सिद्धाण ॥११३॥
अट्ठविहकम्ममुक्का सीदीभूदा णिरजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥११४॥

यानी—सिद्धो मे आठ कर्मों के क्षय हो जाने से ८ गुण होते हैं। १ सम्यक्त्व (मोहनीय कर्म के नाश से), २ केवल ज्ञान (ज्ञानावरण के नाश से), ३ केवल दर्शन (दर्शनावरण के नाश से), ४ अनन्तवीर्य (अन्तराय के नाश से), ये चारो गुण अनुजीवी हैं। ५ अगुरुलघु (गोत्र कर्म के नाश से ऊच नीच के अभाव रूप), ६ अवगाहन (नाम कर्म के नाश से दूसरो को स्थान देने तथा स्वय दूसरो मे स्थान पाने रूप), ७ सूक्ष्मत्व (नाम कर्म के अभाव से सूक्ष्मता), ८ अव्याबाध (वेदनीय कर्म के अभाव से बाधा-रहितपना) ये पिछले ४ गुण प्रतिजीवी हैं।

प्रश्न—शरीर-रहित सिद्धों को क्या कितना कुछ सुख होता है ?

उत्तर—जैसे खुजली के रोग वाले को खुजली से व्याकुलता होती है तब वह अपने खुजली के फुन्सी फोडो को खुजाता है, खुजाते समय कुछ देर के लिए उसे बहुत आनन्द आता है किन्तु जैसे ही खुजाना वह बद कर देता है, तब उन फोडे फुन्सियो मे जो वेदना होती है उसे वही जानता है। इन्द्रियो के विषय-जन्य सुख भी ऐसे ही है। सिद्धो का सुख इन्द्रिय विषयो की खुजली से रहित, पराधीनता से रहित, निरन्तर, सदा रहने वाला आत्मोत्थ (स्वय आत्मा से उत्पन्न हुआ) सुख है, उसमे व्याकुलता लेशमात्र भी नही है, अत सिद्धो का सुख स्वाधीन, नित्य, निराकुल, निश्चिन्त, शान्त शाश्वत है।

आत्मोपादनसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतवाधं विशालम् ।
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निःप्रतिद्वन्द्वभावम् ।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममितं शाश्वतं सर्वकालम् ।
उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥

यानी—सिद्ध परमेष्ठी का सुख स्व-आत्म-रूप उपादनकारण से सम्पन्न हुआ है, अतिशयशाली है, बाधा रहित है, सीमा-रहित विशाल है, उसमे कमी-वेशी नही होती, बाहरी विपयों से उसका कुछ सवन्ध नही, उसका कोई प्रतिपक्षी नही है, अन्य पदार्थ के आश्रय से नही होता, अनुपम है. अनन्त है सदा निरन्तर रहने वाला है, उत्तम है, अनन्त सार-सम्पन्न है, अत. सिद्ध परमेष्ठी का सुख परम सुख है।

त्रैकाल्ये त्रिलोकेषु प्राणिनां पिण्डितात् सुखात् ।
अनन्तगुणितं प्रोक्तं सिद्धक्षणसुखाम्बुधेः ॥

यानी—त्रिकालवर्ती त्रिलोकवर्ती जीवों के सुख को एकत्र किया जाय उससे भी अनन्त गुणा सुख सिद्धो को एक क्षण का वतलाया गया है।

अंतिम मंगल के रूप मे टीकाकार कहते हैः—

तिरधियसयणवणउदीछण्णवदी अप्पमत्त वेकोडी ।
तद्दुगुणा हु पमत्ता अजोगिणो खवगपरिमाणा ॥११७॥

अर्थ—२९६९९१०३ अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि है, उनसे दूने ५९-३९८२०६ प्रमत्त गुणस्थानवाले मुनि है। क्षपक श्रेणी वाले मुनियो के वराबर अयोग केवली हैं।

तिसयं हवति सनगा खगवा तद्दुगुण जोगिअडलक्खा ।
अडणउदि सहसपणसयदुगं च संखेति णायव्वा ॥११८॥
सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमसामि ॥११९॥

अर्थ—३०० मुनि उपशम श्रेणी वाले होते है, क्षपक श्रेणी वाले उनसे दूने हैं। (किसी आचार्य के मत से उपशम श्रेणी वाले ३०४ होते हैं। और किसी आचार्य के मत से उनकी संख्या २९९ है।) सयोगकेवलियों की संख्या ८९८५०२ है।

अर्थ—छठे गुणस्थान से १४वे गुणस्थान तक के समस्त संयमियो की सख्या ८९९९९९९७ है, उनको त्रियोग शुद्धि के साथ हाथ जोड सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

गुरुभक्त्या वय सार्द्धद्वीपद्वितयवर्तिनः ।
वन्दामहे त्रिसंख्योननवकोटिमुनीश्वरान् ॥१२०॥
ऊनकोटिनवाचार्यान् ज्ञानदृक्चरणान्वितान् ।
ज्ञानदृक्सुखवीर्यार्थमानमाम्यार्यवन्दितान् ॥१२१॥

अर्थ—इन दोनो श्लोको द्वारा भी पूर्वगाथानुसार ढाई द्वीपवर्ती समस्त यानी तीन कम नौ करोड मुनियो को नमस्कार किया गया है ।

नमोवृषभसेनादिगोतमान्तगणेशिने ।
मूलोत्तर गुणाढ्याय सर्वस्मै मुनये नमः ॥१२२॥

अर्थ—श्री वृपभसेन से लेकर गौतम गणधर तक मूलगुण उत्तरगुण-धारक समस्त मुनियो को नमस्कार करता हूँ ।

भेदाभेदसमाख्यातसद्रत्नत्रयशोभिने ।
सर्वस्मै योगिवर्गाय नमस्कुर्वे स्वसिद्धये ॥१२४।

अर्थ—अपनी आत्मासिद्धि के लिये मैं भेद अभेद रत्नत्रय से विभूषित समस्त मुनियो को नमस्कार करता हूँ ।

श्री अन्तिम तीर्थङ्कर विश्ववन्द्य भगवान महावीर स्वामी के पश्चात् गौतम, सुधर्म, जबु स्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हो गये हैं, उनको मै नमस्कार करता हू । अतिन्म अननुबद्ध केवली श्रीधर हुए हैं उनको मेरो वन्दना है । तदनन्तर श्री नदि, (विष्णु), नदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु इन पाच श्रुतकेवलियों को मेरा नमस्कार है ।

श्री विशाख मुनि, प्रोष्ठिलयति, क्षत्रिय योगी, जयऋषि, जयनागयोगी सिद्धार्थ, धृतिषेण विजयसेन, बुद्धिल, गगदेव, क्रम से इन ११ अग दशपूर्व धारी ग्यारह आचार्यो को अपने हृदय मे स्मरण करके नमस्कार करता हू ।

श्री नक्षत्रयोगी, जयपाल, पाडुमुनि, धृतषेण ध्रुवसेन कंसाचार्य, इन ग्यारह अगधारी पाच मुनियो को नमस्कार करता हू ।

सुभद्र, जयभद्र (यशोभद्र)- जयबाहु भद्रबाहु, लोहाचार्य इन आचाराग-धारी चार आचार्यो को मेरा नमस्कार है ।

विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्दत्त ये एक पूर्व धारी चार मुनि हुए हैं उन को नमस्कार करता हू ।

अर्हद् वलि, माघनदीयोगी, धरसेन आचार्य भूतवली, पुष्पदत इन एक पूर्वधारी पाच आचार्यों को नमस्कार करता हू ।

श्रीदत्त, यतिवृषभ, उच्चारणाचार्य, माघनंद्याचार्य, कुंदकुंदाचार्य, समतभद्राचार्य, शुभनद्याचार्य, वीरनंद्याचार्य, वोप्पन देवाचार्य, लोहाचार्य, वीर सेनाचार्य, जिनसेनाचार्य, गुणभद्राचार्य आदि अविच्छिन्न श्रुत सतान परम्पर मे चले आये आचार्यो को मै नादोमगल पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

श्रीमज्जैनेन्द्रधर्माबरकमलशिखे विश्रुते मूलसंघे।
तत्संघश्रीकभूषाविलसदिह्गणश्रीवलात्कार नाम्नि ॥
केचित्त्रैविद्यदेवाः कविकुलतिलका केचिदाचार्यवर्याः।
केचिद्वादीभसिंहा गुरुकुलतिलका· केचिदेवं प्रसिद्धाः ॥२०॥

स्वास्ति श्री मूलसघ वलात्कार गणान्वय मे अनेकाचार्य प्रवर्तन करनेवाले काल मे श्री वर्द्धमान भट्टारकके शिष्य पद्मनदी त्रैविद्यदेव, इनके शिष्य श्रीधराचार्य, इनके शिष्य वासुपूज्य सिद्धाति देव, इनके शिष्य मासोपवासी रविचंद्र सिद्धाति देव, इनके शिष्य श्रुत कीर्ति त्रैविद्यदेव, इनके शिष्य वीरनंदी सिद्धाति देव, इनके शिष्य गंडविमुक्त नेमिचद्र भट्टारक देव, इनके शिष्य पक्षोपवासी जिन चन्द्र भट्टारक देव, इनके शिष्य वर्द्धमान भट्टारक देव, इनके शिष्य श्रीधर पंडित देव, इनके शिष्य (वासुपूज्य त्रैविद्यदेव, इनके शिष्य उदयचद्र सिद्धाति देव, इनके शिष्य ।)

स्वस्ति श्रीमूलसंघप्रवरगणबलात्कारसंज्ञे प्रसिद्धः।
सज्ज्ञानांभोजमित्र सकलगुणगणालंकृतो वासुपूज्य· ॥२५॥
त्रैविद्याख्यस्यसूनुर्विलसदुदयचंद्रोमुमुक्षुप्रमुख्यः।
तच्छिष्यस्तत्ववेदी परमकुमुदचंद्रोल्लसत्कीर्तिसांद्र· ॥२६॥

श्रेयस्कर अत्यन्त प्रवर संघ मे रहने वाले वलात्कार गण मे प्रसिद्ध सम्यग्ज्ञान रूपी कमल के लिये सूर्य के समान और सर्व गुणो से सुशोभित ऐसे वासुपूज्य त्रैविद्य देव, इनके पुत्र (शिष्य) संसार से मुक्त होने के इच्छुक उदय चंद्र इनके शिष्य तत्वज्ञान मे कोविद तथा कीर्ति से प्रकाशमान "कुमुदचन्द्र" गुरु हैं। उनका मैं मंगलमय ५२· श्लोको द्वारा मन वचन काय से नमस्कार करता हूँ।

परम्परानुसार समस्त आचार्यों को नमस्कार करने के पश्चात् श्रीमाघनन्दिआचार्य द्वारा निज-गुरु श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार.—

दुश्चित्तदुर्भावविवर्जिताय सज्ज्ञानचारित्रदृगूर्जिताय।
सद्धर्मतत्वं हि समर्जिताय श्रीकौमुदेन्दुद्दतर्निर्जिताय ॥२७॥

अज्ञानतमसा लुप्तो मार्गो रत्नत्रयात्मकः ।
तत्प्रकाशसमर्थाय नमोस्तु कुमुदेन्दुवे ॥३८॥

जिन्होने अपनी मानसिक बुरी कल्पनाओ को छोड दिया हैं, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र से जो समृद्ध हैं, जो सत्यधर्म के तत्व का सदा आराधन करने वाले हैं तथा प्रकाशमान चन्द्रमा के द्वारा समान जिन्होने आत्मतत्व को वश कर लिया है और अपने आत्मरूपी चन्द्रमा के द्वारा चारो ओर फैले हुये अज्ञानान्धकार को हटाकर रत्नत्रयरूपी मार्ग को प्रकाश करने के लिये जो समर्थ हैं, ऐसे श्री कुमुदचन्द्राचार्य को नमस्कार हो ।

संसारदुःखभीताय स्वात्मोत्थसुखसेविने ।
रत्नत्रयपवित्राय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ॥२८॥

ससार के दुःख से भयभीत आध्यात्मिक सुख का सेवन करने वाले और रत्यत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से परिशुद्ध श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

जिनवाक्यार्णवोद्भूतरत्नत्रयसुनिर्मलम् ।
चित्तसंधारकस्तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ॥३०॥

जिनवाणी रूपी समुद्र से उत्पन्न हुये रत्नत्रय से निर्मल चित्त को धारण करने वाले श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

अध्यात्माम्बुधिसंजातसद्रत्नत्रयधारिणे ।
भव्यसार्थोपदेशाय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ॥३१॥

आध्यात्मिक समुद्र से उत्पन्न हुये रत्नत्रय को धारण करने वाले तथा भव्य जीवो को सदुपदेश करने वाले श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

रुचिनिश्चित्तिचारित्रपदार्थानागमाद्ध्रुवम् ।
चित्ते संधारकस्तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ॥३२॥

शास्त्रानुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा पदार्थो को अपने अतःकरण मे रखने वाले श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।३२।

श्रद्धानज्ञानचारित्रं शुद्धात्मन्येव वर्तते ।
बुद्धेरथन्देशकस्तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ॥३३॥

इस जगत मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों शुद्ध आत्मा में ही रहते हैं, ऐसा जिन्होने समझा है उन श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

औजसं दर्शनं सम्यगौजसं ज्ञानमुत्तमम् ।
औजसं चरणं तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।३४।

उज्ज्वल प्रदीप्त सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र जिनमें है, ऐसे श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

भेदसम्यक्त्वयुक्ताय भेदज्ञानार्थवेदिने ।
भेदचारित्रधाराय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।३५।

विविध भेदों से युक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र के धारक श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

प्रशस्तदर्शनाढ्याय समस्तवस्तुवेदिने ।
निरस्तरागद्वेषाय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।३६।

प्रशस्त सम्यक्त्व से सम्पन्न, समस्त पदार्थों को अच्छी तरह से जानने वाले तथा राग-द्वेष को दूर करने वाले श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।३६।

सम्यक्त्वरत्नपात्राय ज्ञानरत्नप्रकाशिने ।
वृत्तरत्नपवित्राय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।३७।

सम्यग्दर्शन रूपी रत्नत्रय के पात्र, ज्ञानरूपी रत्न से प्रकाश करनेवाले तथा सम्यक्चारित्र से पवित्र श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हों ।३७।

श्रद्धाने बुद्धिचित्ताय संज्ञानामृतपायिने ।
सत्संयमाधाराय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।३८।

सम्यग्दर्शन मे दृढ चित्त रहने वाले, सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत को पान करने वाले तथा उत्तम सयम को धारण करने वाले श्री-कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।३८।

द्विप्रकारमिदं प्रोक्तं रत्नत्रयसुनिर्मलम् ।
तत्सारचेतकस्तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।३९।

रत्नत्रय के दो भेद है। निश्चय और व्यवहार । उसके सार को जानने वाले श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।३९।

द्रव्यास्तिकायतत्वार्थबंधमोक्षादिकारणं ।
यो नरो मोयते तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४०।

बंध, मोक्षादि के कारण द्रव्य, अस्तिकाय, तत्व, पदार्थ के जो ज्ञाता उन श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।४०।

द्रव्यास्तिकायतत्वार्थसारभूत निजात्मकं ।
तद्ध्यानयोगयुक्ताय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४१।

आत्मस्वरूप तथा सारभूत द्रव्य, अस्तिकाय, तत्व, पदार्थ का ध्यान करने वाले कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।४१।

द्रव्यत्वं च गुणत्वं च पर्यायार्थं निजात्मना ।
यो जानाति स्फुटं तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४२।

अपने आत्मा के साथ जो द्रव्यत्व और गुणत्व और पर्यायार्थ को स्पष्ट जानते हैं उन श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

सर्वद्रव्यन्तु सर्वज्ञै पूर्वाचार्यैश्च वर्णितम् ।
तदेव वर्णकस्तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४३।

जिस प्रकार सर्वज्ञ परमेश्वर तथा पूर्वाचार्यों ने समस्त द्रव्यो का वर्णन किया है उसी प्रकार वर्णन करने वाले श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

द्रव्योत्पत्तिव्ययात्मनं शुद्धात्मानं नयादिभिः ।
ज्ञातोपदेशकस्तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४४।

उत्पत्ति व्यय स्वरूप द्रव्य को तथा शुद्धात्मा के जो नय निक्षेप आदि से ज्ञाता हैं तथा उनके उपदेशक हैं ऐसे श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कर हो ।

शुद्धोपयोगयुक्ताय शुद्धतत्वोपदेशिने ।
शुद्धात्मध्याननिष्ठाय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४५।

शुद्धोपयोग से युक्त तथा शुद्ध तत्वोपदेश को करने वाले और शुद्धात्मा में लीन श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

नमः कुमुदचन्द्राय चन्द्रज्योतिःप्रकीर्तये ।
कीर्तिताशेषभव्याय भव्यव्यूहप्रबोधिने ।४६।

चन्द्रमा की ज्योति के समान कीर्तिमान, समस्त भव्य जीवो द्वारा प्रशसित, भव्य जीवो को प्रबुद्ध करनेवाले श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

सम्यक्त्ववज्रपातेन मिथ्यात्वाद्रिप्रभेदिने ।
सद्व्रतचक्रधाराय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४७।

सम्यक्त्व रूपी वज्र से मिथ्यात्वरूपी पर्वतो को चकनाचूर करने वाल सद्व्रत रूपी चक्र को धारण करने वाले श्री कुमुदचन्द्र को नमस्कार हो ।

मिथ्यात्वाद्रिसुवज्राय अज्ञानध्वान्तभानवे ।
अव्रताग्निं च तोयाय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४८।

मिथ्यात्व रूपी पर्वत के लिये वज्र के समान, अज्ञान अन्धकार के लिये सूर्य के समान और अव्रतरूपी अग्नि को बुझाने के लिये जल के समान श्री कुमुदचन्द्र को नमस्कार हो ।४८।

रुचि बल्या ...बोधाब्धेर्विधुरोचिने ।
चारित्राम्बुजमित्राय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।४९।

अर्थ—ज्ञानरूपी समुद्र को उद्वेलित करने के लिए चन्द्रमा के समान चारित्ररूपी कमलो को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य के समान श्री कुमुदचन्द्र को नमस्कार हो ।

जीवपुद्गलमाकाशं धर्माधर्मौ च कालकं ।
येन-प्रकाशितं तस्मै नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।५०।

जीव, पुद्गल, आकाश, धर्म अधर्म और काल द्रव्य को जिन्होंने ग्रन्थ प्रकाशित किया है ऐसे श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

विद्वत्तपोबलं वृत्तमाचारं पंचभेदकं ।
मनोमन्दिरधाराय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।५१।

दुर्द्धरद तपो बल और पांच प्रकार के आचार को जिन्होंने अपने मन रूपी घर मे धारण किया है उन श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो ।

मारमातंगसिंहाय चारित्राम्बुजभानवे ।
कारुण्यार्णवचन्द्राय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ।५२।

मदनरूपी हाथी को सिंह के समान, चारित्ररूपी कमल को सूर्य के समान, दयारूपी समुद्र को चन्द्र के समान श्री कुमुदेन्दु आचार्य को नमस्कार हो।

अनादि अनिधन श्रुतस्कध परमागम मे सारपद समूह के अर्थ के साथ करके जगत्त्रय तथा कालत्रयवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् अवलोकन करने में समर्थ, सकल विमल केवल ज्ञान के अधीश्वर श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर के चरण सनिधि मे वृषभसेन गणधर ने भरत चक्रवर्ती को तत्व-उपदेश दिया था । श्री महावीर स्वामी के चरण निकट मे श्री गौतम गणधर ने भी श्री मगधापति राजा श्रेणिक से चार अनुयोग कहे थे । वही जैनागम ज्ञान वैराग्य-सम्पन्न, सप्त भय से रहित, गुरु-परम्परा क्रम से चला आया है, प्राकृत, सस्कृत आदि अनेक ... है उसे कर्णाटक की जनता के उद्देश्य से तथा अज्ञानी जीवों के

उद्देश्य से सधि, समास क्रिया, कारक, विशेष, विशेषण वाक्य परिसमाप्ति, पुनरुक्तादि दोषो का विचार न करके व्यक्तार्थ होकर नित्यानन्द श्री कुमुदुचन्द्र दिगम्बर जैनाचार्य देव के प्रिय शिष्य श्री माघनन्दी सिद्धान्ति देव ने शास्त्रसार समुच्चय ग्रन्थ वनाया है। भेदाभेद रत्नत्रय की भावना वाले भव्य जीव, निर्मत्सर भाव वाले बहुश्रुती यदि इस ग्रन्थ मे कुछ त्रुटि देखें तो उसको शुद्ध लिखकर, लिखाकर अथवा सुनकर या. प्रवर्तन कर पुण्यवृद्धि को, यशवृद्धि को तथा स्वर्गावर्ग को प्राप्त करें।

देयात्श्रीधर देवशिष्यतिलकः श्री वासुपूज्यैर्मुनिः।
त्रैविद्यतदपत्यनुत्यनुदयेंदुख्यात सिद्धांतितत्पुत्रः ।।
कुमुदेन्दुयोगितिलकः तत्सूनुरत्युन्नत ।
सिद्धान्तार्णव चन्द्रमात्सुख पदं श्रीमाघनंदीव्रति ।।२१।।
मूल संघक्षितोभाति बलात्कारगणांबुधि ।
नूत्नरत्न समूहं व्याशोमतेमि मुनिश्वराः ।।५३।।
श्रीनाथ जैनमार्गोत्तमरेणिसि तपख्यातियंताळिसर्व ।
ज्ञानात्मवर्धमान प्रवररवशिष्यर्महावादिगळ्वि ।
द्यानदस्वामिगळ्तन् मुनिगळनुजर्तार्किकार्काभि ।
दानादिर्माणिक्यनंदि व्रति प्रतिगळवर्शासनिद्धात्तहस्तर् ।।२२।।
तदपत्यगुणकीर्ति पंडितखतरर्चासनख्यातको ।
विदरासूरिगळात्मजर्विमलस्तत्पदांभोजष ।
ट्पदरुद्यगुणचंद्ररतवरशिष्यरेदीशास्त्रार्थदोळ् ।
विदितगंड विमुक्तरिं नभयनद्याचार्यरार्योत्तमर् ।।२३।।
कृतकृत्यरभयनदिग । ळतनुजर्सकल चन्द्र सिद्धांतिकर ।
प्रतिमस्सर्वांगमळा । न्वितर्गंडविमुत्त देवमुनि शिष्पर् ।।२४।।
एनसिद गड विमुक्तर । तनूभवच्छरकरणपदविद्यापा- ।
वन मंत्र वाददोळु त्रिभु । वनचद्र मुनिद्र रत्ते बुधजनवंद्यर् ।।२५।।
अतिशय चन्द्र कीर्ति मुनिराज तपोवन राज कीरनू ।
जितगुण मेघ चंद्र मुनि वाक्यपय प्लवराज्य हसनु ।।
द्यद्गुण वत्सल सुकविवत्सल नूर्जित कीर्ति भारति ।
पतिएने पोललातं परंमत्तिनवर् श्रुत कीर्ति देवरं ।।२६।।

श्री वर्धमानयतिवर । रविक्रित्वोधवार्धिवाक् श्रीधरर ॥
त्रैविद्यावासुपूज्यर । निव्रसुधावंद्यरेरिगसिद्दुदयेंदुगळ ॥२७॥
वेन्नेवे कुमुदेंदुगळं । जननुतनेमिचन्द्र- भट्टारकरं ॥
विनुतस्त्रिभुवन चन्द्रर । ननवरतं वाल चन्द्र विद्यात्रयरं ॥२८॥
तुयाध्ययन संपन्ने शास्त्र सार समुच्चये ।
पठितेन्त्रोपवासार्ध फलं स्यान्मुनि भाषितं ॥५४॥
चतुरध्याया संशुद्धे शास्त्रसार समुच्चये ।
पठिनेनन्त सोख्यं स्याद्भाषितं मुनि पुगंवै : ॥५५
उक्तं श्री मूलसघे श्रीबलात्कार गणाधिपैः ।
श्रीमाघनंदि सिद्धांतैः शास्त्रसार समुच्चयं ॥५६॥
स्वस्ति श्री मूलसंघेस्मिन् बलात्कार गणेजनि ।
श्री माघनंदि सिद्धान्ति शास्त्रासाराख्याशास्त्रकृत् ॥५७॥
श्रीयं श्रीदेवराजस्तुतननु पतिः कामनाचारसारं ।
न्यायान्याय प्रभेद प्रकरटन पटुश्यु भव्याभोदियोगी ॥
ज्यायं श्री माघनुदि व्रतिपतिनुतराद्धांतचक्रेश्वरं वा ।
क्श्रीयं कूत्तिगे भव्यावळिगे गुरुगळप्पैवरंतोप्पै तोर्पं ॥२९॥
अरेवेण्णादन दोर्वनोर्वनुरम कूतित्तनोर्वगेंदे ।
वरोळोर्व मोरेगेट्टनेन्नोळेडर्ददं गोद्भवं बिकंमे ।
रिरेतन्नोळ् गुणंददे कट्टि वृषदिदं पेट्टमं पूडिनो ।
डी सिद्धान्तिक माघनंदियेळदं प्रोद्धामनं कामनं ॥३०॥
वारिजनाभनं मदुप्तनं हरियं पशु गादनं जटा ।
धारिक पर्दियंतिरिवनं बलगर्व देल्देनेदंहं ॥
कारदि बंदु नों तोडर्देयप्पोडेदर्पक माधणंदि सै- ।
द्धांतिक देवरिं पडेवे भंगचयंगळनाजिरंगदोळ् ॥३१॥
सल्लिगेय नगे मोगंगळ् । मेल्लनेबॅळुपेरे मंदमरुतम् भयदिं ।
दल्लल्लिगे हुगे मदनन । विल्लं श्री माघनंदियतिपतिमुरिदं ॥३२॥
बेसेयलुदर्पक निन्नोळुप्रनळिपं मायाविळं पोल्लड ।
पशु पाकिक नेरुवन्ननेलसद्द बोधासन निस्पृहं ॥

बिसुटं मायेयनोक्कनु ग्रतेयनीं कोडिट्टु बोडागदिर् ।
कुसुमोग्रायुध माघनंदियतियोळ् सिद्धान्त चक्रेशनोळ् ॥३३॥
परमर्हत्स्वमताब्धि वर्द्ध हिमकृ दुर्बिबं बिनेयाबुहो ।
द्यं द्रविबनन्य समयक्षेभ बहत्सबत- ॥
स्तरतिशोघ विडबनें भ ि व्याकरणिकु संतत ।
धरयोरतिरे माघनंदियतिय सिद्धान्त चक्रेशन ॥३४॥

येनारेष पदार्थ सार्थ कथन जागद्यते संततं ।
एनातंककळकपक मुनिशं दोधूयते भूयशा ॥
एन श्री जिन राजितयशो जेगीयते सांप्रत ।
सोय जोवतु माघनदि यतिय सिद्धान्त चक्रेश्वर ॥३५॥

श्रुत कांता कान्त कोतामल गुणमणिकान्तिमोहव्यूह ।
दूरी कृत विततत पोरुप रुपायतोद्य ॥
त्परमानदा यलीका हृदय जाब्जाब्ज वर्धस्वळोके ।
यतिप श्री माघनदि मुनि जननुतराद्धांत चक्रेशनित्य ॥३६॥

तत्पादांभोज भक्ते द्विशतु निरुपमं चित्सुखं दोषदूरं ।
नित्यानदं निजोत्थं परम समरसि भावमत्यंतसेव्यं ॥
राद्धांतांबोधिचंद्रं प्रतिगुण निधे माघनंदी व्रतींद्र ।
स्तेयात्स सश्वमद्दुदय कुमुदके कतुगर्वादिबज्रे ॥३७॥

श्री माघनंद्याचार्य की बिरुदावली—

स्वस्ति श्री समस्त शमुख प्रमुख लेख सेखर शोमणि माणिक्य पुज रजित चारु चरणारविंदद्वन्द्व परम जितेन्द्र, चरण स्मरण परिणांतः करणपार ससार पारा वारोत्तरण, श्री मूल संघ क्षीर वाराशिरजित बलात्कार गणोदया द्रिन्द्र समुत्पन्नोदय चन्द्रराद्धातात्मज श्री कुमुदचन्द्र भट्टारक देवस्यमनः प्रिय शिष्य स्वशुद्धात्म भावना धीश्वर, गुणो पोषक राग द्वेषद्वय वर्जित भक्ति भर विनय जननीरेज मित्र, भेदाभेद रत्नत्रय पवित्र गात्र त्रिमूढ, त्रिशल्य त्रिगारव, त्रिदड खडित चतुविध पाडित्यत्वगुणमडित, निश्चय व्यवहार पंचाचारएचित सहित, पचेद्रियेभ पचाननं, षडावश्यक षडाननयुक्त सप्तभय विप्रमुक्त, नव विधब्रह्मचर्य समेत, द्वादशानुप्रेक्षा भावना चतुर, निजनिरजन परमात्म तत्व सेवना कुशल अध्यात्म शास्त्र वेदादि युक्तान् सिद्धान्त सार सर्वस्व कोशावासैकमूर्तये नमः । श्री माघनद्याख्य विश्वविख्यात कीर्तये ।

नमोनम्नजनानंदस्येंदिने माघनंदिने ।।
जगत्प्रसिद्ध सिद्धान्त वेदिने चित्प्रमादिने ।।५८।।

परमागम अध्यात्मवेदी निजात्मोत्थसुखसम्पन्नादी श्री कुमुदचन्द्र भट्टारक देव के प्रिय शिष्य चतुरनुयोग कुशल सिद्धान्त वारिध सुधाकर श्री माघनन्दि सिद्धान्तिक देव द्वारा विरचित चतुरयोग नाम अपर नाम शास्त्र समुच्चय के चौथे द्रव्यानुयोग की कर्णाटक वृति का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।

वीरप्रभुमुखोद्भूता विश्वकल्याणकारिका।
चतुरनुयोगरूपा सा जीयाज्जैनभारती ।।१।।
माधनन्दियतीन्द्रेण तस्या सारसंग्रहः
व्यधायि सूत्ररूपेण नाम्ना शास्त्रसमुच्चयः ।।२।।
अज्ञातविदुषा केन-चन कन्नडभाषया।
विहिता व्याख्या तस्या विशाला चित्तहारिणी ।।३।।
जनोपयोगमुद्दिश्य हिन्दीवाण्यामनूदिता।
देशभूषणमुनीन्द्रेण दिक्पटव्रत धारिणा ।।४।।
इन्द्रप्रस्थमहानगरे दिल्ली प्रख्यातनामके।
लालदुर्गो महानस्ति यमुनानद्यास्तटे ।।५।।
तत्समक्षं शोभतेऽतीव जैनंलालमन्दिरम्।
अस्मिञ्जिनालये पूते पूतं कार्यमिदं कृतम् ।।६।।
षोडशोनसहस्राब्द व्यातीते च निर्वतेः।
श्रीशवीरजिनेन्द्रस्य विश्ववन्द्य गुणोदधेः।
मासाश्विनपक्षे शुक्ले विजयादशमीतिथौ।
कार्यमेतत्समापन्नं गुरौ हि शुभवासरे ।।८।।

इति माघनद्याचार्य विरचित शास्त्र सार
समुच्चय हिंदी अनुवाद
समाप्तः

अन्तिम प्रशस्ति

आनन्दाब्धेर्महितले लोकजनान्दकन्दलसमेते ।
श्रावकवृन्दसनाथे सोमे वारे हि मकरगेचन्द्रे ॥
अथ विजयदशम्यामाश्विने निल्लकारे,
विपुलमहितशोभेऽनन्तनाथस्य गेहे ।
जिनपगुणनिधानं शास्त्रसारात्मसारं,
व्यलिखतमिति कीर्तिश्चन्द्रवाराशिसूरिः ॥

यानी–जनता को सुख कारक, धर्म-प्रिय श्रावको के नायक आनन्दसागर के राज्य में सोमवार के दिन (जब चन्द्रमा मकर राशि मे था) विजयादशमी (आसोज सुदी १०) को निल्लिकार के अनन्तनाथ जिनालय में समस्त शास्त्रों के सारभूत इस शास्त्रसार समुच्चय (की टीका) को चन्द्रकीर्ति आचार्य ने लिखा है ।